वक्तव्य

किसी देश की वास्तविक संस्कृति उस देश के लोक-साहित्य में उपलब्ध होती है। अत. इस संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिये लोक-साहित्य का सरक्षण और अध्ययन नितान्त आवश्यक है। विदेशो में लोक-साहित्य की रक्षा के लिये अनेक समिति और और सस्थायें बनी हुई हैं। हमारे देश में विद्वानो का ध्यान इस आवश्यक विषय की ओर अभी थोडे समय से ही आकर्षित हुआ है।

लोक-संस्कृति की रक्षा की दृष्टि को ध्यान में रख कर प्रस्तुत लेखक भोजपुरी लोक-साहित्य के सरक्षण के लिये अनेक वर्षों से सतत उद्योग कर रहा है। आज से लगभग बीस वर्ष पहले उसने भोजपुरी साहित्य के सग्रह का कार्य प्रारम्भ किया था। तब से यह कार्य अनवरत गति से होता चला आ रहा है। इन गीतो, गाथाओ और कथाओ के सग्रह में उसे जिन कठिनाइयो का सामना करना पडा है उनका थोडा वर्णन उसने अपनी 'भोजपुरी लोक-गीत' भाग २ नामक पुस्तक के वक्तव्य में किया है। एक-एक गीत के सग्रह में अनेक दिन लगाने पडे हैं और लम्बी-लम्बी भोजपुरी गाथाओ के सग्रह मे महीनों का बहुमूल्य समय खपाना पडा है। भोजपुरी प्रदेश में पर्दे की प्रथा अधिक होने के कारण गीत सग्रह का कार्य और भी कठिन है। दूसरे, गवैये सदा गाने के लिये तैयार भी नही रहते। वे तो किसी विशेष ऋतु के आने पर ही उस ऋतु का गाना गाते हैं। अत. ऋतु-सम्बन्धी गीतो को लिपिबद्ध करने में अनेक मासो की प्रतीक्षा करनी पडी है। इसके अतिरिक्त इन गीतो के सग्रह के लिये अनेक अस्पृश्य जातियो—जो बहुत गन्दे स्थानो मे निवास करती हैं—के घरो में भी जाना पडा है। उनके गन्दे घरो में बैठकर गीतो का लिखना भी कुछ आसान काम नही है। अनेक कठिनाइयो के बीच कई हजार भोजपुरी गीतो, गाथाओं और कथाओ का सग्रह किया गया है। इस अशेष सामग्री को पाँच भागो में प्रकाशित करने की योजना भी इस लेखक ने बनाई है। भोजपुरी लोक-गीतो के दो भाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं जिनकी चर्चा आगे के पृष्ठो में की गई है। भोजपुरी लोक-गाथाओं का सग्रह भी तैयार है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इन पुस्तको के अतिरिक्त लेखक ने अनेक निबन्ध भोजपुरी लोक-गीतो के सम्बन्ध में लिखे हैं। हिन्दुस्तानी पत्रिका, प्रयाग में भोजपुरी लोक-गीतो में करुण रस नामक लेखक का एक लेख पहिले प्रकाशित हो चुका है। 'भोजपुरी लोक गीतो में सास्कृतिक चित्रण' नामक निबन्ध लखनऊ विश्वविद्यालय की लोक-सस्कृति-समिति के द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'ईस्टर्न एन्थ्रोपोलाजिस्ट' में प्रकाशित हुआ है। 'प्राच्य मानव वैज्ञानिक' में भी 'भोजपुरी मुहावरो में सामाजिक चित्रण' शीर्षक लेख छपा है।

यदि हम भोजपुरी लोक-साहित्य का विश्लेषण करें तो हमें उसमें प्रधानतया गीत, गाथायें और कथायें उपलब्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसा भी मौखिक साहित्य प्राप्त होता है जो इन उपर्युक्त तीन विभागो में अन्तर्भुक्त नही होता। इसी वर्गीकरण के आधार पर लेखक ने अपने निबन्ध (थीसिस) को चार खडो में विभाजित किया है—

१. लोक-गीत।

२ लोक-गाथा।
३ लोक-कथा।
४ प्रकीर्ण-साहित्य।

भोजपुरी साहित्य मे लोक-गीत प्रचुर सख्या में पाये जाते है। अत इस निबन्ध में विशेष रूप से इनका विवेचन किया गया है।

इस निबन्ध मे भोजपुरी साहित्य का परिचय देने के पहिले भोजपुरी भाषा का स्थूल परिचय उपस्थित किया गया है। इस अध्याय में भोजपुरी भाषा का क्षेत्र, विस्तार उसकी विभिन्न बोलियाँ, उनका पारस्परिक पार्थक्य और स्थूल व्याकरण दिया गया है। दूसरे अध्याय मे भोजपुरी साहित्य का विस्तृत विवेचन किया गया है। विस्मृति के गर्त में पडे हुए अनेक सन्त कवियो का पता लगाकर तथा उनकी कृतियों के अध्ययन के बाद इस अध्याय को लिखा गया है। उदाहरण के लिये लक्ष्मी सखी को लीजिये जो अन्धकार के गर्त में पडे हुये थे। इनके ग्रन्थ साधारणतया आजकल उपलब्ध नही होते। इनके एक पट्ट शिष्य की विशेष कृपा से ही इनके ग्रन्थ इस लेखक को प्राप्त हो सके हैं। इसी प्रकार आधुनिक भोजपुरी कवियो का वृत्तान्त उपस्थित करने में भी विशेष परिश्रम करना पडा है। भोजपुरी के अधिकाश लोक-कवियो की कवितायें अभी प्रकाशित नही हुई है। उनकी कविताओ को खोज निकालना बडा ही कठिन कार्य है। भोजपुरी गद्य के नमूने को प्रचीन कागज-पत्रों से सग्रहीत किया गया है, जो अत्यन्त दुष्कर व्यापार था।

तीसरे अध्याय में लोक-गीतो की भारतीय परम्परा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वैदिक काल से प्रारम्भ होकर किस प्रकार लोक-गीतो की धारा अक्षुण्ण गति से आज तक प्रवाहित हो रही है, यही इस अध्याय का मुख्य विषय है। कुछ लोक-गीतो की अन्तरग परीक्षा कर उनके रचना-काल का निर्णय किया गया है। इन गीतो के काल निर्णय का कोई बहिरग साधन नही मिलता है। अत अन्तरग प्रमाणो पर ही अवलम्बित होना पडा है।

चौथे अध्याय में लोक-गीतो के वर्गीकरण का जो सिद्धान्त लेखक ने प्रस्तुत किया है, वह भी बिल्कुल नया है। प० रामनरेश त्रिपाठी तथा पारीक जी ने लोक-गीतो का जो वर्गीकरण किया है वह व्यवस्थित नही है। लोक-गीतो के प्रकार के अन्तर्गत विभिन्न लोक-गीतो की विशद व्याख्या की गई है।

पाँचवें अध्याय में भोजपुरी लोक सस्कृति एव प्रथाओ के चित्र अकित है। यह अध्याय भी अनुसन्धानपूर्ण है। लोक-गीतो में भारतीय समाज तथा सस्कृति का सर्वांगपूर्ण चित्रण एकत्र उपलब्ध नही होता। यह विषय हजारो गीतो में बिखरा पडा है। इन गीतो में वर्णित प्रथाओं की छानबीन कर तथा इस पूरी सामग्री को एकत्रित कर इस अध्याय को लिखा गया है। इसमें भोजपुरी लोगो की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, एव राजनैतिक दशा का वर्णन है। भोजपुरी लोक सस्कृति का ऐसा चित्रण अन्यत्र प्राप्त नही होता। अत अनेक दृष्टियो से यह अध्याय नितान्त मौलिक एव खोजपूर्ण है। छठवें अध्याय में लोक-गीतो की साहित्यिक समीक्षा की गई है। इसमें लोक-गीतो में अलकार-विधान, रस-परिपाक, कोमलता, सरलता, प्रकृति-वर्णन और प्रेमपद्धति का विवेचन है।

लोक-गीतो में छन्दो का विधान व्यवस्थित रूप से नही पाया जाता । फिर भी सोहर और बिरहा आदि गीतो में छन्दो की नियम-सम्बन्धी व्यवस्था को दिखलाने का प्रयास किया है । इसके साथ ही छन्द-विधान और भाव-विधान में जो सामजस्य है उसे भी दिखाया गया है । गीतो में तुक और लय की जो योजना की गई है तथा इनमे आधुनिक भावो—देशभक्ति, स्वतन्त्रता, आदि की व्यञ्जना किस सुन्दर रीति से हुई है इसका भी वर्णन है । इस प्रकार इस अध्याय में लोक गीतो की साहित्यिक समीक्षा का सागोपाग वर्णन किया गया है । सातवें अध्याय में लोक-गीतो के गाने की विधि बतलाई गई है तथा इनके गाने के विशेषताओ की तुलना साम-गायन से की गई है । दोनो की गान-विधि में स्तोभ प्रणाली विद्यमान है । इस विशेषता की यहाँ विशद आलोचना हुई है ।

आठवें अध्याय में लोक-गीतो में समान भावधारा का उल्लेख है । किस प्रकार भारतीय संस्कृति का प्रवाह भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, गुजराती और बँगला आदि भाषाओ के लोक-गीतो में अविरत गति से प्रवाहित हो रहा है इसका वर्णन, उदाहरण सहित, इस अध्याय में किया गया है ।

दूसरे खड में लोक-गाथाओ की चर्चा की गई है तथा उनकी उत्पत्ति, प्रकार और विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है । नवें अध्याय मे लोक-गाथाओ की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न पाश्चात्य विद्वानों के क्या सिद्धान्त हैं, उनकी समीक्षा की गई है तथा अपना स्वतन्त्र मत भी प्रतिपादित किया गया है । दसवें अध्याय में लोक-गाथाओ के प्रकार की चर्चा कर ग्यारहवें अध्याय मे इन गाथाओ की विशेषताओ का विवेचन किया गया है । इस विषय के सम्बन्ध में अनेक अग्रेजी ग्रन्थो का अनुशीलन कर, उनमें वर्णित लोक-गाथाओ की विशेषताओ का भारतीय लोक-गाथाओ से सामजस्य स्थापित किया गया है । लोक-गाथाओ के सम्बन्ध में यह विवेचन भी नूतन है ।

इस निबन्ध के तीसरे खड में लोक-कथाओ का वर्णन है । बारहवें अध्याय में लोक-कथाओ की भारतीय परम्परा का विवेचन किया गया है और किस प्रकार वैदिक आख्यानो से लेकर लोक-कथाओं का प्रवाह अप्रतिहत गति से आजतक चला आ रहा है यह बतलाया गया है । तेरहवें अध्याय में लोक-कथाओ का वर्गीकरण नये ढग से किया गया है । डा० दिनेशचन्द्र सेन ने अपनी पुस्तक "फोक लिटरेचर आफ बँगाल' में लोक कथाओ का जो विभाजन किया है उससे यह वर्गीकरण विलक्षण है । चौदहवें अध्याय में लोक-कथाओ की प्रधान विशेषताओ की समीक्षा की गई है । इसके साथ ही लोक-कथाओं की शैली पर भी प्रचुर प्रकाश डाला गया है ।

चौथे खड में प्रकीर्ण साहित्य का वर्णन प्रस्तुत किया गया है । इसके अन्तर्गत भोजपुरी लोकोक्तियो, मुहावरो, पहेलियो और विविध प्रकार की सूक्तियों का अध्ययन है । इनमें उल्लिखित सामाजिक प्रथाओं का चित्र भी खींचा गया है । सोलहवें तथा अन्तिम अध्याय में भोजपुरी साहित्य की उन्नति की विभिन्न दिशाओ का दिग्दर्शन कराकर निबन्ध समाप्त किया गया है ।

यद्यपि इस निबन्ध मे लोक-साहित्य के सभी अगों की समीक्षा की गई है परन्तु लेखक ने लोक-गीतों को ही विशेष महत्ता दी है और उसी का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है । इस वर्णन को प्रस्तुत करते समय लेखक की दृष्टि सदा तुलनात्मक रही है । जहाँ लेखक ने भोजपुरी बारहमासे का वर्णन किया है वहाँ राजस्थानी और बँगला बारमासी से उसकी

तुलना की है। इसी प्रकार भोजपुरी सोहर और ऋतु गीतों की तुलना मैथिली और राजस्थानी गीतों से की गई है तथा इनमें निहित भावों की विशेषता भी बतलाई गई है। भोजपुरी साहित्य की चर्चा करते समय लेखक ने ऐतिहासिक पद्धति को अपनाया है और क्रम के अनुसार सारा विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

निबन्ध के आरम्भ में संक्षिप्त शब्दों की तालिका दी गई है। पुस्तक को उपयोगी बनाने की दृष्टि से विषय-सूची विस्तृत रूप में प्रस्तुत की गई है। निबन्ध के परिशिष्ट (क) में सहायक सामग्री दी गई है। इसमें पहले लोक गीत संग्रह सम्बन्धी पुस्तकों की सूची दी गई है। बाद में अन्य ग्रन्थों की। अकारादि क्रम का पालन लेखक ने जान-बूझ कर नहीं किया है। इस सूची में पहले भारतीय भाषाओं में निबद्ध ग्रन्थ तथा पत्रिकायें दी गई हैं, बाद में अंग्रेजी ग्रन्थों की तालिका है। लोक-गीतों की स्वरलिपि अलग से परिशिष्ट (ख) के रूप में प्रस्तुत की गई है। इस स्वर लिपि को प्रयाग संगीत समिति के भूतपूर्व डाइरेक्टर तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व संगीत-अध्यापक श्री महेश नारायण सक्सेना ने लेखक के लिये तैयार किया है। यह स्वरलिपि पेशेवाले गवैया को सामने रखा कर तैयार की गई है। गवैयों ने गीतों को जिस राग और स्वर में गाया है उसकी स्वर-लिपि उसी रूप में तैयार की गई है। अतः इसकी शुद्धता एवं वैज्ञानिकता में सन्देह का स्थान नहीं है। जहाँतक मुझे ज्ञात है हिन्दी में लोक-गीतों की स्वर-लिपि प्रस्तुत करने का यह प्रथम एवं मौलिक प्रयास है। निबन्ध के अन्त (परिशिष्ट) में भोजपुरी भाषा के विस्तार का मानचित्र दिया गया है। यह मानचित्र सर्वे विभाग के विस्तृत एवं शुद्ध मानचित्रों की सहायता से तैयार किया गया है।

अब अन्त में लेखक उन महानुभावों को धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझता है, जिनकी प्रेरणा एवं सहायता से यह कार्य पूरा हो सका है। सर्वप्रथम लेखक अपने पूजनीय गुरुवर डा० दीनदयालु जी गुप्त एम० ए०, डि० लिट्, अध्यक्ष: हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय का अभिवादन करता है, जिनके चरणों में बैठ कर उसे यह निबन्ध लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यदि डा० गुप्त की अटूट कृपा लेखक पर न होती तो सम्भवतः यह कार्य अपूर्ण ही रह जाता। महामहोपाध्याय, डा० गोपीनाथ कविराज एवं डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने इस निबन्ध की विस्तृत सूची (सिनाप्सिस) देखकर अनेक सुझाव उपस्थित किये थे। अतः लेखक इन दोनों सज्जनों का हृदय से आभारी है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी और डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डि० लिट, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय ने इस निबन्ध के कई अध्यायों को पढ़कर बहुमूल्य परामर्श प्रदान किया है। अतः लेखक इन दोनों सज्जनों को हृदय से धन्यवाद देता है। श्री महेशनारायण सक्सेना का भी लेखक आभार मानता है जिन्होंने उसके लिये लोक-गीतों की स्वर लिपि तैयार की है। पितृकल्प ज्येष्ठ भ्राता प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य, रीडर, संस्कृत तथा पाली विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी तथा आदरणीय अग्रज डा० वासुदेव उपाध्याय एम० ए०, पी० एच-डी०, रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति-विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मुझे सदा प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया है। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् प०

रामबालक शास्त्री का मैं विशेष रूप से अनुगृहीत हूँ जिनकी असीम कृपा तथा अथक प्रयास के द्वारा ही यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी है। चिरंजीव श्री हरिशंकर उपाध्याय एम० ए० मेरे आशीर्वाद के भाजन हैं जिनकी प्रेरणा तथा सहायता मेरे जीवन का बल और सम्बल है।

भारतीय लोक-संस्कृति शोधसंस्थान कार्यालय

६१ लूकरगंज, इलाहाबाद — कृष्णदेव उपाध्याय

रामनवमी, सं० २०१७ वि०

विस्तृत विषय सूची

(३) मुडन के गीत, (४) जनेऊ के गीत, प्रथा, वर्ण्य-विषय, बुन्देलखडी और मैथिली के जनेऊ गीत, (६५) विवाह, भोजपुरी वैवाहिक प्रथा, विवाह के गीतो के भेद, वर्ण्य विषय, अन्य भाषाओं मे विवाह के गीत, (५ अ) वैवाहिक परिहास, (६) गवना, प्रथा, वर्ण्य विषय, गवना के अन्य गीत।

ख. ऋतु-सम्बन्धो गीत

कजली, फगुआ, नामकरण एव प्रथा, फगुआ गाने की विधि, वर्ण्य विषय, राजस्थानी लोक गीतों में होली, मैथिली होली चैता, बारह मासा, वर्ण्य विषय, मैथिली लोक गीतों में बारहमासा, बगला मे बारहमासा।

ग व्रत सम्बन्धी गीत

(१) सीतला माता के गीत, (२) नाग पचमी के गीत, (३) बहुरा, (४) गोधन, (५) पिडिया, (६) छठी माता के गीत, मिथिला मे षष्ठी व्रत।

घ. जाति-सम्बन्धी गीत

अहीरो के गीत, चमारो के गीत, कहारो के गीत, तेलियो के गीत, गडेरियो के गीत, धोबियो के गीत, दुसाधो के गीत, गोंडो के गीत ।

ङ क्रिया गीत

जातसार, नामकरण, जाँत पीसने का ढग, वर्ण्य विषय, रोपनी के गीत, सोहनी के गीत ।

च. विविध गीत

झूमर, लचारी, पूरबी, निर्गुन, पाएती और भजन, पालने के गीत, खेल के गीत ।

अध्याय ५ : (पृष्ठ २३५-३२२)

लोक गीतो में संस्कृति और प्रथाओं के चित्र

क सामाजिक जीवन का चित्रण

समाज में स्त्रियो का स्थान, विवाह के पहिले, विवाह के पश्चात् गृहस्थ जीवन में, आर्थिक पराधीनता, वन्ध्या का कष्ट, विधवा की दुर्दशा, आदर्श सतीत्व, सती प्रथा, दिव्य,

अध्याय १४ : (पृष्ठ ४१६-४२६)

क भोजपुरी लोक-कथाओं की विशेषतायें

अश्लीलता का अभाव, मूल प्रवृत्तियो से सबध, मगल कामना की भावना सयोग में अन्त, अलौकिकता की प्रधानता उत्सुकता की प्रबल भावना वर्णन की स्वाभाविकता, प्राचीन लोक कथाओं और आधुनिक कहानियों में अन्तर।

ख लोक कथाओं की शैली

चम्पू शैली का ग्रहण, अतिरंजित शैली का अभाव, सीधी, सरल भाषा और प्रवाह युक्त शैली वैदिक शैली से तुलना।

खंड ४ (प्रकीर्ण साहित्य)

अध्याय १५ : (पृष्ठ ४२६-४४६)

क लोकोक्तियाँ —महत्त्व, लोकोक्ति सग्रह, वर्ण्य विषय, कहावतों में भोजपुरियों की स्वभावगत विशेषताएँ, विभिन्न जातियों की विशेषताएँ, देश या स्थान की विशेषता, ऐतिहासिक वृत्त, व्यग्य, सस्कृति।

ख मुहावरे मुहावरा का अर्थ, मुहावरो की उत्पत्ति, मुहावरो का महत्त्व, भोजपुरी मुहावरे, सस्कार और प्रथाओं का उल्लेख, ऐतिहासिक, पौराणिक, जातियो की विशेषताएँ, व्यग्योक्ति, शकुन विचार, शैली, खेती।

ग पहेलियाँ।

घ. प्रकीर्ण सूक्तियाँ घाघ का जीवन वृत्त, वर्ण्य विषय, वायु परीक्षा, वर्षा विज्ञान, जोताई, बोआई एव निराई, बैल की पहचान।

अध्याय १६ : (पृष्ठ ४४७-४४६)

उपसंहार

लोक गीतो का सग्रह तथा प्रकाशन, भोजपुरी लोक गीतो के रेकर्ड तैयार करना, रेडियो द्वारा गीतो का प्रचार।

. . . .

परिशिष्ट (क) सहायक सामग्री।

परिशिष्ट (ख) नवीन सामग्री।

संकेत शब्द सूची

संक्षिप्त रूप	पूर्ण रूप
आ० गृ० सू०	–आश्वलायन गृह्यसूत्र
इ०ए०	–इंडियन एन्टीक्वेरी
इ० एस्का० पा० बै०	–इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड
ऋ० वे०	–ऋग्वेद
ए० इ०	–एपिग्राफिका इंडिया
ऐ० ब्रा०	–ऐतरेय ब्राह्मण
कु० स०	–कुमार सभव
ग्राम गीत (त्रिपाठी)	–कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत)
छा० उ०	–छान्दोय उपनिषद्
ज० ए० सो० बं०	–जरनल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल
जे० आर० ए० एस०	–जरनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी
ता० ब्रा०	–ताण्ड्य ब्राह्मण
दु० श० सि०	–दुर्गा शकर प्रसाद सिंह
ना० प्र० प०	–नागरी प्रचारिणी पत्रिका
ना० स्मृ०	–नारद स्मृति
नै० च०	–नैषधीय चरित
पा० गृ० सू०	–पारस्कर गृह्य सूत्र
पु० नि०	–पुरातत्व निबन्धावली
भो० ग्रा० गी० (आर्चर)	–भोजपुरी ग्राम गीत
भो० ग्रा० गी० (उपाध्याय)	–भोजपुरी ग्राम गीत
भो० लो० गीत (दु० प्र० सि०)	–भोजपुरी लोक गीतों में करुण रस
म० भा०	–महाभारत
मै० लो० गी०	–मैथिली लोक गीत
मै० स०	–मैत्रायणी सहिता
या० स्मृ०	–याज्ञवल्क्य स्मृति

रा० लो० गी०	—राजस्थानी लोक गीत
लि० स० इ०	—लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया
लोक गीत	—भोजपुरी लोक गीतों में करुण रस
व्य० प्र०	—व्यवहार प्रकाश
वि० ध० सू०	—विष्णु धर्म सूत्र
श० प० ब्रा०	—शतपथ ब्राह्मण
सेविन ग्रामर्स या सेविन ग्रामर्स आफ दि विहारी लैंग्वेज	—सेविन ग्रामर्स आफ दि डाइलेक्ट्स एण्ड सब-डाइलेक्ट्स आफ दि विहारी लैंग्वेज
स० सा० इ०	—संस्कृत साहित्य का इतिहास
ह० ग्रा० सा०	—हमारा ग्राम साहित्य
हि० वि० वि०	—हिन्दू विवाह का विकास
हि० स० लि०.	—हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर

नवीन सामग्री

यह निवन्ध लखनऊ विश्वविद्यालय में पी एच डी की थीसिस के रूप में सन १९५० ई० में प्रस्तुत किया गया था। तब से लेकर आज तक इन दस वर्षों के बीच में भोजपुरी लोक साहित्य से सबंधित अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। भोजपुरी के अनेक उदीयमान कवियों की कविताएँ भी इधर प्रकाश में आई हैं तथा उनके सग्रह उपलब्ध होने हैं। अत इन नवीन पुस्तकों तथा युवक कवियों की रचनाओं का सक्षिप्त वर्णन करना यहाँ अनुचित न होगा।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय एम ए, पी एच डी ने इधर 'भोजपुरी और उसका साहित्य' नामक पुस्तक की रचना की है जो 'भारतीय साहित्य परिचय ग्रन्थमाला' में दिल्ली से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में डा० उपाध्याय ने भोजपुरी लोक गीत, लोक नाट्य, लोक-सगीत लोक कला आदि विषयों का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है। भोजपुरी लोक साहित्य तथा लोक सस्कृति का साधारण परिचय प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। उपाध्याय जी की दूसरी रचना 'लोक साहित्य की भूमिका' है, जो साहित्य भवन लि० प्रयाग से प्रकाशित हुई है। इसमें लेखक ने लोक साहित्य के सामान्य सिद्धान्तों की समीक्षात्मक मीमासा की है। लोक साहित्य के मूल भूत तत्वों तथा सिद्धान्तों की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत करने वाली यह सर्व प्रथम तथा मौलिक पुस्तक है। डा० उपाध्याय का तीसरा ग्रन्थ 'भोजपुरी लोक-कथाएं' है। भोजपुरी लोक-गीतों के कई सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित लोक-कथाओं का यह सर्व प्रथम सग्रह है। ये कथाएँ गाँवों के वृद्ध पुरुषों तथा बूढ़ी दादियों के मुँह से सुनकर सकलित की गई हैं। उपाध्याय जी ने 'भोजपुरी लोक-सस्कृति की रूपरेखा' नामक एक प्रकाण्ड ग्रन्थ की रचना भी की है जिसका कुछ भाग काशी विद्यापीठ के समाज विज्ञान परिषद् की मुख्य पत्रिका 'समाज' (वर्ष ४ अक ३, अक्टूबर १९५८ ई०) में प्रकाशित हो चुका है।

डा० उदयनारायण तिवारी एम ए, डि लिट, प्राध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग ने 'भोजपुरी भाषा और साहित्य-नामक ग्रन्थ लिखा है जो राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, (बिहार) से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने भोजपुरी भाषा का बडा ही गभीर, वैज्ञानिक तथा शोधपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही भोजपुरी मे कुछ कवियों का भी वर्णन किया गया है। भोजपुरी भाषा के अध्ययन के लिए यह पुस्तक अत्यन्त आवश्यक है।

डा० सत्यव्रत सिनहा एम ए, पी एच डी, असिस्टेंण्ड सेक्रेटरी, हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग ने 'भोजपुरी लोक गाथा' की रचना की है। यह निवन्ध प्रयाग विश्वविद्यालय मे डि फिल की थीसिस के रूप में प्रस्तुत किया गया था। लेखक ने भोजपुरी की लोक-गाथाओं का सकलन तथा अध्ययन वडे परिश्रम से किया है जिससे उनकी विद्वता का पता चलता है।

भोजपुरी के पुराने साहित्य सेवी तथा ख्याती विद्वान् श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह की पुस्तक 'भोजपुरी के कवि और काव्य' राष्ट्रभाषा परिषद् पटना (बिहार) से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक को लेखक ने बड़े परिश्रम, शोध तथा अध्ययन के पश्चात् लिखा है। इस ग्रन्थ मे ऐसे अनेक कवियो का वर्णन प्रथम बार किया गया है जिन्हे पहिले कोई जानता ही न था। इस प्रकार अनेक अज्ञात कविया के उद्धार करने का श्रेय दुर्गाशंकर जी को प्राप्त है।

श्री सत्यदेव ओझा एम ए, प्राध्यापक कोआपरेटिव कालेज, जमशेदपुर (बिहार) ने भोजपुरी कहावतो का बहुत बड़ा सकलन किया है। ये 'भोजपुरी लोकोक्तियो के ऊपर शोधकार्य कर रहे है। जिसे वे अपनी पी एच डी की थीसिस के रूप में बिहार विश्वविद्यालय में शीघ्र ही प्रस्तुत करने वाले है। 'भोजपुरी लोक साहित्य का सामाजिक अध्ययन' शीर्षक थीसिस पर श्री इन्द्रदेव जी को लखनऊ विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त हो चुकी है। इसी प्रकार से अनेक शोधी छात्र प्रयाग विश्वविद्यालय में भोजपुरी साहित्य के विभिन्न अगो पर शोधकार्य कर रहे है।

भोजपुरी के कवि गण

इधर भोजपुरी के अनेक उदीयमान कवियो की रचनायें प्रकाश में आई है। प० रामनाथ प्रणयी भोजपुरी के बड़े ही सुन्दर तथा सरस कवि हैं, जिनकी कविता में भोजपुरी प्रकृति का चित्रण आलम्बन रूप से उपलब्ध होता है। 'प्रणयी' ने प्रणय के भी गीत गाये हैं परन्तु इनकी कविता की प्रधान विशेषता है ग्रामीण प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण। इनकी कविताओ का सकलन 'सितार' और 'कोइलिया' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अन्य अनेक काव्य सबधी पुस्तकें लिखी हैं। पूस मास का कितना सुन्दर वर्णन इन्होने निम्नाकित पक्तियो में किया है--

आइल पूस महीना अगहन लौट गइल मुसकात।
थर थर काँपत हाथ पैर, जाडा पाला के पहरा।
निकल चलल घर से बनिहारिन ले हँसुआ भिनसहरा॥
धरत धान के थान अगुरिया, ठिठुरि-ठिठुरि बल खात।
आइल पूस महीना अगहन बीत गइल मुसकात।
ढोवत बोझा हिलत बालि के बाज रहल पैंजनियाँ।
खेतन के लछिमी खेतन से उठि चलली खरिहनियाँ।

झलक गिरत उडि जात फूल दिन, हिम पहाड़ अइ रात।
आइल पूस महीना, अगहन लौट गइल मुसकात।
लहस उठल जव, गहुँम, बूँट रे लहसल मटर मसुरिया।
बाज रहल तीसी तारी पर, छवि के मीठ बँसुरिया।
पहिरि खेंगारो के सारी साँवरि-गोरिया अँठिलात।
आइल पूस महीना, अगहन लौट गइल मुसकात।

डा० रामविचार पाण्डेय की कविताओ के तीन सकलन इधर प्रकाशित हुए हैं, जिनमें 'विनिया विछिया' प्रसिद्ध है। पाण्डेय जी की रचनाओ में भावो की सुन्दर कल्पना पाई जाती है। कविता पढने का इनका ढग बडा ही सुन्दर तथा रमणीय है जिसे सुनकर श्रोतागण

श्राकृष्ट हो जाते हैं। इन्होने 'कुँवर सिंह' के सबध में एक नाटक की भी रचना की है जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

भोजपुरी के उदीयमान कवियों में श्री मोती बी ए बहुत प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हैं। इनका जन्म १ अगस्त सन १९१९ ई० में देवरिया जिले के बरेजी नामक गाँव में हुआ था। इन्होने एम ए तक शिक्षा प्राप्त की है तथा आजकल श्रीकृष्ण इन्टर कालेज, बरहज में इतिहास तथा अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं। श्री मोती बी ए का कविता पढ़ने का ढग बड़ा ही मधुर है। अनेक फिल्मो में इन्होने गीतकार का कार्य किया है। 'नदिया के पार' में सम्पूर्ण गीतो की रचना इन्होने की है। इनकी कविताओ का सग्रह 'महुवा बारी' के नाम से इलाहाबाद से अभी हाल में ही प्रकाशित हुआ है। प्रणयी जी की भाँति ग्रामीण प्रकृति और जीवन का चित्रण इन्होने बड़ी मार्मिकता से किया है। महुवा का यह वर्णन कितना सुन्दर है—

"अइसन नसा छावलसि कि गदाये लगलि पुलुई
पोरे-पारे मधु से भराये लागलि कुरुई।
महुआ अइसन ले रँगरइलें,
जरी पुलुई ले काचइले,
लागल डाढ़ी-डाढी डोलिया कहार, सजनी।
असो आइल महुवा बारी में, बहार सजनी॥

ग्रामीण जीवन का यह चित्रण देखिये—

"सइयाँ खातिर बारी धनियाँ महुअरि पकावेली।
केहू बनिहारे खातिर तावा पर ततावेली॥
महुआ बैल प्रेम से खावें,
गाडी खींचें, जोत बनावें।"
ई गरीबवन के किसमिस, अनार सजनी।
असो आइल महुवा बारी में बहार सजनी॥

प० चन्द्र शेखर मिश्र का भोजपुरी के तरुण कवियों में एक विशिष्ट स्थान है। आपका जन्म मिर्जापुर जिले में हुआ है। आजकल आप काशी के 'सन्मार्ग' नामक दैनिक समाचार पत्र के साहित्यिक सम्पादक हैं। मिश्र जी ने गाँवो में घूम घूमकर भोजपुरी के कई हजार लोक-गीतो का सकलन किया है जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। मिश्र जी की कविताओ में सरसता तथा मधुरता विशेष रूप से पाई जाती है। शब्दो का चयन भी इनका बड़ा सुन्दर है। आशा है आप अपनी सरस भोजपुरी कविताओ का सकलन प्रकाशित कर अपनी मातृभाषा के भण्डार को भरने की कृपा करेंगे।

श्री राहगीर जी देवरिया जिले के निवासी हैं तथा आजकल नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में कार्य कर रहे हैं। राहगीर जी के व्यक्तित्व से सरसता टपकती है। इनकी कविता में मधुरता तथा कोमलता उपलब्ध होती है। कवि-सम्मेलनो में राहगीर जी अपने कविता-पाठ से समा बाँध देते हैं। इनकी कविताओ का सग्रह अभी तक प्रकाशित नही हुआ है। इन्होने 'भोजपुरी के गीत और गीतकार' नामक पुस्तक लिखी है जिसमें भोजपुरी के अनेक युवक कवियो की कविताएँ सकलित हैं।

श्री प्रभुनाथ मिश्र बलिया जिले के निवासी हैं। इन्होंने भोजपुरी के कवियों में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। मिश्र जी की कविताओं का संग्रह 'हरियर-हरियर खेत' में बलिया से प्रकाशित हुआ है, जिसमें ग्रामीण प्रकृति का मनोरम चित्रण उपलब्ध होता है। इन्होंने भोजपुरी प्रकृति को बहुत नजदीक से देखा है तथा उसका सूक्ष्म वर्णन उपस्थित किया है। प्रभुनाथ जी से भोजपुरी साहित्य को बड़ी आशा है। आजकल आपन 'बिहान' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन कर रहे हैं, जिसमें भोजपुरी की सुन्दर कविताएँ तथा कहानियाँ प्रकाशित होती है।

श्री जगदीश ओझा 'सुन्दर' की कविताएँ वास्तव में सुन्दर होती हैं। इनकी कविता में शोषित, पीडित मानवता के करुण क्रन्दन ने स्थान प्राप्त किया है। 'मजदूर की गली' आपकी सुप्रसिद्ध कविता है जिसमें निम्नस्तर के निर्धन लोगों की दयनीय दशा का चित्रण किया गया है। ओझा जी की पदशय्या बड़ी मनोरम होती है। ये बलिया जिले के निवासी हैं तथा बलिया की नगर पालिका में शिक्षा-विभाग के अधिकारी हैं।

भोजपुरी के गद्य-लेखकों में श्री मुक्तेश्वर तिवारी 'बेसुध' का विशिष्ट स्थान है। ये बलिया जिले के निवासी हैं तथा मर्चेन्ट्स इन्टर कालेज चित बड़ा गांव (बलिया) में अध्यापन का कार्य करते हैं। इधर कई वर्षों से ये 'चतुरी चाचा' के नाम से चटपटी चिट्ठियाँ लिख रहे हैं जो वाराणसी के दैनिक 'आज' में प्रकाशित हो रही हैं। इन चिट्ठियों के दो संग्रह 'चतुरी चाचा की चटपटी चिट्ठियाँ' के नाम से प्रयाग से मुद्रित हुए हैं। इनकी चिट्ठियों का भोजपुरी साहित्य में वही स्थान है जो बाल मुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित 'शिव-शम्भु शर्मा के चिट्ठों' का हिन्दी में। चतुरी चाचा ने अपनी चिट्ठियों में ठेठ तथा खांटी भोज-पुरी का प्रयोग किया है। इनके समान टकसाली भोजपुरी-गद्य का लेखक दूसरा कोई नही है। ग्रामीण जीवन का जो स्वाभाविक चित्रण इनकी चिट्ठियों में पाया जाता वैसा अन्यन्य उपलब्ध नहीं होता है। इन्होंने भोजपुरी लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रचुर प्रयोग अपने लेखों में किया है। इनकी चिट्ठियों के शीर्षक से ही विषय का अन्दाजा लगाया जा सकता है। जैसे— रूख ना बिरीछ तहाँ रेंड़ परधान, कहावे के रानी चोरावे के चमरख, कई गिहियनी भाठा पातर, चार कवर भीतर तब देवता पीतर, आदि। चतुरी चाचा की चिट्ठियों में वर्तमान शासन की कटु आलोचना तथा सामा-जिक बुराइयों की खिल्ली उड़ाई गई है। जैसे—

'चुप्पा हाथ उठाऊ नेता लोग जबान के खक्नोफ दोहल ना चाहनु। मीटिंग में लहठि के सइनी मलत रही लोग। जब केवनो बात खातिर हाथ उठाइके वोट लियाये लागेला तब ओह लोगं के नींदि टूटेला, आदि।

श्री रामेश्वर सिंह 'काश्यप' भोजपुरी एक अच्छे कवि हैं। ये पटना (बिहार) के बी. एन., कालेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। भोजपुरी साहित्य सम्मेलन के अधिवे-शनों में ये कवि-सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं। इनकी कविता में ओजगुण की प्रधानता पाई जाती है। इन्होंने वीर रस का पल्ला पकड़ कर अच्छी रचना की है। परन्तु इनकी कीर्ति का प्रधान कारण इनके द्वारा रचित 'लोहासिंह' नामक नाटक है। इस नाटक में विद्वान् लेखक ने लोहासिंह के रूप में पलटन से लौटे हुए एक भोजपुरी सिपाही का चित्रण किया है। काश्यप जी एक योग्य नाटककार ही नहीं हैं प्रत्युत एक सफल अभिनेता भी हैं।

ये स्वय इस नाटक का अभिनय करते हैं । लोहासिंह आल इण्डिया रेडियो-पटना, लखनऊ तथा इलाहाबाद से अभिनीत हो चुका है । अखिल भारतीय नाटक प्रतियोगिता में राष्ट्रपति ने इस नाटक को प्रथम पुरस्कार प्रदान कर पुरस्कृत किया था । काश्यप जी ने इस नाटक की रचना कर शिष्ट जनता का ध्यान भोजपुरी की ओर आकर्षित किया है ।

बलिया (उत्तर प्रदेश) के कांग्रेसी लीडर तथा कवि श्री प्रसिद्ध नारायण सिंह ने बाबू कुँवर सिंह के सबध में एक वीर काव्य की रचना की है जिसमें सन् १८५७ ई० के स्वतन्त्रता सग्राम के इस योद्धा तथा नेता की वीर गाथा वीर रस में गाई गई है । प्रसिद्धनारायण जी के इस काव्य को भोजपुरी प्रदेश में बडी प्रसिद्धि प्राप्त हुई है । इन्होने भोजपुरी भाषा को वीर रस के साँचे मे ढालकर यह सिद्ध कर दिया है कि यह भाषा वीर रस के भावो को भी अभिव्यक्त करने में पूर्णतया सशक्त है । काशी के श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' ने इधर 'भोजपुरी लोक-साहित्य एक अध्ययन' नामक पुस्तक की रचना कर भोजपुरी की बडी सेवा की है । विद्वान् लेखक ने भोजपुरी लोक-गाथाओ का इसमें प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत किया है । इसके साथ ही विभिन्न सस्कारो के अवसर पर गाये जाने वाले गीतो का परिचय देते हुए विभिन्न व्रतो का वर्णन किया गया है । इस उपयोगी पुस्तक की रचना के लिए 'विनोद' जी भोजपुरी जनता के धन्यवाद के पात्र हैं । राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से भोजपुरी भाषा तथा साहित्य की परिचायिका एक छोटी-सी पुस्तिका भी प्रकाशित हुई है ।

सस्थाएँ

(१) भोजपुरी साहित्य के सकलन, सरक्षण तथा प्रचार के लिए अनेक सस्थाएँ कार्य कर रही हैं, जिसमें आरा की भोजपुरी-समिति प्रधान है । इस सस्था के सेक्रेटरी श्री रघुवश नारायण जी हैं जो बडे ही जीवट के व्यक्ति हैं । इस समिति की ओर से 'भोजपुरी' नामक मासिक पत्रिका आज अनेक वर्षो से प्रकाशित हो रही है, जिसमें भोजपुरी के लोक-गीत, कहानियाँ तथा कविताएँ प्रकाशित होती हैं । रघुवश नारायण जी के सम्पादकत्व में यह पत्रिका भोजपुरी की ठोस सेवा कर रही है । इसका प्रधान कार्यालय पहिले आरा में था परन्तु अब पटना में है । रघुवश नारायण जी शीघ्र ही एक अखिल भारतीय भोजपुरी सम्मेलन, पटना में करने वाले हैं जिसमें भोजपुरी साहित्य की रक्षा तथा प्रचार के लिए एक ठोस योजना बनाने का विचार है ।

(२) भोजपुरी साहित्य सम्मेलन । इस सम्मेलन का प्रधान उद्देश्य भोजपुरी भाषा तथा साहित्य का प्रचार तथा प्रसार है । इसके कर्मचारियो में प० महेन्द्र शास्त्री प्रधान हैं । इस सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन छपरा (विहार) जिले के सिवान नामक स्थान पर हुआ था, जिसके सभापति हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी के सस्कृत विभाग के प्रोफेसर प० बलदेव उपाध्याय थे । महा पण्डित राहुल साकृत्यायन इस सम्मेलन के हथुवा (विहार) अधिवेशन के सभापति रह चुके हैं । अभी इस वर्ष (१९६० ई०) यह सम्मेलन आरा जिले के 'नयका भोजपुरी' नामक स्थान में किया गया था । आशा है इससे भोजपुरी को गति तथा प्रगति प्राप्त होगी ।

(३) लोक-साहित्य-परिषद् प्रयाग । प्रयाग के कुछ युवक साहित्य-सेवियो ने इस सस्था की स्थापना सन् १९५७ में की थी । इस परिषद् ने भोजपुरी तथा अवधी के लोक-गीतो का सकलन किया है । इस परिषद् के सेक्रेटरी श्री हरिशकर उपाध्याय एम-

ए. हैं, जो बड़े लगन तथा उत्साह के साथ इस संस्था के कार्य को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील हैं।

(४) भोजपुरी सभा नई दिल्ली। इस संस्था के अध्यक्ष रेलवे मन्त्री जगजीवन राम जी हैं तथा मन्त्री श्री त्रिवेणी सहाय जी हैं जो एक बड़े ही कर्मठ व्यक्ति हैं। इस समाज का उद्देश्य भोजपुरी भाषा-भाषियों में भ्रातृभाव की भावना उत्पन्न करना तथा उनकी उन्नति के लिए सतत प्रयास करना है। नई दिल्ली में स्थित भोजपुरी भाइयों की इस संस्था ने बड़ी सेवा की है। प्रतिवर्ष भोजपुरी समाज की ओर से राष्ट्रपति-भवन में होली का उत्सव मनाया जाता है जिसमें होली के गीत गाने की व्यवस्था भी की जाती है। श्री त्रिवेणी सहाय जी बड़े ही जीवट के आदमी हैं तथा इनके ही अथक प्रयास का यह फल है कि यह समाज भोजपुरी जनता की उत्तम सेवा करने में समर्थ हो सका है।

प्रयाग के कुछ उत्साही युवकों ने भी इसी प्रकार की एक संस्था की स्थापना की है, जो भोजपुरी भाइयों की बड़ी सहायता कर रही है। इन लोगों का ध्यान विशेषतया सामाजिक सेवा की ओर है।

(५) भारतीय लोक-संस्कृति-शोध-संस्थान। इस संस्थान का उद्देश्य भारतीय लोक-संस्कृति की रक्षा करना है। इस संस्थान के संस्थापक हैं—पं० व्रजमोहन व्यास, श्री श्रीकृष्णदास तथा डा० कृष्णदेव उपाध्याय। इस त्रयी के भगीरथ प्रयास तथा अथक उद्योग से इस की उन्नति द्रुत गति से हो रही है। इस शोध-संस्थान के तत्वावधान में अखिल भारतीय लोक-संस्कृति-सम्मेलन प्रतिवर्ष भारत के विभिन्न राज्यों में किया जाता है। इसका प्रथम अधिवेशन प्रयाग में सन् १९५८ ई० में तथा द्वितीय अधिवेशन सन् १९५९ ई० में बम्बई में हुआ था। इस शोध-संस्थान ने भोजपुरी लोक-गीतों तथा लोक-कथाओं का संग्रह करवाया है जो 'भोजपुरी लोक-कथा' नाम से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इस लोक-संस्कृति-शोध-संस्थान के अवधान में एक लोक-कला-संग्रहालय की भी स्थापना की गई है जिसके क्युरेटर श्री हरिशंकर उपाध्याय एम. ए. हैं। इस संग्रहालय में भोजपुरी प्रदेश की लोक-कला का विशेष रूप से संग्रह किया गया है। जिसका अधिकांश श्रेय इसके क्युरेटर उपाध्याय जी को प्राप्त है।

पत्र-पत्रिकाएँ

भोजपुरी लोक साहित्य के संरक्षण में 'भोजपुरी' नामक मासिक पत्रिका अनेक वर्षों से श्री रघुवंश नारायण सिंह के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका ने भोजपुरी के उदीयमान कवियों की कविताओं को प्रकाशित कर उन्हें प्रोत्साहन प्रदान किया है। लोक-गीतों तथा लोक-कथाओं के प्रकाशन से उनकी रक्षा हो रही है। इस प्रकार यह पत्रिका अपने क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य कर रही है। बलिया (उत्तर प्रदेश) से 'विहान' नामक साप्ताहिक पत्र आज लगभग दो वर्षों से प्रकाशित हो रहा है। इसके सम्पादक श्री प्रभुनाथ मिश्र हैं जो भोजपुरी के अच्छे कवि हैं। मिश्र जी के सम्पादकत्व में यह पत्र भोजपुरी-साहित्य की अच्छी सेवा कर रहा है। भोजपुरी में उच्च कोटि की साहित्यिक पत्रिका का अभाव है। आशा है इसकी भी पूर्ति शीघ्र हो जायेगी।

इधर रेडियो द्वारा भी भोजपुरी का प्रचार हो रहा है। आकाशवाणी के प्रयाग तथा पटना स्टेशनों से पंचायत घर प्रोग्राम में भोजपुरी में अनेक वार्ताएँ प्रसारित होती

हैं। प्रतिदिन लोक-गीतो, लोक-कथाओं या लोक नाट्यो में से कोई न कोई प्रोग्राम अवश्य रहता है। रेडियो स्टेशन द्वारा समय-समय पर भोजपुरी कवि-सम्मेलन भी आयोजित किया जाता है तथा इनकी कविताओ को प्रसारित किया जाता है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि भोजपुरी प्रदेश के केन्द्रस्थान बलिया या आरा--में एक रेडियो स्टेशन की स्थापना की जाय, जहाँ से केवल भोजपुरी के प्रोग्राम प्रसारित किये जायें।

आजकल भोजपुरी लोक साहित्य की सर्वाङ्गीण उन्नति तथा वृद्धि हो रही है। इस प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्याललयो में अनेक शोधीछात्र भोजपुरी साहित्य के भिन्न-भिन्न अगो पर अनुसन्धान का कार्य कर रहे हैं। अनेक तरुण कवि अपनी रचनाओ से इसके साहित्य को भर रहे हैं। अनेक सस्थाएँ भोजपुरी भाइयो की सेवा में तत्पर हैं। इस प्रकार भोजपुरी का भविष्य बडा उज्ज्वल दिखाई पडता है।

—:o:—

अर्था् डुमराँव के राजा रजुली अत्यन्त नीच हैं। बेटियाँ के वहोरन पाडेय धनिया जुलाहा हे। परन्तु हल्दी के राजा दलगजन देव वीर हैं जिनकी वीरता से दुनियाँ कांपती है। लड़कों के इस गीत का उस अधिकारी के हृदय पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वह उल्टे पाँव डुमराँव गया और राजा को सब समाचार सुनाया। राजा ने इस गीत को सुनकर उत्तेजित हो हल्दी पर चढाई कर दी और राजा को परास्त कर दिया।

यह एक स्थानीय ऐतिहासिक घटना है। न मालूम ऐसी कितनी सच्ची घटनायें इन गीतों में भरी पड़ी हैं। जौनपुर जिले के कोइरीपुर गाँव के पास चाँदा नामक एक गाँव है जहाँ १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में अंग्रेजो और कालाकाकर प्रतापगढ के बिसेनवशी राजा मे घोर युद्ध हुआ था।[1] अब भी उस गाँव के आसपास इस युद्ध के गीत गाये जाते हैं जिसकी एक कड़ी यह है—

"काले कांकर क बिसेनवा, चाँदे गाड़े वा निसनवां"

कुँवर सिंह के पँवारे में उनकी वीरता की कहानी हमें पढने को मिलती है। एक गीत में सिपाही विद्रोह का कारण कितनी सुन्दर रीति से व्यक्त किया गया है[2]।

"चमड़ा टोड़वा दाँत से हो काटे कि
छतरी के धरम नसाय हो राम।"

बाद में उनकी सेना का दानापुर पटना से चलकर कोहलवर मे आने का उल्लेख किया गया है। इसी समय के एक अल्पगीत में अवध की बेगमों की दुर्दशा का चित्रण भलीभाँति किया गया है। इन गीतों के अध्ययन से मुगलों के अत्याचार, उनके शासन की ढिलाई एव व्यभिचार का भी पता चलता है। आल्हा की गाथा के द्वारा, यद्यपि इसमें कुछ कपोल कल्पना भी है, परमर्दिदेव के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। आल्हखड में जो ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है उसका महत्व कुछ कम नहीं है। गोपीचन्द्र के गीत के द्वारा पाल वश का अप्रकाशित इतिहास प्रकाश मे आता है। डा० ग्रियर्सन ने गोपीचन्द्र की ऐतिहासिकता को प्रमाणित करते हुए इस गीत के महत्व को भलीभाँति दर्शाया है। बहुला की गाथा में हमें चन्द्र सौदागर, बाला लखन्दर, विषहर आदि पात्र मिलते हैं। विहुला की यह कथा इसी रूप में अनेक प्रान्तों में प्रचलित है। बहुत सभव है कि विहुला की यह कथा किसी ऐतिहासिक घटना के ऊपर

१. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० ६७।

२ ‒ ‒ ।

आश्रित हो और चन्द्र सौदागर और बाला लखन्दर आदि ऐतिहासिक व्यक्ति हों।

इसी प्रकार बालकों के गीतों में, खेलों में, पहेलियों में अनेक ऐतिहासिक महत्व की बातें प्राप्त होती हैं।

लोक-साहित्य में भौगोलिक एवं आर्थिक दशा का भी चित्रण हमें उपलब्ध होता है। लोक-गीतों में व्यापार के लिए जाने वाले उन बनजारों का उल्लेख मिलता है जो पूरब देश को जाते थे और आवागमन का साधन न होने के कारण बारह वर्ष पर परदेस से लौटा करते थे। ये बनजारे मसाले का व्यापार करते थे। गीतों के काल में आजकल की ही भाँति मगह का पान, बनारस की साड़ी, मिर्जापुर का लोटा, पटने का झूल और गोरखपुर के हाथी प्रसिद्ध थे। इन उल्लेखों से हमें आर्थिक भूगोल का पता चलता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों का वर्णन किसी न किसी प्रसंग में प्राप्त होता है। इससे इन स्थानों की प्राचीनता का पता चलता है। आल्ह खंड का भूगोल अपना विशेष महत्व रखता है।

भौगोलिक एवं आर्थिक

गीतों और कथाओं में सोने के बर्तनों और आभूषणों का प्रचुरता से वर्णन मिलता है। खाने के लिये सदा सोने की थाली का उल्लेख है। जल पीने की सुराही भी सोने की ही है। बाल करने की कघी भी सोने की बनी हुई है। दूध से पैर धोने और घी से स्नान करने का उल्लेख मुहावरों में बार-बार आता है। बासमती चावल, मूंग की दाल, पूड़ी, पुआ आदि विभिन्न प्रकार के पकवानों का वर्णन अनेक बार हुआ है। इन सब उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज की आर्थिक दशा उन्नत थी और लोग धन, धान्य से पूर्ण सुखी थे।

लोक-साहित्य में सामाजिक वर्णन अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। समाज के अध्ययन की बहुमूल्य सामग्री इन गीतों में उपलब्ध है। इतिहास की बड़ी-बड़ी पोथियों में लड़ाई, झगड़ों का वर्णन भले ही मिल जाय परन्तु किसी समाज की वास्तविक अवस्था को जानने के लिये उसके लोक-साहित्य का अनुसन्धान वाञ्छनीय है। इन लोक-गीतों, गाथाओं एवं कथाओं में मनुष्यों के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, रीतिरिवाज आदि का सच्चा चित्र देखने को मिलता है। वेरियर इलविन ने लोक-गीतों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि इनका महत्व इसीलिये नहीं है कि इनमें सगीत, स्वरूप और विषय में जनता का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित होता है प्रत्युत इनमें

सामाजिक वर्णन

मानवशास्त्र के अध्ययन की प्रामाणिक एवं ठोस सामग्री हमें उपलब्ध होती है[1]। मध्यप्रदेश की एक जाति करमा के एक गीत में यह उल्लेख है कि "यदि तुम मेरे जीवन की सच्ची कहानी जानना चाहते हो तो मेरे गीतों को सुनो"[2]। ये लोक गीत कहानियों की अपेक्षा वास्तविक जीवन के अत्यधिक निकट हैं।[3]

मानवशास्त्र (एन्थ्रोपोलोजी) और लोकवार्ता शास्त्र (फोक लोर) के विद्यार्थियों के लिये लोक-साहित्य का अनुशीलन अत्यन्त लाभप्रद है। भोजपुर प्रदेश में नेटुआ धोबी गोंड चमार दुसाध कमकर मुसहर कहार और खिरवार आदि अनेक जातियाँ विद्यमान हैं जिनके रीति रिवाज जन्म और विवाह की विधियाँ प्रथायें एवं खान पान आदि एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं। दुसाध जाति में पचरा नामक गीत गाकर ही समस्त रोगों की औषधि की जाती है। इस प्रकार इन जातियों के लोक-साहित्य का अध्ययन किया जाय तो हमें बहुत सी उपयोगी सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

भोजपुरी लोक-साहित्य में समाज का जो चित्रण किया है वह उच्च, शिष्ट और सभ्य है। पति-पत्नी भाई-बहन माता-पुत्री पिता-पुत्र, ननद भौजाई और सास एवं बहू का जो चित्रण इन गीतों में उपलब्ध होता है उससे भोजपुरी समाज का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। भाई बहन के जिस शुद्ध अलौकिक एवं सच्चे प्रेम का उल्लेख इन गीतों में किया गया है वह अनुकरणीय है। दुष्ट पति के द्वारा स्त्री जब अकारण छोड़ दी जाती है तो उस दीन अवस्था में भाई उसे अपने घर लाकर उसका पालन करता है। पुत्री की विदाई के समय माता का अपार प्रेम-पारावार हिलोरें मारता हुआ दिखाई देता है। कहीं माता रो रही है तो कहीं भाई चिल्ला रहा है। पुत्री के वर खोजने के लिये पिता की चिन्ता भी उल्लेखनीय है। वह अपनी प्यारी पुत्री के लिये योग्य वर की तलाश में उड़ीसा और जगन्नाथपुरी तक की यात्रा

भोजपुरी लोक गीतों में समाज

---

1 The folk songs are important not only because the music, form and content of verse is itself part of the peoples life, but even more because in songs in chorus, in actually fixed and established documents we have the most athentic and unshakable witness to ethnographic fact

2 *Folk song of Mechel Hills* introduction p 16

3 The folk songs are much nearer real life than are the *folk tales* p 15

करता है। ननद और भावज का शाश्वतिक विरोध भी इन गीतो में देखने को मिलता है। ननद भावज को सदा झिडकियाँ देती है और अपने भाई को उकसा कर उसे तग किया करती है। सास और बहू का सबध भी इन गीतो में कुछ सुन्दर नही है। दुष्टा सास अपनी बहू को अनेक प्रकार से कष्ट देती है। उससे दिन भर काम करवाती है परन्तु खाने के लिये शुद्ध भोजन तक नही देती। सौतिया डाह का जो सजीव चित्रण इन गीतो में किया गया है वह अत्यन्त स्वाभाविक है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह का वर्णन भी स्थान-स्थान पर पाया जाता है।

इसके अतिरिक्त लोक-साहित्य में विभिन्न रीति-रिवाज भी उपलब्ध होते हैं। सोहर और विवाह के गीतो के प्रसग में इनका विशेष वर्णन किया जायगा। भोजपुरी समाज में पुत्र-जन्म के अवसर पर ताली बजाने की प्रथा है। यह प्रथा बडी वैज्ञानिक है परन्तु विज्ञान के आधुनिक युग में लोग इसे छोडते जा रहे हैं। विवाह के अवसर पर परीछन, द्वारपूजा, गुरहत्थी, लावामेराई, भाँवर, सुमगली और कोहबर आदि अनेक प्रथाओ का उल्लेख मिलता है। प्राचीन-कालीन वैदिक विवाह पद्धति को समझने के लिये इस मौखिक साहित्य को जानना आवश्यक है।

धर्म सबधी वस्तुओ का वर्णन भी लोक-साहित्य में पाया जाता है। बहुरा पिडिया, भाईदूज और जीउतिया (जीवत्पुत्रिका) आदि व्रत की कहानियो में अनेक उपदेशात्मक बातें भरी पडी हैं। समाज में विदुर-

धार्मिक पौराणिक

नीति और कौटिल्य के नीति वचनो का प्रभाव भले ही न पडे परन्तु इन कहानियो का असर अवश्य ही पडता है। अत धार्मिक और नीति की शिक्षा के लिये लोक-कथाओ का बडा महत्व है।

लोक-गीतों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उस समय में शिव पूजा की प्रधानता थी। लोग शिव मन्दिरो में पूजा के लिये जाया करते थे। साथ ही सूर्य पूजा का भी कुछ कम प्रचार न था। षष्ठी माता का व्रत वास्तव में सूर्य का ही व्रत है। उस दिन सूर्य भगवान् को चढाने के लिये जो पक्वान्न पकाया जाता है उस पर सूर्य के रथ का चित्र उत्कीर्ण रहता है। एक गीत में कोई स्त्री जल्दी उदय लेने के लिये सूर्य भगवान् से प्रार्थना करती है जिससे अर्घ्य दिया जा सके। गगा माता और तुलसी माता का भी उल्लेख इन गीतो में मिलता है। गगा और तुलसी का स्थान हमारे धार्मिक जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गगा नहाना और तुलसी की पूजा करना स्त्रियों का प्रधान धार्मिक कृत्य है।

धार्मिक जीवन की झाँकी के साथ ही हिन्दू पुराण शास्त्र (माइथालोजी) का वर्णन भी इन गीतों में मिलता है। यहाँ केवल दो ही वस्तुओं का उल्लेख पर्याप्त होगा। गीतों में शिवजी के दूसरा विवाह करने का उल्लेख पाया जाता है और तुलसी जी के सपत्नी होने का। तुलसी और शिव के दूसरे विवाह का उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं होता। अतः ये दोनों बातें हिन्दू पुराण शास्त्र के लिये मौलिक कल्पनायें हैं।

लोक-साहित्य में जिस नैतिक अवस्था का वर्णन मिलता है वह लोकोपम, लोकोत्तर और दिव्य है। सतीत्व का जो आदर्श इस साहित्य में उपलब्ध है वह सुन्दर है। भारत में सती धर्म का पालन किया गया है। सती शिरोमणि भगवती देवी ने किस प्रकार तालाब में डूबकर अपनी प्रतिष्ठा को दुष्ट मुगलों के हाथों से बचाया इसका उल्लेख आगे किया जायगा। इसी प्रकार चन्दादेवी ने अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिये खौलते हुए तेल में अपने शरीर को स्थापित कर दिया था। सतीत्व की कसौटी पर स्त्रियाँ अत्यन्त खरी उतरती हैं। कोई पुरुष परदेस से लौट रहा है। रास्ते में वह अपनी स्त्री को पाता है और उससे हार, मोती एवं डालभर सोना देकर ब्याह करने का प्रस्ताव करता है। इस प्रस्ताव पर वह स्त्री उत्तर देती है कि मैं तुम्हारे धन में आग लगा दूंगी। एक गीत में कोई देवर भावज से मजाक करता हुआ विवाह का अनुचित प्रस्ताव करता है इस पर वह सती भावज रोषपूर्ण होकर उत्तर देती है यदि तुम्हारा भाई परदेश से आगया तो तुम्हारी इन लम्बी बाहुओं को इस दुष्टता के कारण कटवा दूंगी।[1]

नैतिक

परन्तु लोक साहित्य का, सबसे अधिक महत्व भाषाशास्त्र की दृष्टि से है। यदि इस दृष्टि से हम ध्यानपूर्वक विचार करते हैं तो देखते हैं कि इस साहित्य में अमूल्य निधियाँ भरी पड़ी हैं। सर्वप्रथम लोक-गीतों और कथाओं के संग्रह से एक मौलिक साहित्य नष्ट होने से बच जायगा। लोक-गीतों और गाथाओं में आये हुए शब्दों की निरुक्ति का पता लगाने पर भाषाशास्त्र की अनेक गुत्थियाँ सुलझाई जा सकती हैं। इनमें व्यवहृत शब्दों के द्वारा हिन्दी के कुछ शब्दों के विकास की परम्परा को हम वैदिक संस्कृत से जोड़ सकते हैं। बहुत से ऐसे शब्द वैदिक संस्कृत में पाये जाते हैं जो संस्कृत में हैं, भोजपुरी साहित्य में हैं परन्तु हिन्दी में नहीं हैं। एक उदाहरण लीजिये। गाय के सद्योजात शिशु को वेद में 'धरुण' कहते हैं। भोजपुरी में यह 'लेरुआ' के नाम

भाषा-शास्त्र संबंधी महत्त्व

[1] भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१७।

से पुकारा जाता है। परन्तु हिन्दी में इस भाव का द्योतक कोई शब्द नहीं है। इसी प्रकार गर्भघातिनी गाय को 'वेहद्' और बाँझ गाय को वेद में 'वशा' कहते है। भोजपुरी में इनका नाम क्रम से 'लडायल' और 'बहिला है। भोजपुरी का 'बहिला' शब्द वैदिक 'वशा' से उत्पन्न हुआ है। परन्तु इन दोनों भावों को प्रकट करने के लिये हिन्दी में कोई शब्द नहीं है। यदि 'धरुण' और 'वशा' शब्दो की जीवनी लिखनी है तो लोक-साहित्य में प्रयुक्त इन शब्दो को जाने बिना हमारी गाडी आगे नहीं बढ सकती। यह एक विशेष बात है कि अनेक वैदिक शब्दों के अपभ्रंश रूपो की सत्ता लोक-साहित्य में विद्यमान है परन्तु हिन्दी में उनका सर्वथा अभाव है।

शब्दो की ऐतिहासिक परम्परा को जानने के लिये लोक-साहित्य का अध्ययन अत्यन्त उपादेय है। उदाहरण के लिये 'जुगवत' शब्द को ही लीजिये। लोक-गीतो में इस शब्द का प्रयोग खूब रखवारी करने के अर्थ में हुआ है। परन्तु इसकी उत्पत्ति सस्कृत के 'गुपु-रक्षणे' धातु से है जिसका भूतकालिक रूप 'जुगोप' बनता है। इसी 'जुगोप' से 'जुगवत' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। एक दूसरा शब्द लीजिये। लोकगीतो मे सौभाग्यवती स्त्री के लिये 'सुहवा' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह सस्कृत के 'सुभगा' शब्द से निकला है, यह बात भाषाशास्त्र वेत्ताओं से छिपी नहीं है।

लोक साहित्य के अध्ययन से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि होगी। उसका भाषा भाडार समृद्ध होगा, नये-नये शब्दो, मुहावरो और लोकोक्तियो के ग्रहण से हिन्दी भाषा की भाव प्रकाशिका शक्ति बढेगी। भारत की राष्ट्रभाषा के लिये वृद्धि अत्यन्त आवश्यक है। हमारे घरो में, खेतो में, कारखानो में प्रतिदिन काम में आनेवाले कितनी ही वस्तुओ के नाम हिन्दी में नहीं हैं। कितने ही भावों को प्रकट करने के लिये उपयुक्त एव उचित शब्द भी नहीं पाये जाते। एक उदाहरण लीजिये—भोजपुरी में 'बिराना' एक क्रिया है जिसका अर्थ हिन्दी में 'मुँह चिढाना' है। परन्तु बिराना का भाव मुंह चिढाने से कुछ भिन्न है। इसी प्रकार 'डाहना' शब्द है। भोजपुरी में कहते हैं "तू हमरा के बडा डाहत बाड" अर्थात् तुम बडा दुःख दे रहे हो। डाहना के लिये हिन्दी में प्राय जलाना, दुःख देना प्रयुक्त होता है। परन्तु 'डाहना' का भाव जलाने अथवा दुःख देने से कही अधिक व्यापक और गभीर है। जलाने में केवल नीरसता है परन्तु 'डाहने' में क्रोध, प्रतिवाद और विक्षोभ के साथ उलाहने का भी भाव है। एक दूसरा शब्द 'बराना' है जिसके दो अर्थ है, बचकर चलना और चुनना। जैसे 'राह बरा कर चलो'। परन्तु 'राह बराने' का भाव बचकर चलने से कहीं अधिक व्यापक है। 'निहुरना' शब्द का अर्थ झुककर चलना है, जैसे 'निहुरकर' झाडू दो।

'झुकने' का प्रयोग किसी भी वस्तु के लिये किया जा सकता है परन्तु 'निहुरना' का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ कमर के झुक जाने में ही किया जाता है। भोजपुरी में 'विसूरना' शब्द बड़ा भावव्यजक है। इस एक ही शब्द में चिन्ता, दुःख और करुणा का भाव भरा है। हिन्दी में इस भाव का द्योतक कोई भी शब्द नही है।

भोजपुरी लोक-साहित्य में हजारो ऐसे शब्द विद्यमान हैं जो गभीर भाव के द्योतक है परन्तु हिन्दी में उनका पर्यायवाची कोई शब्द नही है।[1] जैसे अगोरना, अदहन, अहकना, अहरा, अहारना, आँटी, उडासना, उबहन, उमी, ऐपन, ओवरी, ओरी, कचारना, कनिया, कजरौटा, कलोर, कुरिया, कोचना, खोइछा, गाँज, गेडुरी, गोयड, गौं, चक्वड, चटक, चिचोरना, जाउरि, टिकरी, निहोरा, परई, परीछना, पुरवट, बतिया, बिदोरना, बेग्राना, बोरसी, लिबिर, लूगा, लेहग्रा, सबारना, हीडना, हूलना और हुमसाना आदि।

उपर्युक्त सूची में कुछ ऐसे भी शब्द है जिनमें भाव व्यजना इतनी अधिक है कि उन्हें समझाने के लिये अनेक वाक्यो का प्रयोग करना पडेगा।

भोजपुरी लोक-गीतों और कथाओं में मुहावरे और कहावतें भरी पडी है। इन मुहावरो एव लोकोक्तियों में भावाभिव्यजन की बडी शक्ति है। वाक्यो में

मुहावरा और लोकोक्तियाँ

इनका प्रयोग करने से शैली सुगठित एव चुस्त बन जाती है। इनमें कुछ ऐसे भी मुहावरे है जिनका हिन्दी में नितान्त अभाव है। जैसे 'आग में मूतना'। अधिक अन्धेर या अत्याचार करने के लिये इस मुहावरे का प्रयोग होता है। दूसरा मुहावरा 'खराई मारना' है जिसका अर्थ प्रातःकाल अधिक देर तक जलपान या भोजन न करने से प्रकृति में विकार उत्पन्न होना है। इन दोनो मुहावरो के भाव को बोधित करने के लिये हिन्दी में कोई मुहावरा नही है। नीचे कुछ और उदाहरण दिये जाते हैं।

पाताल खिलना	बहुत दूर जाना।
फिरहिरी होना	कार्य में नितान्त व्यग्र होना।
लग्गा लगाना	किसी काम को प्रारम्भ करना।
हेठी दिखलाना	अपमान सूचित करना।
तरवा में आग लगना	क्रोध में आ [illegible]
हाथ में दही जमाना	मारने पर [illegible]
हाका बदना	स्पर्धा कर [illegible]
हाथ झुलावत आना	असफल हो [illegible]

१. ऐसे शब्दों की लम्बी सू [illegible] देखिये।
त्रिपाठी : ग्राम गीत भू [illegible]।

भोजपुरी लोकोक्तियों में प्रचुर भाव भरा पड़ा है। उनमें अर्थ प्रकाशन की विचित्र शक्ति है। जैसे 'बेटी चमारे के नाम रजरनिया' अर्थात् असुन्दर वस्तु को सुन्दर नाम प्रदान करना। एक दूसरा मुहावरा है 'अगिया लगाई छउडी बर तर ठाढ' अर्थात् दो मनुष्यों में झगड़ा लगाकर स्वयं तटस्थ बन जाना। भवभूति की यह उक्ति "तटस्थ स्वान् अर्थान् घटयति, च मौन च भजते" इस लोकोक्ति से बहुत कुछ मिलती जुलती है। "जिन बिअइली तिन ललइली, बेटा लें पडोसिन भइली" अर्थात् जिसने बच्चा पैदा किया वह माता लालायित ही रही परन्तु पड़ोसिन पुत्रवती बन गई। इस कहावत का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ उचित व्यक्ति को लाभ न पहुँच कर दूसरे को उसका फल मिलता है। इसी प्रकार हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली

पारिभाषिक शब्दों की सम्पत्ति में लोक-साहित्य नितान्त धनी है। यदि हिन्दी भाषा को पारिभाषिक शब्दों से परिपूर्ण करना है तो लोक-साहित्य का अध्ययन नितान्त अनिवार्य है। डा० ग्रियर्सन ने 'बिहार पीजेन्ट लाइफ' नामक अपनी पुस्तक में लोक-जीवन और लोक-साहित्य में व्यवहृत होनेवाले शब्दों का विशाल संग्रह किया है। खेती-बारी, कोल्हू, जात, लोहार, बढई, कोहार आदि के प्रयोग में आनेवाले हजारों पारिभाषिक शब्द हैं जिनका हिन्दी में अभाव है। जैसे खेती के काम में आनेवाले हल, फार, जुवाठ, पैना नाल, हरिस, पचखा, आदि शब्द पारिभाषिक हैं। बढई का औजार वसुला, रुखानी, आरी आदि अनेक शब्द हैं। इन समस्त शब्दों का संग्रह, प्रकाशन और प्रयोग हिन्दी की साहित्य वृद्धि में सहायक सिद्ध होगा।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने बँगला के 'बाउल' गीतों का अनुकरण अपनी कविता में किया है एवं बँगला लोक-साहित्य के शब्दों और मुहावरों को अपने काव्य में स्थान दिया है। यदि हिन्दी के कविगण भी इस विषय में रवीन्द्रनाथ का अनुकरण करें तो हमारी राष्ट्रभाषा के कोष की वृद्धि होगी, उसमें भाव प्रकाशन की अधिक शक्ति आवेगी और वह जन-मन का अनुरंजन कर सकेगी।

प्रथम खण्ड

लोक-गीत

नही कि यह एक दिन विलुप्त हो जाय। लोक-साहित्य हमारी राष्ट्रीय निधि है अत इसे सुरक्षित रखना हमारा परम धर्म है।

भोजपुरी लोक साहित्य की व्यापकता

चिरकाल से अर्जित ज्ञान राशि का नाम साहित्य है। जो साहित्य साधारण जनता से सबध रखता है उसे 'लोक-साहित्य' कहते हैं। जिस प्रकार साधारण जनता का जीवन नागरिक जीवन से भिन्न होता है उसी प्रकार उनका साहित्य भी आदर्श साहित्य से पृथक् होता है। भोजपुरी लोक-साहित्य की अभी विशेष उन्नति नही हुई है। इसमें जो कुछ साहित्य मिलता भी है वह प्राय मौखिक रूप में ही उपलब्ध होता है। इन बिखरे हुए रत्नो को बटोर कर पुस्तक रूपी मजूषा में रखने का विनम्र प्रयत्न इन पक्तियो के लेखक ने किया है। परन्तु अभी बहुत कार्य शेष है।

भोजपुरी लोक-साहित्य को हमने चार भागो में विभक्त किया है —

१ लोक-गीत (लिरिक्स)
२ लोक-गाथा (बैलेड्स)
३ लोक-कथा (फोक टेल्स)
४ प्रकीर्ण साहित्य।

लोक-गीत वे गेय (लिरिकल) गीत हैं जिनमें गेयता ही प्रधान गुण है। उनमें कथानक बहुत थोडा होता है। लोक गीतो के अन्तर्गत सस्कार-गीत, ऋतु गीत जाति गीत आदि सभी प्रकार के गीत आते हैं। लोक-साहित्य मे लोक-गीतो की ही प्रधानता है। सच तो यह है कि ये इसकी आत्मा हैं। लोक-गाथाओ में उन गीतो का समावेश किया गया है जो गेय होते हुए भी कथा प्रधान हैं। इनका कथानक बडा लम्बा होता है जैसे आल्हा और विजयमल। 'लोक-कथा' में उन देहाती कथाओ की विवेचना की गई है जिन्हें बूढी दादियाँ और मातायें अपने बच्चो को सुनाती हैं। विभिन्न व्रत सबधी कथाओ का भी इनमें समावेश किया गया है। इनके अतिरिक्त भोजपुरी में हजारो कहावतें, मुहावरे, पहेलियाँ, सूक्तिया पालने के गीत, खेल के गीत विद्यमान हैं जिनका प्रयोग और गान आबाल-वृद्ध समान रूप से करते हैं। अत इन सभी विषयो को 'प्रकीर्ण साहित्य' नामक चौथे खड में स्थान दिया गया है। भोजपुरी लोक-साहित्य की विस्तृत समीक्षा के पूर्व यह आवश्यक है कि भोजपुरी भाषा—इसका नामकरण, क्षेत्र, विस्तार व्याकरण आदि—का सक्षिप्त परिचय दिया जाय और तदनन्तर भोजपुरी साहित्य का पर्यालोचन हो। अत अगले पृष्ठो में क्रमप्राप्त भोजपुरी भाषा का सक्षिप्त विवरण उपस्थित किया जा रहा है।

अ. भोजपुरी भाषा

भारत की आर्य भाषाओं में भोजपुरी हिन्दी की एक प्रमुख बोली है। इस सरल भाषा में साहित्य की रचना अभी विशेष नहीं हुई है। फिर भी जो कुछ रचनायें उपलब्ध हैं वे इसकी सरसता एवं मधुरता को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त हैं। भोजपुरी साहित्य की चर्चा के पूर्व इस भाषा के विषय में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। इस भाषा के नामकरण का क्या कारण है? यह भाषा कहाँ बोली जाती है? इसका सामान्य व्याकरण क्या है? इन विषयों पर सक्षेप में यहाँ प्रकाश डालना समीचीन होगा।

भोजपुरी भाषा को कुछ विद्वान् 'भोजपुरिया' के नाम से भी पुकारते हैं। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपने ग्रन्थ में इसी नाम का व्यवहार किया है।[1]

भोजपुरी या भोजपुरिया

'भोजपुरिया' शब्द प्रचलित 'भोजपुर' शब्द का विशेषण है। 'भोजपुर' शब्द से उस प्रदेश की भाषा का अर्थ द्योतित करने के लिए 'इया' प्रत्यय का प्रयोग उतना ही उचित है जितना 'ई' प्रत्यय का। 'ई' प्रत्यय 'इया' से आकार में लघु है और यह अन्य विशेषणों—यथा बंगाली, आसामी, नेपाली—से समता भी रखता है। अतः उपर्युक्त कारणों से इस निबन्ध में सर्वत्र 'भोजपुरी' शब्द का ही प्रयोग किया गया है 'भोजपुरिया' का नहीं। यद्यपि इस शब्द का प्रयोग भी कुछ अशुद्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त बीम्स ग्रियर्सन[2], हार्नेला आदि विद्वानों ने 'भोजपुरी' शब्द का ही प्रयोग किया है। भोजपुरी प्रदेश के लोगों में इसी शब्द का अधिक प्रयोग तथा प्रचार है।

भाषा शास्त्र के विद्वानों ने समस्त भारतीय भाषाओं का अनुशीलन कर इनको कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर अंतरंग और बहिरंग इन विभागों में विभक्त किया है। अन्तरंग भाषा की दो प्रधान

भारतीय भाषाओं में भोजपुरी का स्थान

शाखायें हैं—१ पश्चिमी शाखा और २ उत्तरी शाखा। पश्चिमी शाखा के अन्तर्गत पश्चिमी हिन्दी (ब्रज आदि), राजस्थानी, गुजराती और पंजाबी हैं और उत्तरी शाखा में पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी भाषायें परिगणित हैं। बहिरंग भाषाओं की तीन प्रधान शाखायें हैं १ उत्तर पश्चिमी शाखा जिसमें काश्मीरी, कोहिस्तानी, पश्चिमी पंजाबी, और सिन्धी भाषायें आती हैं। २. दक्षिणी शाखा जिसमें मराठी भाषा की गणना है। ३ पूर्वी शाखा इसके अन्तर्गत उड़िया,

1. Origin and development of Bengali language
2. Linguistic Servey of India, Part 4 P 4-5

बंगला, आसामी और बिहारी भाषायें आती हैं। इस अन्तिम भाषा—बिहारी—की तीन बोलियाँ (डाइलेक्ट्स) प्रसिद्ध हैं। १. मैथिली, २. मगही, ३ भोजपुरी। इस प्रकार भोजपुरी बहिरंग भाषाओं की पूर्वी शाखा के अन्तर्गत बिहारी भाषा की एक बोली है[1] जो क्षेत्र विस्तार और इस भाषा के बोलने वालों की संख्या के आधार पर अपनी बहनों—मैथिली एवं मगही—में सबसे बड़ी है। भोजपुरी के भी अनेक भेद हैं जिनका उल्लेख यथास्थान होगा।

भोजपुरी भारत की आर्य भाषाओं में पूर्वी अथवा मागध श्रेणी की भाषाओं में सबसे पश्चिमी भाषा है। डा० ग्रियर्सन ने इन मागध श्रेणी (मगधन-ग्रूप) की भाषाओं को 'बिहारी' नाम से अभिहित किया है। बिहारी भाषा से उनका तात्पर्य केवल उस एक मात्र भाषा से है जिसके अन्तर्गत तीन बोलियाँ—१. मैथिली २ मगही एवं ३. भोजपुरी—प्रचलित हैं। यद्यपि भाषाशास्त्र के दृष्टिकोण से देखने पर यह मत ठीक है फिर भी मैथिली एवं मगही बोली में बहुत कुछ अन्तर है। इसी प्रकार भोजपुरी के बोलने वाले अपनी पृथक् सत्ता स्वीकार करते हैं।

डा० चटर्जी ने मागध भाषाओं का वर्गीकरण तीन विभागों में किया है। उनके मतानुसार भोजपुरी का संबंध पश्चिमी समुदाय (ग्रूप) से है। मैथिली और मगही का संबंध केन्द्रीय मागध से और बंगला, आसामी और उड़िया भाषा का संबंध पूर्वी मागध समुदाय (ग्रूप) से है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बंगला, आसामी और उड़िया भाषायें भोजपुरी की चचेरी बहिनें हैं जब कि मैथिली और मगही सगी बहिन होने का गौरव प्राप्त करती हैं।

उपर्युक्त तीनों बोलियों में विस्तार की दृष्टि से विचार करने पर भोजपुरी का स्थान सबसे बड़ा दिखाई पड़ता है। यह बहुत विस्तृत प्रदेश में फैली हुई है। उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर मध्यप्रान्त के सरगुजा रियासत तक इसका विस्तार है। विहार प्रान्त में यह शाहाबाद, सारन, चम्पारन, राची, जशपुर रियासत, पालामू का कुछ हिस्सा और मुजफ्फरपुर जिले के उत्तरी पश्चिमी भाग में प्रचलित है। यू० पी० के पूर्वी जिलों—बनारस, गाजीपुर, बलिया—में जौनपुर और मिर्जापुर जिलों के आधे से अधिक भागों में तथा आजमगढ़ और बस्ती जिलों में भी फैली हुई है।

भोजपुरी नामकरण का कारण

भोजपुरी अथवा भोजपुरिया भाषा का नामकरण बिहार प्रान्त के शाहाबाद जिले में स्थित भोजपुर नामक गाँव के नाम पर हुआ है। शाहाबाद जिले में बक्सर सब-डिविजन में भोजपुर नाम का एक बड़ा परगना है। सी परगने में 'नवका भोजपुर' और 'पुरनका भोजपुर' दो छोटे-छोटे गाँव है जो डुमराँव राज्य की राजधानी डुमराँव नगर से दो, तीन मील

[1] श्यामसुन्दर दास : भाषा विज्ञान पृ० १३३, १४०-५१

उत्तर गंगा के निकट बसे हैं। ये दोनों गांव आसपास हैं और भोजपुर नामक प्राचीन नगर के ही स्थान पर स्थित हैं। इन्हीं गाँवों के कारण इस बोली का नाम भोजपुरी पड़ गया है।[1]

प्राचीन काल में 'भोजपुर' बड़ा समृद्धिशाली नगर था। यह उज्जैन वंशी, पराक्रमी राजपूत राजाओं की राजधानी थी। इस वंश के प्रतिनिधि डुमरांव राज्य के राजा आज भी विद्यमान हैं। डा० बुकानन ने सन् १८१२ ई० में शाहाबाद जिले में पूरा परिभ्रमण किया था। उनने अपने यात्रा विवरण में यहाँ के मूल निवासी चेरो नामक जाति को परास्त कर उज्जैन वंशी राजपूतों के द्वारा इस स्थान को जीतने की किम्वदन्ती का उल्लेख किया है। इन उज्जैनी राजपूतों की उत्पत्ति मालवा के सुप्रसिद्ध राजा भोज से मानी जाती है।

ब्लाक्मैन[2] ने 'भोजपुर' नाम का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि "दक्षिणी बिहार और बंगाल के पश्चिमी सरहद के राजाओं ने दिल्ली के बादशाहों को बड़ा परेशान किया। अकबर के राज्यकाल में भोजपुर के राजा दलपति पराजित होकर पकड़े गये और जब अधिक नजराना लेकर अकबर ने उन्हें मुक्त किया तो वे फिर सेना लेकर विद्रोह कर बैठे। जहाँगीर के समय तक उनका विद्रोह चलता रहा और शाहजहाँ ने उनके उत्तराधिकारी को फाँसी दिलवा दी।"

ब्लाकमैन ने अपने 'आईने अकबरी' के अनुवाद में 'भोजपुर' के सम्बंध में अनेक घटनाओं का वर्णन किया है।[3]

आईने अकबरी में राजा दलपति सम्बन्धी विवरण की एक टिप्पणी में राजा दलपति को उज्जैनिया कहा गया है। 'आईने अकबरी' से यह भी पता चलता है कि उज्जैनिया राजाओं की राजधानी 'भोजपुर' थी जो आरा से पश्चिम और सहसराम से उत्तर थी। उन दिनों में यह स्थान बिहार प्रान्त के रोहतास सरकार के भीतर एक परगना था। शाहजहाँ के राज्यकाल के दसवें वर्ष में यहाँ के राजा प्रतापसिंह ने विद्रोह किया था। तब अब्दुल्ला खाँ ने भोजपुर पर आक्रमण कर इसे जीत लिया। प्रताप सिंह ने आत्म-समर्पण कर दिया और शाहजहाँ की आज्ञा से उसे फाँसी दे दी गई।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काल में 'भोजपुर' एक प्रधान स्थान था जिसे मालवा के उज्जैनवंशी राजाओं की राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। ये उज्जैनी राजा मालवा से यहाँ आये थे। इन राजपूतों का भारत के मध्यकालीन इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। पश्चिमी बिहार में इनकी महत्ता सन् १८५७ तक अक्षुण्ण रही है जबकि वीराग्रणी कुँअर सिंह ने

---

१. दुर्गाप्रसाद सिंह : लोकगीत भूमिका पृष्ठ १
२. एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल की पत्रिका सन् १८७१ पृष्ठ ३–१२६
३. आईने अकबरी भाग १ (१५१३)

अगरेजो के विरुद्ध बगावत का झडा ऊँचा किया था। इस युद्ध में कुँवर सिंह पराजित हुए और इस प्रकार भोजपुर की प्राचीन महत्ता का नाश हो गया। परन्तु डुमराँव राज्य पर आज भी एक उज्जैनी राजा राज्य करता है जो पुराने उज्जैनी राजाओ का एकमात्र प्रतिनिधि है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि 'भोजपुर' स्थान का नाम उन उज्जैनी भोज राजाओ के नाम के कारण हुआ है जो उज्जैन (मालवा) से आकर यहाँ बस गये थे। यह बात यहाँ विशेष उल्लेखनीय है कि 'भोज' नाम उपाधि रूप से सभी उज्जैनी राजाओ के द्वारा धारण किया जाता था। यह 'शृगार प्रकाश' के रचयिता सुप्रसिद्ध दानी, राजा भोज का व्यक्तिगत नाम ही नही था बल्कि यह उपाधि भी थी।[1] ये राजा उज्जैन से आने के कारण उज्जैनी भोज कहलाते थे। अत इन्होने जिस नगर को बसाया उसका नाम इन्ही के नाम पर भोज-पुर (भोज राजाओ का नगर) रखा गया। इनकी राजधानी 'भोजपुर' में थी जो आज भी बिहार प्रान्त के डुमराँव नामक नगर के पास स्थित है। प्राचीन किला का भग्नावशेष आज भी इस भोजपुर गाँव में विद्यमान है। इसी प्राचीन छोटे से नगर के कारण यह नाम आसपास के स्थानो में भी फैल गया। पहिले 'भोजपुर' नाम का जिला भी था जिसके अन्तर्गत वर्तमान शाहाबाद जिले का उत्तरी भाग सम्मिलित था। १८वी शताब्दी के अन्त में 'भोजपुर' का क्षेत्रफल अत्यन्त विस्तृत था। शनै शनै 'भोजपुर' नाम से बना हुआ भोजपुरी अथवा भोजपुरिया यह विशेषण यहाँ के निवासियो तथा क्रमश इस प्रदेश के आस-पास बोली जाने वाली भाषा के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। चूकि यह बोली भोजपुर जिले के उत्तर, दक्षिण और पश्चिमी भागो में भी फैली हुई थी अत यहाँ के लोग तथा उनकी बोली भी इसी नाम से विख्यात हो गई।

इस प्रदेश के राजपूतो ने मुगल बादशाहो से लडने में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी तथा आसपास के लोगो में अपनी पृथक् सत्ता एव महत्ता बतलाने के लिए वे इसी नाम से अपने को अभिहित करते थे।

सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी में मागध श्रेणी की इस भाषा के बोलने-वालो के लिये भोजपुरी अथवा भोजपुरिया शब्द का प्रयोग पाया जाता है। इस प्रदेश के निवासी अपने शौर्य, वीरता और युद्धप्रियता के लिये प्रसिद्ध रहे हैं और इसी कारण वे मुगलो की सेनाओ में अधिक सख्या में भरती किये जाते थे। यह परम्परा ब्रिटिश राज्य के समय में भी रही है। विशेषकर सिपाही विद्रोह के समय में भोजपुरियो ने जो वीरता दिखलाई वह किसी से

१ ऐतरेय ब्राह्मण ८ १४।

छिपी नहीं है। निम्नांकित पद्य में—जो बिहार मे अत्यधिक प्रसिद्ध है—"भोजपुरिया" शब्द का प्रयोग 'भोजपुर' प्रदेश में रहनेवाले लोगों के लिए किया गया है।

भागलपुर का भगेलुआ भैया
कहलगांव का ठग।
पटना के देवालिया,
तीनू नामजद।
सुनि पावें 'भोजपुरिया',
त तुरे तीनों का रग।

इसी प्रकार से 'भोजपुरिया' शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिये भी कई स्थानों में हुआ है। एक उदाहरण लीजिये।[१]

"कस कस कसमर, किना मगहिया,
का 'भोजपुरिया', को तिरहुतिया।"

इस पद्य में यह बतलाया गया है मगही भाषा में जहाँ 'किना' का प्रयोग होता है वहाँ भोजपुरी भाषा में 'का' और तिरहुती में 'की' का व्यवहार होता है।

भोजपुरी या भोजपुरिया शब्द का सर्वप्रथम लिखित प्रयोग सन् १७८९ ई० में पाया जाता है। डा० ग्रियर्सन ने रैमन का उद्धरण देते हुए लिखा है कि

भोजपुरी या भोजपुरिया का लिखित प्रयोग

"१७८९, दो दिनों के पश्चात् सिपाहियों की एक टुकड़ी जो चुनार घर (गढ) की जा रही थी प्रातःकाल शहर से मार्च करती जा रही थी। मैं बाहर निकला, और सेना की मार्चिंग को देखने लगा। वह टुकड़ी खड़ी हो गई। उस टुकड़ी के मध्य से कुछ आदमी निकल कर एक अँधेरी गली में गये और एक मुर्गी को पकड़ लिया। इस पर लोग करुण क्रन्दन करने लगे। तब उनमें से एक आदमी ने भोजपुरिया मुहावरे में उनसे कहा, 'इतना मत चिल्लाओ', आज हमलोग फिरंगी के साथ जा रहे हैं परन्तु हमलोग चेतसिंह के ही नौकर (आसामी) हैं।"[२]

उपर्युक्त उद्धरण में सन् १७८९ ई० में 'भोजपुरिया' शब्द का उल्लेख पाया जाता है।

---

१. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया भाग १ सप्लिमेण्ट २ पृ० २२। भाग ५ पार्ट २ पृ० ४१ की अतिरिक्त टिप्पणी।

२. रैमन-सेर मुताखेरिन का अनुवाद। द्वितीय संस्करण। अनुवादक की भूमिका पृ० ६।

जान वीम्स ने सन् १८६८ ई० में अपने एक लेख में सर्वप्रथम इस भाषा के लिये 'भोजपुरी' शब्द का प्रयोग किया है।[1] सभवत उन्होने उस समय में प्रचलित इस शब्द का व्यवहार किया है।

भोजपुरी लोग तथा उनकी भाषा के लिए दूसरे शब्दो का भी कही कही प्रयोग पाया जाता है। मुगल काल में दिल्ली के आसपास के स्थाना में भोजपुरी लोगो के लिए 'बकसरिया' शब्द का भी प्रयोग किया जाता था। यह शब्द 'बक्सर' से बना हुआ है जा भोजपुर के पास ही एक बडा कस्बा है। 'बकसरिया' शब्द का व्यवहार विशेषकर उन सिपाहियो के लिए किया जाता था जो भोजपुरी प्रदेश से आते थे। उस समय में बक्सर एव भोजपुर ये दोनो ही बडे प्रसिद्ध भोजपुरी केन्द्र थे जहाँ से १७वी एव १८वीं शताब्दी में मुगल सेनाओ के लिये सिपाहियो की भर्ती की जाती थी। जब अंग्रेज लोगो ने १८वी शताब्दी में बगाल में अपनी सेना के लिये भर्ती शुरू की तब उन्होने भी इसी शब्द को बक्सरीज (Buxeries) के रूप में अपनाया।[2]

भोजपुरी लोगो के लिये अन्य शब्दो का प्रयोग

उक्त विभिन्न नामो के अतिरिक्त छपरा (बिहार प्रान्त का एक जिला) की बोली को छपरहिया, बनारस की बोली को बनारसी और बाँगर की बोली को 'बँगरही' कहा जाता है। बाँगर वह भूमिखड (ट्रैक्ट) है जो बलिया के पश्चिम तथा आजमगढ के पूर्व में स्थित है और जा गगा की बाढ से सिंचित नही होता है। इन बोलियो में स्थानीयता का बहुत कुछ पुट है तथा उच्चारण सबधी एव व्याकरण सबधी इनकी निजी विशेषतायें भी है। इसीलिये भोजपुरी के अन्तर्गत होने पर भी अपनी विशेषताओ के कारण इनका पृथक नाम प्राप्त है।

महापडित राहुल साकृत्यायन ने भोजपुरी भाषा के लिये मल्ली शब्द का प्रयोग अधिक उचित स्वीकार किया है।[3] महात्मा बुद्ध के समय में षोडश महाजनपदो में 'मल्ल' भी एक जनपद था, परन्तु उसकी निश्चित सीमायें क्या थी यह कहना नितान्त कठिन है। यद्यपि मल्ल जनपद की सीमा वर्तमान गोरख-पुर जिले से—जहाँ भोजपुरी बोली जाती है—सबधित थी और इस कारण इस

1 General of Royal Asiatic Society Part 3, p. 483–508. Notes on the Bhojpuri dialects of Hindi spoken in western Bihar

2 William Irvin, The army of the Indian Mughuls (लन्दन १९०३) पृ० १६८–६९।

३ हिन्दी प्रचारिणी सभा, बलिया, १३ अधिवेशन, सभापति का भाषण।

प्रदेश को मल्ल के नाम से पुकार सकते हैं परन्तु अब भोजपुरी के स्थान पर इस शब्द को चालू करना नितान्त अनुचित एवं अव्यावहारिक है क्योंकि भोजपुरी का प्रयोग कम से कम ३०० वर्षों से होता चला आ रहा है और यह नाम पूर्ण रूप से प्रचलित हो गया है।

भोजपुरी भाषा का व्यावहारिक एवं व्यापक प्रयोग तथा प्रेम

भोजपुरी एक जीवन्त भाषा है। जिस प्रकार इसके बोलने वालों में शौर्य, उत्साह एवं जीवट के गुण पाये जाते हैं उसी प्रकार इस भाषा में भी जीवट है। यद्यपि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, इस क्षेत्र में, बालकों की मातृभाषा (भोजपुरी) में न देकर हिन्दी खड़ी बोली में दी जाती है और लिखने पढ़ने की साहित्यिक भाषा भी आधुनिक हिन्दी है फिर भी भोजपुरी भाषा भाषियों के हृदय में इस भाषा की प्रतिष्ठा एवं गौरव बहुत बड़ा है। भोजपुरी प्रदेश के प्रत्येक भाग में वहाँ के लोग राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक सभी प्रकार के विषयों की मीमांसा अपनी प्रिय मातृभाषा में ही करते हैं। सभी प्रकार की कथा, वार्तायें एवं उपदेश इसी भाषा में दिये जाते हैं। विवाह, यज्ञोपवीत एवं अन्य अवसरों पर हस्तलिखित निमन्त्रण-पत्र भोजपुरी में लिखकर भेजे जाते हैं। सभी मंगल कृत्यों के अवसर पर स्त्रियाँ भोजपुरी में गीत गाती हैं जिन्हें जनता बड़े रुचि से सुनती एवं पसन्द करती है। विवाह के अवसर पर आजकल जो विदेसिया नाटक खेला जाता है उसकी भाषा ठेठ भोजपुरी होती है। मिर्जापुर, बनारस एवं बलिया जिले में जो कजली गाई जाती है उसकी भाषा विशुद्ध भोजपुरी है। इस प्रकार भोजपुरी का प्रयोग सभी धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक अवसरों पर किया जाता है।

भोजपुरी में साहित्य सृजन के अभाव का कारण

भोजपुरी भाषा के प्रति इसके बोलने वालों का अगाध प्रेम होने पर भी यह बात अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि इस भाषा में साहित्य की विशेष सृष्टि नहीं हुई। जिस प्रकार आजकल इसमें विशेष साहित्यिक रचना नहीं हुई है उसी प्रकार प्राचीन काल में भी इसमें ग्रन्थों का प्रणयन प्राय. नहीं हुआ। इसके अनेक कारण हैं। काशी—जो भोजपुरी प्रदेश में अवस्थित है—भारतीय संस्कृति का केन्द्र है। यहाँ संस्कृत के पठन-पाठन की सदा से प्रधानता रही है। धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र होने के कारण यहाँ देववाणी (संस्कृत) की ही अभ्युन्नति हुई। अतः भोजपुरी प्रदेश के ब्राह्मणों ने जिनपर साहित्य सृष्टि का विशेष भार था अपनी मातृभाषा की उपेक्षा कर देववाणी संस्कृत को ही अपनाया और उसी की अभिवृद्धि में अपना

समय एव शक्ति को लगाया। आज भी काशी में भोजपुरी प्रदेश के ही निवासी पडितो की प्रधानता और बहुलता है। यदि इन पडितो ने सस्कृत के अध्ययन में अपना समय न लगाया होता और भोजपुरी की उपेक्षा न की होती तो आज भोजपुरी का इतिहास कुछ दूसरा ही होता।

भोजपुरी में साहित्य सृष्टि के अभाव का दूसरा कारण इस भाषा का राजाश्रय प्राप्त नही करना है। प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय का मत है, "भोजपुरी साहित्य की अभिवृद्धि न होने का प्रधान कारण है राजाश्रय का अभाव। भोजपुर प्रदेश में किसी प्रभावशाली, व्यापक, प्रतापी नरेश का पता नही चलता। अधिकतर इसमें किसानो की ही बस्तियाँ हैं। किसी गुणग्राही नरेश का आश्रय न मिलने से इस भाषा का साहित्य समृद्ध न हो सका।"[1]

भोजपुरी ने किसी प्रतिभाशाली कवि की प्रतिभा का प्रसाद प्राप्त नही किया। ब्रजभाषा को सूर और विहारी का वैभव प्राप्त था, अवधी को जायसी और तुलसी ने अपनाया था। मैथिली को विद्यापति के रूप में 'कविता कामिनी कान्त' मिला था और बँगला को चडीदास के रूप में 'मधुर कोमल कान्त पदावली' कहने वाला उपलब्ध हुआ था, परन्तु भोजपुरी को न तुलसी की ही प्रतिभा मिली और न विहारी की वाग्विभूति, न विद्यापति का कोकिल कठ और न चडीदास का मधुर पद।

ऐसी दशा में इसका समृद्ध साहित्यिक भाषाओ में न पनपना स्वाभाविक ही है। भोजपुरी प्रदेश में कवि अवश्य हुए परन्तु उनमें से अधिकाश ने हिन्दी (खडी बोली) को अपनी प्रतिभा का माध्यम बनाया। इस कारण भी भोजपुरी साहित्य की वृद्धि न हो सकी।

भोजपुरी भाषा का अध्ययन

आधुनिक इडो आर्यन भाषाओ के वैज्ञानिक अध्ययन का इतिहास कुछ बहुत पुराना नही है। आज से लगभग ७०–८० वर्ष पूर्व सर रामकृष्ण भडारकर और डा० बीम्स के अनुसन्धानो से इसका श्रीगणेश होता है। भोजपुरी के सबध में सर्वप्रथम अनुसन्धानकर्ता डा० बीम्स थे जिन्होने अपने 'नोट्स आन दि भोजपुरी डायलेक्ट्स आफ हिन्दी स्पोकेन इन वेस्टर्न विहार' शीर्षक एक लेख में इसका वैज्ञानिक विश्लेषण किया।[2] श्री जे० आर० रीड

१. भोजपुरी ग्राम गीत, भाग १, भूमिका पृ० १७।
इस मत के खण्डन के लिये देखिये।
दुर्गाशकर सिंह भो० लो० गी० भूमिका पृ० ६६–६८।

२. जे० आर० ए० एस० वोल्यूम ३ (१८६८) पृष्ठ ४८६–५०८।

ने भी अपने 'नोट्स आन दि डायलेक्ट करेन्ट इन आजमगढ' शीर्षक लेख में भोजपुरी भापा के व्याकरण पर प्रचुर प्रकाश डाला है।[1] सन् १८८० ई० में डा० ए० एफ० रुडाल्फ हार्नली ने अपना सुप्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ प्रकाशित किया जिसमें पूर्वी हिन्दी (Estern Hindi) के अन्तर्गत भोजपुरी व्याकरण की बहुमूल्य सामग्री उपस्थित की गई है।[2] डा० हार्नली ने बनारस की पश्चिमी भोजपुरी को पूर्वी हिन्दी का नाम दिया है। भापा शास्त्र की दृष्टि से इस ग्रन्थ का मूल्य बहुत अधिक है क्योकि यह ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक दोनो शैलियो से युक्त है। डाक्टर ग्रियर्सन ने भोजपुरी भापा के अध्ययन के लिये प्रचुर सामग्री उपस्थित की है जिनका विस्तृत वर्णन अग्रिम अध्याय (भोजपुरी साहित्य) में किया जायगा। यहाँ इतना जान लेना आवश्यक है कि इस विद्वान् ने भोजपुरी के अध्ययन के लिये सामग्री ही नही उपस्थित की बल्कि स्वय इस विषय में प्रशसनीय शोध कार्य किया है। डा० ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित लिग्विस्टिक सर्वे आफ इडिया भाग ५ खड २ में भोजपुरी भापा सबधी पठनीय सामग्री प्रचुर परिमाण में दी गई है। इस विशालकाय ग्रन्थ में भोजपुरी नामकरण का कारण, इस भापा के बोलने वालो की सख्या, इसका विस्तार तथा इसका व्याकरण दिया हुआ है। साथ ही भोजपुरी की विभिन्न बोलियो के उदाहरण भी उनकी विशेपताओ को स्पष्ट करते हुए दिये गये हैं। अन्त में इस भापा का स्थूल व्याकरण (स्केलेटन ग्रामर) भी प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार ग्रियर्सन ने इस ग्रन्थ में भोजपुरी भापा सबधी विपुल सामग्री उपस्थित की है। इनकी दूसरी पुस्तक 'सेवेन ग्रामर्स आफ दि डायलेक्ट्स एण्ड सबडायलेक्ट्स आफ दि बिहारी लैंग्वेज' है, जिसमें भोजपुरी भापा का व्याकरण विस्तृत रूप मे दिया गया है। इसी ग्रन्थ में बिसेसरप्रसाद नामक किसी सज्जन के द्वारा सग्रहीत छपरा जिला को भोजपुरी के उदाहरण स्वरूप कुछ कथाओ और सभापणो का अनुवाद भी दिया गया है। इन्होने अपने 'बिहार पीजेण्ट लाइफ' नामक पुस्तक में हजारो भोजपुरी शब्दो का सग्रह विभिन वस्तुओ के नाम के रूप में किया है।

फेलेन की 'न्यू हिन्दुस्तानी इगिलिश डिक्शनरी'—जो सन् १८७६ में प्रकाशित हुई थी—में भोजपुरी शब्दो, खेती के गीतो मुहावरो और कहावतो का अच्छा सग्रह उपलब्ध होता है। परन्तु उपर्युक्त सभी विद्वानो का कार्य प्रशसनीय होने पर अधूरा या आशिक ही रहा है। किसी भी विद्वान् ने भोजपुरी भापा के ऊपर सर्वांगीण गवेपणा नही की।

---

1 Settlement report for 1877 apendics No 2

2 Comparative grammer of the Gaudian languages

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी के अध्यापक डाक्टर उदयनारायण तिवारी एम. ए, डि लिट् ने इस भाषा के समस्त अगों पर वैज्ञानिक पद्धति से 'दि ओरिजिन एड डेवलपमेण्ट आफ भोजपुरी' नामक थीसिस में गभीरतापूर्ण विचार किया है।

कृष्णदेव उपाध्याय ने भी अपने भोजपुरी ग्राम गीत भाग १ के अन्त में कुछ भोजपुरी शब्दों का सग्रह उपस्थित किया है तथा दूसरे भाग में उन्होंने पुस्तक के अन्त में दी गई टिप्पणियो में अनेक भोजपुरी शब्दो की भाषा शास्त्र-सबधी निरुक्ति बतलाई है।

भोजपुरी भाषा का विस्तार

भोजपुरी भाषा लगभग ५० हजार वर्गमील में फैली हुई है। इसकी सीमान्त रेखायें किसी एक प्रान्त की राजनैतिक सीमा से बद्ध नही है। भोजपुरी भाषा के प्रधान केन्द्र यू० पी० के पूर्वी जिले और बिहार प्रान्त के पश्चिमी जिले हैं। परन्तु इन जिलों के अतिरिक्त भी यह भाषा बोली जाती है।[1]

गगा नदी से उत्तर इस भाषा (भोजपुरी) की सीमा मुजफ्फरपुर जिले के पश्चिमी भाग की मैथिली है। फिर इस नदी के दक्षिण इसकी सीमा गया और हजारीबाग की मगही से मिल जाती है। वहाँ से यह सीमान्त रेखा दक्षिण-पूर्व की ओर हजारीबाग की मगही भाषा के उत्तर घूमकर सम्पूर्ण राँची पठार और पलामू एव राँची जिले के अधिकाश भागों में फैल जाती है। दक्षिण की ओर यह सिंहभूमि की उड़िया और गगपुर स्टेट की तद्देशीय भाषा से परिसीमित होती है। यहाँ से भोजपुरी की सीमा जसपुर रियासत के मध्य से होकर राँची पठार के सरहद के साथ-साथ दक्षिण की ओर जाती है जिससे सरगुजा और पश्चिमीय जसपुर की छत्तीसगढी भाषा से इसका विभेद होता है। पलामू के पश्चिमीय प्रदेश से गुजरने के बाद भोजपुरी भाषा की सीमा युक्तप्रान्त के मिर्जापुर जिले के दक्षिण प्रदेश में फैलकर गगा तक पहुँचती है। यहाँ यह गगा के बहाव के साथ-साथ पूर्व की ओर घूमती है और बनारस के निकट पहुँचकर गगा पार कर जाती है। इस प्रकार मिर्जापुर जिले के गागेय प्रदेश के केवल अल्प भाग में ही इसका प्रसार है। मिर्जापुर के दक्षिण में छत्तीस-गढी से इसकी भेंट होती है परन्तु उस जिले के पश्चिमी भाग के साथ-साथ उत्तर की ओर घूमने पर इसकी सीमा पश्चिम में पहले बघेलखड की बघेली और फिर अवध की अवधी से जा लगती है।

---

१. भोजपुरी भाषा के विस्तार के लिये देखिये—
मानचित्र परिशिष्ट अन्तिम।

गंगा को पार करके भोजपुरी की सीमा फैजाबाद के जिले में सरयू नदी के निकट टाँडा तक सीधे उत्तर की ओर चली जाती है। इस प्रकार इसका विस्तार बनारस जिले की पश्चिमीय सीमा के साथ-साथ जौनपुर जिले के बीचो-बीच और आजमगढ़ जिले के पश्चिमीय भाग के साथ फैजाबाद जिले के आरपार फैल जाता है। टाँडा तहसील में इसका विस्तार सरयू नदी के साथ-साथ पश्चिम की ओर घूमता है और तब उत्तर की ओर हिमालय के नीचे की श्रेणियों तक बस्ती जिला को अपने में शामिल कर लेता है। इस विस्तृत भूभाग के अतिरिक्त—जिसके एक भाग में भोजपुरी बोली जाती है—भोजपुरी थारुकी जंगली जातियों द्वारा, जो गोंडा और बहराइच के जिलों में बसते हैं, मातृभाषा के रूप में व्यवहृत की जाती है।[1]

जिस भूभाग में भोजपुरी भाषा बोली जाती है उसका क्षेत्रफल लगभग ५० हजार वर्गमील है। मातृभाषा के रूप में भोजपुरी भाषाभाषियों की संख्या दो करोड़ २०,०००,००० है परन्तु मगही बोलने वालों की संख्या ६२,३५,७८२ है और मैथिली भाषियों की संख्या एक करोड़ १०,०००,००० है। इस प्रकार संख्या की दृष्टि से भी भोजपुरी बोलने वालों की संख्या बिहार की इन दोनों बोलियों के भाषियों की सम्मिलित संख्या से कहीं अधिक है।[2] सन् १९२१ ई० की जनमत गणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या २,०४,१२,६०८ है अर्थात् दो करोड़ से भी अधिक है।[3] नीचे हम हिन्दी की अन्य बोलियों के भाषियों की संख्या दे रहे हैं जिसके देखने से यह स्पष्ट पता चलता है कि भोजपुरी बिहारी भाषाओं में ही सबसे बड़ी नहीं है बल्कि हिन्दी की अन्य बोलियों के भाषियों से भी इसके बोलने वालों की संख्या कहीं अधिक है।[4] यह भोजपुरी का प्रचुर प्रचार व्यक्त करता है।

भोजपुरी भाषा भाषियों की संख्या

---

१. भोजपुरी भाषा के विस्तार के विवेचन के लिये देखिये।

क. डा० ग्रियर्सन : लि० स० इ० भाग ५ खंड २ पृ० ४०-४१।

ख. डा० तिवारी : दि ओरिजिन एण्ड डेवलेपमेण्ट आफ भोजपुरी अप्रकाशित पृ० २४-२६। इस विषय में डा० तिवारी का मत ग्रियर्सन के मत से थोड़ा भिन्न है।

2. 'See far, therefore, as regards the number of its speakers it is much more important than the other two Bihari dialects put together' L. S. I. Part 5, Book 2, p. 41.

३. बलदेव उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १, पृ० १७।

४. लि० स० इ० भाग ५ खंड २

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी के अध्यापक डाक्टर उदयनारायण तिवारी एम. ए, डि लिट् ने इस भाषा के समस्त अगों पर वैज्ञानिक पद्धति से 'दि ओरिजिन एड डेवलेपमेण्ट आफ भोजपुरी' नामक थीसिस में गभीरतापूर्ण विचार किया है।

कृष्णदेव उपाध्याय ने भी अपने भोजपुरी ग्राम गीत भाग १ के अन्त में कुछ भोजपुरी शब्दो का सग्रह उपस्थित किया है तथा दूसरे भाग में उन्होंने पुस्तक के अन्त में दी गई टिप्पणियो में अनेक भोजपुरी शब्दो की भाषा शास्त्र-सबधी निरुक्ति बतलाई है।

भोजपुरी भाषा का विस्तार

भोजपुरी भाषा लगभग ५० हजार वर्गमील में फैली हुई है। इसकी सीमान्त रेखायें किसी एक प्रान्त की राजनैतिक सीमा से सबद्ध नही है। भोजपुरी भाषा के प्रधान केन्द्र यू० पी० के पूर्वी जिले और विहार प्रान्त के पश्चिमी जिले हैं। परन्तु इन जिलो के अतिरिक्त भी यह भाषा बोली जाती है।[1]

गगा नदी से उत्तर इस भाषा (भोजपुरी) की सीमा मुजफ्फरपुर जिले के पश्चिमी भाग की मैथिली है। फिर इस नदी के दक्षिण इसकी सीमा गया और हजारीबाग की मगही से मिल जाती है। वहाँ से यह सीमान्त रेखा दक्षिण-पूर्व की ओर हजारीबाग की मगही भाषा के उत्तर घूमकर सम्पूर्ण राची पठार और पलामू एव राची जिले के अधिकाश भागो में फैल जाती है। दक्षिण की ओर यह सिंहभूमि की उडिया और गगपुर स्टेट की तद्देशीय भाषा से परिसीमित होती है। यहाँ से भोजपुरी की सीमा जसपुर रियासत के मध्य से होकर रागी पठार के सरहद के साथ-साथ दक्षिण की ओर जाती है जिससे सरगुजा और पश्चिमीय जसपुर की छत्तीसगढी भाषा से इसका विभेद होता है। पलामू के पश्चिमीय प्रदेश से गुजरने के बाद भोजपुरी भाषा की सीमा युक्तप्रान्त के मिर्जापुर जिले के दक्षिण प्रदेश में फैलकर गगा तक पहुँचती है। यहाँ यह गगा के बहाव के साथ-साथ पूर्व की ओर घूमती है और बनारस के निकट पहुँचकर गगा पार कर जाती है। इस प्रकार मिर्जापुर जिले के गागेय प्रदेश के केवल अल्प भाग में ही इसका प्रसार है। मिर्जापुर के दक्षिण में छत्तीस-गढी से इसकी भेंट होती है परन्तु उस जिले के पश्चिमी भाग के साथ-साथ उत्तर की ओर घूमने पर इसकी सीमा पश्चिम में पहले बघेलखड की बघेली और फिर अवध की अवधी से जा लगती है।

---

१ भोजपुरी भाषा के विस्तार के लिये देखिये—
मानचित्र परिशिष्ट अन्तिम।

गंगा को पार करके भोजपुरी की सीमा फैजाबाद के जिले में सरयू नदी के निकट टाँडा तक सीधे उत्तर की ओर चली जाती है। इस प्रकार इसका विस्तार बनारस जिले की पश्चिमीय सीमा के साथ-साथ जौनपुर जिले के बीचो-बीच और आजमगढ जिले के पश्चिमीय भाग के साथ फैजाबाद जिले के आरपार फैल जाता है। टाँडा तहसील में इसका विस्तार सरयू नदी के साथ-साथ पश्चिम की ओर घूमता है और तब उत्तर की ओर हिमालय के नीचे की श्रेणियों तक बस्ती जिला को अपने में शामिल कर लेता है। इस विस्तृत भूभाग के अतिरिक्त—जिसके एक भाग में भोजपुरी बोली जाती है—भोजपुरी थारुकी जंगली जातियों द्वारा, जो गोंडा और बहराइच के जिलों में बसते हैं, मातृभाषा के रूप में व्यवहृत की जाती है।[1]

भोजपुरी भाषा भाषियों की संख्या

जिस भूभाग में भोजपुरी भाषा बोली जाती है उसका क्षेत्रफल लगभग ५० हजार वर्गमील है। मातृभाषा के रूप में भोजपुरी भाषाभाषियों की संख्या दो करोड २०,०००,००० है परन्तु मगही बोलने वालों की संख्या ६२,३५,७८२ है और मैथिली भाषियों की संख्या एक करोड १०,०००,००० है। इस प्रकार संख्या की दृष्टि से भी भोजपुरी बोलने वालों की संख्या बिहार की इन दोनों बोलियों के भाषियों की सम्मिलित संख्या से कहीं अधिक है।[2] सन् १९२१ ई० की जनमत गणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या २,०४,१२,६०८ है अर्थात् दो करोड से भी अधिक है।[3] नीचे हम हिन्दी की अन्य बोलियों के भाषियों की संख्या दे रहे हैं जिसके देखने से यह स्पष्ट पता चलता है कि भोजपुरी बिहारी भाषाओं में ही सबसे बड़ी नहीं है बल्कि हिन्दी की अन्य बोलियों के भाषियों से भी इसके बोलने वालों की संख्या कहीं अधिक है।[4] यह भोजपुरी का प्रचुर प्रचार व्यक्त करता है।

१ भोजपुरी भाषा के विस्तार के विवेचन के लिये देखिये।

क डा० ग्रियर्सन • लिं० स० इं० भाग ५ खंड २ पृ० ४०–४१।

ख डा० तिवारी • दि ओरिजिन एण्ड डेवलेपमेण्ट आफ भोजपुरी अप्रकाशित पृ० २४–२६। इस विषय में डा० तिवारी का मत ग्रियर्सन के मत से थोडा भिन्न है।

2 'See far, therefore, as regards the number of its speakers it is much more important than the other two Bihari dialects put together' L. S. I. Part 5, Book 2, p. 41.

३ बलदेव उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १, पृ० १७।

४. लिं० स० इं० भाग ५ खंड २

बोली	भाषियों की संख्या
१ अवधी	१४,१७०,७५०
२. व्रज	७८, ३४,२७४
३. बघेली	१६,०००,०००
४ बुन्देलखडी	४६, १२,७५६
५ छत्तीसगढी	३३, ०१,७८०

यदि सख्या की दृष्टि से विचार करते हैं तो भोजपुरी हिन्दी भाषा की अन्य बोलियों से ही आगे नही बढ गई है वल्कि वह अत्यन्त समृद्ध मराठी भाषा से भी बढी है। मराठी बोलने वालो की सख्या १,८७,६७ ८३१ है अर्थात् दो करोड से भी कम है, यहाँ भोजपुरी भाषियो की सख्या दो करोड से कहीं बहुत ही अधिक है। "इस प्रकार भोजपुरी अपनी हमजोलियो से ही सख्या तथा विस्तार में बढकर नही है, प्रत्युत दूरस्थित अपनी बहनो व्रज और मराठी से भी कही बढ-चढ कर है।"[1]

सन् १६४१ में भारतवर्ष की आवादी ३८,८०,००,००० थी। इस अनुपात से भोजपुरी भाषियो की कुल सख्या २,६४,००,००० आती है। अर्थात् भारतवर्ष की कुल जन-सख्या का १४ ५ प्रतिशत भोजपुरी भाषियो की सख्या है।

भोजपुरी लोग साहसी प्रकृति के होते हैं। वे अपनी जीविका के लिये कलकत्ता, रगून और हागकाग तक पहुँचे हुए हैं। इसके अतिरिक्त बम्बई, मद्रास आदि शहरो में भी वे गये हैं। परन्तु उनका प्रधान निकास पूरब की ही ओर है। भोजपुरी प्रदेश को छोडकर भोजपुरी लोग कहाँ-कहाँ बिखरे पडे हैं इसका पता लगाना बडा कठिन है। परन्तु डाक्टर ग्रियर्सन ने वगाल के विभिन्न जिलो और आसाम प्रान्त के चाय के बगीचों में काम करने वाले लोगो की सख्या की तालिका प्रत्येक जिले के क्रम से दी है। इस तालिका के देखने से पता चलता है कि वगाल प्रान्त के विभिन्न जिलों में रहने वाले भोजपुरियो की समस्त सख्या ३,४६,८७८ है। इसी प्रकार से आसाम के विभिन्न स्थानो के चाय बगानो में काम करने वाले भोजपुरियो की सख्या ६५,७३० है। इस प्रकार भोजपुरी प्रदेश में और उसके बाहर भोजपुरी भाषियो की कुल सख्या २,००,००,०००+३,४६,८७८+६५,७३० अर्थात् २,०४,१२,६०८ है। यह सख्या किसी भी भाषा के लिये गौरव एव सम्मान की वस्तु हो सकती है।

पीछे हम कह आए है कि बिहारी भाषा के अन्तर्गत तीन भाषायें मानी जाती हैं—१ मैथिली, २, मगही और ३ भोजपुरी। परन्तु प्रथम दोनो

१ बलदेव उपाध्याय भो० ग्रा० गी०, भाग १, भूमिका—पृष्ट १७।

भाषाओं—मैथिली और मगही—का आपस में इतना अधिक साम्य है कि बिहारी को दो भागों में ही विभक्त करना अधिक उचित प्रतीत होता है। पूरबी बिहारी—जो मैथिली और मगही के भेद से द्विविध मानी गई है और पश्चिमी बिहारी (भोजपुरिया) इन दोनों में उच्चारण तथा रूपगत अनेक भेद दीख पड़ते हैं। मैथिली में विशेषतः और मगही में सामान्यतः 'अकार' का उच्चारण बँगला के उच्चारण से मिलता-जुलता है। क्योंकि 'अ' की ध्वनि ओकार के समान मुँह को गोलाकार बनाने से होती है। परन्तु भोजपुरी में अकार का उच्चारण पश्चिमी हिन्दी के समान नितान्त सुस्पष्ट अकार ही होता है। भोजपुरी में अकार की एक विभिन्न ध्वनि है जो 'हवे' (है) शब्द में वर्तमान है। यह कुछ विचित्र ध्वनि है और कुछ 'ओकार' के समान मुँह को अधिक गोल बनाने पर उच्चरित होती है।

भोजपुरी का अन्य बिहारी भाषाओं से पार्थक्य

मध्यम पुरुष के लिये मैथिली और मगही में आदरार्थ बोलते हैं 'अपने'। परन्तु भोजपुरी मे इसके लिये 'रउरे' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह 'रउरे' तथा 'राउर' (आपका) का प्रयोग भोजपुरी का स्पष्ट संकेत है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'मोहि लागत दुख रउरे लागा' और 'जो राउर अनुशासन पाऊँ' आदि चौपाइयों मे इन्ही भोजपुरी शब्दों का प्रयोग किया है। सहायक क्रिया के रूप में या सत्तार्थक धातु के लिये मैथिली में 'छइ' या 'अछि' का प्रयोग किया जाता है। मगही में 'हइ' प्रयुक्त होता है परन्तु भोजपुरी में 'बाटी', 'बाड़ी' या 'बानी' का प्रयोग होता है। भोजपुरी के इस 'बाटे' या 'बाटी' का उपर्युक्त दोनो बोलियो में नितान्त अभाव है। 'हेइ' (है) क्रिया—जो प्रायः तीनों बोलियों से समान रूप से पाई जाती है—का रूप भिन्न-भिन्न कालों में भोजपुरी में इतना विभिन्न होता है कि इसे पहिचानना भी कठिन है कि ये एकही क्रिया के विभिन्न रूप हैं। प्रधान क्रिया के रूप में भोजपुरी में वर्तमान काल में 'देखी ला' (मैं देखता हूँ) का प्रयोग पाया जाता है जो अपनी विशेषता रखता है। ऐसा प्रयोग अन्य बोलियों में उपलब्ध नही होता।

सञ्ज्ञाओं के रूपो में भी भेद दीख पड़ता है। भोजपुरी में षष्ठी कारक का प्रत्यय 'के' है परन्तु मैथिली और मगही में इसके लिये 'क', 'कर' या 'केर' का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त भोजपुरी के षष्ठीकारक की सञ्ज्ञा का रूप ओवलीक होता है। परन्तु अन्य दोनों बोलियों में इसका नितान्त अभाव है। अन्ततोगत्वा भोजपुरी का व्याकरण यहाँ के निवासियों के स्वभावानुसार व्यावहारिक तथा सीधा है यह मैथिली व्याकरण के समान जटिल तथा विषम

प्रयोग किया जाता है वहाँ दक्षिणी आदर्श भोजपुरी में 'बाडे' प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ बलिया की आदर्श भोजपुरी में हम कहते हैं 'मोहन घर में बाडे'। परन्तु गोरखपुर की भोजपुरी में 'मोहन घर में बाटें' कहा जाता है। सारन जिले के उत्तर और मध्य में क्रिया के भूतकाल का एक विचित्र रूप पाया जाता जाता है जिसमें 'ल' के स्थान पर 'उ' जोडा जाता है। परन्तु यह बात अन्यत्र नहीं पाई जाती है। उत्तरी गोरखपुर की भाषा में शाहाबाद की भाषा से अन्तर अवश्य है परन्तु विशेष नहीं। पश्चिमी गोरखपुर और बस्ती जिले की भाषा में आदर्श भोजपुरी से थोडा अन्तर है। और तो क्या, पूर्वी गोरखपुर—आधुनिक देवरिया जिला—और पश्चिमी गोरखपुर की भाषा में भी अन्तर है जो वहाँ की बोली सुनने पर तत्काल ही मालूम हो सकता है। पूर्वी गोरखपुर की भाषा को गोरखपुरी कहा जाता है और पश्चिमी गोरखपुर एव बस्ती जिले की भाषा को 'सरवरिया' नाम दिया गया है।

'सरवरिया' शब्द 'सरुआर' से निकला हुआ है जो 'सरयूपार' का अपभ्रंश है। सरयूपार का अर्थ है वह देश या प्रदेश जो सरयू (घाघरा) के उस पार हो। इस प्रकार इस प्रदेश के अन्तर्गत बहराइच, गोंडा, बस्ती, गोरखपुर एव सारन ये सभी जिले आते हैं। परन्तु स्थानीय परम्परा के अनुसार आजकल सरुआर उसी प्रदेश को कहते हैं जो फैजाबाद जिले के अयोध्या से लेकर देवरिया जिले के मझौली राज तक फैला हुआ है।

सरवरिया बोली समस्त बस्ती जिले में और गोरखपुर के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। सरवरिया और गोरखपुरी में शब्दों—विशेषत सज्ञा शब्दों—के प्रयोग में भिन्नता पाई जाती है।

बलिया और सारन दोनो जिलो में आदर्श भोजपुरी बोली जाती है परन्तु कुछ शब्दो के उच्चारण में दोनो में अन्तर है। बलिया या शाहाबाद के लोग 'ड' का उच्चारण 'ड' ही करते है, परन्तु छपरा वाले 'र' उच्चारण करते हैं। उदाहरणार्थ जहाँ बलियानिवासी 'घोडा-गाडी आवत बा' कहता है, वहाँ छपरहिया जवान 'घोरा गारी आवत बा' बोलता है। इस प्रकार आदर्श भोजपुरी में भी स्थान विशेष के कारण थोडा अन्तर दीख पडता है। आदर्श भोजपुरी का नितान्त निखरा एव विशुद्धतम रूप बलिया जिले में बोला जाता है जिसका केवल एक ही उदाहरण यहाँ देना पर्याप्त होगा। यह उद्धरण ठेठ आदर्श भोजपुरी का है:

"कपिलदेव आजु हम तोहरा के ढेर दिन पर देखत बानी। अतना दिन तू काँहा रहला हा। जब तब हम तोहरा बारे में तोहरा गाँव के लोगन से पूछत रहली हा, मगर केहू हाल साफ ना बतावत रहल हा। अब कह तोहरा घर के सभी केकति अच्छी तरे बाडी नू।

जीजोध भइया तू का पूछत बाड़। जब हमरा हाल के सुनब त तोहरो दुःख बिआपी श्रो श्राखिन में से लोर गिरावे लगब। जब हम एहां से घरे गइली तब से गिरहती के काम में बझली। दोसर केहू हमरा घर में अइसन नइखे जेकरा मे हमके एको लेहज़ा के आराम मिली। काहे से कि हमरा बाप के अँखिये जवाब दे दिहलिस श्रो हमरा जेठ जना भाई हमरा पहुँचला का पहिले ही परदेस चलि गइलें श्रवर तब से एको चिठियो ना भेजले हा। हमार काकाजी अपना लरिका बाला समेत अलगे रहे लें। एही सब श्रोजह से हम राति दिन, फिकिरि श्रो तरदुत से पिसाइल रही लें। महराज के तहसीलदार मालगुज़ारी खातिर दुइ पियादा तनात कइले बाड़े। मामा से रुपया मँगली त ऊसाफे इनकार कइलें। खीसा है कि—

"घर के मारल बन में गइलों
बन में लागल श्रागि।"[१]

पश्चिमी भोजपुरी फैजाबाद, जौनपुर, श्राजमगढ़, बनारस, गाजीपुर का पश्चिमी भाग श्रौर मिर्जापुर जिले के मध्यभाग में बोली जाती है। जैसा कि हमने पीछे कहा है, पश्चिमी भोजपुरी इंडोश्रार्यन भाषा परिवार के पूर्वी समुदाय की सबसे पश्चिमी सीमान्त बोली है जो अवधी आदि से कुछ समानता रखती है।[२] पश्चिमी भोजपुरी के व्याकरण का विस्तृत उल्लेख श्री जे० श्रार० रीड ने किया है परन्तु यह बहुमूल्य सामग्री कठिनाई से उपलब्ध सेटेलमेण्ट (बन्दोबस्त) रिपोर्ट की फाइलों में दबी पड़ी है।[३] डाक्टर हार्नली ने अपने सुप्रसिद्ध व्याकरण में 'पू० हिं' हिन्दी के नाम से इस बोली का सुन्दर तथा विद्वत्तापूर्ण व्याकरण लिखा है।[४] इस प्रकार भोजपुरी की इस बोली के व्याकरण के संबध में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है।

पश्चिमी भोजपुरी

१. लिं० स० इ० भाग ५ खंड २ पृ० २१०।

2. Western Bhojpuri is, in fact, the most western outpost of the eastern group of the Indo-Aryan family of languages, and possesses some of the features of its cousins to its west. लिं० स० इ० भाग ५, खंड २ पृ० २४८।

3. J. R. Read report on the settlement operation in the district of Azamgarh. appendix 2 and 3, Allahabad 1881.

4. A. F. R. Hornley-A comparative grammar of the Gaurian languages London 1880.

आदर्श भोजपुरी और पश्चिमी भोजपुरी में बहुत अधिक अन्तर है। सभवत आदर्श भोजपुरी का अन्य बोलियों से इतना अधिक पार्थक्य नहीं है जितना पश्चिमी भोजपुरी से। पश्चिमी भोजपुरी में करण

आदर्श भोजपुरी एव पश्चिमी भोजपुरी में अन्तर

कारक के लिये क्रिया के आगे 'अन' प्रत्यय का प्रयोग दीख पड़ता है जो आदर्श भोजपुरी में बिलकुल ही नहीं है। पश्चिमी भोजपुरी में आदरसूचक के लिये 'तुंह'का प्रयोग दीख पड़ता है परन्तु आदर्श भोजपुरी में इसके लिये 'रउरा' प्रयुक्त होता है। दोनों बोलियों में सहायक क्रिया के दो रूप पाये जाते हैं—'बानी' और 'हवी'। परन्तु पश्चिमी भोजपुरी में हवी का रूप 'होई' पाया जाता है।

उच्चारण की विशेषता से भी अनेक प्रभेद दृष्टिगोचर होते हैं। बलिया जिले में उत्तम पुरुष के रूपों के साथ कुछ अनुस्वार सा मिला रहता है। अत उसके उच्चारण के लिये नाक की सहायता अनिवार्य रूप से ली जाती है। परन्तु पश्चिमी भोजपुरी में अनुनासिक का नाम तक नहीं है। 'मैंने काम किया' इसके लिये बलिया जिला के लोग सानुनासिक बोलेंगे 'हम काम कइलीं'। परतु पश्चिमी भोजपुरी बोलने वाले बनारसी लोग कहेंगे 'हम काम कइली'। उच्चारण का यह स्पष्ट भेद प्रत्येक मनुष्य को मालूम हो सकता है। अन्य पुरुष के बहुवचन के रूप में भी अन्तर है।

सज्ञा के रूपों में भी एक प्रसिद्ध विशेषता है। जहाँ आदर्श भोजपुरी में सबध कारक में 'के' का प्रयोग करते हैं, वहाँ पश्चिमी भोजपुरी में 'का' या 'कई' प्रयुक्त होता है। 'के' का परिवर्तित रूप तो 'का' बन जाता है परन्तु 'क' का 'के' होता है। यह बात नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगी।

आदर्श भोजपुरी	पश्चिमी भोजपुरी
१ ओह देस का एक सहर का रहवइया का पास	१ ओह देस के एक सहर के रहवैये के पास
२ कप्टी का मरला के कुछुओ होरा नाही।	२ कप्टी के मरले कई किछउ होरा नाही।
३ अपना बाप से कहलन	३ अपने बाप से कहले।
४ ओह गाँव का कवनो आदमी।	४ ओह गाँव के कवनो आदमी।

सम्प्रदान कारक का परसर्ग (प्रत्यय) इन दोनों बोलियों में भिन्न भिन्न पाया जाता है। आदर्श भोजपुरी में सम्प्रदान का परसर्ग 'लागि' है, परन्तु बनारस की पश्चिमी भोजपुरी में इसके लिये 'के बदे' या 'वास्ते' प्रयुक्त होता है। जहाँ

आदर्श भोजपुरी में 'तोहरा लागि उडवो अकास' बोलते हैं वहाँ बनारसी बोली में 'किनली है रजा लाल दुसाला तोरे वदे' कहा जाता है। इन दोनों उदाहरणों से यह पार्थक्य स्पष्ट प्रतीत होता है। एक और उदाहरण लीजिये :-

आदर्श भोजपुरी :—

"तलवा झुरइले कवल कुम्हलइले
हस रोपेला बिरह वियोग।
रोवत बाड़ो सरवन के माता
के काँवर ढोइहें मोर।"

पश्चिमी भोजपुरी —

"हम घरमिटाव कलोहा रहिला चबाय के।
भेंवल धरल बा दूध में खाजा तोरे 'बदे'।
अत्तर तू मल के रोज नहायल कर रजा।
बोसन भरल धयल बा कराबा तोरे 'बदे'।
जानोला आजकल में झनाझन चली रजा।
लाठी, लोहांगी, खजर और बिछुआ तोरे 'बदे'।"

पश्चिमी भोजपुरी में हिन्दी भाषा के समान विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदलता रहता है परन्तु आदर्श भोजपुरी मे ऐसी बात नही पाई जाती। पश्चिमी भोजपुरी में कहते हैं "बडे बेटे क इ घर; बड़ी बेटी; बीस बडे-बडे घर।" इस प्रकार विशेषण 'बड़ा' शब्द विशेष्य के लिंग और वचन के अनुसार बदलता रहता है। परन्तु आदर्श भोजपुरी में 'नीमन बेटा', 'नीमन बेटी' या 'सुन्नर लड़का', 'सुन्नर लडकी' में नीमन और सुन्नर का रूप परिवर्तित नही होता।

इस प्रकार नागपुरिया, मधेसी, सरवरिया और थरुई आदि का पारस्परिक विभेद उतना महत्वपूर्ण नही है जितना आदर्श भोजपुरी और पश्चिमी भोजपुरी का है। बलिया की बोली और बनारस की बोली—जो दोनों की प्रतिनिधि स्वरूप है—में उच्चारण तथा रूपगत इतनी विभिन्नता है कि एक बार सुनने पर ही भेद स्पष्ट मालूम पड जाता है। बलिया की आदर्श भोजपुरी का उदाहरण पीछे दिया जा चुका है। यहाँ बनारस जिले में बोली जाने वाली पश्चिमी भोजपुरी का नमूना प्रस्तुत किया जाता है[1]—

---

१. बनारसी बोली के विशेष विवरण के लिए देखिये—
वाचस्पति उपाध्याय—नागरी प्रचारिणी पत्रिका में "बनारसी बोली" शीर्षक लेख।

"एक अदमी के दुइठे बेटवा रहलन। ओ में मे छोटका अपने बाप से कहलेस हे बाबू! जौन कुछ माल असबाब हमरे वखरा में पडे तीन हमके दे द। तब ऊ आपन कमाई दूनो के बाट दिहलेस। थोरिके दिन के बितले लहुरका बेटवा सब माल समेट क बडी दूर परदेस चल गएल और उहाँ सब धन लुचपन में फूक दिहलेस। जब सब गवाँय चुकल तब ओहि देस में बडा काल पडल।"

नागपुरिया भोजपुरी की ही एक बोली है जो छोटा नागपुर मे बोली जाती है। इस पर छत्तीसगढी वाली का प्रभाव अधिक पडा हुआ है। नागपुरिया को 'सदान' या 'सद्री' के नाम मे भी पुकारते हैं और मुडा लोग इसे 'दिवकु काजी' कहते हैं। 'सद्री' का अर्थ यहाँ की प्रादेशिक भाषा में 'बसे हुए' लोगो से है। अत इस भाषा का 'सद्री' नामकरण का कारण यही जान पडता है कि यह एक स्थान पर बसे हुए लोगो की भाषा है, खानाबदोशो की नही।

नागपुरिया

रेवेरेण्ड इ० एच० ह्विटली ने इस भाषा का बडा ही पाडित्यपूर्ण व्याकरण लिखा है।[1] नागपुरिया आदश भोजपुरी से व्याकरण सबधी अनेक बातो में पार्थक्य रखती है। जैसा कि ऊपर लिखा गया है नागपुरिया के अनेक शब्द और धातु रूप छत्तीसगढी से लिये गये हैं। इस बोली में सज्ञा में निश्चयात्मकता लाने के लिये 'हर' शब्द जोडा जाता है तथा किसी सज्ञा का बहुवचन बनाने के लिए उसमें 'मन प्रत्यय प्रयोग में लाया जाता है। परन्तु यह बात आदर्श भोजपुरी में नही पाई जाती है। इसी प्रकार दोनो के पार्थक्य के और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।[2]

मधेसी शब्द सस्कृत के "मध्यदेश" से निकला है जिसका अर्थ है बीच का देश। चूँकि यह बोली तिरहुत की मैथिली बोली और गोरखपुर की भोजपुरी के बीच वाले स्थाना में बोली जाती है, अत इसका नाम 'मधेसी (अर्थात् वह बोली जो इन दोनो प्रदेशों के बीच में बोली जाय) पड गया है। मधेसी चम्पारन जिले में बोली जाती है। यह प्राय कैथी वर्णमाला में लिखी जाती है। मैथिली से इसमें अनेक बातो में समानता उपलब्ध होती है।

मधेसी

नेपाल की तराई में जो थारू लोग बसते है उनकी कोई अपनी भाषा नही है। जहाँ कही भी वे पाये जाते हैं वहाँ उन्होने अपने आर्य पडोसियो की भाषा

---

१ रेवेरेन्ड ई० एच० ह्विटले—नोटस आन दि गनवारी डाइलेक्ट आफ लोहरदगा (छोटा नागपुर) कलकत्ता १८९६

२ लि स इ, भाग ५, खण्ड २, पृ० २७७-२८२

भोजपुरी अपना निजी धातु-रूप रखती है। जिस प्रकार मगही में 'ही' और मैथिली में 'छी' का प्रयोग होता है उसी प्रकार से भोजपुरी में बाटी, वाडी या बानी का प्रयोग किया जाता है। इन्ही सहायक क्रियाओं को अन्य धातुओं में जोडकर क्रियायें बनाई जाती हैं।

भोजपुरी में प्रत्येक सज्ञा पद के तीन रूप होते हैं १ लघु २ दीर्घ ३ दीर्घतम। जैसे—घोडा, घोडवा, घोडउवा, बेटा, बेटवा, बेटउवा, नाऊ, नउवा, नउअवा। इनमें मूल या लघु रूप शब्द-कोश में स्थान पाता है परन्तु दीर्घ और दीर्घतम जनता के मुख में निवास करता है। 'वा' स्वार्थिक प्रत्यय है, परन्तु कभी-कभी दूसरे योग से बने रूपो में अर्थभेद भी पाया जाता है। 'घोडवा ले आव' इस वाक्य में हमारा अभिप्राय किसी खास घोडे से है।

सज्ञा

भोजपुरी में एकवचन से बहुवचन बनाने के लिये नि, न्ह, या न जोडते हैं। जैसे घोडा से घोडनि, घोडन्ह, या घोडन रूप बनेंगे। इसी प्रकार घर से घरनि, घरन्ह या घरन बहुवचनान्त रूप बनेंगे। कभी-कभी समूहसूचक 'लोग' और 'सभ' शब्दो के योग से भी बहुवचन बनाया जाता है। जैसे, राजा से राजा लोग और राजा सभ। इसी प्रकार आदमी से 'आदमी लोग' और 'आदमी सभ'।

विभिन्न कारक रूपो को बनाने के लिये अनेक प्रत्यय जोडने की व्यवस्था है जिनका उदाहरण सहित उल्लेख नीचे किया जाता है —

कारक	प्रत्यय	उदाहरण
१. कर्म	के	राम के आम दे द।
२ करण	से, ते, सन्ते, कर्ते	कलम से चिट्ठी लिखऽ।
३ सम्प्रदान	लागि, ला	तोहरे लागि फल ले आइल बानी।
४ अपादान	से, ले	घर से वन तक खोजि अइली, उ ना मिलले
५ सबध	क, के, कई	इ राम के घोडा है।
६ अधिकरण	में, मो	घर में दिया वत्ती जलाव।

इनके अतिरिक्त करण और अधिकरण के लिये 'एँ' और 'ए' प्रत्यय शुद्ध कारक प्रत्यय है जिनके पहिले 'आ' का लोप हो जाता है। परन्तु अन्तिम 'ई' या 'ऊ' को ह्रस्व बना दिया जाता है। जैसे घोडा से घोडें, घोडे और माली से मलिएँ, मलिए। सबध कारक में 'क' पर प्रत्यय जोडने के पूर्व, अन्तिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर देते हैं, जैसे घोडा से घोडक। परन्तु यदि कोई सज्ञा शब्द

व्यंजनान्त होता है तो 'क' जोड़ने के पूर्व उसमें 'अ' जोड़ते हैं। जैसे घर से घरक। सवयकारक बनाने के लिये कही कही 'का' प्रत्यय भी जोडते हैं। जैसे, राजा का मन्दिर में।

सर्वनाम

भोजपुरी में प्राय. सभी पुरुषो में सर्वनाम सूचक शब्द है परन्तु जैसा कि पहले लिखा जा चुका है उत्तमपुरुष के एकवचन का प्रयोग प्राय. नही होता। विभिन्न पुरुषों के सर्वनामो का रूप इस प्रकार है :—

	एकवचन		बहुवचन	
	साधारण रूप	आदरसूचक रूप	साधारण रूप	आदरसूचक रूप
उत्तम पुरुष	में	हम	हमनीका	हमरन
मध्यम पुरुष	तू या ते	तू या ते	तोहनीका	तोहरन
आदरार्थ	...	रउवाँ, रवाँ, रउरा	...	रउरन, रवन
अन्य पुरुष	उ, ओ	...	उन्हका	...

इन सर्वनामो के रूप भिन्न भिन्न कारको में बदलते जाते है जो आसानी से समझे जा सकते हैं।

क्रिया

सहायक क्रिया के लिये और सत्ता सूचित करने के लिये भोजपुरी में दो धातु हैं—वाड, बाडी या बानी और हवी। मध्यम पुरुष अथवा अन्य पुरुष में बहुवचन अथवा आदर दिखलाने के लिये 'सा' जोड़ देते हैं। नीचे उपर्युक्त क्रियाओ के विभिन्न कालों तथा पुरुषो के रूप दिये जाते है जिससे स्पष्ट पता चलता है कि इन क्रियाओ का रूप किस प्रकार वदलता जाता है।

देल (देना)	दिहल या देल
लेल (लेना)	लिहल या लेल
होइल (होना)	भइल

इस प्रकार भोजपुरी का व्याकरण सरल और स्पष्ट है।[1]

—— ० ——

अध्याय २

भोजपुरी-साहित्य

क] पद्य

भोजपुरी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करना बड़ा ही कठिन कार्य है। इस साहित्य के संबंध में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि भोजपुरी साहित्य प्रकाशित रूप में विशेष उपलब्ध नहीं है। यह प्रधानतया मौखिक रूप में ही प्राप्त होता है। गाँवो में सोहर तथा जतसार गाती हुई स्त्रियो के कलकंठ में, बिरहा तथा आल्हा गाने अहीरो और अल्हैतो के वीर गीतों में, एवं सारंगी बजा कर अपनी उदरपूर्ति की चिन्ता में संलग्न, भिक्षा का आयोजन करने वाले जोगियो तथा साधुओ के सरस, सुन्दर स्वरो में इसका साहित्य छिपा पड़ा है। भोजपुरी का यह मौखिक साहित्य इतना विस्तृत और विशाल है कि यदि इसका संग्रह किया जाय तो एक नहीं अनेक ग्रन्थ तैयार हो सकते हैं।

भोजपुरी में आजकल जो साहित्य उपलब्ध होता है उसमें कुछ तो गीतो के संग्रह हैं और कुछ जनता के दैनिक जीवन तथा समाज का चित्रण करने वाले विभिन्न विषयो पर लिखे गये गीत हैं। जैसे—मेला घुमनी, गंगा नहवनी इत्यादि। यद्यपि इन छोटी छोटी पुस्तिकाओ का मूल्य साहित्यिक दृष्टि से अधिक नहीं है फिर भी भोजपुरी भाषा के नमूने के रूप में इनका महत्त्व कुछ कम नहीं है।

भोजपुरी भाषा में विभिन्न विषयो पर लिखे गये साहित्य का आज भी अभाव है। डा० बीम्स ने अपने व्याकरण में लिखा है कि भोजपुरी का कोई साहित्य नहीं है।[१] भाषाशास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर ग्रियर्सन ने लिखा है कि भोजपुरी का शायद ही कुछ स्थानीय साहित्य हो। भोजपुरी प्रान्त में प्रसिद्ध लोरिक का महाकाव्य और कुछ गीत इसमें हैं। इसमें कुछ पुस्तके भी छपी हैं।[१] भोजपुरी साहित्य के संबंध में डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी का यह मत है कि कुछ लोकगीतो और बैलेड के अतिरिक्त—जो बहुत ही सुन्दर हैं तथा

---

१. डा० बीम्स—ए ग्रामार आफ दि गौडियन लेंग्वेज पृ०

1. Bhojapuri has hardly any indigenous literature. A few books have been printed in it.. .. ..Numerous songs are current over the Bhojapuri area, and the national epic of Lorik which is also current in the Magahi dialect is everywhere known.—Linguistic Survey of India, Vol. 5, Part II, Page 46.

देहाता में गाये जाते हैं भोजपुरी में प्रयत्न पूर्वक किसी साहित्य की सृष्टि नही हुई है। इस बोली का सबसे प्राचीन नमूना सन्त कवि कबीर की कविता में मिलता है जो कुछ पद्यो में ही सीमित है।[2] प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय नें इन्ही उपर्युक्त मता का समर्थन करते हुए लिखा है कि 'इतना होने पर भी यह कम दुःख की बात नही है कि इसका साहित्य अभी तक समृद्ध रूप में नही दीख पडता। यह अभी तक लिखित अवस्था में भी नही है, बल्कि जीविका के लिये इधर उधर भ्रमण करने वाले गायको और अनपढ देहातियो की जिह्वा पर निवास कर रहा है।'[3] भोजपुरी भाषा के अधिकारी विद्वान् डाक्टर उदयनारायण तिवारी की सम्मति है—

भोजपुरी में सबसे बडी कमी इसमें प्रकाशित उच्च श्रेणी के साहित्य का अभाव है।' भोजपुरिया को अपनी भाषा के प्रति इतना अनुराग होने पर भी यह बडे आश्चर्य की बात है कि इस भाषा की श्रीवृद्धि नही हुई है और प्राचीन काल में भी इसकी बहनो बगाली मैथिली एव कोशली के मुकाबिले में इसमें साहित्य रचना विशेष नही हुई। इसका प्रधान कारण ब्राह्मण पडिता का संस्कृत भाषा के प्रति (मातृभाषा की उपेक्षा कर) विशेष अनुराग है।'[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भोजपुरी का साहित्य प्रधानतया मौखिक है और जो कुछ साहित्य उपलब्ध होता है वह अनेक स्फुट विषयों पर लिखा गया है।

भोजपुरी साहित्य का इतिहास लिखने में कठिनता

भोजपुरी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करने में सबसे बडी कठिनाई यह है कि इसका अधिकाश साहित्य अभी तक मौखिक रूप में है। जो साहित्य लिखित रूप में विद्यमान है वह स्वल्प है और पद्य रूप में ही उपलब्ध होता है। भोजपुरी के पद्यात्मक साहित्य में लोक गीता की प्रधानता है। इन गीता के न तो रचना-काल का पता चलता है और न इनके रचयिताओं का ही। इन की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति भी उपलब्ध नही होती जिससे इनके रचना काल के ऊपर कुछ प्रकाश पड

2 Barring the composition of a number of ballads and songs which are as beautiful specimens of folk-literature as any, and which still have a vigorous existence in the country side, there is no conscious literary effort in Bhojpuria The oldest specimens in this speech, that we possess, are probably a few poems written by the great religious reformer and mystic teacher of Northern India—Kabir—who flourished in the 15th century
Origin and development of the Bengali Language Vol I Page-15

३ डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुर लोक गीत, भाग १ की भूमिका पृ० १७
३. दि ओरिजिन एण्ड डेवेलेपमेन्ट आफ भोजपुरी (अप्रकाशित)
४ वही पृ० ११

सके। इन उपयुक्त कठिनाइयों के कारण भोजपुरी साहित्य का क्रमबद्ध, वैज्ञानिक इतिहास लिखना कठिन है। अगले पृष्ठों में इसके इतिहास को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जायगा। इस सम्बन्ध में, यहाँ यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि भोजपुरी साहित्य का इतिहास लिखने का यह सर्वप्रथम प्रयास है।' यहाँ जो कुछ सामग्री प्रस्तुत की जा रही है वह मौलिक है तथा प्रथम बार ही लिखी जा रही है। अगले पृष्ठों में निबद्ध सामग्री को भोजपुरी साहित्य का इतिहास न कह कर भोजपुरी साहित्य का परिचय कहना अधिक उपयुक्त होगा।

किसी साहित्य का इतिहास प्रधानतया दो प्रकार से लिखा जाता है। १ कालक्रम की दृष्टि से, २ विषय की दृष्टि से। आजकल कालक्रम से इतिहास लिखने की प्रथा ही अधिक है और वही वैज्ञानिक भी है। इसमें किसी साहित्य का उदय कब हुआ, पश्चात् उसमें कौन-कौन-सी काव्य की धारायें प्रवाहित हुईं, उनका कालक्रम से वर्णन किया जाता है। प० रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास इसी क्रम से लिखा गया है। दूसरी प्रथा विषय-क्रम से इतिहास लिखने की है। इसमें साहित्य के विभिन्न अंग या विषय जैसे पद्य (महाकाव्य और गीतिकाव्य), गद्य और नाटक एवं अलंकार आदि का क्रमशः इतिहास लिखा जाता है। मेकडानल और कीथ का 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' इसका सुन्दर उदाहरण है। एक तीसरी प्रणाली भी इतिहास लिखने की चल पड़ी है, जिसमें किसी साहित्य के इतिहास का विशिष्ट कवियों या लेखकों के नाम से विभिन्न युगों में बाँट देते हैं, जैसे, एज आफ शेक्सपियर मिल्टन, टेनिसन, आदि। और उस युग में होने वाली समस्त साहित्यिक रचना गद्य, पद्य, नाटक का इतिहास एक साथ निबद्ध किया जाता है। हडसन ने अंगरेजी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास इसी प्रणाली से लिखा है।

परन्तु भोजपुरी के इतिहास को लिखने में हम उपर्युक्त तीन प्रणालियों में से किसी भी एक का निश्चित रूप से अनुगमन नहीं कर सकते। भोजपुरी में जो साहित्य उपलब्ध है उसकी रचना का समय निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। अतः प्रथम प्रणाली का नियमपूर्वक पालन नहीं किया जा सकता। दूसरी प्रणाली विषय की दृष्टि से इतिहास लिखने की है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि भोजपुरी का प्रायः समस्त साहित्य पद्यात्मक है, अतः लोक गीतों के पश्चात् गद्य और नाटक आदि का वर्णन नहीं के बराबर होगा। ऐसी दशा में इसका उपयोग भी हम नहीं कर सकते। तीसरी प्रणाली की यहाँ चर्चा ही व्यर्थ है। इसलिये हम अपने वर्णन में किसी विशेष पद्धति का अनुसरण न कर स्वतन्त्र रीति से विचार करेंगे।

आजकल भोजपुरी-सम्बन्धी जितना साहित्य उपलब्ध है उसको हमने अपनी सुविधा के अनुसार निम्नांकित पाँच भागों में विभक्त किया है —

१ प्राचीन कवियो के द्वारा भोजपुरी शब्दो का प्रयोग तथा काव्य-रचना।

२ विभिन्न यूरोपियन विद्वानो के द्वारा लोक-गीतो का सग्रह, सम्पादन तथा प्रकाशन।

३ लोक-गीतो के आधुनिक सग्रह।

४ वर्तमान भोजपुरी कवियो की कविता।

५ फुटकल रचनायें।

इन पाँचो भागो में जिन जिन कवियो की कवितायें प्राप्त हैं उनका कुछ विस्तार से आगे वर्णन किया जायगा।

भोजपुरी साहित्य के इतिहास के विभाजन का एक दूसरा भी प्रकार है और यह अधिक युक्तिसगत दीख पडता है। जिस प्रकार से भारतीय दर्शनशास्त्र के इतिहासकारो ने अद्वैत वेदान्त के प्रधान आचार्य भगवान् शकर को मध्यविन्दु मानकर उसके इतिहास को १ पूर्व शकर-युग २, शकर-युग और ३ पश्चात् शकर-युग इन तीन विभागों में विभक्त किया है, उसी प्रकार हम भी डाक्टर ग्रियर्सन को भोजपुरी साहित्य का मध्यविन्दु मानकर इसके साहित्य को निम्नलिखित तीन भागो में बाँट सकते हैं

काल विभाजन

१ पूर्व ग्रियर्सन काल।

२ ग्रियर्सन काल।

३ पश्चात् ग्रियर्सन काल।

इस काल विभाजन के लिये हमारे पास पर्याप्त कारण भी हैं। भोजपुरी के उद्धार के लिये ग्रियर्सन ने श्लाघनीय प्रयत्न किया है। आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व—जब कि प० रामनरेश त्रिपाठी के ग्राम-गीत का पता भी नहीं था—डाक्टर ग्रियर्सन ने भोजपुरी के अनेक लोकगीतों को खोजकर उनका सग्रह किया, और उनका समुचित रीति से सम्पादन कर, सभ्य जनता का ध्यान इन 'गँवारू' कहे जानेवाले गीतो की ओर आकर्षित किया। उन्होने यह दिखलाया कि इन गीतो का भी एक विशेष महत्त्व है तथा इनकी उपेक्षा गर्हणीय है। डा० ग्रियर्सन ने अपने 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' में भोजपुरी भाषा का विस्तृत विवेचन किया है तथा भोजपुरिया की भूरि भूरि प्रशसा की है। उन्होंने केवल स्वय ही गीतो का सग्रह नही किया बल्कि अपने समकालीन अन्य अंग्रेजो—ग्राउस, फ्रेजर आदि—को भी इस कार्य की ओर आकृष्ट किया।

डा० ग्रियर्सन का 'सेवेन ग्रामर्स आफ दि विहारी लैंग्वेज' आज भी भोजपुरी व्याकरण का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इस प्रकार भोजपुरी साहित्य में, लेखक के रूप में नहीं प्रत्युत उद्धारकर्ता के रूप में, ग्रियर्सन का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसीलिये उनको मध्यबिन्दु मानकर हम भोजपुरी साहित्य को उपर्युक्त तीन विभागों में बाँट सकते हैं।

प्राचीन कवियों के द्वारा भोजपुरी का प्रयोग

भोजपुरी का सर्वप्रथम प्रयोग सिद्धों की कविता में उपलब्ध होता है। यद्यपि सिद्धों के काव्य की भाषा में बड़ा विवाद है और विद्वान् अभी तक इस निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं कि इनकी भाषा पुरानी बँगला है अथवा अन्य कुछ। फिर भी इनकी कविता की भाषा पर ध्यान दिया जाय तो उसमें अनेक भोजपुरी के क्रियापद मिलेंगे।

सिद्ध कवियों द्वारा प्रयोग

चौरासी सिद्धों में सिद्ध भुसुकु का नाम बड़ा प्रसिद्ध है। ये नालन्दा (विहार) के पास के प्रदेश में एक क्षत्रियवंश में पैदा हुए थे। इनका आविर्भाव काल नवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।[१] इन्होंने 'सहजगीति' नामक पुस्तक लिखी है जिसका एक पद्य यह है :

"आजि भुसु वगाली भइली,
णिअ घरिणी चंडाली लेली।

इस पद्य में 'भइली' क्रिया स्पष्ट ही भोजपुरी की है। आज भी भोजपुरी प्रान्त में अइली, गइली, खइली, भइली का निरन्तर प्रयोग होता है और सर्वसाधारण इसे समझते और बोलते हैं। महापंडित राहुल साङ्कृत्यायन ने इस 'भइली' शब्द के विषय में लिखा है कि "भइली शब्द बँगला में कहाँ व्यवहृत होता है? किन्तु वह काशी से मगह तक आज भी बहुत प्रचलित है।"[२] काशी से पूर्व और पटना के पश्चिम में जो भाषा बोली जाती है वह भोजपुरी है। अतः राहुल जी के मतानुसार भी 'भइली' शब्द के भोजपुरी होने में सन्देह नहीं। इसी प्रकार से सिद्ध डोम्भिपा[३] ने भी अपनी कविता में भोजपुरी का प्रयोग किया है :—

---

१. राहुल साङ्कृत्यायन—पुरातत्व निबन्धावली पृ० १७५-७६.

२. वही, पृ० १७७ का फुटनोट।
काशी और मगह के बीच का ही प्रदेश भोजपुरी प्रान्त है।

३. वही, पुरातत्व निबन्धावली पृ० १८२.

"वाहनु डोम्बी वाहलो डोम्बी वाटत भइल उछारा,
सद्गुरु पाअ पए जाइब पुणु जिणधारा।"

इस पद्य में 'भइल' और 'जाइब' क्रिया पद स्पष्ट ही भोजपुरी के दीख पडते हैं। भोजपुरी भाषा से तनिक भी परिचय रखने वाला व्यक्ति इन्हें सहज ही में पहचान सकता है। आज भी लोग अपने दैनिक व्यवहार में 'भइल' और 'जाइब' का नित्य ही प्रयोग करते हैं—जैसे 'इ काम अभी भइल कि ना और रउरा आज काशी जाइब ?' इत्यादि।

सिद्ध कुक्कुरिया ने भी अपनी कविता में भोजपुरी की क्रिया का प्रयोग किया है।[1] उदाहरण के लिये यह पद्य लीजिये—

'दिवसइ बहुडी काडइ डरे भाअ,
राति 'भइले' कामरू जाय।"

इस पद्य में 'भइले' पद डके की चोट से अपने भोजपुरीपन को उद्‌घोषित कर रहा है। आज भी भोजपुरी में 'राति भइले पर बाहर ना जायें के चाही' बोला जाता है और सभी इसे समझते हैं।

इसी प्रकार ध्यानपूर्वक अनुसन्धान करने से इन सिद्धो की कविता में भोजपुरी के अनेक सज्ञा और क्रिया पद मिल सकते है। राहुल जी ने इन सिद्धो की भाषा को मगही हिन्दी का नाम दिया है।[2] मगही और भोजपुरी की सीमायें एक दूसरी से मिली-जुली हैं। अत इसमें कोई आश्चर्य की बात नही कि मगही में कविता लिखने वाले सिद्धो ने भोजपुरी के क्रिया-पदो का प्रयोग किया हो। सच तो यह है कि प्राचीन काल में मागधी की सन्तान होने के कारण मगही, मैथिली, भोजपुरी, बँगला और असमिया में उतना अधिक पार्थक्य न था। एसी दशा में सिद्धो की कविता में भोजपुरी का पुट होना असभव नहीं समझना चाहिये।

(क) प्राचीन हिन्दी कवियों द्वारा भोजपुरी का प्रयोग

हिन्दी के अनेक कवियो ने भोजपुरी भाषा के शब्दो का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। ऐसे कवियो में जायसी और तुलसीदास के नाम प्रसिद्ध हैं। मलिक मुहम्मद जायसी जायस (अवध) के रहने वाले थे। यह एक सिद्ध फकीर थे। रमते जोगियों और साधुओं के साथ सत्सग करने के कारण इनकी बोली में भोजपुरी शब्दो का मिलना कुछ आश्चर्यजनक नहीं है। रही तुलसीदासजी की बात। उनके विषय में तो यह प्रसिद्ध ही है कि उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध

१. राहुल साकृत्यायन—पु० सि० पृ० १८५.
२. वही. पृ० १६०.

ग्रन्थ रामचरितमानस का अधिकाश और विनयपत्रिका का सम्पूर्ण प्रणयन काशी में रहकर किया था। काशी भोजपुरी क्षेत्र के ही अन्तर्गत है। अत तुलसी की 'भाखा' में भोजपुरी का गहरा पुट होना नितान्त स्वाभाविक है। हमारा यह निश्चित मत है कि रामायण के शब्दा की विशेष छानबीन की जाय तो उसमें भोजपुरी के हजारो शब्द मिलेंगे। इस प्रकार जायसी और तुलसी ने अपने ग्रन्थो में भोजपुरी शब्दो का प्रयोग कर इसे गौरव प्रदान किया है।

तुलसीदास जी ने अधिकतर भोजपुरी के सज्ञा शब्दा का ही प्रयाग किया है परन्तु जायसी ने सज्ञा शब्दो के साथ ही साथ भोजपुरी के क्रियापदो का भी नि सकोच अपनाया है।

जायसी ने अनेक ठेठ भोजपुरी शब्दा का प्रयोग अपनी पुस्तक 'पद्मावत' में किया है। जब पद्मावती पालकी पर रतनसेन से मिलने जाती है तो कवि कहता है कि

"साजि सबै चडोल चलाये, सुरग 'ओहार' मोति जनु लाये।

इसमें ओहार शब्द भोजपुरी है जिसका अर्थ पालकी का पर्दा होता है। आगे जायसी लिखते हैं

"का पछिताव आउ जो पूजी"

अर्थात् आयु समाप्त हो जाने पर पश्चात्ताप करना व्यर्थ है। हिन्दी में "पूजना" का अर्थ आदर-सत्कार होता है परन्तु भोजपुरी में समाप्त होने के अर्थ में यह प्रयुक्त हाता है।

यों तो भोजपुरी का प्रयोग तुलसीदासजी की कवितावली रामायण एव विनयपत्रिका में भी कही कही मिलता है परन्तु रामचरितमानस में इसकी अधिकता पाई जाती है। भोजपुरी में 'आप' के लिए 'रउरे' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी का सबध-कारक का रूप 'राउर' होता है। तुलसीदास जी ने इन दोनो रूपा का प्रयोग किया है। जैसे

"जो 'राउर' अनुशासन पाऊँ,
कन्दुक इव ब्रह्माड उठाऊँ।
कहत बचन दुख 'रउरे' लागा।"

भोजपुरी में 'अहिवात' शब्द का अर्थ सौभाग्य—स्त्री का सौभाग्य—के अर्थ में और 'पतिआना' का प्रयोग विश्वास करने के अर्थ में किया जाता है। गोस्वामी जीके द्वारा इनका यह प्रयोग देखिए।

'अचल होइ 'अहिवात' तुम्हारा,
जब लग गग जमुन जल धारा।"

'गुरु पितु मातु न मानौ काहू,
कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू।"

"गव" भोजपुरी का अटूट ठेठ शब्द है जिसका अर्थ ताक या अवसर होता है। गोस्वामी जी ने इस ठेठ शब्द का प्रयोग भी बड़ी सुन्दर रीति से किया है—

'जिमि गव तकइ किरात किशोरी"

'जोहना' का प्रयोग खोजने के अर्थ में हुआ है। जैसे —

"बार बार मृदु मूरति जोही।"

कवितावली रामायण में भी भोजपुरी का प्रयोग हुआ है। भूभुरि (गर्म बालू) का यह प्रयोग देखिए।

"पोंछि पसेउ बयारि करो,
अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाडे।"

(ख) सन्त कवियों द्वारा काव्य-रचना

यह कथन कुछ अत्युक्ति पूर्ण नही होगा कि अनेक सन्त कवियो ने भोजपुरी में कविता की है। इसका कारण यह है कि इन कवियो में अनेक कवि भोजपुरी प्रदेश के ही रहने वाले थे। शिवनारायण जिला गाजीपुर तथा धरणीदास बिहार राज्य के जिला सारन के निवासी थे। लक्ष्मी सखी भी इसी जिले के रहने वाले थे। अत इनकी कविता का भोजपुरी भाषा में लिखा जाना स्वाभाविक ही है। कबीरदास जी काशी में पैदा हुए थे। अत कबीर की कविता में भोजपुरी का प्रचुर पुट पाया जाता है। इन्होने कुछ पद शुद्ध भोजपुरी में भी लिखे है। इसलिये कबीर को भोजपुरी का 'आदि कवि' माना जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दी के कुछ सन्त कवियो ने भी इस बोली को अपनी मधुर कविता का माध्यम बनाया है और इसे गौरवान्वित किया है। अगले पृष्ठो में इन्ही कवियो की 'बानी' की बानगी उपस्थित की जायगी।

सिद्धो के पश्चात् हमें सन्त कबीर की साधु वाणी में भोजपुरी के पूर्ण रूप से दर्शन होते है। जैसा प्रसिद्ध है कि कबीर भोजपुरी प्रदेश के निवासी थे अत

कबीर

उनकी कविता में भोजपुरी का गहरा पुट होना तथा भोजपुरी में उनकी काव्य रचना स्वाभाविक है। कबीर की कविता में अन्य बोलिया का जो पुट पाया जाता है उसका कारण यह है कि उनकी सन्त वाणी का प्रचार जिस प्रान्त में हुआ उस प्रान्त के लोगा ने उसको अपनी भाषा में रँग दिया। उसे प्रान्तीय

चोला पहना दिया। कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी'[1] अथवा 'खिचड़ी' भले ही कहा जाय परन्तु उसकी आत्मा भोजपुरी ही है।

सुप्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी ने लिखा है कि भोजपुरी का सबसे पुराना नमूना कबीर के कतिपय पद्यों में पाया जाता है। यद्यपि उन्होंने तत्कालीन हिन्दी कवियों की प्रथा के अनुसार साधारणतया ब्रजभाषा और कभी-कभी अवधी में भी कविता की है परन्तु उसमें भोजपुरी का पुट लक्षित हो जाता है और जहाँ उन्होंने 'अपनी भोजपुरिया' का प्रयोग किया है वहाँ ब्रज भाषा भी प्रकट हो ही जाती है।[2]

डा० चटर्जी के द्वारा प्रयुक्त 'अपनी भोजपुरिया' शब्द ध्यान देने योग्य है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि कबीर की अपनी भाषा 'भोजपुरी' ही थी और विशेषकर इसी में उन्होंने अपनी कविता लिखी थी। चटर्जी ने कबीर की भोजपुरी कविता के उदाहरण में निम्नलिखित चार पद्यों को उद्धृत किया है।[3]

"कनवा फराइ जोगी जटवा बढ़ौले,
दाढ़ी बढ़ाइ जोगी होइ गैले बकरा।
कहही कबीर सुनो भाई साधो,
जम दरवजवा बान्हल जइबे पकरा ।१।

बाबा घर रहलू त बबुई कहवलू
सइयाँ घर चतुर सेयान।
चेतब घरवा आपन रे।२।

१ रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास।

२ "The oldest specimens in this speech that we possess are probably a few *songs written by the great religious reformer and mystic teacher of* northern India who flourished in the Fifteenth century. Kabir was an inhabitant of the Bhojapuri tract but following the practice of the Hindustani poets of the times, he generally used Brajbhasha and occasionally Awadhi His Brajbhasha at times betrays an eastern Bhojapuri form here and there And when he employs his own Bhojapuriya dialect, Brajabhasha and other western forms show themselves"

डा० चटर्जी—ओ० डे० वे० लैं० भाग १ पृ० १५

३ डा० चटर्जी—ओ० डे० वे० लैं० पृ० १५-१६

कहत कबीर सुनो भाई साधो
जग से नाता छूटल हो। ६।

इन उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत है कि कबीर की भाषा भोजपुरी है और यही भोजपुरी के सर्वप्रथम कवि कहे जा सकते हैं। कबीर ने स्वयं अपनी बोली के विषय में लिखा है कि मेरी बोली पूर्व की है, हमें तो वही पहचान सकता है जो 'धुर पूरब' का रहने वाला है :—

"बोली हमरी पूर्व की, हमें लखै नहिं कोय
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय"

यह कहना अनावश्यक है कि 'धुर पूरब' का अर्थ यहाँ भोजपुरी प्रदेश से है।

धरमदास

कबीर की ही भाँति धरमदास भी एक सन्त कवि थे जो उन्हीं की परम्परा में उत्पन्न हुए थे। कहा जाता है कि ये कबीर के शिष्य थे और उनके पन्द्रह वर्ष बाद तक जीवित रहे। इस घटना से कबीर के साथ इनका संबंध प्रमाणित होता है। सन् १९२३ ई० में बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ने 'धरमदास जी की शब्दावली' प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक से धरमदास जी की कविता का एक उदाहरण लीजिये।

"मितऊ मड़ैया सूनि करि गैलो। १।
अपन बलम परदेश निकरि गैलो।
हमरा के कछुओ न गुन देइ गैलो। २।
जोगिन होइ के मै बन बन ढूढ़ौं।
हमरा के बिरह बैराग देइ गैलो। ३।
संग की सखी सब पार उतरि गैली।
हम धन ठाढ़ी अकेली रहि गैलो। ४।
'धरमदास' यह अरज करतु है।
सार शब्द सुमिरन देइ गैलो। ५।"

उपर्युक्त पद में क्रियाओं का जो रूप दिखाई पड़ता है वह स्पष्ट ही भोजपुरी है। इसी प्रकार से धरमदास जी की कविता के अन्य उदाहरण भी उपलब्ध हैं। उनकी यह दूसरी कविता है[1] जिसमें रहस्यवाद का दर्शन हमें मिलता है।

कहवाँ से जीव आइल,
कहवाँ समाइल हो। १।

---
[1] धरमदास जी की शब्दावली पृ० ६३, शब्द ३।

कहवाँ कइल मुकाम
कहा लपटाइल हो । २ ।
निरगुन से जीव आइल,
सरगुन समाइल हो । ३ ।
कायागढ़ कइल मुकाम,
माया लपटाइल हो । ४ ।
एक बूद से काया
महल उठावल हो । ५ ।
बूद परे गलि जाय,
पाछे पछिताइल हो । ६ ।
हस कहै भाई सरवर
हम उडि जाइबि हो । ७ ।
मोर तोर एतन दिदार,
बहुरि नहिं पाइबि हो । ८ ।
इहवाँ कोई नहिं आपन
केहि सग बोलइ हा । ९ ।
बिच तरवर मैंदान
अकेला हस डोलई हा । १० ।
लख चौरासी भरमि,
मानुख तन पाइल हा । ११ ।
मानुख जनम अमोल,
अपन मो खोइल हो । १२ ।
साहेब कबीर सोहर गावल
गाइ सुनावल हो । १३ ।
सुनहु हो धरमदास,
एहि चित चेतहु हो । १४ ।

शिवनारायण यह एक सन्त कवि थे जिनका जन्म उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के 'चन्द्रवार' नामक गाँव में हुआ था। इन्होने अनेक ग्रन्थो की रचना की है जो हस्तलिखित रूप में उपलब्ध होते है। इनकी पुस्तकें अब तक प्रकाशित नहीं हुई है। 'गुरु अन्यास' नामक ग्रन्थ का लि[illegible] १७[illegible] १७९१ वि०) में हुआ था।

सन्त कवि शिवनारायण ने अपने ग्रन्थों में दोहा और चौपाई छन्दों का प्रयोग किया है। ये वे ही सुप्रसिद्ध छन्द हैं जिनको मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' लिखने में तथा गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरित मानस' में प्रयुक्त किया है। इन्होंने प्रधानतया अवधी भाषा में अपने ग्रन्थ लिखे हैं परन्तु जहाँ इन्होंने जँतसार (जात के गीत) और घाटो (चैता) लिखा है वहाँ भोजपुरी का प्रयोग किया है। इनकी कविता का एक उदाहरण लीजियेः—

"सूतल रहलीं नींद भरी गुरु देले ही जगाई।
गुरु के सबद रा आंजन हो ले लो नयना लगाई। १।
तब हो से नींदि नाहिं आवे हो, नाही मन अलसाई।
गुरु के चरन रज सागर हो, नित सबेरे नहाई। २।
जनम जनम के पातक हो, छन में देइल दहवाई।,
पन्हलो में सुमति कँगनवा हो, कुमति दिहल। उतारि। ३।
सन्द के माग सवारा हो, दुरमति दहवाई।
पिअलो मैं प्रेम पियलवा हो, मन गइले बउराई। ४।
आ । लगहु तन जरि जाहु हो, मोरा कुछ ना सोहाई।। ८
बइठनो मैं ऊँची अँजरिया हो, जहाँ चार न जाई।। ५।।
शिवनारायण गुरु समरथ हो, दखि काल डेराई। ६।"

सन्त कवियों में बाबा धरनीदास का नाम प्रसिद्ध है। ये बिहार प्रान्त के सारन जिले के माँझी नामक गाँव के निवासी थे। ये स्वभाव से ही साधु थे। धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण ये अपना समय हरिभजन में अधिक बिताते थे। ये स्थानीय जमींदार के यहाँ मुन्शी थे। एक दिन अकस्मात् इन्होंने आफिस के कागज पत्रों पर एक घड़ा पानी डाल दिया। कारण पूछने पर इन्होंने बतलाया कि जगन्नाथपुरी में भगवान् के वस्त्र में आग लग गई थी, अत उसे शीघ्र बुझा देने के लिये इन्होंने ऐसा किया। पता लगाने पर यह घटना सच्ची निकली। इस घटना के बाद इनको ससार से इतना वैराग्य हो गया कि इन्होंने नौकरी छोड़ दी और विरक्त हो गये। इन्होंने स्वय लिखा है कि —

धरनी दास

"राम नाम सुधि आई।
लिखनी अब ना करवि ए भाई।"

अर्थात् अब मुझे राम, नाम का स्मरण हो गया है, अत अब मैं लिखने का काम (मुन्शी का पेशा) न करूँगा। तब से ये विरक्त होकर भगवान् के भजन में ही समय बिताने लगे थे। इन्होंने अपने विरक्त होने का काल 'प्रेम प्रगास'

नामक ग्रन्थ में १६५६ ई० (१७१३ वि०) दिया है, जिससे पता चलता है कि इनका आविर्भाव काल सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। एक पद में औरंगजेब तथा उसके पिता शाहजहाँ का नाम आने से इनका वैराग्य काल निश्चित रूप से निर्णीत किया जा सकता है। इन्होंने लिखा है कि —

"सम्वत् सत्रह सौ चलि गयऊ,
तेरह अधिक ताहि पर भयऊ।
शाहजहाँ छोड़ी दुनियाई,
पसरी औरंगजेब दुहाई।
सोच विचारि आतमा जागी,
धरनी धरेऊ भेस वैरागी।"

बाबा धरनीदास जी सन्त कवि थे। परन्तु ये प्रधानतया सन्त थे। कविता तो इनके हार्दिक भावों की वाहिका मात्र थी। इन्होंने दो ग्रन्थों की रचना की है: १. शब्द प्रकाश और २ प्रेम प्रगास। ये दोनों ग्रन्थ माँझी के पुस्तकालय में हस्त-लिखित रूप में सुरक्षित हैं। 'प्रेम प्रगास' की एक हस्तलिखित प्रति की समाप्ति सन् १८७३ ई० में हुई थी जिसे माँझी के महन्त रामदास ने वहीं की निवासिनी जानकी दासी उर्फ बरता कुअर के लिये लिखा था। इस पुस्तक की भाषा भोजपुरी है जो अवधी से मिली-जुली है। इसमें 'पयार' छन्द का प्रयोग हुआ है जो बँगला में अधिकता से पाया जाता है। एक उदाहरण लीजिये :—

"सुमिरु, सुमिरु मन सिरजन हार,
जिन्ह कैला सुर, नर, नाग, पताल। १।
रवि ससि अगिनि पवन कइला पानी,
जिआ जन्तु सनि सनि आनि आनि बानी। २।
धरती, समुद्र, बन, परवत, सुमेरु,
कमठ, फनीन्द्र, इन्द्र, बैकुंठ, कुबेरु। ३।
गुरु के चरण रज सिरवा चढाई,
जिन्ह लेला भव-जल बुडत बचाई। ४।
देवता पितर विनवलों कर जोरी,
सेवा लेब मानि अल्प बुद्धि मोरी। ५।
जहाँ लगि जगत् भगत अवतार,
मोरे त जीवन धन प्रान अधार। ६।
तीरथ बरत चारो धाम शालिग्राम,
माथे हाथे परसि करीलो प्रनाम। ७।"

छोट मोट जिया जन्तु जहाँ लगि झारी,
बकसि बकसि लेहु औगुन हमारी।" ।८।

इस पद्य में भोजपुरी की झाँकी देखने को मिलती है। इसमें तत्सम शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग हुआ है। धरनीदास जी का दूसरा पद 'प्रेम प्रगास' से उद्धृत किया जाता है :—

"कि सुभ दिना आजु, सखी सुभ दीना।१।
बहुत दिनन्ह पिया बसल विदेस,
आजु सुनल निजु आवन सदेस।२।
चित्र चित्र सरिया में लिहल लिखाई,
हिरदय कवल धइली दियरा लेसाई।३।
प्रेम-पराग तहाँ धइलों बिछाई,
नख-सिख सहज सिंगार बनाई।४।
मन सेवकहि दिहु आगु चलाई,
नैन धइल दुई दुआरा बइसाई।५।
धरनी सो धनो पलु पलु अकुलाई,
बिनु पिया जीवन अकारथ जाई।६।

इसी प्रकार से धरनीदास के दोनो ग्रंथो में भोजपुरी भाषा का स्वरूप हमें देखने को मिलता है।[1]

लक्ष्मी सखी: लक्ष्मी सखी का पूरा नाम बाबा लक्ष्मीदास जी था परन्तु ये "लक्ष्मी सखी" के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं। ये भोजपुरी भाषा के एक प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। इनका जन्म बिहार प्रान्त के सारन जिले के अमनौर नामक गाँव में हुआ था। इनका आविर्भावकाल १९वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। जैसा कि इनके नाम से विदित होता है ये सखी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनके पिता का नाम मुन्शी जगमोहन दास था। इनके जीवन वृत्त के संबध में विशेष कुछ भी ज्ञात नही है। लक्ष्मी सखी ने अपना परिचय एक स्थान पर इस प्रकार दिया है जिससे इनके जीवन वृत्त पर कुछ प्रकाश पड़ता है[2] :—

"सुनु सखी सुनहु कहब कुछ अऊर।
सारन जिला तखत अमनऊर।१।
कायथ बनस में जनमेऊ बऊर।

१. दुर्गाशंकर सिंह : भो० लो० गी० पृ० १-१०
२. अमर सीढ़ी—भूमिका पृ० १०

राम, लखन फल फरिगइले दोऊर। २।
जन्म भूमि धबो पुजली गऊर।
मीलि गइले सतगुरु माथे चढल मऊर। ३।
जीयते मरि गइली लउकल ठऊर।
सन्त समाज में चलि गइली दऊर। ४।
सतगुरु दिहले ग्यान के लऊर।
झटपट मरली मैं माछर मऊर। ५।
पाकल ब्रह्म अगिनि कर भऊर।
खइलो मैं साधु सन्त मिलि अऊर। ६।
मौजे 'टेरुआ' में अइलो दऊर।
मीलि जुलि भगत बनावल ठऊर। ७।
'लछमि सखि' के सुन्दर पियवा।
आरे तुम लगि मेरी दऊर। ८।"

इस वर्णन से ज्ञात होता है कि ये कायस्थ कुल में उत्पन्न हुए थे। इनका जीवन बडा ही सात्विक था। अपने जीवन की गोधूलि में इन्होने ससार से नाता तोड भगवान् से सबध जोड लिया था। बाल बच्चो से मुख मोड, कामिनी और काचन को छोड, अपने गाँव अमनौर से थोडी दूरी पर 'टेरुआ' में एक आश्रम बनाया था जिसमें ये सदा रहा करते थे। जीवन के अन्तिम दिनो में ये भजन बना कर तथा गाकर अपना समय बिताया करते थे। इन्होने प्रधानतया चार ग्रन्थो की रचना की है जिनके नाम ये हैं —१ अमर सीढी, २ अमर कहानी, ३ अमर विलास, ४ अमर फरास। इनमें से प्रथम दो पुस्तको के देखने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है परन्तु अन्तिम दो पुस्तकें बहुत प्रयत्न करने पर भी देखने को न मिल सकी।

लक्ष्मी सखी का सबसे बडा, प्रधान तथा प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अमर सीढी' है जो इनके अन्य ग्रन्थो से परिमाण में भी अधिक है। इस ग्रन्थ में ३६० पृष्ठ हैं। इसमें भगवद्भक्ति के पद हैं। भिन्न-भिन्न रागो में भजन गाये गये हैं। कबीर की भाँति इनके पदो में कही तो योग-साधना का उल्लेख मिलता है तो कहीं रहस्य-वाद की बाँकी झाँकी उपलब्ध होती है। रहस्यमयी यह उक्ति सुनिये[1]:—

"सखी तोरे पियवा देइ गइले एगो पतिया।
बारहु दियवा जुडाइ लेहु हियवा,
समुझि समुझि के बतिया। १।

[1] अमर सीढी।

इहावाँ ना केहू साथी ना सघतिया,
कामिनी कत तोरे जोहत बटिया । २ ।
सोने के खाटी रूपे के पटिया ।
करु मजन चलु त्रिकुटी के घटिया । ३ ।
ओहि रे घाट पर सुन्दर पियवा,
निरखत रहु दिन रतिया । ४ ।
'लछमी सखी' के सुन्दर पियवा,
सूत रहू लगाई के छतिया । ५ ।"

इस पद में ईश्वर को पति मानकर उसके साथ प्रेम करने की व्यजना कितनी मधुर बन पडी है। लक्ष्मी सखी "सखो सम्प्रदाय" के अनुयायी थ जिसमें परमात्मा को पति और आत्मा को स्त्री मानकर प्रेम किया जाता है। उपर्युक्त पद में इसी प्रेम-पद्धति का सकेत किया गया है।

लक्ष्मी सखी का दूसरा ग्रन्थ "अमर कहानी" है। इसमें भी विद्यापति का अनुकरण कर भक्ति के पद गाये गये हैं। झूमरा, विवाह, गारी और कजली इनके अन्य छोटे ग्रन्थ हैं। इनके शिष्य कामता सखी ने 'छुट्टा दोहा' नामक ग्रन्थ लिखा है। इन सभी ग्रन्थों का इनके शिष्य महेशप्रसाद वर्मा ने सन् १९१२ ई० में छपरा से प्रकाशित किया था।

लक्ष्मी सखी की कविता बडी ही सुन्दर, सरस, मधुर और हृदयस्पर्शी है। भोजपुरी की शुद्ध मिठास इसमें पाई जाती है। ये परम भक्त कवि थे और प्रेम मार्ग के अनुयायी थे। अत इनकी कविता में प्रेम का पुट मिलना स्वाभाविक ही है। नीचे की इस सरस कविता का आस्वादन कीजिये —

"मने मने करीले गुनावनि हो पिया परम कठोर,
पाहुनो पसीजि पसीजि के हो बहि चलत हिलोर । १ ।
जे उठत विषय लहरिया हो, छने छने में घघोर,
तनिको ना करलि नजरिया हो, चितवत मोरे ओर । २ ।
भावे घरे, आगन ना सेजरिया हो, नाहि लहर पटोर,
बैजन कवनो तरकरिया हो, जइसे माहुर घोर । ३ ।
तलफीलें आठो पहरिया हो, गति मति भइली भोर,
केहु ना चोन्हेला अजरिया हो, बिनु अवध किसोर । ४ ।
कइसे सहो बारी रे उमिरिया हो, दुख सहस कठोर,
'लछमी सखी' मोरा नाहि भावेला हो, पय भात परोर । ५ ।

इस गीत में शब्दों का माधुर्य जितना लुभावना है, भावों का चमत्कार भी

उसी प्रकार श्लाघनीय है। यह गीत क्या है करुण रस का कलश है। 'पाहनो पसीजि पसीजि के हो बहि चलत हिलोर' इस एक पद में प्रेम का समुद्र हिलारें मार रहा है। 'तनिको ना कनखि नजरिया हो चितवत मारे ओर' में कितनी करुणा और विवशता सिमटी पडी है। प्रियतम इतना कठोर है कि 'दृष्टिदान' की बात तो दूर रही वह आँख के कोने से भी नही देखता। 'तलफीले आठो पहरिया हो' में गूढ़ भाव भरा पडा है। संस्कृत शब्दो के सरस प्रयोग के द्वारा भोजपुरी की खालिस मिठास के साथ हमें संस्कृत की मधुर चाँदनी भी चखने को मिलती है। इस प्रकार यह कविता बडी सरस और मधुर बन पडी है।

लक्ष्मी सखी की कविता रहस्यवाद की ओर उन्मुख हुई है। इसमें सच्चे रहस्यवाद की झांकी हमें देखने का मिलती है। भगवान् को प्रियतम मान कर यह रूपक बांधा गया है[1] :—

"सुनि सुनि पिया के सनेस हमरो जियरा ललचे ना,
टपर टपर गिरे लोर सखिया चलते चलते ना। १।
काहे जे ओगुन भईल बहुत गलते गलते ना,
तेहि से चले के हाथ सखिया मलते मलते ना। २।
पिया बिना जिअवा हमरो हियवा कलपे ना,
जेकर तेज प्रताप घट घट नूर झलके ना। ३।
बेरि बेरि हेरीले बाट सखिया पलके पलके ना,
करि मजन असनान सरजू जल जल जलके ना। ४।
राजा जनक के बेटि हम त दोसरा खलके ना,
'लक्ष्मी सखी' पिया घरबो बहियाँ छोरबो बलके ना। ५।"

नीचे के इस चौमासे में इसी तत्त्व का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है —

"झमर झमर उजे बरसेला मेघवा, गगन घटा घनघोर हे।
खोलिले हे सखि कपट केवरिया, अपने जे होला अँजोर हे। १।
खासा खसम पिआ लोटेला सुन्दर, माया मोर भागेला चोर हे।
बारी वयस मोरा घरे रहु पिअउ, मिनतो करीले करजोर हे। २।
सकल भुवन कर करता धरता, जो कुछ करिए से थोर हे।
अपने सुजान पिआ का समुझाओ, मैं अबला मतिभोर हे। ३।
'लछमी सखी' के सुन्दर पिअवा पुरुष दुमुज किसार हे।
भजब त भजिले आपन पिअवा, नात होखेला हाथी से घोर हे"। ४।

---

१. लक्ष्मी सखी : अमर सीढी।

(ग) यूरोपियनों द्वारा लोक-गीतों का संग्रह

भोजपुरी लोक-गीतों के संग्रह तथा सम्पादन की ओर आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व यूरोपीय विद्वानों का ध्यान सर्व प्रथम आकर्षित हुआ। इन विद्वानों ने इन लोक-गीतों का महत्व समझा और इनका संग्रह कर वैज्ञानिक पद्धति से सम्पादन किया। इनके द्वारा किया गया संग्रह आज भी हमारे लिये पथ-प्रदर्शन का काम करता है।

जिन यूरोपीय विद्वानों ने भोजपुरी लोक-गीतों का संग्रह तथा प्रकाशन किया है उनमें डाक्टर सर जी० ए० ग्रियर्सन का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन्होंने भारतीय तथा यूरोपीय अनुसंधान संबंधी अनेक पत्रिकाओं में भोजपुरी गीतों को प्रकाशित किया। ग्रियर्सन के अतिरिक्त विलियम क्रुक, ग्राउस, इरविन और फ्रेजर आदि सज्जनों ने भी लोक-गीतों का संग्रह किया है। इन यूरोपीय विद्वानों ने लोक गीतों का संग्रह कर कोई स्वतन्त्र पुस्तक नहीं छपवाई है बल्कि इनके लेख प्राचीन शोध संबंधी विभिन्न पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं जिनका मिलना भी अब कठिन हो रहा है।

डाक्टर ग्रियर्सन ने रायल एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में कुछ 'बिहारी लोक गीतों' का संग्रह प्रकाशित किया है।[1] ये गीत बिहार प्रान्त के आरा और पटना जिलों से संग्रहीत हैं। अतः प्रधानतया ये भोजपुरी के ही गीत हैं। इनमें से कुछ गीतों में मगही का भी पुट दीख पड़ता है परन्तु उनकी आत्मा भोजपुरी ही है। इस लेख के प्रारम्भ में बिहार की तीन प्रधान बोलियों मगही, मैथिली और भोजपुरी का थोड़ा विवेचन किया गया है। पश्चात् सोहर, जतसार, झूमर आदि के गीत दिये गये हैं। इन गीतों का अंग्रेजी में अनुवाद भी दिया गया है।

डाक्टर सर जी० ए० ग्रियर्सन

ग्रियर्सन का दूसरा लेख इसी पत्रिका में 'भोजपुरी लोक गीत' के नाम से प्रकाशित हुआ है।[2] लेख के प्रारम्भिक आठ पृष्ठों में लेखक ने भोजपुरी भाषा की विशेषता, उसका साहित्य तथा संग्रहीत गीतों के छन्द आदि विषय पर सुन्दर प्रकाश डाला है।[3] इस लेख में कुल मिला कर ४६ गीतों का संग्रह किया गया

१ जे० आर० ए० एस० खण्ड १६ (१८८४) पेज १६६
सम बिहारी फोक सौन्गस।

२ जे० आर० ए० एस० खण्ड १८ (१८८६) पृ० २०७
सम भोजपुरी फोक सौन्गस।

३ वही पृ० २०७—२१४

है जिनमें केवल बिरहों की ही सख्या ४२ है। इसके पश्चात् घाटो या चैता और जतसार के भी गीत हैं। जहाँ तक हमें ज्ञात है भोजपुरी गीतो का यह सर्वप्रथम सग्रह है। इस लेख में गीतो का अग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है परन्तु इसकी सबसे बडी विशेषता टिप्पणियाँ हैं। ग्रियर्सन ने गीतो में आये हुए प्राय प्रत्येक शब्द की उत्पत्ति, उनका विभिन्न अर्थ रूप निर्माण और गीतो के प्रस ग को लिखकर इस लेख के महत्त्व को बहुत अधिक बढा दिया है। स्थान-स्थान पर ऐतिहासिक तथा भौगोलिक टिप्पणियाँ भी दी गई हैं जिनसे गीतों को समझने में बडी आसानी होती है। इन पक्तियो के लेखक ने अपनी 'भोजपुरी लोक-गीत' भाग २ में लगभग सौ पृष्ठो की जो टिप्पणियाँ लिखी हैं उसमें ग्रियर्सन की इन टिप्पणियो से बडी सहायता ली गई है।

डा० ग्रियर्सन ने बगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में 'विजयमल' के गीत को प्रकाशित किया है।[1] लेख के प्रारम्भ में विजयमल की अति सक्षिप्त कथा और इसके सग्रह-क्षेत्र का भी उल्लेख किया गया है। यह गीत बिहार के शाहाबाद जिले से सग्रह किया गया है। विजयमल भोजपुरी भाषा का महाकाव्य है जो ११३८ पक्तियों में समाप्त हुआ है। विद्वान् लेखक ने इस समस्त गीत का अग्रेजी में अनुवाद भी किया है और स्थान, स्थान पर पाद टिप्पणियाँ भी दी हैं जो बडी महत्त्वपूर्ण हैं। विजयमल का इतना प्रामाणिक सस्करण अभी तक प्रकाशित नही हुआ है। दूधनाथ प्रेस, कलकत्ते से 'कुँअर विजयी' नामक एक पुस्तक अभी प्रकाशित हुई है परन्तु इसका विशेष महत्त्व नहीं है।

उक्त पत्रिका के एक दूसरे अक में ग्रियर्सन ने 'राजा गोपीचन्द के गीत के दो विभिन्न पाठो (versions) को सग्रहीत किया है।[2] राजा गोपीचन्द की कथा बडी प्रसिद्ध है और इसका प्रचार भोजपुरी प्रदेश के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो में भी है। अत सभी प्रान्तो में गोपीचन्द के गीत विभिन्न रूपों में पाये जाते हैं। डाक्टर ग्रियर्सन ने बिहार प्रान्त के मगध प्रदेश तथा भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित इस गीत के विभिन्न पाठों को एक स्थान पर सग्रह किया है तथा इन पाठो के कथानक में जो अन्तर है उसे भी बतलाया है। गोपीचन्द के गीत की तुलनात्मक आलोचना करने वाले विद्वानों के लिये यह लेख उपयोगी ही नहीं

---

१ जे० ए० एस० बी० भाग ५३, (१८८४) खड ३ पृ० ६४, दि साग आफ विजयमल।

२ जे० ए० एस० बी० भाग ५४, (१८८५) खंड १ पृ० ६४ दू वरशन्स आफ दि सौंग आफ गोपीचन्द।

अत्यन्त आवश्यक भी है। गीत के अन्त में उसका अंग्रेजी अनुवाद और पाद टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। यह गीत गद्य-पद्यात्मक है।

इसी पत्रिका के एक अन्य अंक में डाक्टर ग्रियर्सन ने 'मानिकचन्द का गीत' शीर्षक एक लेख लिखा है।[1] यह लेख बडा विस्तृत है तथा १०४ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। मानिकचन्द राजा गोपीचन्द के पिता थे अत इस लेख में गोपीचन्द के जीवन आदि के संबध में भी प्रचुर प्रकाश डाला गया है। लेखक ने प्रारम्भिक चौदह पृष्ठों में राजा मानिकचन्द की जन्मभमि, आविर्भाव काल, कथा, गुरुपरम्परा आदि के संबध में तथा इनकी स्त्री मयनावती और पुत्र गोपीचन्द के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं। 'माणिकचन्द्र की कथा' बँगला भाषा में है जो नागरी अक्षरों में छापी गई है। गोपीचन्द से संबद्ध होने के कारण इस लेख का बडा ही महत्त्व है। इस गीत का अंग्रेजी अनुवाद और पाद टिप्पणियाँ भी दी गई हैं।

डाक्टर ग्रियर्सन ने 'इडियन एंटिक्वेरी' नामक बम्बई से प्रकाशित होने वाली शोध संबधी प्रसिद्ध पत्रिका में 'आल्हा के विवाह के गीत' को प्रकाशित किया है।[2] भोजपुरी प्रदेश में आल्हा के गीत बहुत ही प्रसिद्ध हैं तथा बडे चाव से गाये और सुने जाते हैं। लेखक ने इन्हीं गीतों को संग्रह कर प्रकाश में लाने का प्रशसनीय प्रयत्न किया है। यह गीत भी भोजपुरी महाकाव्य है जो ५५८ पंक्तियों में समाप्त हुआ है। इसमें आल्हा के केवल विवाह का ही वर्णन है। उसके प्रारंभिक जीवन का इसमें उल्लेख नहीं है। फिर भी यह संग्रह हमारे बडे काम का है। ग्रियर्सन ने लेख के प्रारम्भ में 'आल्हा के गीत' के विभिन्न पाठों का उल्लेख किया है और आल्हा की ऐतिहासिकता पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला है। इसी पत्रिका में अन्य स्थान पर लेखक ने 'आल्हा खंड' का पूर्ण कथानक संक्षेप में उपस्थित किया है[3] जिससे आल्हा के पूरे जीवन चरित को जानने में हमें बडी सहायता मिलती है। यह पूर्ण कथानक अंग्रेजी पद्य में अनूदित है। मूल गीत नहीं दिया गया है।

लन्दन की 'प्राच्य विद्या परिषद्' की पत्रिका में डाक्टर ग्रियर्सन ने—'छत्तरी

---

१ जे० ए० एस० बी० भाग ५३, (१८८४) खंड १ न० ३
दि साग आफ मानिकचन्द।

२ इण्डियन एंटि क्वेरी भाग १४, (१८८५) पृ० २०९
दि सॉग आफ आल्हाज मैरेज

३ वही, पृ० २५५
ए समरी आफ दि आल्हा खंड।

भारत का लोक साहित्य' नामक एक लेख प्रकाशित किया है जिसमें भोजपुरी भाषा के भी अनेक गीत सम्मिलित हैं।[1] इस लेख में लेखक ने उत्तरी भारत में प्रचलित तुलसीदास जी का रामचरित मानस, बिहारी की सतसई, सूरदास के पद और विद्यापति की पदावली से उदाहरण देते हुए आल्हा के सुप्रसिद्ध गीत का कुछ अंश उद्धृत किया है। साथ ही भगवती देवी का अत्यन्त प्रसिद्ध गीत और वस्ती सिंह के गीत का संग्रह किया है। 'लाइट आफ एशिया' के ख्यातनामा कवि सर एडविन आरनाल्ड कृत भगवती देवी के गीत का अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है।

डाक्टर ग्रियर्सन ने जर्मन भाषा की एक सुप्रसिद्ध पत्रिका में 'नायका बनजरवा' नामक एक लेख लिखा है।[2] जिसमें उन्होंने 'नायका' नामक किसी बनजारा या सौदागर के गीत का संग्रह किया है जो ६२६ पंक्तियों में है। यह गीत बहुत बड़ा है तथा यह भोजपुरी महाकाव्य है। यह गीत शाहाबाद जिले से संग्रहीत है। लेखक ने प्रारम्भ के सोलह पृष्ठों में इसी गीत के आधार पर भोजपुरी भाषा का संक्षिप्त व्याकरण भी दिया है जो बहुत ही उपयोगी है। इन्होंने गीत की व्याकरण संबंधी विशेषताओं पर प्रचुर प्रकाश डाला है। गीत में आये हुए कठिन शब्दों का अर्थ भी अंग्रेजी में दिया गया है। स्थान-स्थान पर टिप्पणियाँ भी हैं। भोजपुरी भाषा तथा लोकगीत के विद्वानों के लिये यह लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

फ्रेजर एक अंग्रेज सिविलियन थे जो गोरखपुर जिले के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट थे। इन्होंने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में गोरखपुर जिले में प्राप्त भोजपुरी गीतों का संग्रह प्रकाशित किया है।[3]

ह्यूज फ्रेजर

इन गीतों की कुल संख्या तेरह है जिनमें छः गीत कजली के, एक जतसार और शेष विभिन्न विषयों के गीत हैं। इन गीतों को लेखक ने सरकारी आज्ञा से गजेटियर में उपयोग करने के लिये संग्रहीत किया था परन्तु किसी कारण इन गीतों का उसमें उपयोग न हो सका। इन गीतों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया है जिसे फ्रेजर ने

---

१. बुलेटिन आफ दि स्कूल आफ ओरियन्टल स्टडीज, लन्दन।
भाग १ खंड ३ (१९२०) पृ० ८७
द्वि पापुलर लिटरेचर आफ नार्दर्न इन्डिया।

२ जे० डी० एम० जी० भाग ४३, (१८८९) पृ० ४६८
सेलेक्टेड स्पेसीमेन्स आफ दि बिहारी लैंग्वेज।

३. जे० ए० एस० बी० भाग ५२, (१८८३) पृ० १—३२
फोकलोर फ्राम ईस्टर्न गोरखपुर।

स्वय किया है । परन्तु इनका सम्पादन डाक्टर ग्रियर्सन ने किया है। ग्रियर्सन ने अपनी टिप्पणियो में भोजपुरी भाषा की विभिन्न विशेषताओ पर प्रचुर प्रकाश डाला है। साथ ही इन गीतो के छन्द पर भी विचार किया गया है।

यह भी एक सिविलियन थे । इन्होंने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में 'भोजपुरी भाषा' पर टिप्पणियाँ लिखी है ।[1] ये भोजपुरी व्याकरण के बड़े उत्कृष्ट विद्वान् थे । इनके द्वारा लिखा गया 'हिन्दी का व्याकरण' आज भी अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है । उपर्युक्त लेख में यद्यपि 'भोजपुरी बोली' के व्याकरण का ही विस्तृत विवेचन किया गया है परन्तु लेखक ने अनेक भोजपुरी गीतो को भी उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है।

जे. बीम्स

आप भी अंग्रेज सिविलियन थे । आप कुछ दिनों तक जौनपुर जिले के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे। वही आपका परिचय प० रामनरेश त्रिपाठी से हुआ और उन्ही के सम्पर्क मे सभवत आपका ध्यान भोजपुरी लोकगीतो की ओर आकृष्ट हुआ । आप हैलेटशाही शासन में गवर्नर के सलाहकार थे और अभी हाल ही में नौकरी से रिटायर हुए है ।

ए जी शिरेफ

इन्होंने "हिन्दी फोक साग्स" नामक एक पुस्तक सम्पादित की है जिसमें भोजपुरी भाषा के उन्नीस गीतो का सग्रह है ।[2] ये गीत विभिन्न प्रकार के है जिनमें सोहर और जतसार के गीतो की अधिकता है । इन गीतो का अंग्रेजी में पद्यात्मक अनुवाद भी उपस्थित किया गया है । इस पुस्तक में जो गीत सग्रहीत हैं उनमें से प्राय सभी प० रामनरेश त्रिपाठी की कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत) से लिये गये हैं ।

(घ) लोक गीतों के आधुनिक संग्रह

किसी देश की वास्तविक सस्कृति जानने के लिये वहाँ के लोक-गीतो का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। पाश्चात्य देशों में लोक-गीतो की रक्षा पर बड़ा ध्यान दिया जाता है। वहाँ 'फोकलोर सोसाइटी' स्थापित है जो गाँव गाँव में योग्य विद्वानो को भेजकर स्थानीय लोक गीतो का सग्रह कराकर प्रकाशित करती हैं । बिशप पर्सी तथा प्रोफेसर चाइल्ड ने इगलैण्ड के लोक-गीतो का बडा प्रामा-

---

१. जे० ए० एस० बी० भाग ३, एन० एस० (१८६८) पृ० ४८३
नोट्स आन दि भोजपुरी डायलेक्ट आफ हिन्दी स्पोकेन इन वेस्टर्न बिहार ।

२ हिन्दी फोक साग्स ।
हिन्दी मदिर, इलाहाबाद, १९३६

णिक सग्रह किया है और उन्हें वैज्ञानिक रीति से सम्पादित किया है। परन्तु इस देश में लोक-गीतों के संरक्षण की ओर अभी ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। गत शताब्दी में सर्वप्रथम ग्रियर्सन आदि अंग्रेज विद्वानों का ध्यान इस दिशा की ओर आकर्षित हुआ था और उन्होंने इन गीत-रत्नों का सग्रह तथा प्रकाशन किया था जिसका उल्लेख गत पृष्ठों में किया जा चुका है।

लोक गीतों के सग्रह का सर्वप्रथम उद्योग प० रामनरेश त्रिपाठी ने किया। त्रिपाठी जी का यह कार्य अनेक दृष्टियों से मौलिक और महत्वपूर्ण है। उन्होंने गीतों का सग्रह कर न केवल हमारी सस्कृति की रक्षा की है प्रत्युत सभ्य समाज का ध्यान भी इन देहातों तथा उपेक्षित गीतों की ओर आकर्षित किया है। त्रिपाठी जी ने समस्त भारत की यात्रा कर, अपने समय, स्वास्थ्य और द्रव्य का प्रचुर व्यय कर कई हजार गीतों को एकत्रित किया है जिसका एक भाग उन्होंने अपनी कविता कौमुदी के भाग ५-में 'ग्राम गीत' के नाम से प्रकाशित किया है।[1]

इस पुस्तक में सोहर, जनेऊ, विवाह, जात, सावन, निरवाही, हिंडोला, कोल्हू, मेला और बारहमासा इन दस प्रकार के गीतों का सग्रह है। पुस्तक के प्रारम्भ में त्रिपाठी जी ने १३८ पृष्ठों की 'ग्राम गीतों का परिचय' नाम से एक महत्वपूर्ण वृहत् भूमिका लिखी है जिसमें लोक-गीत संबंधी अनेक आवश्यक बातों का विस्तृत विवेचन किया गया है। लोक गीतों के रचयिता, इनका रचना काल, कवित्व, ऐतिहासिकता आदि विषयों का बड़ा ही सुन्दर विवेचन हुआ है। इन गीतों में निहित सस्कृति और सभ्यता के ऊपर प्रकाश डाला गया है। त्रिपाठी जी ने इस भूमिका में कुछ ऐसे शब्दों का सग्रह किया है जिनका प्रयोग हिन्दी में नहीं होता परन्तु जिनका ग्रहण हिन्दी की उन्नति के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

कविता कौमुदी

त्रिपाठी जी ने अपने विस्तृत सग्रह में से चुने हुए गीतों को ही इस पुस्तक में स्थान दिया है। अतः जो गीत यहाँ प्रकाशित हैं वे बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। विद्वान् सग्रहकर्ता ने उत्तर प्रदेश और बिहार प्रान्त में हिन्दी की विभिन्न बोलियों,-खड़ी बोली, ब्रज भाषा, अवधी, भोजपुरी, और बैसवाड़ी-में गाये जाने वाले गीतों का सग्रह कर अपनी व्याख्या के साथ इन गीतों का सम्पादन किया है। चूंकि इन गीतों के सग्रह का क्षेत्र प्रधान रूप से उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग और बिहार का पश्चिमी भाग रहा है अत. इस पुस्तक में भोजपुरी गीतों की सख्या प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। किसी एक विशिष्ट बोली के गीतों का सग्रह न होने के कारण त्रिपाठी जी की यह पुस्तक प्रकीर्ण सकलन है। इसलिए भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इस पुस्तक का

१. हिन्दी मन्दिर, प्रेस, प्रयाग सन् १९२९ में प्रकाशित।

विशेष मूल्य नहीं है। यदि हिन्दी की किसी एक बोली का शास्त्रीय अध्ययन हम इन गीतों के द्वारा करना चाहें तो हमें निराश ही होना पड़ेगा। लोक गीतों के संग्रह में त्रिपाठी जी की यह कृति हमारे लिए पथ-प्रदर्शक का काम करती है। इस पुस्तक में कुछ बड़े ही सुन्दर तथा मर्म-स्पर्शी गीतों का संकलन किया गया है।

सोहर

यह पुस्तक प० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संग्रहीत और प्रकाशित की गई है।[1] इसमें पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का-जिन्हें सोहर कहते हैं,-संग्रह है। इस पुस्तक में कुछ गीत तो कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत) में प्रकाशित गीतों से लिए गए हैं और कुछ नूतन भी हैं। साधारण जनता में लोक गीतों का प्रचार हो इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर यह सस्ती, छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित की गई है। सम्भवत सोहरों का इतना अधिक संग्रह अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। अच्छा होता यदि त्रिपाठी जी इस सोहर के समान जतसार, बारहमासा, कजली, चैता, होली आदि गीतों की भी छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित करते जिससे जनसाधारण के लिये सस्ते दामों में ये पुस्तकें उपलब्ध हो सकतीं।

हमारा ग्राम साहित्य

इस पुस्तक के भी संग्रहकर्त्ता और सम्पादक प० राम नरेश त्रिपाठी ही हैं।[2] इस पुस्तक की रचना का कारण और उद्देश्य को बतलाते हुए विद्वान् लेखक ने अपनी भूमिका में लिखा है[3] कि "यह पुस्तक युक्तप्रान्त के शिक्षा विभाग के सेक्रेटरी श्रीयुत् एन० सी० मेहता आई० सी० एस० की प्रेरणा और एजुकेशन एक्सपैन्शन अफसर श्रीयुत् श्रीनारायण चतुर्वेदी के पत्र न० ४५ ता० २२ जून, १९३९ के अनुसार प्रस्तुत की जा रही है। इससे इस सूबे के ग्राम साहित्य की एक रूप-रेखा तैयार कर दी गई है जिसमें उसके स्वरूप और उसकी उपयोगिता की साधारण जानकारी पाठकों को हो जायगी।" उपर्युक्त उद्धरण से इस पुस्तक के लिखने का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। त्रिपाठी जी ने प्रारम्भ के ५६ पृष्ठों में जो 'ग्राम-साहित्य का संक्षिप्त परिचय' दिया है वह बड़ा उपयोगी है। इस परिचय में उन्होंने ग्राम-साहित्य की महत्ता का बड़ी सुन्दर रीति से प्रतिपादन किया है। देहाती कहावतों, मुहावरों, कहानियों तथा जातीय गीत एवं नृत्य पर प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ में विविध प्रकार के गीतों के सकलन हैं जिनमें सोहर, अन्नप्राशन, मुंडन, जनेऊ, विवाह, चक्की, खेत, कोल्हू आदि के गीत हैं। विभिन्न जातियों

१ हिन्दी मन्दिर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित।

२. प्रकाशक हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, १९४० ई०। मूल्य २ रुपया।

३ हमारा ग्राम साहित्य भूमिका पृ० ३।

द्वारा गाये जाने वाले गीतो का भी सकलन है जिनमें मुख्य अहीर, कहाँर, तेली, गडेरिया, धोबी, चमार आदि के गीत हैं। इनके अतिरिक्त घाघ भड्डरी की कहावतें, खेती के विषय में प्रचलित कहावतें तथा निरोग रहने के चुटकुले भी दिये गये हैं। इन गीतों में भोजपुरी गीतो की सख्या अधिकता से पाई जाती है। यह पुस्तक क्या है देहाती साहित्य का ज्ञानकोष है।

इस ग्रथ का सग्रह और सम्पादन डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने किया है।[1] भोजपुरी लोक गीतो के सग्रह की यह सबसे प्रथम तथा मौलिक रचना है। इस पुस्तक में सग्रहीत गीतों का सग्रह लेखक ने बडे परिश्रम से, भोजपुरी प्रदेश के गाँव गाँव में घूम कर किया है। प्रत्येक गीत के सग्रह की अपनी राम कहानी है। पुस्तक के प्रारम्भ में प० बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य, प्रोफेसर, हिन्दू विश्व विद्यालय, बनारस, ने सौ पृष्ठों की अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखी है। इस भूमिका में भोजपुरी भाषा और साहित्य पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है तथा लोक गीतो की पाश्चात्य और भारतीय परम्परा, उनका महत्व, उनके गाने के प्रकार एव गीतों के ऐतिहासिक तथा भौगोलिक आधार का सम्यक् रीति से विवेचन किया गया है। अन्त में लोक गीतो में अलकार और रस का परिपाक दिखला कर 'बिरहा की बहार' का आनन्द पाठकों को दिया गया है।

भोजपुरी लोक गीत (प्रथम भाग)

इस सग्रह में कुल २७१ गीतों का सकलन किया गया है। ये गीत सस्कार और ऋतु क्रम से निम्नाकित पन्द्रह भागों में विभक्त हैं —सोहर, खेलवना, जनेऊ, विवाह, वैवाहिक परिहास, गवना, जात, छठी माता, शीतला माता, झूमर, बारहमासा कजली, चैता, बिरहा और भजन। पुस्तक का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से किया गया है। प्रत्येक गीत का प्रसग या सदर्भ पहले लिखा गया है जिससे पाठको को गीत समझने में सरलता हो। पुन गीत लिखकर उसके प्रत्येक कठिन शब्द का अर्थ पाद टिप्पणियो में दिया गया है। गीत की प्रत्येक पक्ति का अर्थ खडी बोली में प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के अन्त में २४ पृष्ठों में भोजपुरी शब्दकोष है। इस प्रकार भोजपुरी गीतों का यह सर्व प्रथम वैज्ञानिक सग्रह है।

इस पुस्तक का भी सग्रह और सम्पादन डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने किया है।[2] इसकी भूमिका हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस के तत्कालीन वाइस चान्सलर

---

१ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग स० २००० द्वारा प्रकाशित, मूल्य ५ रुपया।

२ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग स० २००५ द्वारा प्रकाशित, मूल्य ११ रुपया।

डाक्टर अमरनाथ झा ने लिखी है। अपनी भूमिका में डा० झा लिखते हैं कि "उपाध्याय जी ने एक सौ पृष्ठ की टिप्पणियाँ लिख कर पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढा दी है। इससे प्रान्तान्तर के निवासियों को गीतों को समझने में सहायता मिलेगी। आशा है कि साहित्य जगत् इस पुस्तक का आदर करेगा।"[1] इस पुस्तक में पचीस प्रकार के भोजपुरी गीतों का संग्रह किया गया है जिनकी कुल संख्या ४३० है। संग्रहीत गीतों का विभाजन प्रधानतया तीन भागों में किया गया है। १ संस्कार संबंधी २ ऋतु संबंधी और ३ पर्व संबंधी गीत। निम्नलिखित प्रकार के गीत इसमें संग्रहीत हैं —सोहर, जोग, सेहला, विवाह, बहुरा, पिड़िया, गोधन, नागपंचमी, जतसार, झूमर, कजली, बारहमासा, होली, डफ, चैता, सोहनी, रोपनी, बिरहा, काहार, गोंड, पचरा, निरगुन, देशभक्ति, पूर्वी, पराती और भजन। प्रत्येक गीत के संपादन का क्रम वही है जो प्रथम भाग का है। अपने वक्तव्य में लेखक ने गीत संग्रह संबधी अपनी यात्राओं का बडा ही रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। पुस्तक के अन्त में लगभग सौ पृष्ठों की टिप्पणियाँ दी गई हैं जिसमें गीतों में आये हुए विषयों तथा शब्दों को लेकर भौगोलिक, ऐतिहासिक, भाषा-शास्त्र संबंधी विवेचन किया गया है। इस पुस्तक में भाषा-शास्त्र के विद्वानों के लिये अनुसंधान की सामग्री विद्यमान है।

भोजपुरी लोक गीत (द्वितीय भाग)

वर्तमान लेखक की यह पुस्तक राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुई है। इसमें भोजपुरी साहित्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। स्थान-स्थान पर उदाहरण के रूप में अनेक गीतों को दिया गया है।

भोजपुरी और उसका साहित्य

इस ग्रन्थ में वर्तमान लेखक ने लोक साहित्य के मौलिक सिद्धान्तों की विशद मीमांसा की है। विषय को समझाने के लिए उदाहरण रूप में अनेक भोजपुरी के गीत उद्धृत हैं।

लोकसाहित्य की भूमिका[2]

लेखक ने अपने गीत संग्रह के दौरे में कई हजार गीतों का संग्रह किया था जिनमें लगभग सात सौ चुने हुए गीतों का प्रकाशन भोजपुरी लोक गीत भाग १, २ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से हो चुका है। लेखक के संग्रह में हजारों ऐसे गीत सुरक्षित

---

१. भोजपुरी लोक गीत भाग २ भूमिका पृष्ठ ५, ६।

२. साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग।

हैं जिनका प्रकाशन अभी नहीं हुआ है। उन गीतों में भोजपुरी लोक-गाथाओं की प्रधानता है। इन गाथाओं में कुछ तो छोटे हैं जैसे भगवती देवी और कुअर सिंह, परन्तु कुछ बहुत ही लम्बे हैं जैसे विजयमल, आल्हा, नयकवा, बनजारा, सोरठी, बिहुला और ढालन के गीत। इन गीतों को भोजपुरी महाकाव्य कहें तो कुछ अनुचित न होगा। यह संग्रह अभी प्रकाशित नहीं हुआ है परन्तु आशा है कि यह शीघ्र ही प्रकाश में आ जायगा।

भोजपुरी लोक-गाथा और लोक-कथायें

इन गीतों के संग्रह के अतिरिक्त लेखक ने लोक कथाओं का भी विशाल संग्रह किया है। ये लोक कथाएँ वे ही हैं जिन्हें बड़ी दादियाँ अपने बच्चों को सुलाने के समय रात को सुनाती हैं और खेत से आये हुये थके-माँदे किसान जाड़े के दिनों में जलती हुई आग के पास बैठ कर कहा करते हैं। इन कहानियों में मनोरंजन, उपदेश, रहस्य, रोमांच और कौतुक की मात्रा विशेष रहती है। लेखक ने इन गाथाओं और कथाओं के प्रकाशन की जो बृहत् योजना तैयार की है उसका उल्लेख भोजपुरी लोक गीत भाग २ के वक्तव्य में किया गया है।[1] इनके अतिरिक्त लेखक के पास भोजपुरी मुहावरों, कथाओं, और पहेलियों आदि का भी पर्याप्त संग्रह है जिनका प्रकाशन वाञ्छनीय ही नहीं अत्यावश्यक भी है।

भोजपुरी लोक गीत में करुण रस

इस पुस्तक के संग्रहकर्ता और सम्पादक दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह हैं।[2] विद्वान सम्पादक ने बड़े परिश्रम से गीतों का संग्रह और सम्पादन किया है। इस पुस्तक में लगभग ६०० पृष्ठ हैं। इसमें करुण रस का अच्छा वर्णन है। पुस्तक के प्रारम्भ में अस्सी पृष्ठ की एक लम्बी भूमिका भी सम्पादक महोदय ने लिखी है जिसमें भोजपुरी भाषा और साहित्य के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातें दी गई हैं। भोजपुरी की व्युत्पत्ति, प्राचीनता, विस्तार, विशेषता तथा इसके साहित्य पर प्रकाश डालने का स्तुत्य प्रयत्न किया गया है। भोजपुरी गीतों में करुण रस के अतिरिक्त अन्य रसों की भी कवितायें मिलती हैं इसका सोदाहरण विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। इसमें निम्नांकित पन्द्रह प्रकार के गीतों का संग्रह किया गया है —

सोहर, जतसार, झूमर, कहरुआ, भजन, बारहमासा, अलचारी, खेलवना, विवाह, पूरबी, कजरी, रोपनी, और निराई, हिंडोले, देवी जी और मार्ग चलते समय के गीत।

---

१ देखिए पृष्ठ १७।

२. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग स० २००१ द्वारा प्रकाशित, मूल्य ६ रुपया।

उक्त पुस्तक में दो खटकने वाली बातें हैं। पहिली बात तो करुण रस के अन्तर्गत इन गीतों का चुनाव है। जो गीत इस संग्रह में आये हैं वे सभी करुण रस के हों ऐसी बात नहीं है। परन्तु सम्पादक ने क्यों इन्हें इस श्रेणी में रक्खा है यह बात समझ में नहीं आती है। दूसरी बात यह है कि गीतों का प्रसंग नहीं देने से उनका विषय समझ में नहीं आता। गीतों के कठिन शब्दों का अर्थ भी नहीं दिया गया है। दुर्गाशंकर जी के पास शृंगार रस के गीतों का वृहत् संग्रह विद्यमान है जो अभी अप्रकाशित है।

इस पुस्तक के संग्रहकर्त्ता और सम्पादक श्री डब्लू० जी० आर्चर आइ० सी० एस० और श्री संकठा प्रसाद हैं[1]। डब्ल० जी० आर्चर का नाम लोक गीतों के क्षेत्र में बड़ा प्रसिद्ध है। ये एक सुयोग्य तथा अनुभवी शासक ही नहीं थे बल्कि लोक गीतों के उत्साही संग्रहकर्त्ता और मर्मज्ञ भी थे। इन्होंने छोटा नागपुर, बिहार की विभिन्न जातियों के लोक गीतों का संग्रह कर प्रकाशन किया है जिसका एक भाग हमारे सामने प्रस्तुत है। इस पुस्तक का नाम 'लील खो रस्रा खे खेल' है जो छोटा नागपुर में रहने वाली उराव नामक जंगली जाति के गीतों का संग्रह है। इनकी दूसरी पुस्तक ब्ल्यू-ग्रोम के नाम से प्रसिद्ध है जो आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से निकली है। ये सज्जन रांची में कमिश्नर थे जहाँ इन्होंने उपर्युक्त गीतों का संग्रह किया।

भोजपुरी ग्राम्य गीत

हमारा संबंध इनकी 'भोजपुरी ग्राम्य-गीत' नामक पुस्तक से ही है। कुछ वर्ष पूर्व आर्चर ने बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना की पत्रिका के विभिन्न अंकों में भोजपुरी गीतों का प्रकाशन किया था। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं गीतों का संग्रह है। इसमें समस्त गीतों की संख्या ३७७ है। ये गीत बिहार प्रान्त के शाहाबाद जिले के कायस्थ परिवार से संग्रह किये गये हैं। इनका संग्रह काल १६३६-४१ ई० है। इस पुस्तक में पचीस प्रकार के गीतों का संग्रह किया गया है जिनके नाम ये हैं — सगुन, तिलक, शिवविवाह, प्रात काली, हलदी, सेहला, जोग, टोना, विवाह, मंगल, साहाग, परीछन, कोहबर, जेवनार, ग्रवटौनी, झूमर, टापा सोहर, मुंडन चैता, माता के गीत, कजरी, बरसाती, जतसार, रोपनी और मोहनी के गीत। इस संग्रह की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि न तो इसमें गीतों का अर्थ ही दिया गया है और न कठिन शब्दों की व्याख्या ही।

---

१ बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना १६४३ ई० से प्रकाशित और पटना ला प्रेस, पटना से मुद्रित। मूल्य ४ रुपया।

इस पुस्तक के लेखक श्री देवेन्द्र सत्यार्थी हैं[1]। लोक गीतों के क्षेत्र में काम करनेवाला शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो सत्यार्थी जी के नाम और व्यक्तित्व से परिचित न हो। इन्होंने भारत के प्रत्येक प्रान्त में घूम-घम कर विभिन्न भाषाओं के गीतों का प्रचुर सग्रह किया है। सत्य तो यह है कि सत्यार्थी जी ने अपने अमूल्य जीवन को ही इन लोक-गीतों के सग्रह में लगा दिया है। उन्होंने लोक-गीतों के सबध में अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें "धरती गाती है" और 'गाये जा हिन्दुस्तान' मुख्य है।

धरती गाती है

"धरती गाती है' नामक पुस्तक में सत्यार्थी जी ने विभिन्न भाषाओं के गीतों का सग्रह किया है। ये सग्रह किसी विशेष क्रम के आधार पर नहीं किए गये हैं बल्कि लेखक को जो भी गीत सुन्दर जान पडा उसी का सग्रह कर लिया है। इस पुस्तक में भोजपुरी के भी कुछ गाने दिए गए हैं जिनमें सोहर का एक गीत बडा ही सुन्दर है।

इस पुस्तक में गीतों की स्वतन्त्र व्याख्या बडी सुन्दर रीति से की गई है। यद्यपि गीतों की सख्या इसमें अधिक नहीं है परन्तु जो गीत हैं वे बडे महत्वपूर्ण हैं। "रेलवा न बैरी जहजिया ना बैरी" वाला अध्याय बडी मार्मिकता से लिखा गया है।

बेला फूले आधी रात

इसके भी लेखक श्री देवेन्द्र सत्यार्थी हैं।[2] इस पुस्तक में विभिन्न भाषाओं के गीतों का सग्रह है। 'बेला फूले आधी रात' वाले अध्याय में अनेक भोजपुरी गीतों का सग्रह किया गया है जिनमें बेला के फलने का वर्णन पाया जाता है।

धरती के गीत

यह हिन्दी की विभिन्न बोलियों में रचे गए गीतों का सग्रह है।[3] प्रस्तुत पुस्तक बम्बई के कम्युनिस्टों का प्रकाशन है जिसके द्वारा जनता में विद्रोह की भावना भरने का प्रयत्न किया गया है। खडी बोली, अवधी और ब्रजभाषा के गीतों के अतिरिक्त इसमें भोजपुरी के भी कुछ गीत हैं जिनमें दो की रचना राहुल जी ने की है। ये गीत किसानों की समस्या से सबध रखते है।

ङ : आधुनिक कविगण

भोजपुरी साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले सज्जनों में चौथी श्रेणी उन लोगों

---

१ राजकमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली सन् १९४८ से प्रकाशित। मूल्य १० रु०

२. राजकमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

३. बम्बई की कम्युनिस्ट पार्टी के द्वारा प्रकाशित।

की है जिन्होंने जनमत की उपेक्षा की अपेक्षा न कर, अपनी मातृभाषा की साहित्य वृद्धि में ही अपना जीवन खपा दिया। इन्होंने ग्रामीण गीतो की रचना कर अपने साहित्य की वृद्धि करना ही अपना एक मात्र लक्ष्य बनाया है और प्रतिष्ठा, धन तथा यश की प्राप्ति से विमुख हो अपनी काव्य-साधना में जुटे हुए हैं। इन आदरणीय कवियो में से कुछ तो पचतत्व में विलीन हो गये है और कुछ अभी जीवित है। इन जीवित कवियो में से कुछ की कविताएँ अभी तक प्रकाश में नही आ सकी है। गुदड़ी में लाल की भाँति ये अनमोल काव्य-रत्न इन कवियो की हस्तलिखित प्रतियो में सुरक्षित और सुशोभित हो रहे हैं। इनका विवरण नीचे की पक्तियो में दिया जाता है।

भोजपुरी के वर्तमान कवियो में बिसराम का महत्वपूर्ण स्थान है[1]। भोजपुरी के इस जन कवि ने अनपढ होने पर भी सरस तथा भावपूर्ण पद्य लिखे हैं जो किसी भी सभ्य देश के साहित्य में गौरव का स्थान प्राप्त कर सकते हैं।

बिसराम

बिसराम का जन्म आजमगढ नगर से कुछ दूर सिरामपुर नामक गाँव में एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। यह गाँव टोन्स नदी के किनारे बसा हुआ है जिसका प्राचीन नाम तमसा था। बिसराम के माता पिता ने इसे स्कूल में पढाने का बड़ा प्रयत्न किया परन्तु बिसराम का मन देहात की पाठशाला में न लगा। वह प्रकृति की पाठशाला में पढने लगा। युवा होने पर कवि का विवाह हुआ परन्तु वह पारिवारिक सुख अधिक दिनो तक न भोग सका। कुछ ही दिनो के पश्चात् उसकी प्रियतमा ने पचतत्व को प्राप्त किया। अपनी प्राणप्रिया के अकाल काल-कलवित होने स कवि के भावुक हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा और उसका आन्तरिक शोक श्लोक-विरहा-के रूप में प्रकट हुआ। शोक श्लोकत्वमागत।

बिसराम ने अपनी विरह वेदना को बिरहो के माध्यम से व्यक्त किया है। बिरहा भोजपुरी के कवियो का छन्द है। बिसराम के केवल पचास बिरहों का अब तक पता चला है। परन्तु केवल ये ही बिरहे इस कवि की प्रतिभा, काव्य कुशलता, प्रकृति निरीक्षण और भाव-चित्रण के अनुपम नमूने हैं। इसकी रचना में कोरी शाब्दिक कलाबाजी न होकर हृदय की वेदना की तीव्र अनुभति है।

पत्नी का शव श्मशान जाते देखकर कवि की जो मनोदशा हुई थी उसका

---

१ यह प्रतिभाशाली कवि अज्ञात दशा में पड़ा हुआ था। इसकी कीर्ति को प्रकाश में लाने का श्रेय बाबू परमेश्वरी दयाल गुप्त को है।

वर्णन इन शब्दों में कितना सुन्दर हुआ है'[1]—

"आजु मोरी घरनी निकरली मोरे घर से,
मोरा फाटि गयल आल्हर करेज।
'राम नाम सत' हो सुनि मैं गइलो बउराई।
कवन रछसवा गइलें रानी के हो खाई।
सुखि गइले आँसू नाही खुलेलें जवनियाँ।
कइस के निकुरों मैं त दुखिया बचनियाँ।"

कवि कहता है कि मेरी पत्नी आज घर से निकल गई। उसके जाने से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। कौन सा राक्षस मेरी प्रियतमा को उठा ले गया है। प्रिया के वियोग में आज मेरे मुह से शब्द नही निकल रहे हैं। मेरे आँसू सूख गये हैं और जबान बन्द है। अत हृदय के भाव कैसे व्यक्त करूँ। अपनी प्राणप्यारी वस्तु के खो जाने पर मनुष्य की कैसी दशा होती है इसका कितना सुन्दर चित्रण किया गया है।

पत्नी के वियोग से सतप्त बिसराम को देखकर घरवालो ने उससे दूसरा विवाह करने के लिये कहा परन्तु अपनी प्रियतमा के प्रेम में तल्लीन कवि के लिये यह बात असह्य हो गई और वह पुकार उठा —

"तूहूँ हवे काम तिलकी में लेबे दाम,
हमरी दूसरी नियतिया हई तात।
जनम गवउवे उनके नऊवा हम रटि-रटि,
दादा न हो करबे दूसरी के बात।"[1]

इस गीत की तीसरी पक्ति में कितनी वेदना भरी पड़ी है। प्रेम का स्वरूप अखंड है, अविभाज्य है, इस तथ्य का निरूपण कवि ने उपर्युक्त विरहे में किया है।

कवि को रात दिन अपनी प्रियतमा की चिन्ता बनी रहती है। उसे प्रकृति में भी सर्वत्र उदासीनता दीख पड़ती है। एक समय रात में एक कौवे को अकेला बैठा देखकर कवि उसे समानधर्मा समझ कर कह उठता है कि—

तोरे जोड़वा के कौवनो मरले चिबिल्ला कउवा,
मोरे जोड़वा के मरले राम।
उनके मनवा छन भरवा बहलले कउवा,
हमनी के तड़पे नित प्रान।

१. परमेश्वरी दयालु गुप्त —भोजपुरी का जनकवि बिसराम.—'समाज' ३ जून १९४८ पृ० ११

बिसराम क्षणभर के लिये भी अपनी प्रियतमा को नहीं भुला सकता। क्या दिन और क्या रात, क्या गर्मी और क्या जाड़ा, सभी काल और सभी ऋतुओं में उसे अपनी प्राणप्यारी की स्मृति जागती रहती है। माघ के महीने में शीत का उल्लेख करता हुआ कवि कहता है कि :—

हथवा के साथे मोरा मनवा ठिठुरले,
हम होइ गइली है उकठल काठ।

अर्थात् जाड़े के मारे हाथ के साथ मेरा मन भी ठिठुर गया है। मेरे मन में उल्लास नहीं है और मैं ठूठ—पत्रहीन—वृक्ष की तरह हो गया हूँ। अर्थात् जिस प्रकार स्थाणु का कुछ महत्व नहीं होता उसी प्रकार प्रिया से विरहित मेरे जीवन का कुछ मूल्य नहीं है। इन शब्दों में कितनी मानसिक वेदना छिपी हुई है। यह कितना कारुणिक उद्‌गार है।

कवि को सदा अपनी स्त्री की सुधि आती रहती है। वह श्मशान में पड़ी एक खोपड़ी को पड़ी देखकर पूछ बैठता है कि—

बिना अखिया के तू त हऊ मोरी रानी।
जोहनू कइसे के बिछुड़लवा के बाट।

इन शब्दों में कितनी वेदना भरी है। प्रियतमा से मिलने की उसे कितनी चाह है। पपीहे को 'पी' 'पी' कहता सुनकर कवि उसे समझाते हुए कहता है कि ऐ पपीहा, अब 'पी' के मिलने की आशा छोड़ो। वियोगी का जीवन विरह की आग में जलने के लिये ही होता है। विरह के बाद मिलन की आशा कहाँ ?

रोअल धोअत अब छोड़ऊ हो पपीहा
तनि सुनि मोरिउ लेव बात।
विरहिन के सुख नाहिं मिलत मोर भइया,
उनके जरत बितेले दिन-रात।

अन्त में कवि अपनी प्रियतमा से जीवित न सही, मरकर भी मिलने की आशा से प्रेरित होकर, अपनी प्यारी नदी तमसा से याचना करता है कि माता, मरे के बाद मेरी हड्डियों को वहीं बहाकर ले जाना जहाँ मेरी प्राणप्यारी की हड्डियों की चूर पड़ी हो :—

मोरी हड्डियन के माता उहवाँ ले जइह।
जहाँ उनको हड्डियन के रहे चूर।

कितनी मर्मस्पर्शी अन्तिम अभिलाषा है। बिसराम ने जो कुछ लिखा है वह उसकी अपनी अनुभूति है। उसके विरहे उत्कृष्ट काव्य के नमूने हैं। किसी भी साहित्य के लिये गौरव की वस्तु है।

तेग अली बनारस के रहने वाले मुसलमान थे। आपकी एकमात्र रचना 'बदमाश दर्पण' है जिसमें बनारसी बोली की झाकी हमें देखने को मिलती है।[1] आप बडे ही मस्त जीव थे। काशी के गवैयों के

तेग अली

अखाडे के आप सरदार थे। होली के दिनो में आप अपना दल लेकर घूमते थे और आशु कविता करते हुए लोगो का मनोरजन करते थे। आपकी रसाई बनारस के सभी समाज में थी। अत आपने तत्कालीन समाज का सुन्दर चित्रण इन पद्यों में किया है। सुरमा लगाने के कारण की सफाई सुनिये —

"हम उनसे पुछली, आखि में सुरमा काहे बदे लगाइला।
ऊँ हँस के कहलन, छुरी पत्थर से चटाइला।"

उपर्युक्त पद्य में कटाक्ष की छूरी से और सुरमा की पत्थर से उपमा दी गई है। हिन्दी कवियो ने इस भाव को व्यक्त किया है परन्तु तेग अली के कहने का ढग बिल्कुल नया है।

तेग अली की कविता के कुछ और उदाहरण लीजिये। इनकी भाषा कितनी सजीव, मुहावरेदार और चहकती हुई है।[2]

"हम खर मिटाव कइली हा रहिला चबाय के।
भेंवल धरल बा दूध में खाजा तोरे बदे। १।"
अत्तर तू रोज मल कर नहायल कर रजा।
बीसन भरल धयल बा कराबा तोरे बदे। २।
जानी ला आजकल में झमाझम चली रजा।
लाठी, लोहागी, खजर औ बिछुआ तोरे बदे। ३।
कासी, पराग, द्वारिका, मथुरा औ वृन्दावन।
धावल करैलें 'तेग' कन्हैया, तोरे बदे। ४।

बाबू रामकृष्ण वर्मा काशी के ही निवासी थे। ये बडे ही साहित्यिक जीव थे। सरसता तथा मधुरता उनके जीवन में कूट कूट कर भरी थी। यही कारण है कि इनकी कविता में भी ये गुण विशेष रूप से पाये जाते हैं।

बाबू रामकृष्ण वर्मा

इन्होने 'बिरहा नायिका भेद' नामक पुस्तक लिखी है जो अल्पकाय होने पर भी साहित्यिक दृष्टि से बडी ही महत्वपूर्ण है।[3] इस पुस्तक में कुछ २६ पृष्ठ हैं तथा बिरहो की सख्या ५६ है।

---

१. लहरी प्रेस, काशी से प्रकाशित।

२. वाचस्पति उपाध्याय : ना० प्र० प०, वाराणसी बोली।

३ बिरहा नायिका भेद: भारत जीवन प्रेस काशी में, सन् १६०० ई० में मुद्रित। मूल्य २ आना।

इसका वर्ण्य विषय नायिका भेद है। भिन्न-भिन्न प्रकार की जैसे मुग्धा, ज्ञात यौवना, नवोढा, मध्या, प्रौढा आदि — नायिकाओं का वर्णन बिरहा छन्द में इस पुस्तक में बड़े ही मधुर शब्दों में किया गया है।

बाबू रामकृष्ण वर्मा कविता में अपना उपनाम 'बलबीर' रखा करते थे। इसका प्रयोग इन्होंने अनेक बिरहों में किया है, जैसे[१]:—

"भरली गगरिया उठौली जैसे गोड़िया
तैसे बिछलल गोड़वा हमार।
जो पै बलबिरवा न बहियाँ धरत,
तो पै बहिती जमुनवा के धार।"

इस पुस्तक में पहले विभिन्न नायिकाओं के लक्षण गद्य में दिए गये हैं पश्चात उनका पद्यात्मक उदाहरण इन बिरहों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस 'नायिका भेद' में गद्य की भाषा खड़ी बोली है परन्तु बिरहों की भाषा भोजपुरी है, जिसमें संस्कृत का गहरा पुट पाया जाता है। इन बिरहों की भाषा के संबंध में इतना और कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इनकी भाषा भोजपुरी होने पर भी ठेठ भोजपुरी नहीं है बल्कि उसमें संस्कृत के तत्सम शब्द भी यत्र-तत्र मिलते हैं। जिस प्रकार तुलसीदास जी ने अपने रामचरित मानस में संस्कृत मिश्रित साहित्यिक अवधी का प्रयोग किया है उसी प्रकार वर्मा जी ने संस्कृत मिश्रित साहित्यिक भोजपुरी को इन बिरहों का माध्यम बनाया है। यही कारण है कि इनमें मिठास है, माधुरी है। कहीं-कहीं इन बिरहों में भोजपुरी भाषा में अप्रयुक्त क्रिया पद भी पाये जाते हैं। जैसे रिसावैं और मारै[२] और पछिलव।[३] फिर भी भाषा संयत और शिष्ट है। 'मध्या' नायिका का यह वर्णन देखिये —[४]

लजिया की बतिया मैं कइसे कहूँ ए भउजी,
जे मोरें बूते कहलो ना जाय।
पर के फगुनवा की सियली चोलियवा में,
असो न जोबनवा अमाय।

नव यौवन के आगमन का कितना सुन्दर तथा संयत वर्णन उपर्युक्त बिरहे में किया गया है। नीचे के पद्य में प्रवत्स्यत्पतिका का कितना सुन्दर चित्रण है।[५]

---

१. बिरहा नायिका भेद बिरहा संख्या २५ पृ० १२
२. बिरहा नायिका भेद बिरहा २६ पृ० १२—१३
३. वही, „ २६ पृ० १३
४. वही.
५. वही. „ ५३ पृ० २३

दुखवा के बतिया नगीचवो न आवै,
गुइया हसी खुसी रहेला हमेस।
बजुआ सरकि कर कगना भइल,
सुनि प्यारे का गवनवा विदेस।

कोई स्त्री—जिसका पति परदेश जाने वाला है–कहती है कि दुःख है कि पति हमारे पास कभी आता ही नही है। आज उसके विदेश जाने का समाचार सुनकर मैं इतनी कृश हो गई हूँ कि बाहु में लगाने का आभूषण (बाजू) आज मेरी कृशता के कारण हाथ का कगन बन गया है। हिन्दी के कवियो ने पति के वियोग में वर्षों तक घुल-घुलकर मरने वाली नायिका के 'कर की मुदरी' को उसका कगन बनाया है परन्तु इस बिरहे में पति के भावी वियोग की चिन्ता से ही पत्नी का इतना कृश हो जाना साहित्य जगत् में अपना सानी नही रखता।

खडिता नायिका का यह वर्णन कितना सटीक हुआ है, यह कितना भाव पूर्ण है।[1]

ओठवा के छोरवा कजरवा, कपोलवा,
पै पिकवा के परली लकीर।
तोरी करनी समुझ के करेजवा फटत,
दरपनवा निहारो 'बलबीर'।

अपने पति का यह कुकृत्य देखकर किसी साध्वी स्त्री की छाती फटना नितान्त स्वाभाविक है। कवि ने इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य को बडी सुन्दर रीति से निरूपण किया है। 'व' का अनुप्रास अपनी शोभा अलग दिखला रहा है।

ज्ञातयौवना का चित्रण देखिये—[2]

हाथ गोडवा क ललिया निरख कै छबिलिया,
मगन होली मनवा मझार।
हेरी हेरी जोवना निहारे दरपनवा में,
बेरी बेरी अँचरा उघार।

कुलटा[3] और अनुशयाना[4] के दो उदाहरण लीजिये—

आधी जग भुइया, आधी नदी, नाल, कुइया,
आधा मरद से बुढवा बेराम।

---

१. बिरहा नायिका भेद पृ० १६ बिरहा ४२
२. वही. पृ० ६ बिरहा १०
३. वही. पृ० १५ बिरहा ३२
४ वही पृ० १५ बिरहा ३३

ससुर भसुर छोड़ बनेले बेंतने,
मोहें नाहकें करेले बदनाम ॥
सनहू उजारे गोइवा उसियो उपारै
इन किसनवन के तनियों न हेत।
कवना पुरनवा न बेदवा बखाने,
अरहरिया के काटो जनि खेत।

पंडित दूधनाथ उपाध्याय का जन्म बलिया जिले के दयाछपरा नामक गाँव में हुआ था। आप घर के साधारण व्यक्ति थे। बाल्यावस्था बड़ी गरीबी में बितायी परन्तु अपने परिश्रम और बुद्धि से बाद में दाम और नाम दोनों ही पैदा किया। घर में धन का अभाव होने के कारण आप हिन्दी मिडिल से अधिक न पढ़ सके और बलिया डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मिडिल स्कूल में नौकरी करने लगे। धीरे-धीरे एक साधारण अध्यापक से आप मिडिल स्कूल, बैरिया, जिला बलिया के हेडमास्टर हो गये। आपने बैरिया, जिला बलिया में अनेक वर्षों तक हेडमास्टरी की। ये प्रबन्ध में बड़े पटु थे। बड़े ही सामाजिक व्यक्ति थे। अत ये जहाँ भी जाते थे वहीं अपना रंग जमा लिया करते थे।

दूधनाथ उपाध्याय

पं० दूधनाथ उपाध्याय का नाम भोजपुरी साहित्य में चिरकाल तक जीवित रहेगा। आधुनिक कवियो में सभवत सर्वप्रथम भोजपुरी में कविता करने के लिये आपने ही लेखनी उठाई थी। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ मे ही जब जनपदीय बोलियों या भाषाओं के उद्धार की चर्चा भी नही थी और जब इन बोलियों में कविता लिखना गवाँरपन समझा जाता था, तब आपने कविता करनी शुरू की थी। जनता ने आपकी कविता का बड़ा ही स्वागत किया तथा ये कविताएँ बड़ी लोकप्रिय होगई।

प्रथम महायुद्ध के अवसर पर सन् १९१४ ई० में स्थानीय जिला अधिकारियो ने युद्ध के प्रचार के लिये तथा लड़ाई में सैनिकों की भरती अधिक सख्या में कराने के लिये आपसे भोजपुरी में कविता लिखने का अनुरोध किया था। उस समय आपने ठेठ भोजपुरी में कविता लिखकर जो पुस्तिका प्रकाशित की थी उसका नाम 'भरती के गीत' है। इस छोटी सी पुस्तिका में जर्मनी के शासक कैंसर को पछाड़ने के लिये भारतीयों का सेना में भरती होने के लिये जोर दिया गया है। साथ ही फड़कती हुई भाषा में भारतीयों को अपनी देश की रक्षा के लिये ललकारा गया है। नीचे का यह पद्य देखिये —

हमनी का सब केहू बाम्हन छतिरि होवे,
रन में चलबि नाहि तनिको डेराइबि ।
अबले चूकली बड बाउर बड्निहाजा,
अज पुरुखनि केना नइया हसाइबि ।।
जरमन दुहुट के नहट कईला बिना,
अब ना मानबि बलु मरि मिटि जाइबि ।
सगरे मुलुक ललकारि के चलबि अब,
"दूधनाथ" रन से ना पयर हटाइबि ।।[१]

इस पद्य में कवि ने भारतीयो को युद्ध में लडने के लिये ललकारा है । यह भारतीय जनता से तन मन, धन देकर ब्रिटिश सरकार की सहायता करने की अपील करता है । साथ ही जर्मनी को रण में पराजित करने का सकल्प कितना दृढ है ।[२]

हमनी का सब जीव जान से मदति करि,
दुहुटि जरमनी के नहट कराइबि ।
जीव देइ, जान देइ, धनदेइ, अन देइ,
देह देइ, गेह देइ, मदति पठाइबि ।।
भरती होखे के मिलि जुलि अत्र फउजी में,
कुल खानदान सब घर के सिखाइबि ।
"दूधनाथ" हमनी का सब केहु जाइ अब,
जरमन फउजि के माटी में मिलाइबि ।।

जर्मन युद्ध के अवसर पर कैसर के द्वारा किये गये घोर अत्याचारो का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि ऐ कैसर ! तुमने बेलजियम देश पर चढाई कर असख्य बाल-वृद्धो को मार डाला । कितने निपराधी मनुष्यो का नाश कर दिया, गिरजा घरो को तोड डाला फिर भी तुम वीर बनने का दावा करते हो —

बेलजिम देश के उजार कर अब हाय,
बालक बिरिध मारि मारि के सतावतारे ।
अवर दुवर से सताई डाड लेत बाड,
उजुर करे त घरे आगि ते लगावतारे ।।
केतना गरीब बेक्सूर के ते मारतारे
नाहके मुआवतारे गोला बरसावतारे ।

---

१ भरती के गीत, पृ० ६
२ वही, पृ० १

गिरिजा, मंदिर, मसजिद तोरि डारतारे,
"दूधनाथ" अपना के वीर तें लगावतारे ।।[1]

अन्त में कवि अपनी मनोरम वाणी में जर्मनी की हार और ब्रिटिश सरकार की जीतके लिये ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि :—

सिरि भगवान् राज राम जी चरन परि, हाथ जोरि जोरि सब केहु कहतानी जा ।
हमनी के बुधि दिहीं, बल बउसाव दिहीं, लड़े के सकती दिहीं वर माग तानी जा ।।
जरमन दुहुट के नहट कराइ दिहीं, पंचम जारज जी के जीति चाहतानी जा ।
"दूधनाथ" अपना चरन में परेम दिहीं, कीरिपा बनल रहे हाथ जोरतानी जा ।।[2]

उपाध्याय जी की दूसरी रचना "भूकम्प पचीसी" है[3] जिसमें १५ जनवरी सन् १९३४ के प्रलयकारी भूकम्प का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। भूकम्प का यह रोमांचकारी वर्णन सुनिये.—

केहू के त सब परिवार दबि मरतवा, केहु के त बेटा नाती देखि ना परतवा ।
केहू मेहरारु बिना पूत परिवार बिना, छाती पीटि पीटि धाई धाई के गिरतवा ।।
केहू धन बिना, अन बिना, पानी बिना हाई, तड़पि तड़पि छपिटाई के मरतवा ।
केहू होई पागल बेहाल होई घूमताटे, "दूधनाथ" हाई बिना अनिये मरतवा ।।[4]

भूचाल का यह दृश्य कितना दर्दनाक है। भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिये जनता से अपील करता हुआ कवि कहता है कि—

अन, धन, कपड़ा, ओढना, लोटा, थारी, सब, जेकरा के जतना संपरे से जुटाईं जी।
बिना परिवार बिना घर के मरत बाटे, ओकरा के देइ देइ धरम बढ़ाईं जी ।।
गइला से बने त जल्दी बहाँ चलि जाईं, नाहीं त पारसल करके पठाईं जी ।
जेकरा जवने संपरे उहे देइ दिहीं, "दूधनाथ" एमें अब देर ना लगाईं जी ।।[5]

उपाध्याय जी की तीसरी पुस्तक "गोविलाप छन्दावली" है जिसमें गोरक्षा के महत्व का विशद वर्णन है। उपाध्याय जी ने सामयिक कवितायें भी बहुत सी लिखी हैं। आप अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे अत. कोई भी प्रधान सामाजिक एव राजनैतिक घटना आपकी लेखनी के वर्ण्य विषय बनने से वंचित नहीं रही है। आपकी भाषा सरल और ठेठ भोजपुरी है। भोजपुरी की निखालिस

१. भरती के गीत, पृ० ७
२. भरती के गीत, पृ० ११
३. लेखक द्वारा प्रकाशित
४. भूकम्प पचीसी, पृ० १
५. वही, पृ० २, ३

मिठास हमें इनकी कविता में मिलती है । उपाध्याय जी भोजपुरी कवियों के अग्रणी हैं । ये ही रचनायें इनकी कविता के सौंदर्य का परिचय देने के लिये पर्याप्त हैं ।[1]

आप बिहार प्रान्त के निवासी थे और आरा में बहुत दिनों तक मुख्तारी करते थे । आपने शान्तरस संबंधी बहुत से भोजपुरी गीतों की रचना की है ।

बाबू अम्बिका प्रसाद

इनकी कविता में रहस्यवाद की झलक भी देखने को मिलती है । इनकी कविताओं का संग्रह तथा प्रकाशन अभी हुआ है । आप की शान्तरसमयी कविता का एक नमूना लीजिए —

देखली मैं सखिया एक कल के खेलवना रे,
पाँच पचीस कलवा लागल रे की ।
तीन सौ साठि तामें लगली लकडिया रामा,
नव सव जोड़वा बाँधल रे की ।
दुइ रे सहेलिया मिलि खेलेली खेलवना रामा,
तीनो रे खेलकवा तेही मगवा धावेला रे की ।
नव रे महीनवा में बनेला खेलवना रामा
खेलवा मेटत बेर ना लागेला रे की ।
'अम्बिका' कहत बाड़े समुझि खेल, गोरिया रामा,
खेलवा के भेदवा गुरु से पावला रे की ।

मानव का यह जीवन ही खेलवना है जिसको बनाने में तो नव महीना लगता है परन्तु जिसके नाश के लिये एक क्षण भी अधिक है । मनुष्य का शरीर ही वह यन्त्र है जिसमें पचीस ही क्यों अगणित पुर्जे लगे हुए प्रतिदिन काम कर रहे हैं ।

इसी प्रकार बाबू अम्बिका प्रसाद जी ने अनेक कविताएँ लिखी हैं जो अभी अप्रकाशित हैं ।[2]

भोजपुरी के जीवित कवियों में भिखारी ठाकुर का नाम यू० पी० के पूर्वी जिलों और बिहार के पश्चिमी जिलों में प्रसिद्ध है । वहाँ बच्चे से बूढ़े तक इनके

भिखारी ठाकुर

'विदेसिया नाटक' से पूर्णतया परिचित हैं । भिखारी ने नाटक मंडली स्थापित कर, 'विदेसिया नाटक' का अद्वितीय सफलता के साथ अभिनय कर, इस नाटक का

१ दुःख है इस कवि का देहान्त अभी कुछ वर्ष हुए हो गया ।
२ दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह लोकगीत पृ० ४६ भूमिका भाग ।

एक नया सम्प्रदाय कायम कर दिया है। इनके विदेसिया नाटक की नकल पर अन्य विदेसिया नाटक तैयार हो गये हैं और इनके शिष्यों ने इस नाटक को खेलने के लिये अनेक मण्डलियाँ स्थापित कर ली हैं। इसी से भिखारी ठाकुर की जनप्रियता का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इन्होंने अपना परिचय देते हुए स्वयं लिखा है कि :

"जाति के हजाम मोर कुतुबपुर ह मोकाम,
छपरा से तीन मील दियरा में बाबूजी।
पुरुब के कोना पर गंगा के किनारे पर,
जाति पेशा बाटे विद्या नाही बाटे बाबूजी॥

जैसा कि इस आत्म-परिचय से विदित होता है, भिखारी ठाकुर जो गाँवों में भिखरिया के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं कुछ पढ़े-लिखे व्यक्ति नहीं हैं परन्तु वे प्रतिभावान् पुरुष अवश्य हैं। देहाती विषयों को लेकर जोरदार भाषा में कविता करना भिखारी का काम है। इनकी कविता का जादू लोक-हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता। 'विदेसिया नाटक' आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना है जिसमें आपने परदेसी पति के वियोग में उसकी स्त्री की विरह वेदना की तीव्र व्यंजना की है। नीचे लिखा गीत उसी से उद्धृत है।

"दिनवा त बीते रामा तोरी इन्तजरिया में,
रतिया नयनवा ना नींद रे विदेसिया।
घरी राति गइलों राम पिछली पहरवा से,
लहरे करेजवा हमार रे विदेसिया।
आमवा मोजरि गइले लगले टिकोरवा से,
दिन पर दिन पियराला रे विदेसिया।
एक दिन अइहैं रामा जुलुमी बयरिया से,
डार पात जइहैं भहराई रे विदेसिया।"

विरह का यह वर्णन कितना मार्मिक हुआ है। भिखारी ने 'प्यारी सुन्दरी वियोग' नामक एक पुस्तक लिखी है जिसका वर्ण्य विषय यही परदेसिया है। यहाँ गीत के अन्तिम चरण में विदेसिया की जगह विदेसिया कहा गया है।

"रंग महल बइठल सोचे प्यारी धनिया मे,
विरह सतावे जिया बीच परदेसिया।
चढली जवनियाँ बइरिनि भइली हमरी से,
मदन सतावै जिय माँहि परदेसिया।"

भिखारी ने सामाजिक बुराइयों का बड़ा सुन्दर चित्रण अपनी कविता में किया है। वृद्ध विवाह का यह वर्णन सुनिये जिसमें पुत्री अपने पिता से कहती है कि –

"आँखि से सूझत कम, हर दम खींचत दम,
मथवा के बारवा चवरवा हटे बाबूजी।
मुहवा में दांत नाहीं, गाले मुह लार चुए,
बोलले पर भीतर सडल बदबू बाबूजी।
पति कर देखि गति पागल भइल मति,
रोइ रोइ करीला बिहान मार बाबूजी।"

इसी प्रकार उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध 'बनवारी गीत' में बाल विवाह की बुराइयों का बड़ा सजीव चित्रण उपस्थित किया है। बेटी वियोग' और 'भिखारी बहार' में समाज की आलोचना की गई है। भिखारी ठाकुर का 'मकइया' वाला गीत (मकइया हो तोर गुनवा गायवि माता) भोजपुरियों का राष्ट्रीय गीत है।

भिखारी ठाकुर वास्तविक अर्थ में हमारे जन कवि हैं। भोजपुरी जनता की आत्मा ने इनकी कविता में अपना प्रकाशन प्राप्त किया है। ये जनता के सुख-दुःख को उनकी बुराई-भलाई को प्रकाश में लाते हैं। इसीलिए वे इतने जन-प्रिय कवि, सफल नाटककर्ता एवं प्रसिद्ध गायक हो गये हैं, इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है।

नाम भिखारी काम भिखारी, रूप भिखारी मोर।
ठाट पलानि मकान भिखारी, चहुदिसि भइल सोर॥

भोजपुरी के कवियों में मनोरंजन प्रसाद सिनहा का एक विशिष्ट स्थान है। असहयोग आन्दोलन के दिनों में आपकी 'फिरंगिया' नामक कविता बड़ी लोकप्रिय थी। भोजपुरी प्रदेश में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने में 'फिरंगिया' का बहुत बड़ा हाथ है। राष्ट्रीयता के उस युग में यह कविता राष्ट्रगीत थी तथा ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह की सूचक थी। मनोरंजन जी हमारे सामने इसी अमर कविता के रचयिता के रूप में आते हैं।

मनोरंजन प्रसाद सिनहा

मनोरंजन जी का जन्म बिहार प्रान्त के शाहाबाद जिले के डुमरांव नामक स्थान में एक सम्भ्रान्त कायस्थ कुल में हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू रामेश्वर प्रसाद था जो कुछ दिनों तक मुजफ्फरपुर एवं छपरा, (बिहार) में मदरसा थे।

छोड़ दिया और राष्ट्रीय सेवा में जुट गये। आप अनेक वर्षों तक हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी, में अंग्रेजी के अध्यापक थे। आजकल आप राजेन्द्र कालेज, छपरा, विहार में प्रिन्सिपल हैं।

यद्यपि प्रिन्सिपल मनोरंजन–आप इसी नाम से विख्यात हैं–अंग्रेजी के विद्वान् हैं परन्तु आपकी प्रतिभा ने हिन्दी का माध्यम लेकर विकास को प्राप्त किया है। आप खड़ी बोली और भोजपुरी में समान रूप से कविता करते हैं। आपका हृदय जितना सरल है, कविता भी उतनी ही मधुर है। आप सरल हिन्दी के गद्य लेखक भी हैं। 'उत्तराखंड के पथ पर' नामक आपकी प्रसिद्ध पुस्तक है जिसमें बद्रीनाथ की यात्रा का रोचक वर्णन किया गया है। इसमें बीच बीच में सरस कविताएँ भी की गई हैं। मनोरंजन जी के अनेक लेख और कवितायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। परन्तु यहाँ हमारा संबंध आपकी 'फिरंगिआ' नामक कविता से है।

'फिरंगिआ' की रचना सन् १९२१ ई० के तूफानी दिनों में हुई थी। सका उद्देश्य देहाती लोगों में राष्ट्रीय जागृति फैलाना था। अतः इसकी रचना खड़ी बोली में न कर कवि ने लोकभाषा भोजपुरी में की है। उन दिनों में 'फिरंगिया' का कितना प्रचार था वह केवल इसी बात से समझा जा सकता है कि इस कविता को ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था, फिर भी इसकी प्रतियाँ छापकर सुदूर भारत के बाहर फीजी तथा मारिशस द्वीपों में भेजी गईं और वहाँ के भारतीय, विशेषत भोजपुरी लोग, बड़े प्रेम से उसे गाते थे। इस गीत की रचना का कारण, इसकी जनप्रियता तथा प्रसिद्धि की कथा स्वयं प्रिन्सिपल मनोरंजन जी ने बड़े विस्तार के साथ लिखी है।[१]

इस गीत की रचना रघुबीर बाबू की 'बटोहिया' नामक सुप्रसिद्ध कविता के आधार पर की गई है। इस 'बटोहिया' गीत की पहिली पंक्ति "सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देसवा से, मोर प्राण बसे हिम खोह रे बटोहिया" है। इसी पंक्ति को सामने रख कर मनोरंजन जी ने अपनी फिरंगिआ की पहिली पंक्ति की रचना इस प्रकार की है —

सुन्दर सुघर भूमि भारत के रहे रामा,
आज उहे भइल मसान रे फिरंगिया।

फिर कवि भारत में व्यापक गरीबी तथा अन्न कष्ट को लक्षित कर लिखता है कि.—

---

१. देखिये: 'भोजपुरी' अंक १ वर्ष १ सं० २००५ पृ० १, १५

अन्न, धन, जन, बल, बुद्धि सब नाश भइल,
कौनो के ना रहल निशान रे फिरगिश्रा।
जहवाँ थोड़ ही दिन पहिले ही होत रहे
लाखो मन गल्ला और धान रे फिरगिया।
उहवे पर आज रामा मथवा पर हाथ धके
बिलखी के रोवेला, किसान रे फिरगिया।

कवि की वाक् वैखरी स्खलित होती है और वह आततायी ब्रिटिश शासन को सावधान करते हुये चेतावनी देता है कि—

'चेत जाउ चेत जाउ भैया रे फिरगिया ते,
छोड़ दे अधरम के पन्थ रे फिरगिया।
छोड़ के कुनीतिया सुनीतिया के बाह गहु,
भला तोर करी भगवन्त रे फिरगिया।
एको जो रोऊवा निरदोसिया के कलपी त,
तोर नास होइ जाई सुन रे फिरगिया।
दुखिया के आह तोर देहिया के भसम क दी,
जरि भूनि होइ जइबे छार रे फिरगिया।

उस समय कौन यह जानता था कि 'क्रान्तदर्शी इस कवि की भविष्यवाणी इतनी शीघ्र सत्य होगी।

अंग्रेजी राज्य के कारण भारतीयों का जो नैतिक पतन हुआ है उसकी ओर संकेत करते हुए कवि कहता है कि—

मरदानापन अब तनिको रहल नाही,
ठकुर सुहाती बोले बात रे फिरगिया।
रात दिन करेले खुसामद सहेबवा के,
सहेले विदेसिया के लात रे फिरगिया।

वास्तव में हमारा नैतिक पतन कितना अधिक है जिसका वर्णन नही किया जा सकता। पजाब के निर्मम हत्याकाण्ड का कवि ने जिन दु:खद् शब्दो में वर्णन किया है उसे पढ कर किस पाषाण का हृदय न पसीज उठेगा।

आजु पजाबवा के करि के सुरतिया से,
फाटला करेजवा हमार रे फिरगिया।
भारत के छाती पर भारत के बच्चन के,
बहल रकतवा के धार रे फिरगिया।

दुधमुंहा लाल सम बालक मदन सम,,
तड़पि तड़पि देले जान रे फिरंगिया।

इस प्रकार प्रिंसिपल मनोरंजन ने अपनी इस 'फिरंगिया' कविता द्वारा हमारी राष्ट्रीय चेतना के उद्बोधन में बड़ी सहायता की है। आशा है, इनकी वाणी अब स्वतन्त्र भारत का गान गायेगी।

आप उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के निवासी हैं। आपने नागपुर विश्व-विद्यालय से एम० ए० की परीक्षा पास की है तथा आजकल बलिया में वैद्यक करते हैं। कलकत्ते से आपने होमियोपैथी की भी परीक्षा पास की है। इस प्रकार आप आयुर्वेद तथा होमियोपैथी दोनों प्रणाली की चिकित्सा करने में निपुण हैं। आपका व्यवसाय वैद्यक होने पर भी आपकी रुचि प्रधानतः काव्य की ओर है।

रामविचार पांडेय

भोजपुरी के उदीयमान कवियों में आपका एक विशेष स्थान है। आपने अनेक सुन्दर भोजपुरी कविताओं की रचना की है जिसमें कुछ का प्रकाशन विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में हो चुका है। आपकी कविताओं का तीन संग्रह पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। आजकल आप भोजपुरी में कुंअर सिंह नामक नाटक लिख रहे हैं जिसका प्रकाशन शीघ्र ही होनेवाला है।

पाण्डेय जी की काव्य भाषा बड़ी प्रांजल है। आपने अपनी प्रतिभा के बल से भोजपुरी को जीवन प्रदान किया है और यह दिखलाया है कि यदि प्रतिभा सम्पन्न कवि इसको अपनी कविता का माध्यम बनावें तो यह किसी भी भाषा से टक्कर ले सकती है। आपकी 'अंजोरिया' नामक कविता अत्यन्त प्रसिद्ध है जिसमें सवैया छन्द में आपने भोजपुरी को ढालने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। यह पद्य सुनिये—

"टिसुना जागलि सिरि किसुना के देखे के त,
आधी रतिये खा उठि चललि गुजरिया।
चान का नियर मुह चमकेला राधिका के,
चम चम चमकेले जरी के चुनरिया।
चकमक चकमक लहरि उठावे ओमें,
मधुर मधुर डोले कान के मुनरिया।
गोखुला के लोग ई त देखि चौंहइले कि,
राति में अमावसा का ऊगलि अंजोरिया।

इस पद्य में श्रीकृष्ण से मिलने के लिये जाने वाली राधिका के अभिसार का वर्णन है। राधिका सुन्दर जरीदार साड़ी पहनकर कृष्ण से मिलने अमावस्या की

अंधेरी रात्रि में चली जा रही हैं परन्तु उसके शरीर की कान्ति इतनी अधिक है कि यह मालूम होता है कि अमावस्या के दिन चन्द्रोदय हो गया है। इस पद्य का भाव कितना सुन्दर है, साथ ही शब्दों का चुनाव भी देखते ही बनता है। एक दूसरा पद्य लीजिये —

"फूल का सेजरिया पर सूतल कन्हैया जी,
सापना देखेले कि जरत दूपहरिया।
ओकरे में हामरा के रधिका खोजत बाडी,
पेड नइखे, इस नाही जल का बगरिया।
कहताडी, धाव कृष्ण, धाव कृष्ण आव राजा,
हमके देखाद तनि गोकुला नगरिया।
अइली राधे, अइली राधे, कहि के जे उठले त,
एने फूलले कमल ओने चढली अजोरिया।"

सूर्य को देखकर कमल विकसित होता है और चन्द्रमा को देख कर कुमुदिनी। यह एक प्राचीन कवि परम्परा है। परन्तु उपर्युक्त पद्य में पाण्डेय जी ने चन्द्रमा को देख कर कमल को खिलना लिखा है। राधिका चन्द्रमा के समान रूपवती हैं और कृष्ण का मुख कमल के समान है। जब वे राधिका को स्वप्न में देखते हैं तो वे प्रसन्न हो जाते हैं। इसी को कवि ने 'अजोरिया' को देखकर कमल का खिलना लिखा है। इस कविता में इन दो विरोधी वस्तुओं का निर्वाह कवि ने बडी चातुरी से किया है। यह तीसरा पद्य लीजिये[१]

"हमके बोलालीतू तू अइलू हा कइसे हो,
बडी भाकासा नी भइलि बा अन्हरिया।
कसवा के राकस घूमत बडवार बाडे,
गोखुला में कबे कबे होत बाडे चोरिया।
सभ के ठगेल कृष्ण हमे के भोराव जनि,
हाथ हम जोरी के करी ले गोडधरिया।
हिरदया में जेकरा त तूही बहसल बाड,
ओकारा खातिर ई अन्हरिये अजोरिया।"

इस पद्य में कवि ने भोजपुरी के ठेठ मुहावरा का प्रयोग बडी सुन्दर रीति से किया है। 'गोडधरिया करना' भोजपुरी मुहावरा है जिसका अर्थ विनती या प्रार्थना करना है। कवि ने रात्रि में अभिसार करने का जो उत्तर राधिका के

१. इन कविताओं के लिये देखिये। 'बिनिया बिछिया' प्रकाशक—साहित्य सदन, बलिया,

मुंह से दिलवाया है यह बड़ा ही मधुर और सुन्दर है। राधिका के पास स्वयं चले आने में कृष्ण का प्रेम परिलक्षित होता है। इस प्रकार पाण्डेय जी की कविता बड़ी सरस तथा मनोहर है।

आप जिला बलिया के निवासी हैं तथा आजकल बलिया के प्रमुख कांग्रेसी लीडरों में हैं। पहिले आप वहीं के मेस्टन हाई स्कूल—वर्तमान सतीशचन्द्र डिग्री कालेज—में क्लर्क थे। साहित्यिक प्रवृत्ति होने के कारण आपका मन स्कूल के काम में न लग सका और आपने वहां से पदत्याग कर मुख्तारी करना शुरू कर दिया।

प्रसिद्धनारायण सिंह

इन्हीं दिनों में आपने "बलिया जिले के कवि और लेखक" नामक पुस्तक लिखी जिसमें आपने अपने जिले के कवियों और लेखकों की कृतियों का परिचय बड़ी सुन्दर रीति से दिया है। मुख्तारी करते समय प्रसिद्ध नारायण जी राजनीति में भी भाग लेने लगे थे और सन् १९३० ई० के सत्याग्रह आन्दोलन में कारागार की प्राचीरों ने भी आपको अनेक बार अपना अतिथि बनाया था। पश्चात् आपने मुख्तारी को भी छोड़ दिया और आजकल तन, मन, धन से देश की सेवा कर रहे हैं।

राष्ट्रीय कार्यकर्ता के अतिरिक्त प्रसिद्ध नारायण जी कवि भी हैं यदि आप राष्ट्र सेवा के कार्य में अपना जीवन न खपा देते तो आज हम उन्हें एक प्रसिद्ध कवि के रूप में देखते। प्रसिद्ध नारायण जी ने स्फुट कवितायें की हैं जो पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी कविता में भाव और भाषा का मजुल सामंजस्य होता है। राष्ट्रीय विषयों पर लिखी होने के कारण आपकी कविता में ओज की मात्रा प्रचुर रूप में पाई जाती है। यहां हम आपकी एक कविता को उद्धृत करते हैं जो 'जवाहर स्वागत' के नाम से प्रसिद्ध है। प० जवाहर लाल नेहरू सन् १९४५ ई० में बलिया गये थे। उसी समय उनके स्वागत में यह कविता पढ़ी गई थी। सन् १९४२ के आन्दोलन में बलिया निवासियों ने ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता को मिटाकर जो स्वतन्त्रता प्राप्त की थी तथा इसके फलस्वरूप बाद में उन पर जो अत्याचार किये गए उसी का दिग्दर्शन कवि ने अपनी इस कविता में किया है।

भारतीय जनता के हृदय-सम्राट् प० जवाहरलाल नेहरू का स्वागत करते हुये कवि बलिया जिले की विशेषता एव महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहता है कि—

१. रामविचार पाण्डेय: 'सरपच' वर्ष १ अक ४ पृ० २४

दुखिया बलिया के वीरभूमि,
तोहरा चरनन के चूमि चूमि।
मानति बा आपन अहो भागि,
गावत नर नारी झूमि झूमि।
हमके दुरलभ दरसन तोहार।
निरबल, निरधन, निरगुन, गँवार,
अलगा आपन बाली विचार।
कन कन में जेकरा क्रान्ति बीज
अइसन भोजपुर तप्पा हमार।
इतिहास कहत पन्ना पसार।

राष्ट्रीय आन्दोलन में बलिया सदा अग्रणी रहा है उस बात की ओर संकेत करते हुए कवि लिखता है कि:—

जब जब बापू कइलन पुकार,
रन में बाजल बिगुल तोहार।
सिर बाधि बाधि कफनी आपन,
हम छोड़ि दउड़नी घर दुआर।
हरदम हमार अगिली कतार।

कवि की वाक्-धारा और आगे बढ़ती है और वह सन् ४२ में बलिया के बहादुरों द्वारा किये गये वीरतापूर्ण कार्यों को ओज भरे स्वर में गाता है।

आइल अगस्त के आन्दोलन,
फरके लागल सबके तन, मन।
बिजुली दौड़ल जागल बलिया,
चलले मुसिलम, हिन्दू, हरिजन।
मचि गइल लड़ाई बस जुझार।
थाना, डकखाना, रेल, तार,
सब पुलिस अदालत अहलकार।
हाकिम, हुकाम, गोली, गोला,
पड़ि गइल ठप्प सब कारबार।
बजि गइल विजय डंका हमार।
सड़कन डालिन से पाटि पाटि,
पूलन के दिहली काटि काटि।

तहसील खजाना लूट फूंकि,
अगवढि दिहली तनखाह बाटि।
पर उठल कहाँ थप्पर हमार।

बलिया ने सन् ४२ के आन्दोलन में ब्रिटिश राज्य को हटाकर स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी जिसके फलस्वरूप उसे बड़ा कष्ट भुगतना पड़ा। अंग्रेज अधिकारियों ने यहाँ क्या क्या अत्याचार किया इसका रोमांचकारी वर्णन नीचे के पदों में सुनिये —

बेपीर, पुलिस, बेरहम फौज,
डाका डललनि बेखौफ रोज।
गुंडाशाही के रहल राज,
रिसवत पर कइलें सभे मौज।
उफ जुलुम बढल जइसे पहार।
गावन पर दगलनि गनमशीन,
बेंतन सन मरलन बीन बीन।
बैठाई डाल पर नीचे से,
जालिम भोंकलन खच खच संगीन।
बहि चलल खून के तेज धार।
घर घर से निकललि आहि आहि,
कोना कोना से त्राहि त्राहि।
गावन गावन में लूट फूंक,
मारल, काटल, भागल, पराहि।
फिर कवन सुने केकर गुहार।

कवि ने ऊपर की पंक्तियों में बलिया के निवासियों के ऊपर किये गये निर्मम अत्याचारों का जो वर्णन किया है वह कितना सजीव है। यह आँखों के सामने सन् ४२ के अत्याचारों का चित्र उपस्थित कर देता है। कवि ने अपनी प्रतिभा से कविता में ओज तथा बल डाल दिया है।

पं० महेन्द्र शास्त्री

पं० महेन्द्र शास्त्री जी बिहार प्रान्त के छपरा जिले के निवासी हैं। आप बड़े ही उत्साही व्यक्ति हैं। आपने पटना से भोजपुरी नामक पत्रिका का सम्पादन तथा प्रकाशन किया था[1] आप भोजपुरी गद्य तथा पद्य दोनों के अच्छे लेखक हैं। यहाँ पर आपकी कविता का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

---

१. कदमकुंआ, पटना से प्रकाशित।

श्री महेन्द्र शास्त्री जी की कविता बड़ी सरल और सुबोध होती है। आपको 'आज की आवाज' नामक पुस्तक अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में जैसा कि इसके नाम से प्रतीत होता है आजकल के सामयिक विषयों पर सुन्दर तथा सरल कविता की गई है[१]।

श्याम बिहारी तिवारी

आप बिहार प्रान्त के बेतिया जिले के रहने वाले हैं। आप भोजपुरी में सुन्दर तथा सरल कविता करते हैं। आपकी 'देहाती दुलकी' भाग १, २, ३ नामक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं[२]। आप का उपनाम 'देहाती' है और आप इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। 'देहाती दुलकी' भाग १ में आपको चौदह चुनी हुई कविताओं का संग्रह है जिनमें देहाती विषयों को लेकर कविता की गई है। 'उठल मास मधुआइल' शीर्षक कविता में बसन्त ऋतु में प्रकृति के परिवर्तन का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। पलाश के फूलने का यह वर्णन देखिये[३]।

'देखि ह हो परास के फूलल,
झुठ्ठु में भवरा के भूलल।
जान त देवे पर बा तूलल,
भग भनात लरिआ ल।
उठल मास मधुआइल।

कवि ने पलाश के लाल होने तथा भवरा के उस पर जान देने की जो उपमा दी है वह हिन्दी के कवियों की परम्परा के अन्तर्मुक्त है।

पति का भवरा से रूपक बांधकर उसका कितना सुन्दर उपालम्भ नीचे के पद में किया गया है[४]।

"कइसे मानी उनकर बतिया।
सुखले सूखल बीतल रतिया।
कहाँ जुड़ाइब आपन छतिया
छतवा तुरले जाय
भवरा रसवा चुसले जाय।"

ऊपर के पद्य में स्त्री की गम्भीर विरह वेदना का कितनी सुन्दर रीति से

१. कदमकुँआ, पटना से प्रकाशित।

२ देहाती दुनिया, सागर प्रेस बशवरिया, जिला बेतिया, बिहार।

३ देहाती दुलकी पृ० ११

४ वही० पृ० ६

चित्रण किया गया है। 'सुखले सूखल बीतल रतिया' में कितनी कसक भरी हुई है। विरह का दूसरा वर्णन देखिये[१] —

"अबही से हम कापतानी,
पलकन पानी ढापतानी।
आग लगा के तापतानी,
तेलवा ढलले जाय।
भवरा रसवा चुसले जाय।

यह पद्य बड़ा ही सुन्दर और सरस बन पड़ा है। नायिका कहती है कि नायक मेरे विरह रूपी आग में तेल रूपी व्यथा को डालता चला जाता है। मैं कितना भी चाहती हूँ कि अपने अश्रु रूपी जल से इसे बुझा दूँ परन्तु विरह की धधकती आग शान्त ही नहीं होती। विरह का वह कितना मार्मिक चित्रण है।

किसी देहाती स्त्री की मनोभिलाषा का वर्णन देखिये[२] —

मनवा अइसन मोर करत बा,
हमहूँ नाची कजरी गाई।
अपना सामसुनर का आगे,
उनका के मन भर लजवाई।
जे रोगिया का भावे सइया,
काहे ना वैदा फुरमावे।
नाच गुजरिया कजरी गावे।

जाड़े के दिनो में देहाती, गरीब किसान की दशा का यह चित्रण कितना सजीव है। उसे जाड़े में कितना कष्ट उठाना पड़ता है इसे भुक्तभोगी ही जान सकता है[३]।

गरमी त भरसक कटि जाला,
जाड़ हमनिए पर बउराला।
देह उघारे सिसकत पाला
कवन कही हम बात भइया।
सूख गइल बरसात भइया।

हास्य रस का यह सुन्दर उदाहरण लीजिये जिसमें शृंगार का पुट भी कम नहीं है।

---

१ देहाती दुलकी भाग १ पृ० १०
२ देहाती दुलकी भाग १ पृ० २१
३ वही० पृ० २६

सावन मास वहे पुरुम्रा,
जनि केहु के छूटे मिलावल जोडी।
का कही दोसर के बा इहा
अब जे इ सुतार में बागर कोडी।
जाइब आजु जरूर मुनेसर,
भाई के माग के होछल घोडी।
बोव हईं हमहू त पुरान नू
के ससुरार में मेहर छोड़ी।

होली का यह देहाती वर्णन कितना सुन्दर बन पडा है। इस पद्य में फाग खेलते समय कीचड उछालने की निन्दनीय प्रथा की ओर सकेत किया गया है[1]:—

जगह जगह पर र। उडल बा,
गगरा गगरा रग घोरल बा।
लाल पियर सब रग परत बा,
साफ करा ल मोरी हो।
उठल फाग बा होरी हो।

इस प्रकार 'देहाती' जी की कविताएँ ग्रामीण होते हुए भी ग्राम्य नही है। इनमें भोजपुरी भाषा की मधुरता पाई जाती है।

'देहाती' जी शृगार रस के अतिरिक्त हास्य रस के भी विख्यात लेखक है। सभवत उन्होने भोजपुरी में हास्यरस सबधी कविताओं के लिखने का बीडा उठा लिया है। एक बार बनैली राज्य के अधिकारियों ने आपको चाय-पार्टी दी थी। उस पार्टी में आपने क्या क्या देखा उसका वर्णन आपने अपनी 'का का देखनी' शीर्षक कविता में बडी सुन्दर रीति से किया है। कुछ पद सुनिए[2] —

का कही केतना देखनी, का का देखनी।
भीतरी ना देखनी, बाहर के लिफाफा देखनी।१।

अरे भाई अइसन सत्कार कतहू ना मिलल।
देहातियो के साथे खाये के तकाजा देखनी।२।

आगे टेबुल आइल बूझनी, यही पर नूध के पढबि।
आहि बाल, ई का, सामने छुरी अउरी काटा देखनी।३।

---

१. देहाती दुलकी पृ० ३८.

२. दुर्गा शकर सिंह लोकगीत पृ० ४७ भूमिका.

जे जे आइल धइली गइले गोलक में।
पानी मिलबे ना कइल, इहे एगो घाटा देखनी ।४।
मन में आइल के खाउ, वाटा से देरी होई।
एक ससियें मार दिहनी, ना आगा देखनी ना पाछा देखनी ।५।

उपर्युक्त पदों में एक 'देहाती' द्वारा चाय पार्टी का रोचक तथा हास्यरस पूर्ण वर्णन हुआ है। अन्तिम दो पंक्तियाँ विशुद्ध भोजपुरी स्वभाव की परिचायिका हैं।

आपकी एक अन्य हास्यपूर्ण कविता 'छपले वा' शीर्षक से विख्यात है जिसमें इस मुहावरे का बडा सुन्दर प्रयोग किया गया है[१]।—

वात कइसे वुझव, अरे कुछ ऊ त पढ़।
मकई कइसे होई मउसे खेत त जनेरा छपले वा ।१।
वेहु का हुरकवला से, कहीं तितिर मिली।
उनका मन में त हर घडी, बटेर छपले वा ।२।
अपने में काटा कुटी करी, नीमने नु वा।
अरे अइसन नू हमरा घर में अन्हेर छपले वा ।३।
वावा के ओझइओ पर छूत के भूत ना भागल।
वभन झोझ होते रहे, दोसर वभन फेर छपले वा ।४।

इस प्रकार देहाती जी की हास्यरसमयी कवितायें बड़ी सुन्दर बन पड़ी हैं।

कविवर 'चचरीकजी' भोजपुरी के लब्ध प्रतिष्ठ कवियों में हैं। आप गोरखपुर जिले के निवासी हैं। आप मौजी जीव हैं तथा स्वच्छन्द प्रकृति के व्यक्ति हैं। साहित्य सेवा ही आपके जीवन का उद्देश्य है और आप उसी धुन में मस्त होकर विचरते रहते हैं। आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'ग्राम गीताजलि' है जो गोरखपुर से प्रकाशित हुई है[२]। भोजपुरी जनता में यह पुस्तक कितनी लोकप्रिय हो गई है इसका पता केवल इसी बात से लगाया जा सकता है कि कुछ ही वर्षों के भीतर इस पुस्तक के चार संस्करण हो गये हैं।

कविवर 'चचरीक'

इस पुस्तक में कुल २४० पृष्ठ हैं जिनमें चचरीक जी ने राष्ट्रीय तथा सामाजिक विषयों को लेकर अपनी काव्य रचना की है। यह पुस्तक दो भागों में विभक्त है। १. राष्ट्रीय सोपान, २ सामाजिक सोपान। राष्ट्रीय सोपान में चचरीक जी ने राष्ट्रीय तथा देश भक्ति के विषयों को लेकर सोहर, विवाह गीत,

१. दुर्गा शकर प्रसाद सिंह पृ० ४६ भूमिका.

२. प्रकाशक ठाकुर महातम राव, बुकसेलर, रेती चौक, गोरखपुर (चतुर्थ संस्करण) मूल्य ३ रुपया.

मेला, निरौनी, हिंडोला, जनेऊ, कहरवा आदि के गीत लिखे हैं। सामाजिक सोपान में आदर्श गारी, शिक्षाप्रद गीत, बेटी की विदाई के समय के गीत लिखे गये हैं। देहातो में जो कही कही अशिष्ट गीतो का प्रचार है उनको दूर कर जनता के सामने नवीन, देशभक्ति से परिपूर्ण गीतो को रखना ही चचरीक जी का प्रधान उद्देश्य है और वे इस उद्देश्य में सफल भी हुए हैं।

ग्राम गीताजलि की भाषा बडी सरल, सरस और मधुर है। भोजपुरी बोली में इन गीतो को लिखकर चचरीक जी ने यह प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिया है कि भोजपुरी में भी कितनी सुन्दर कविता की जा सकती है। शब्दावली इतनी सरल है कि अर्थबोध में कही क्लिष्टता नही होती। प० मोती लाल नेहरू की असामयिक मृत्यु पर कवि कहता है कि[१] —

भारत के नइया के डारि मझधरवा में,
असमय चलि गइले मोतीलाल नेहरू।
कइसे के पार होईहैं देसवा के नइया रे,
पतवार रहले रे मोतीलाल नेहरू।

यह उपर्युक्त कथन कितना सत्य और समीचीन है। आगे कवि भावावेश में आकर लखनऊ शहर से पूछता है कि तू ने हमारी अमूल्य निधि कहाँ गवाँ दी[२] —

हम तोरो पूछीला लखनऊ भइया रे
कहवा गववले ते मोतीलाल नेहरू।
लिखले के जो ? नाही बाटे विपतिया रे,
भुलिहैं भुलवले न मोतीलाल नेहरू।

चचरीक जी ने ग्राम गीतो में देशसेवा की भावनाओ को लाकर हमारी राष्ट्रीय चेतना को जागत किया है। गाधी जी के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिये किसी स्त्री का अपने पति को यह उपदेश देना कितना उत्साहवर्धक है[३] —

"जाहु जाहु जाहु पिया देश के लडइया हो,
छोडि देहु अब कदरइया।
हा सियाराम से बनी। टेक।

---

१ ग्रामगीताजलि परिचय पृ० १८७
२ वही पृ० १८५
३ ग्रामगीताजलि पृ० ५३।

होके मरद मरदुमी अब देखलाऊ,
देसवा में होइहैं लड़इया। सियाराम। टेक।

लागे सरम लाजि घर में बइठि जाहु,
मरद से बनिके लुगइया। सियाराम। टेक।
पहिरि केसरिया सारी हम चलि जइबे हो
राखि लेबें तुहरो पगड़िया। सियाराम। टेक।

नारी की यह उत्तेजना मुर्दों में भी जान डालने में समर्थ है।

कवि ने पुराने भावों को नवीन जामा पहनाया है और वह उसमें वह सफल भी हुआ है। यह नवीन जतसार देखिये[1] :—

झुरझुर बहति बयरिया ननदिया हो,
फर फर डोले मोर चरखवा हो जी।
सुनु सुनु हमरी बचनिया भउजिया हो,
हमहू सयवा कतवै चरखवा हो जी।

श्री रघुबीर शरण जी 'बटोहिया' नामक अमर गीत के अमर रचयिता हैं। सभवत यही एक गीत इनकी एकमात्र रचना है जो इन्हें अमर बनाने के लिये पर्याप्त है। आप बिहार प्रान्त के छपरा शहर के निवासी हैं। आपने अपनी संक्षिप्त आत्मकथा 'भोजपुरी' पत्रिका में प्रकाशित की है। अत उनकी कहानी अब इन्ही की जबानी सुनिए[2]।

श्री रघुबीरशरण

"हमार जन्म २० अक्तूबर सन् १८८४ ई० में बीफे के रोज आधा रात के छपरा शहर के मुहल्ला दहियावा के अपना मकान में भइल। .... हमार बाबू जी के वकालत अपना समय में बहुत जबर्दस्त रहे। छपरा के वकीलन के बीच में सबसे पहिला वकील अग्रेजी जानेवाला ऊहे रहस। ऐह से उनकर नाम बहुत खिलल रहे। उनकर नाम जयदेव नारायण रहे।" आप तीन भाई थे। ज्येष्ठ भ्राता का नाम राय बहादुर सुखदेव नारायण था जो डिप्टी कलक्टर थे और जिनका देहावसान सन् १९३९ में हो गया। इस प्रकार श्री रघुबीर शरण जी का जन्म एक संभ्रान्त कायस्थ कुल में हुआ था जो आज भी लक्ष्मी तथा सरस्वती के एकत्र निवास के लिये प्रसिद्ध है। श्री रघुबीर जी की शिक्षा दीक्षा

---

१. ग्रामगीताञ्जलि पृ० १११.
२. भोजपुरी पत्रिका वर्ष १, अंक १ पृ० ५२-५३.

छपरे में ही हुई जिसका बड़ा ही रोचक वर्णन आपने अपनी आत्मकथा में दिया है।[१]

श्री रघुवीर शरण जी का नाम 'बटोहिया' नामक लोकप्रिय कविता के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध है। 'बटोहिया' कविता को सभी जानते हैं परन्तु इसके रचयिता को बहुत कम लोग ही जानते हैं।

'बटोहिया' भोजपुरी प्रदेश का राष्ट्रीय गीत है। खेतो में काम करने वाले किसानो के मुह से, देहाती स्कूलो को जाने वाले विद्यार्थियों के स्वर में तथा नवयुवको के मधुर रागो में 'बटोहिया' गाना सुनने को मिलता है। इस गीत में भारत का जो चित्र खीचा गया है वह बड़ा ही सुन्दर उतरा है। इस गीत की दूसरी विशेषता इसका मधुर राग है जो श्रोताओं के हृदय को बरबस अपनी ओर खीच लेता है। प्रारम्भ की ये पक्तियाँ सुनिये —

सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देसवा से,
मोरे प्रान बसे हिय खोह रे बटोहिया।
एक द्वार घेरे रामा हिम कोतवलवा से,
तीन द्वार सिन्धु धहरावे रे बटोहिया।

हिमालय सचमुच हमारा रक्षक है, हमारा सन्तरी है। महाकवि इकबाल ने इसी भाव को इन पदो में व्यक्त किया है —

"पर्वत में सबसे ऊँचा हमसाया आसमा का
यह सतरी हमारा यह पासबा हमारा"

अखड भारत का सुन्दर चित्रण करते हुए कवि मधुर राग में गाता है।

गगा रे जमुनवा के झगमग पनिया से,
सरजू झमकि लहरावे रे बटोहिया।
ब्रह्मपुत्र, पचनद, घहरत निसिदिन,
सोनभद्र मीठे स्वर गावे रे बटोहिया।

भारत की वीर गाथा सुनाकर कवि हमारी सुप्त चेतना को जागरित करता हुआ गाता है —

नानक, कबीरदास, शकर, श्रीराम, कृष्ण,
अलख के गतिया बतावे रे बटोहिया।
विद्यापति, कालिदास, सूर, जयदेव कवि,
तुलसी के सरल कहानी रे बटोहिया।

---
१ 'भोजपुरी' पत्रिका वर्ष १, अक १, पृ० ५४

इस प्रकार कवि ने भारत के अतीत गौरव का जो गीत गाया है वह बड़ा ही सुन्दर है।

बाबू रणधीरलाल श्रीवास्तव भोजपुरी के उदीयमान कवियों में से एक हैं। आपका जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के सोनवर्सा नामक ग्राम में हुआ था। आपकी शिक्षा दीक्षा बलियां तथा प्रयाग में हुई है। आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए० की उपाधि लेकर आजकल आप बलिया के मेस्टन हाई स्कूल में अध्यापन का काम अनेक वर्षों से कर रहे हैं। आप बड़े ही सरस व्यक्ति हैं तथा काव्य के मर्मज्ञ हैं। लड़कपन से ही आपकी अभिरुचि काव्य की ओर थी जिसकी क्रमिक वृद्धि बाद में हुई।

रणधीरलाल श्रीवास्तव

आप भोजपुरी में सुन्दर कविता करते हैं। इधर आप भोजपुरी में 'बरवै' छन्द में काव्य रचना करने में सलग्न हैं तथा 'बरवै शतक' नामक काव्य की रचना भी की है। यह ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। भोजपुरी में 'बरवै' की रचना कर रणधीरलाल जी ने यह प्रमाणित कर दिया है कि इस देहाती 'भाखा' में कितनी सुन्दर कविता की जा सकती है। भोजपुरी भाषा इस छन्द के लिये बहुत अनुकूल है।

रणधीर लाल जी ने अब तक कुल १०० 'बरवै' की रचना की है। परन्तु वे ही इन्हें उदीयमान कवि घोषित करने में पर्याप्त हैं। आपकी भाषा सरल और सुबोध होती है जिसमें भोजपुरी मुहावरों और ठेठ शब्दावली का प्रचुर प्रयोग मिलता है। यह उदाहरण लीजिए[1] :—

टहटहि उगलि अंजोरिया, ठहरे ना आंखि।
पहिरि चलेली लुगवा, बकला पांखि॥
बोलति रात चुचुहिया, बोलन लागि।
फहवो फाटल पियवा, अब त जागि।

उपर्युक्त दोनों 'बरवों' में 'टहटह उगना', 'चुचुहिया बोलना' तथा 'फह फटना' भोजपुरी के मुहावरे हैं जिनके अर्थ की विशेषता इस भाषा के विशेषज्ञ ही जान सकते हैं।

पति के वियोग में किसी विरहिणी की यह दशा देखिए। विरहाग्नि के कारण उसका हृदय ही गल गल कर आंखों के मार्ग से निकल रहा है। विरह की तीव्रता कितनी गभीर है[2] :—

---

१. लेखक का निजी संग्रह.
२ वही

बिरह अगिनिया छतिया धधके मोर।
गलि गलि बहेला करेजवा, अंखियन कोर ।।

कवि आगे कहता है कि यह कितने आश्चर्य की बात है कि पानी पड़ने से तो आग बुझ जाती है, शान्त हो जाती है परन्तु आसुओं के जल से विरह की यह अग्नि और भी धधक उठती है[1] :—

इ कतहू ना देखनी सुनली माइ।
बिरह अगिनिया धधकेला पनिया पाइ ।।

सरस, प्रेमी घनानन्द ने भी विरहाग्नि की विशेषता का वर्णन करते हुए लिखा है कि[2] :—

"पौन सो जागत आगि सुनी, पर पानी सों लागत आंखिन देखी।"

गोपियों के कृष्ण की साथ क्रीड़ा का यह मधुर वर्णन सुनिये। कवि ने कितनी सुन्दर रीति से इस लीला का विवरण दिया है[3] :—

होत पराते गइली जमुना तीर,
जानि अकेले रोकेले बावन वीर।
मागेला गोरस आइल कमरी ओढ़,
तापर राड बेसाहे ला गगरी फोड़।
काहे छीन झपट्टा करेल, दहिया चोर,
गोड़वा के धोवनवा, पइब न मोर।

भोजपुरी स्त्री, छेड़खानी करने वाले तथा उसके मटके को फोड़कर दही खाने वाले, श्री कृष्ण को किस प्रकार धता बता रही है। 'गोड़वा के धोवनवा' इस पद में कितनी व्यंजना भरी पड़ी है।

भक्ति की भावना में आकर कवि के द्वारा गाये गये इस पद को सुनिये[4] :-

लगतेहि नजरि इयरवा के हो,
मन छिदि गइल मोर।
रहि रहि कसकेले छतिया हो,
नयना ढरे ढरे लोर।
धरम, करम सब बिसेरेला हो,
भागेला लोक लाज।

---

१. वही.

२. घनानन्द कवित्त.

३. लेखक का निजी संग्रह. ४. वही.

छुटि गइले कुल परिवरवा उ हो,
कवने रहे नाहि आज।
धधकेले विरह अगिनिया हो,
केहू टिटके ना पास।
दर दर अलख जगाइले हो,
एक दरसन आस।
चुभिकिले प्रेम की नदिया नू हो,
पर बुझेला ना पियास।
रटत रटत जिमि लटि गइल हो,
अब होस ना हवास।

उपर्युक्त पद कितना सुन्दर बन पड़ा है। भगवान् की सच्ची भक्ति में पग भक्त का उल्लेख कितना मनोरम है।

"प्रशान्त"

"प्रशान्त" जी अपने इसी उपनाम से काव्य रचना करते हैं। आपकी कविता सरल होती है। भाषा प्राञ्जल है और भाव उच्चकोटि के हैं। आपकी 'मसानवां' नामक कविता 'भोजपुरी' में प्रकाशित हुई है जो बड़ी सुन्दर है।[1] कवि के हृदय में श्मशान का दृश्य देख कर अनेक प्रकार की भावनायें उत्पन्न हो रही हैं। कवि कहता है कि श्मशान जीवन की अमर कहानी को गाता है। जलती लाश से जो धुआ निकलता है, वह आकाश में छा जाता है। धूम्राच्छादित आकाश मानों मुह फेर कर यह कहता है कि श्मशान शव के व्याज से अपने भाग्य को जला रहा हो।

"हहरी जमुनिया के झगमग पनियां,
अमर जिनिगिया के गावेला कहनियां।
कहेला धुआइल मुह फेरि आसमानवा,
अपने करमवा जलावेला मसानवां।"

नीचे के पद्य में कवि ने सूर्य की उपमा लाल पगड़ी से दी है जो बड़ी ही सटीक है। सूर्यास्त होते ही समस्त संसार में अन्धकार छा जाता है और झोपड़ी सूनी पड़ जाती है:—

"काहे दोनी दिनवां के ललको पगड़िया,
धीरे-धीरे झुकि गईल पच्छिम कगरिया।

१. विशेष वर्णन के लिए देखिए: दुर्गाशंकर सिंह: भोजपुरी के कवि और काव्य।

रसे-रसे पसरल आइल अन्हरिया,
सून भइल सब टूटही झोपड़िया।"

श्मशान में कितने वीर पुरुषों की लाशें जलती हैं जिन्होंने संसार में अलौकिक कार्य किये थे। कितनों ने यमराज के आसन को भी हिला दिया था परन्तु आज वे भी 'मसान' में जल रहे हैं।

"जवने जिनिगिया के सँसरी पवनवा,
दिहलें हिलाई यमराज के आसनवाँ।
ओहिला भइले करवटिया जमानवाँ,
अमर परानवा जलावेला मसानवाँ१।"

(च) फुटकर पुस्तकें

भोजपुरी में बहुत सी फुटकल छोटी छोटी कविता की पुस्तकें इधर छपी हैं जिन्हें बाजारों अथवा मेला में गवैये गा गा कर बेचा करते हैं। ये पुस्तिकायें बहुत छोटी हैं। इनमें से कुछ तो दो चार पृष्ठों से अधिक नहीं हैं। यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से इन पुस्तिकाओं का कुछ विशेष मूल्य नहीं है परन्तु अनेक दृष्टियों से इनका महत्व कुछ कम नहीं है। इनकी विशेषता सामाजिक दृष्टि से अंकित की जा सकती है। इन छोटी पुस्तिकाओं में वर्तमान भोजपुरी समाज का चित्रण बड़ी सुन्दर नीति से किया गया है। कहीं मेला में घूमने वाली स्त्रियों का चित्रण पाया जाता है तो कहीं गंगा नहाने जाने वाली महिलाओं का वर्णन उपलब्ध होता है। आजकल बलिया जिले के ददरी मेले में अथवा सोनपुर के हरिहर क्षेत्र के मेले में जहाँ भी चले जाइये, आपको 'मलाघुमनी' और 'गंगा नहनवाँ' की सुन्दर कवितायें सुनने को मिलेंगी। 'झरेलवा' 'विदेसिया' और 'बनवारी' के गीत तो भोजपुरी प्रदेश के प्रत्येक गाँव में सुनने को मिलेंगे। यदि 'झरेलवा' में आधुनिक नवयुवकों की फैशनपरस्ती की खिल्ली सुन्दर रीति से उड़ाई गई है तो 'विदेसिया' में पति का विदेश जाना, स्त्री का वियोग, पति की लापरवाही से स्त्री के कष्ट और नारकीय जीवन का वर्णन किया गया है। यदि 'बनवारी' वाले गीत में बाल विवाह का कारुणिक चित्रण है तो 'विदेसिया' में किसी स्त्री की आत्मा पुकार रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन पुस्तिकाओं में भोजपुरी समाज का बड़ा ही सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है।

इनकी अन्य विशेषता साधारण, अनपढ़ जनता के मन का अनुरंजन करना है। गाँवों में न तो सिनेमा घर होते हैं और न नाटकगृह। वहाँ न तो रेडियो का स्टेशन

है और न फोनोग्राफ-सुनने का साधन। अत. देहाती लोगों का मनोरंजन हो तो कैसे हो। ये छोटी, नन्ही पुस्तिकायें इसी उद्देश्य का सम्पादन करती हैं। गांवों में लड़के इन गीतों को गाते फिरते हैं और देहाती लोग इन्हें सुनकर आनन्द लेते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं। एक बात और है। ये कविताएँ बहुत सरल, मीठी तथा सरस हैं। अतः जनता का इनके द्वारा पर्याप्त मनोरंजन होता है।

इन पुस्तिकाओं के कर्त्ता का नाम अज्ञात है। ये लेखक अधिकांश में जीवित व्यक्ति हैं परन्तु ये अपनी कृतियों पर अपना नाम देना लज्जाजनक समझते हैं। इन पुस्तिकाओं के एक प्रकाशक से जब हमने इसका कारण पूछा तो उसने सकुचाते हुए उत्तर दिया कि "बाबू जी ए छोट कितावन पर नाम का दिहल जाउ"। परन्तु लेखकों की इस लज्जाजनक प्रवृत्ति के कारण न तो हम इन पुस्तिकाओं के रचयिताओं तथा उनके जीवन वृत्त के संबध में कुछ जान सकते हैं और न इनके रचना काल का ही हम निर्णय कर सकते हैं। काशी से भोजपुरी की जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें किसी के भी कर्त्ता का नाम ज्ञात नहीं है। हां कलकत्ते वाली पुस्तकों में कुछ लेखकों का नाम अवश्य पाया जाता है। अत. उपर्युक्त कारण से इन पुस्तिकाओं के लेखकों के काल, नाम तथा जीवन वृत्त बतलाने में हम नितान्त असमर्थ हैं।

भोजपुरी की आजकल जो अनेक—जिनकी संख्या सौ से कम न होगी, पुस्तिकायें देखने में आती हैं वे प्रधानतया दो स्थानों से प्रकाशित हुई हैं। १. काशी[1] और २. कलकत्ता[2]। इनमें काशी से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की संख्या अधिक है। इन पुस्तिकाओं के विवरण प्रस्तुत करने के लिये हमने अपनी सुविधा के अनुसार काशी के प्रकाशन को 'गुल्लू प्रसाद प्रकाशन' नाम दिया है और कलकत्ते वाली पुस्तकों का नाम 'दूधनाथ प्रेस प्रकाशन' रखा है। अतः अगले पृष्ठों में क्रम प्राप्त 'गुल्लू प्रसाद प्रकाशन' का वर्णन किया जायगा। इन दोनों स्थानों के अतिरिक्त बिहार प्रान्त के आरा और छपरा जिलों से भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। इनका उल्लेख भी यथा स्थान होगा।

(क) गुल्लूप्रसाद प्रकाशन

काशी से प्रकाशित पुस्तकों में छपने की तिथि का भी निर्देश नहीं है अतः इनकी तुलनात्मक प्राचीनता का निश्चय नहीं हो सकता। इसलिये इन पुस्तकों के वर्णन में किसी क्रम का पालन करना असंभव है।

---

१. गुल्लूप्रसाद केदारनाथ बुकसेलर, कचौड़ी गली, बनारस सिटी।

२. प० रामनारायण त्रिवेदी, मैनेजर, दूधनाथ प्रेस, सलकिया, हवड़ा, कलकत्ता।

इस पुस्तिका में बारह पृष्ठ हैं। इसमें आजकल के फैशनेबुल नवयुवको को 'झरेलवा' की सज्ञा दी गई है और कालेज में पढने वाली और तितली बनकर 'सोसायटी' में घूमनेवाली लडकियों को 'झरेलिया' कहा गया है। आजकल अग्रेजी पढे लिखे नवयुवक काट, पैंट डटकर, विविध प्रकार का फैशन कर, जिस मस्ती के साथ घूमते फिरते हैं उसी का बडा ही सजीव चित्रण इस पुस्तिका में किया गया है। निम्नलिखित यह वर्णन कितना रोचक है:—

झरेलवा झरेलिया बहार[१]

'सेनगुप्ता धोती, कुरुता सिलिक के सिलाई लेला,
इगलिश काट जूता पेन्हो लेला रे झरेलवा।१।
लीलरा में टीका लाइ मुखवा में पान खाई,
नारी लेखा माग फारि लेला रे झरेलवा।२।
तेल व फूलेल लावे बेला औ चमेलिया के,
हाथवा में घडी बान्हो लेला रे झरेलवा।३।
चलती डगरिया में अगवा अइठत चले,
जाहाँ ताहाँ राह पूछि लेला रे झरेलवा।४।"

यह वर्णन कितना सत्य है यह बतलाने की आवश्यकता नही, इससे सभी लोग परिचित हैं।

आगे चल कर कवि ने अजकल के नवयुवको की कटु आलोचना की है और किस प्रकार आचरणहीनता के कारण वे विपत्ति में पड जाते हैं इसका सुन्दर वर्णन किया है।

जैसा कि इस पुस्तिका के नाम से विदित है इसमें दो खड हैं, झरेलवा बहार तथा झरेलिया बहार। इन दो ो खडो के लेखको ने सक्षेप में अपना परिचय देने की कृपा की है। प्रथम खण्ड के लखक 'बिसुन महतो' हैं जो बिहार प्रान्त के छपरा जिले के माझी थाना के अन्तर्गत नरपलिया बाजार के निवासी हैं[३]। दूसरे खण्ड के लेखक का नाम बिसुन प्रसाद है जो इसी जिले के नारायण पलिया गाव के निवासी हैं[४]। इस ग्रथ के प्रारम्भ में दोहा, चौपाई छन्द का प्रयाग किया गया है और शेष पुस्तक पूर्वी धुन में लिखी गई है।

---

१ मेवालाल गुप्त, बम्बई प्रिन्टिंग काटेज, बास फाटक, काशी में मुद्रित
२ मेवालाल गुप्त, बम्बइ प्रिन्टिंग काटेज, बासफाटक, काशी पृ० १–२
३ झरेलवा झरेलिया बहार पृ० ४
४ वही पृ ५

आजकल किस प्रकार स्त्रियाँ शृंगार करके मेला में घूमती हैं और अपने आचरण को नष्ट करती हैं उसका मनोरम चित्रण इस पद्य में देखिये[1] :—

"करिके सिंगार गोरी करे अभरनवा से,
गारवा में हरवा लगावे रे झरेलिया।
पोरे-पोरे अगुरी में पेन्हेले मुदरिया से,
कानवा में बलिया झुलावे रे झरेलिया।
सारी कासमीर पेन्ही चोलो बूंटादार पेन्ही,
लिलरा में बुन्दा करी लेलो रे झरेलिया।
कमर में सोभे तोरा बाको करधनिया से,
दातवा में मिसिया लगावे रे झरेलिया।
छम छम चाल चले देखत में मन ललचे।
चले ली डगरिया लचकत रे झरेलिया।"

कवि ने समाज सुधार की भावना से ही इस पुस्तक को लिखा है। वह अन्त में कहता है कि :—

"कहे बिसुन समझाय, यही कजरी बनाय,
रह अबहु से चलिया सुधार के।"

इस पुस्तिका के लेखक का नाम महादेव सिंह है। इसमें बारह पृष्ठ हैं।

मैना को जातसारी[2]

पुस्तक में मैना नामक स्त्री की आदर्श, रोचक प्रेम कथा का वर्णन है जो संक्षेप में इस प्रकार है.—

मैना किसी अहीर को लड़की थी और गोबिना गोबिन्द कोइरी का बालक था। ये दोनों गाय चराने के लिये जाया करते थे। प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में, इनके हृदय में प्रेम का अंकुर उत्पन्न हो गया जो क्रमश: पल्लवित होने लगा। एक दिन मैना स्नान करने के लिये किसी तालाब में गई थी। उसने अपना बहुमूल्य हार निकाल कर स्नान करना प्रारम्भ किया। इतने ही में कोई चील्ह पक्षी आकर उस हार को लेकर उड़ गया और तालाब सागर के बीच में स्थित चन्दन के वृक्ष पर रख दिया। मैना यह देख, अपने को असहाय पाकर तालाब के किनारे करुण स्वर में रोने लगी। गोबिना कहीं से उधर आ निकला और उस समाचार को सुनकर, अपनी जान को खतरे में डालकर उस वृक्ष से हार को उतार लाया। प्रसन्न होकर मैना उसके साथ जुआ खेलने लगी जिसमें उसका मोती का हार टूट गया। जब यह घर लौटी तब दुष्ट भावज ने

१. झरेलवा झरेलिया बहार, पृ० ६.
२. मेवलाल गुप्त, बम्बई प्रिन्टिंग काटेज, काशी में मुद्रित।

हार टूटने का कारण पूछा और मैना पर दुश्चरित्रता का लाछन लगाकर अपने पति से उसे ससुराल भेजने की प्रार्थना की। मैना को अपनी इच्छा के विरुद्ध ससुराल जाना पड़ा।

जब गोबिना को यह हाल मालूम हुआ तो वह साधु के वेश में, बंशी बजाते हुए वहाँ पहुँचा और मैना के घर के आगे अलख जगाने लगा। मैना यह सुनकर जोगी को देखने के लिये आई। इतने में गोरखनाथ जी वहाँ आ गये और उनके आशीष से दोनों प्रेमी सुख पूर्वक जीवन बिताने लगे।

यह पुस्तिका यद्यपि बहुत छोटी है परन्तु शृंगार एवं करुण रस का बड़ा सुन्दर परिपाक इसमें बन पड़ा है। साथ ही कवि ने भावज की दुष्टता की ओर भी संकेत किया है। गोबिना हार लेने के लिये सागर को तैरकर चन्दन के पेड़ की पतली शाखा पर अपने प्राणों की बाजी लगा कर चढ़ रहा है। यह दृश्य देखकर मैना का प्रेम उमड़ पड़ता है और वह कहने लगती है कि:-

"गछिया उपर गोबिना चढले पलइया हो,
गोबिना सनेहिया मैना बोलेले हो राम।१।

सुनु-सुनु गोबिना रे प्रान के पियरवा हो,
दिलवा के हरवा तुहु मरवा हो राम।२।

आग लागों हरवा रामा फिर आव मरवा हो,
हमरी बचनवाँ मनवाँ धारहु हो राम।३।

गिरबे सागर बिचवा, जइबे पतलवा हो,
तोहरी सुरतिया सपना होइहैं हो राम।४।[1]

इस गीत से मैना का प्रेम छलका पड़ता है। भला कौन स्त्री अपने प्रियतम के प्राणों को खतरे में डालने देगी। मैना अपनी ससुराल में गोबिना को आया जान उसके दर्शन के लिए व्याकुल हो उठती है और उसका दर्शन कर पूर्वस्मृति के जागृत होने से रोने लगती है[2] :-

"धइली सोना मोती, ऊपर धइली अंचरा हो,
जोगिया के दरसन करे चलली हो राम।
ना दुआर अइली एक पाव बाहर कइली,
मैना नयनवा निरवा ढरेला हो राम।"

---

१. मैना की जांतसारी पृ० ३।
२. वही. पृ० ६।

पूर्वी का परी — इस पुस्तिका के लेखक का नाम पन्नालाल है जिसका पता हमें इन गीतों में आये हुए नाम से चलता है।

'पन्नालाल' करे कवितइया, ज्ञान बताई देता ना।

इसमें कुल बारह पृष्ठ हैं जिनमें पूर्वी धुन में अनेक कवितायें लिखी गई हैं।[1] इन कविताओं में फुटकर प्रसंगो का वर्णन किया गया है जैसे कृष्ण की बाल लीला, भजन, प्रियतम का परदेश चला जाना और विरहिणी स्त्री का वर्णन।

कृष्ण गोपियों से छेड़खानी करते हैं, उनकी दही खा लेते हैं और उनका मटका फोड़ देते हैं। इस कारण रुष्ट हुई गोपियो का कृष्ण के प्रति यशोदा से यह उपालम्भ कितना सुन्दर बन पड़ा है[2]। इसे पढ कर सूर की पंक्तियां अनायास याद आ जाती है।

"बरज जसुदा मइया नाही मानेलें कन्हैया।
दहिया छिन छिन खाले ना। टेक।
छैकें नित हमहन कै रहिया, दहिया छिन २ खाले ना,
कइसे के जाऊँ, कइसे लजिया बचाऊँ, नहि तनिक डेरालें ना।
अहिर के जतिया, हमसे करे खुरफतिया, गर में बहियां डालें ना।
जइसे दुलहा के नइयाँ गर में बहियाँ डाले ना।
फारेलें चुनरिया, हमरी फोरेलें अथरिया,
नाहीं तनिक लजाले ना।
लेके मसके नरम कलइया,
नाही तनिक लजाले ना।

भोजपुरी ग्वालिन का यह उपालम्भ कितना चित्ताकर्षक है। कृष्ण की 'दुष्टता' का वर्णन कितनी मार्मिकता के साथ किया गया है।[2]

कुछ पूर्वी गीतों में विरह का चित्रण बड़ा सुन्दर हुआ है। यह गीत सुनिये :—

"चढ़ली जवनिया बिरहा करेला बेधनिया मोरी ननदी हो,
मीलल मोके बुढवा भतार, मोरी ननदी हो।
मदन सतावें नींद जरिको न आवे मोरी ननदी हो,
राखी कइसे जोवना संभार, मोरी ननदी हो।"

चम्पा चमेली की बात चीत — इस पुस्तिका के लेखक का नाम कपूर है पद से पता चलता है[3]—

---

१. पृष्ठ १२।
२. पृष्ठ ८।
३. चम्पा-चमेली की बातचीत, पृष्ठ ११।

"कजरी लिखलन 'कपूर', भइल पंच ले मंजूर,
और गाइ के सुनावत हर सवनवा में।"

इसमें चम्पा और चमेली की प्रेम कथा का वर्णन है। लेखक ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि मध्यप्रदेश के सूबे में चम्पालाल नामक अमीर का एक लडका रहता था। उसके मकान के पास ही चमेली नामक एक लड़की रहती थी जो परम सुन्दरी थी। चम्पालाल इसके रूप माधुर्य पर मुग्ध था। एक दिन चमेली बगीचे में फूल तोडने के लिये गयी। चम्पालाल भी संयोग से वहाँ आ पहुँचा, फिर इन दोनो में आपस में जो बातचीत हुई उसका विस्तृत विवरण इस पुस्तिका में दिया गया है।

चम्पालाल दुष्ट तथा लम्पट नौजवान है। वह चमेली से बुरा प्रस्ताव करता है। इस पर सती, साध्वी चमेली उसे जो उत्तर देती है वह भारतीय ललना के आदर्श के सर्वथा अनुकूल है।[१] इस उत्तर में स्वाभिमान तथा वीरता का भाव छिपा पडा है—

"बाड बाके तू जवान, काला भूत के समान,
बेंग मारत फिर जाइके, गड़हियाँ में।
वेसी करब जो बात, खइब जूता और लात,
जाइ मुह देख आपन, तनि पनिया में।
देखि सूरत हमार, काहे होला तोहरा जार,
मान बतिया हमार, यह घरिया में।
लेबि इज्जत उतार, कर मन में विचार,
हम नाही भूलबि, तोहरे जवनियाँ में।"

इसके लेखक का नाम नित्यानन्द है। यद्यपि उन्होंने लेखक के रूप में अपने नाम का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं किया परन्तु अनेक गीतों के अन्त में इस नाम के आने के कारण यह सहज में ही अनुमान किया जा सकता है।[२]

गारी मनोरंजन

भोजपुरी प्रदेश में विवाह के अवसर पर जब वर पक्ष का समधी, कन्या के घर पर मंडप में भात खाने के लिये जाता है उस समय पर गारी गाने की बडी प्रथा है। यदि उस शुभ अवसर पर समधी को 'गारी' नहीं सुनाई गई तो इसे वह अपना अपमान समझता है और भात खाने की रसम पूरी नहीं समझी जाती। अतः उक्त अवसर पर गाली गाना अत्यावश्यक है।

---

१. पृष्ठ ४।
२. गारी मनोरंजन पृ० १०, ११।

इस पुस्तक में इसी प्रकार की गालियाँ गायी गई हैं। राजा दशरथ अपने पुत्रों के विवाह के लिये जनकपुर गये हैं। वहाँ वे बारातियों के साथ जनक के घर भोजन करने गये हैं। उसी समय ये गालियाँ गायी गई हैं। ये गालियाँ ग्रामीण होते हुए भी ग्राम्य नहीं हैं। इनमें औचित्य की सीमा का उल्लंघन नहीं किया गया है। यह गीत लीजिये —

"हरियर बइरिया के उलटल पात हो,
बताव फलाने राम आपन जात हो।
माई मोरी धोबिन बाबा चुरिहार हो,
बहिनी जेवाई कहली जाति भठियार हो।"

वर पक्ष की निन्दा करना ही इन गालियों का उद्देश्य होता है परन्तु इस निन्दा के मूल में प्रेम होता है, वैर भाव या बदला लेना नहीं।

इस पुस्तिका के लेखक का नाम अज्ञात है। जैसा कि इसके नाम से विदित है इसमें बारह महीनों का बड़ा ही सरल वर्णन किया गया है। इसमें बारह सखियाँ हैं जो एक एक करके, प्रत्येक मास में होने वाले विरहिणी के कष्टों का वर्णन करती हैं। ग्रंथ के प्रारम्भ में प्रियतम के वियोग में विधुरा कोई विरहिणी अपनी दुर्दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि[१] —

बारहमासा

"अहे रतिया ना नीद दिन परे ना चैनवा,
विरहा सतावे जिया मोर हे।
चढली जवानी मोर खिलेला जोबनवा,
मदन के ताप ना सहाय हे।
अरे राति अँधियारी मोरि भइले मुदइया,
पिया बिनु मोहि ना सुहाय हे।
ओही पियवे करनवे भइली बन की कोइलिया,
कुहुकि कुहुकि दिन जाय हे।"

इस पद में कवि ने विरहिणी की उपमा वन में 'कुहू' 'कुहू' बोलने वाली कोयल से देकर जिस गंभीर भाव की अभिव्यक्ति की है वह सहृदय-हृदय-संवेद्य है।

---

१ वही. पृ० ६।
२• बारहमासा पृ० १।
३. वही पृ०

इस पुस्तक के प्रत्येक गीत में समाज का वडा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। वृद्ध विवाह[1], व्यभिचारी पति से विवाह[2], बाल विवाह आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों का वर्णन दु खद शब्दो में किया गया है। कवि ने भिन्न भिन्न सखियों द्वारा अपन दु ख कथन के व्याज से कुरीतियो की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया है।

इस पुस्तिका में किसी स्त्री के वियोग की करुण कथा बडे ही सुन्दर शब्दो में कही गई है। भोजपुरी प्रदेश के उत्साही नौजवान अपनी जीविका की खोज में कलकत्ता आसाम और ब्रह्मप्रदेश (बर्मा) को चले जाते हैं

प्यारी सुन्दरी वियोग

और वर्षो तक वहाँ से लौटकर नही आते। उनकी स्त्रियाँ वियोग क दिनो को किसी प्रकार काटती हुई अपने प्रियतम के आगे के दिनो को गिना करती हैं। जब निद ी पति वर्षो तक पत्र नही भेजता तब वे अपना सन्देश किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा भिजवा कर अपने दु ख की कहानी उसको सुनाती हैं।

उपर्युक्त पुस्तिका में किसी स्त्री क पति परदश चला गया है। जब वह अनेक वर्षो तक पत्र नही भेजता तो उसकी प्रियतमा एक बटोही के द्वारा अपने वियोग की कहानी लिख कर भेजती है। पति उस पत्र को पढकर रोने लगता है और अपने स्वामी से छुट्टी लेकर घर आता है। वह अपनी स्त्री के लिये वस्त्र और आभूषण लाता है और फिर दोनो सुख पूर्वक रहने लगते हैं। पति परदेश में चला गया है अत उसे परदेसिया के नाम से सबोधित किया गया है और स्त्री का सदेश ले जाने वाले बटोही—यात्री—को बटोहिया की सज्ञा दी गई है।

इसी छोटे से कथानक के भीतर भोजपुरी कवि ने अपनी प्रतिभा के बल से सरस रचना प्रस्तुत की है। करुण रस में सराबोर होने के कारण विदेसिया, परदेसिया और बटोहिया के गीत भोजपुरी प्रदेश में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। कौन ऐसा पाषाण हृदय होगा जो करुणा से भरे इन गीतो को पढ कर द्रवित न हो जाय और उसके आँखो से आँसुओ की झडी न लग जाय।

पति के वियोग में विरहिणी की यह दशा देखिये। कवि ने कितनी मार्मिकता से उसका चित्रण किया है[3] —

---

१ वही पृ० ३-४।
२ वही पृ० ४-५।
३ प्यारी सुन्दरी वियोग पृष्ठ २।

"हाय रे बेदरदा दरदिया नाहिं ओवे तोहि,
पत्थर की छतिया तोहार परदेसिया ।१।
दिनवाँ तो बीते राजा तोरी इन्तजरिया में,
रतिया नयनवा न नींद परदेसिया ।२।
घरी राति गइली रामा पछिली पहरवा से,
लहरे करेजवा हमार परदेसिया ।३।
अमवा बउरि गइलें लागल सरसइया से,
दिन दिन होला तइयार परदेसिया ।४।
एक दिन अइहैं रामा जुलुमी वयरिया से,
डार पात जैहैं रे नसाई परदेसिया ।५।"

पति के पास किसी बटोही भाई के द्वारा सन्देश भेजती हुई वह स्त्री कह रही है कि तुम मेरे प्रियतम के पास जाकर उनसे कहना कि[१] —

"तोरी धनी गइली रामा काली रे कोइलिया से
कुहुकेली अमवा की बाग हो बटोहिया।"

पति इस सन्देश को सुनकर मूर्छित होकर गिर पड़ता है। जब वह घर लौटता है और रात के समय घर का दरवाजा स्त्री से खोलने को कहता है तो वह उसे चोर समझ कर चिल्लाने लगती है। तब पति अपना परिचय देते हुए कहता है कि[२] —

"नाहिं हम ठगवा से नाहिं हम चोरवा से,
नाहिं हम हई बटमार प्यारी धनिया।
खोलहु केवड़िया रे पतरी तिरियवा से,
हम हउईं प्रान अधार प्यारी धनिया।"

इसी प्रकार से इस सुन्दर पुस्तक में अनेक सरस वर्णन भरे पड़े हैं।

इस पुस्तिका के लेखक डाक्टर मोतीचन्द श्री वास्तव हैं[३] जो गाव सहजौली जिला (आरा) के निवासी हैं। इसमें सोहर छन्द में गीत लिखे गये हैं जिनमें राम,

सोहर श्रृंगार

और कृष्ण के जन्म का वर्णन है। इसमें एक दो झूमर और जेवनार के गीत भी पाये जाते हैं। भाव और भाषा अत्यन्त साधारण है। इन सोहरों में राम और कृष्ण के जन्म पर उनके पिता और माता के द्वारा उत्सव मनाने और दान देनें का वर्णन है।

---

१ प्यारी सुन्दरी वियोग पृष्ठ ३।

२ वही पृष्ठ ८।

३ खूब सन देव मनावहु हो।
ललना 'मोतीचन्द' पुजि गइले आस जनम फल पावहु हो। सोहर शृंगार ६।

इस पुस्तिका के लेखक का नाम गोरखनाथ शर्मा 'रगजग' है जो विहार प्रान्त के शाहाबाद जिले के जगदीशपुर गाव के निवासी है[१]। इस गाव को सुप्रसिद्ध देशभक्त वीर कुअर सिंह की जन्म भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है। इसमें सीताहरण की कथा कही गयी है परन्तु वह पूरी नही हो पाई है। पुस्तक के आदि में दो पृष्ठो का लम्बा 'सुमिरन' है जिसमें सभी देवताओं की स्तुति की गई है। पुन रामायण के आरण्य काण्ड से कथा शुरू की गई है। पहले जयन्त की--जिसने सीता जी को चोंच से मारा था--कथा है। फिर राम का अत्रि मुनि के आश्रम में जाने का वर्णन है[२]। विराध वध के अनन्तर राम शरभंग मुनि का दर्शन करते हैं और यही यह पुस्तक समाप्त हो जाती है। पुस्तक सोरठी राग में लिखी गई है।

सीता हरण

इस पुस्तिका के लेखक प्यारेराम है जो बिहार प्रान्त के गया जिले के 'मरडा' गाव के निवासी है। जैसा कि इस पुस्तक के नाम से विदित होता है इसमें ननद और भावज का वार्तालाप है। लेखक ने संवाद प्रणाली का अनुसरण कर बाल-विवाह की बुराइयो को दिखलाने का प्रयत्न किया है।

ननदी भौजैया

किसी स्त्री का विवाह बालक पति से हो गया है। पति के बालक होने के कारण वरपक्ष वाले चार वर्ष तक गवना नही करा रहे हैं। इधर उसकी स्त्री युवावस्था के प्रभात में पदार्पण कर रही है। उसके अग-अग में कामदेव के चिह्न प्रकट हो रहे हैं। ऐसी दशा में वह अपनी दु खद कहानी भावज से कहती है तथा गवना करवा देने के लिये उससे आग्रह करती है। भावज चतुर स्त्री है। वह अपनी ननद की इस बात से रुष्ट होकर ऐसा कहने से मना करती है। अन्त में उसका गवना होता है परन्तु पति के 'अलप वयसवा' होने के कारण उसकी मनोकामना पूरी नही होती और वह अपने माता, पिता को बुरी तरह कोसती है।

इसी कथा को कवि ने बडे सुन्दर ढग से कहा है। वर्णन बडा ही रोचक है। स्त्री के शरीर में यौवन के आगमन का यह वर्णन देखिये :—

"चढली जवानी मोरे अग अग फरकैसे,
पिया बिनु हिया नित फाटे रे भउजिया।
घेरेले बदरिया दामिनि घहराई उठे,
रगे रगे मदन सतावे रे भउजिया।
बिरहा के, आगि मोरा लागे ला सरिरवा में,
फर फर फरके जोवन रे भउजिया।"

---

१. सीताहरण पृष्ठ ३।
२. सीताहरण पृ० ३।

जैसा कि 'गारी मनोरंजन" के विषय में लिखा गया है, यह पुस्तिका विवाह के अवसर पर गाई जाने वाली गालियों का संग्रह है। कृष्ण जी राधा से विवाह करने के लिये वृषभानु के यहाँ गये हैं। वहाँ वे जब भोजन करने के लिये बैठे हैं तब उनके पिता नन्द और माता यशोदा का नाम लेकर उन्हें गाली दी जा रही है। यह गाली प्रेम-पियारी होती है, अतः सुनने वालों को बुरी नहीं लगती। इस पुस्तिका के अन्तिम आठ पृष्ठों में रामचन्द्र जी के जन्म पर गाये जाने वाले नवीन सोहरों का संग्रह है।

बड़ी गोपाल गारी

इस पुस्तिका के लेखक का नाम अज्ञात है। इसके मुख पृष्ठ पर 'असली भिखारी नाटक' लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ 'असली' न होकर 'नकली' है। यदि यह वास्तव में भिखारी ठाकुर के द्वारा लिखा गया होता तो फिर 'असली' लिखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। जैसा कि इस ग्रंथ के नाम से विदित है इसमें मेला आदि के अवसर पर गंगा स्नान करने जाने वाली स्त्रियों का वर्णन है। भोजन के लिये सत्तू और नमक बाध कर जब भोजपुरी स्त्रियाँ झुंड बनाकर 'गंगा मइया' के गीत गाती हुई चलती हैं तब यह दृश्य सचमुच बड़ा सुहावना मालूम पड़ता है। यह वर्णन देखिये[१].—

भिखारी नाटक उर्फ गंगास्नान

"चल गोरिया करे गंगा असननवा।
सारी चोली पेन्ह कर सब अभरनवाँ।
तेहि पर सोभी सोना चांदी के गहनवां।
खाये खातिर बाध नून, सतुआ, पिसनवा।
बने त बनाल झट घर पकवनवां।"

यह ग्रंथ नाटक है अतः इसकी रचना गद्य पद्य दोनों में की गई है।

इस पुस्तिका के लेखक का नाम पं० राम एकवाल मिश्र 'रंगजंग' है जो आरा जिले के जगदीशपुर गाँव के निवासी हैं[२]। इसमें महात्मा गांधी की नृशंस हत्या का जो ३० जनवरी सन् १९४८ को हुई थी, वर्णन है। लेखक ने गोरठी राग में इस ग्रंथ को लिखा है। गांधीजी के गोली लगने से लेकर, श्मशान यात्रा तथा

बापू का हत्याकांड

१- भिखारी नाटक पृ० ३।

२- केदारनाथ मेदालाल बुकडिपो, बांस फाटक, बनारस, मूल्य ४ आना।

शव दाह का वर्णन सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत किया गया है। गाधीजी को गोली लगने का यह वर्णन सुनिये[1]—

"लोग रास्ता दिहले छोड, वापू चले मच की श्रोर,
श्रागे मरहट्ठा नाथू गोडसे वभनवा।
रहे दुई गज के दूरी, ना मरलस भाला छरी।
हत्यारा कइलस पिस्तौल निसनवा।
जब लगी पेट में गोलियाँ चिल्लाई वापू की पोतियाँ
हाहाकार मचल तब बिड़ला भवनवाँ।"

इसके बाद लाश की सजावट, श्मशान की तैयारी श्रौर दाह सस्कार का वर्णन है। भोजपुरी की काव्यधारा का श्रोत श्राज भी सूखा नहीं है यह इस पुस्तिका के पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है।

सोरठी का गीत

इस पुस्तक के लेखक का नाम एस० पी० सिंह है। कवि ने इसे पवारा का नाम दिया है। इस पुस्तक में श्रड़तालिस पृष्ठ हैं। सोरठी की कहानी बडी ही रोचक, मनोरजक श्रौर रोमाचकारी है। इसके पढने में उपन्यास का श्रानन्द श्राता है। सोरठी का सक्षिप्त कथानक, इसकी विशेषता तथा कविता का नमना भोजपुरी लोक-गाथा के प्रसग में श्रन्यत्र दिया जायगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि सोरठी की कहानी बड़ी सरस श्रौर काव्यमय है।

सोरठी बृजाभार

यह विशालकाय महाकाव्य है जिसमें चौसठ भाग हैं श्रौर पृष्ठों की सख्या ३३२ है। इसके लेखक का नाम बाबूलाल है जो गाव श्रमारुत बाजार, पोस्ट हरदौन, जिला गया, बिहार के निवासी हैं। पुस्तक का प्रकाशन काल सन् १९४६ है। 'सोरठी का गीत' की भाँति इस पुस्तक में भी सोरठी की कहानी तथा बृजाभार की बगाल श्रौर इन्द्रासन यात्रा विस्तार से वर्णित है। कवि ने कथानक को स्पष्ट करने के लिये बीच बीच में गद्य का भी प्रयोग किया है[2]। इस विषय का विस्तृत विवेचन श्रन्यत्र देखिये।

इस पुस्तक के लेखक का नाम श्रज्ञात है। इसमें बिहुला की कथा बडी रोचक भाषा में लिखी गई है जो छत्तीस पृष्ठों में समाप्त हुई है। इसकी कहानी

---

१ बापू का हत्याकाड पृ० १–६।
२ सोरठी बृजाभार पृ० ५३ आदि।

इतनी सरल और भाषा इतनी मर्मस्पर्शी है कि श्रोताओं का हृदय द्रवित हो जाता है। इस गीत का भोजपुरी प्रदेश में इतना प्रचार है कि इस विषय को लेकर अनेक कवियों ने कविता की है। बिहुला की कथा अत्यन्त प्राचीन जान पड़ती है। बंगला भाषा में इस विषय को लेकर सैंकडों ग्रन्थ लिखे गये हैं।

बिहुला गीत

इस पुस्तक के लेखक बाबूलाल हैं जिनका उल्लेख 'सोरठी बृजाभार' के संबंध में अभी हो चुका है। यह पुस्तक चौबीस भागों में लिखी गई है और १४६ पृष्ठों में समाप्त है। यह ग्रंथ भोजपुरी महाकाव्य है जिसमें 'शोभानयका' नामक किसी बनजारे या सौदागर की कथा विस्तार से कही गई है[1]। इसी प्रकार की दूसरी पुस्तक जिसका वर्णन अगले पृष्ठों में होगा कलकत्ते से भी प्रकाशित हुई है जिसका नाम 'नयका बनजारा' है।

शोभा नयका बनजारा

इस पुस्तिका के लेखक गोस्वामी चन्द्रशेखर भारती हैं जो बिहार प्रान्त के, जिला छपरा, पोस्ट आफिस दरौंदा, गाँव कोडारी मठिया के निवासी हैं[2]। जैसा कि पुस्तक के नाम से विदित है इसमें महात्मा गांधी की हत्या का वर्णन है। पश्चात् भारत के द्वारा स्वतन्त्रता की प्राप्ति और भारत विभाजन का भी उल्लेख है। इस पुस्तक के प्रारम्भ में तीन पृष्ठों में प्रत्येक पंक्ति में 'आई हो दादा' पद आया है। गांधी जी की हत्या का वर्णन करते समय इन पदों का बार-बार आना बड़ा ही हृदय द्रावक है।

गांधीजी का स्वर्गवास

इस पुस्तक के लेखक मुन्शी मुहम्मद हुसैन नामक कोई मुसलमान सज्जन हैं। ये जिला बलिया 'सरैयाँ' गांव के निवासी हैं और कलकत्ता में दुकान करते हैं जिसका उल्लेख उन्होंने पुस्तक के अन्त में किया है[3]। इस पुस्तक में कुल १६ पृष्ठ हैं। पुस्तक तीन भागों में विभक्त है।

नैहर खेलनी

१ नैहर खेलनी २ पानी भरनी ३ वियोग। पहले भाग में नैहर (मायका) में रहकर स्वच्छन्द गति से विहार करने वाली स्त्रियों का वर्णन किया गया है। 'पानी भरनी' में पनघट पर जाकर पानी भरने वाली कुलटा स्त्रियों का चित्रण किया गया है और 'वियोग' में विरह का वर्णन है। यद्यपि इस पुस्तक का

---

१ इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिये अन्यत्र देखिये।

२ लेखक द्वारा प्रकाशित।

३ नैहर खेलनी, पृ० १६।

रचयिता मुसलमान है परन्तु उसने बडी सुन्दर रीति से भोजपुरी भाषा का प्रयोग किया है। इस पुस्तक की भाषा शुद्ध भोजपुरी है। उर्दू अथवा फारसी के शब्द कही भी नही आये हैं। वर्णन रोचक और सजीव है। नैहर में घूमने वाली स्त्री का यह वर्णन देखिये[1] —

"भइया भतीजवा के खोजे के बहाना करि
ढूढे जाली टेमना ईयार नैहर खेलनी ।१।
देखि के इयरवा के मन मुसुकाई देलू
दतवा बिहसि बोले बात नैहर खेलनी ।२।"

पानी भरने के लिये जाने वाली कुलटा का यह सजीव चित्रण सुनिये[2] —

"अइठी अइठी गोरी पानी भरे घडवा में,
चमकि चमकि चले चाल पानी भरनी ।१।
छतिया उतान करि बटिया चलेली तुहू
कखिया तर घडवा दवाई पानी भरनी ।२।
झन झन बाजे तोर पाव के पैंजनिया स,
चम चम चमके लिलार पानी भरनी ।३।
रसे रसे पनिया तू भरेलू घइलिया में,
गते गते काटेलू करेज पानी भरनी ।४।"

अन्तिम दो पक्तियो का भाव कितना सुन्दर है। इस प्रकार से कवि ने नैहर में स्वच्छन्दता से विहार करने वाली तथा कुयें पर आकर अनार्य आचरण करने वाली स्त्रियों की बुराइयो को दिखलाते हुए उन्हें शुद्ध आचरण से रहने का उचित उपदेश दिया है।

इस पुस्तक के रचयिता महादेव प्रसाद सिंह 'घनश्याम' हैं जिनका उल्लेख पहिले हो चुका है। इसमें दो गीत—बनवारी गीत और जालिमसिंह का गीत—दिये गये हैं।

बनवारी गीत

भोजपुरी प्रदेश में 'बनवारी का गीत' बडा ही जनप्रिय है। जहाँ भी कही देहात में चले जाइये 'बनवारी हो हमरा के लरिका भतार' का मधुर स्वर आपको सुनाई पडेगा। इस गीत में बालविवाह की बुराइयो का उल्लेख किया है। किस प्रकार मूर्ख माता पिता अल्पकाल में ही अपने दुधमुहे बच्चो का विवाह तरुणी पत्नी से करके दोनो का जीवन सकटमय बना देते हैं इसी तथ्य का सुन्दर

---

१ नैहर खेलनी, पृ० २।
२ नैहर खेलनी, पृ० ६–७

चित्रण इस गीत में किया गया है। तरुणी स्त्री अपने बाल पति के दुःखों को रोती हुई कहती है[१] :—

"लरिका भतार लेके सुतली ओसरवा,
बनवारी हो जरि गइले एडि से कपार।
थपरा से मार, धइ बाह झहराई,
बनवारी हो माई माई करेले गोहार।
चुप होल चुप होल, हमरे बलमुंआ,
बनवारी हो, रहरी में बोलेला हुंडार।
सोरह बरीस कर हमरी उमिरिया,
बनवारी हो आठ कर सैया हमार।

इस पुस्तक[२] के लेखक डाक्टर मोतीचन्द श्रीवास्तव हैं जिनकी अनेक रचनाओं का विवरण पहिले दिया जा चुका है। इसमें—जैसा कि इसके नाम से विदित है—सास और पतोहू के वास्तविक विरोध का बड़ा ही रोचक वर्णन किया गया है।

सास पतोहू का झगड़ा

साथ ही ननद भौजाई, गोतिनी तथा पुरुष एवं स्त्री के पारस्परिक कलह का चित्रण भी कुछ कम मनोरंजक नहीं है। भोजपुरी समाज में सास और पतोहू का झगड़ा चिरकालीन एवं स्वाभाविक है। जिस पुत्र को माता ने जीवन भर लाड़ प्यार एवं निःस्वार्थ भाव से पाला हो उसपर यदि अन्य कोई अपना पूर्णरूपेण अधिकार जमाले तो इससे माता को दुःख पहुँचना स्वाभाविक और उचित ही है। सास इसी बात को लेकर पतोहू से कहती है[३] :—

"भरवा के सब के तू चापर चढाई देलू,
हमरो जामल अपनवलू बपकटनी।
आगि लागु जाहु रामा तोरा नइहरवा में,
कलना ले जार अब सही बपकटनी।"

सास का उद्गार कितना सच्चा और प्राकृतिक है। इस पर पतोहू सास का निरादर करती हुई कहती है कि[४] :—

"हमरा से बोलबू त ठीक नाहीं होइ अब,
धरि झोंटा हम निहुरइबों बेलउवा।

---

१. बनवारी गीत पृ० २।
२. बाबू ठाकुर प्रसाद गुप्त बुकसेलर, कचौड़ी गली, बनारस।
३. सास पतोहू का झगड़ा पृ० ४।
४. वही पृ० ४।

सामी जी से लाइ जोरि घर से निकालि देचि ।
चिरकुट लुगरी पेन्हाई रे बेलउवा।"

पतोहू की यह उक्ति कितनी उद्दडतापूर्ण है। इसी प्रकार ननद-भौजाई और स्त्री-पुरुष के कलह का बडा मार्मिक चित्रण इस पुस्तक में किया गया है।

(ख) दूधनाथ प्रेस प्रकाशन

भोजपुरी भाषा की अनेक पुस्तकें दूधनाथ प्रेस, सलकिया, हवडा, कलकत्ता से प० रामगोविन्द त्रिवेदी के प्रयत्न से प्रकाशित हुई हैं। ये पुस्तकें प्राय सभी बडी हैं तथा किसी लम्बे कथानक को लेकर विस्तार पूर्वक लिखी गई हैं। काव्य के सभी शास्त्रीय लक्षण इनमें न मिलने पर भी इन्हें भोजपुरी कथाकाव्य कहना कुछ अनुचित न होगा। गुल्लूप्रसाद प्रकाशन, काशी की पुस्तिकाओं की अपेक्षा ये पुस्तकें अधिक गम्भीर और महत्वपूर्ण हैं। इन पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

इस पुस्तक के लेखक का नाम बाबू महादेव प्रसाद सिंह है जो बिहार प्रान्त के आरा जिले के 'नाचाप' नामक गाव के निवासी हैं। देहात में इनका प्रचलित नाम खीझूसिंह है जिसका उल्लेख इन्होंने स्वय किया है[1]।

लोरिकायन इस ग्रथ में सुप्रसिद्ध भोजपुरी वीर लारिक या लोरकी की वीर गाथा का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। इसमें १६२ पृष्ठ हैं। पुस्तक दो खण्डो में समाप्त हुई है। कवि ने पुस्तक के अन्त में पूरबी राग में छ गीत लिखे हैं जिनका विषय प्रस्तुत पुस्तक से कुछ भी सबध नही रखता।

समें बिहुला की कथा विस्तार के साथ लिखी गई है। पुस्तक में नव खण्ड हैं तथा यह १६१ पृष्ठो में समाप्त हुई है। बिहुला की कथा प्रसिद्ध होने के कारण इस कथा को लेकर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं।

बिहुला विषहरी गुल्लूप्रसाद, काशी के यहाँ से भी 'बिहुला गीत' के नाम से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसका उल्लेख पिछले पृष्ठो में किया जा चुका है। इस ग्रथ के रचयिता का नाम ज्ञात नही है। पुस्तक सीधी सादी भाषा में लिखी गई है। कही कही मगही और मैथिली के भी क्रिया पद इसमें देखने को मिलते हैं।

---

१ लोरिकायन पृ० ४।

बाला लखन्दर अर्थात् बिहुला विषधरी

इस ग्रंथ के लेखक का नाम महादेव प्रसाद सिंह है। लेखक ने ग्रंथ के प्रारम्भ में बिहुला की कथा संक्षेप में दी है जो अत्यन्त उपयोगी है। ग्रन्थ के बीच में कथानक को स्पष्ट करने के लिये गद्यात्मक टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। पुस्तक के अन्तिम छः पृष्ठों में गद्य में कथा की समाप्ति की गई है।

नयका बनजारा

इस पुस्तक के भी लेखक महादेव प्रसाद सिंह हैं। पुस्तक आठ भागों में लिखी गई है और ९५ पृष्ठों में समाप्त की गई है। 'शोभा नयका बनजारा' नाम की एक दूसरी पुस्तक काशी से प्रकाशित हुई है जिसका उल्लेख हो चुका है। बीच बीच में कथानक को स्पष्ट करने के लिये गद्यात्मक टिप्पणियाँ भी दी गई हैं।

कुंवर विजई

इस पुस्तक के भी लेखक महादेव प्रसाद सिंह हैं। यह पुस्तक सोलह भागों में लिखी गई है और २२६ पृष्ठों में समाप्त हुई है। अन्तिम छब्बीस पृष्ठों में मोहन चन्द गूजर की कथा चार भागों में वर्णित है जो विजय मल के राग के तर्ज पर निबद्ध है। कवि ने विस्तार के साथ कुंवर विजयी की कथा गाई है। यह पुस्तक एक महाकाव्य है जिसमें लेखक ने वीर कुंवर विजयी के चरित्र का वर्णन किया है। भोजपुरी प्रदेश में इस वीर की कहानियाँ बड़ी प्रसिद्ध तथा प्रचलित हैं। अतः इस कहानी को लेकर अनेक छोटी मोटी पुस्तकें पद्य में निबद्ध हुई हैं जिनमें प्रस्तुत पुस्तक सभवतः सबसे बड़ी और सुन्दर है।

राजा ढोलन का गीत

इसके भी लेखक महादेव प्रसाद सिंह हैं। यह पुस्तक बारह भागों में निबद्ध है और २१४ पृष्ठों में समाप्त हुई है। राजा ढोलन राजा नल के पुत्र थे। इनका विवाह पिंगलगढ के राजा बुध की लड़की मारू के साथ हुआ था। ढोलन या ढोला परदेस चला जाता है और चौदह वर्ष के बाद घर लौटता है। मारू उसके विरह में पागल हो जाती है। ढोलन अपना दूसरा विवाह रेवा नामक स्त्री से कर लेता है। मारू अपना वियोग-सन्देश ढोलन के पास भेजती है परन्तु ढोलन पर उसका कुछ भी प्रभाव नही पडता। हरेवा और परेवा दो अन्य स्त्रियाँ ढोलन पर मोहित हो जाती हैं। अन्त में ढोलन अपनी पहिली स्त्री मारू के साथ सुख से निवास करता है। पुस्तक के आदि में राजा ढोलन के पिता राजा नल का विस्तृत जीवन चरित दिया गया है। यह पुस्तक प्रधानतया गद्य में

(ख) गद्य

संसार के प्राय सभी साहित्यों में गद्य का आविर्भाव पद्य के अनन्तर हुआ है। सस्कृत साहित्य को ही लीजिए। इसमें काव्य रचना का उदय उसी समय से माना जाता है जब आदि कवि बाल्मीकि का शोक श्लोक के रूप में परिणत होकर स्खलित हुआ था। परन्तु गद्य की रचना सस्कृत साहित्य में स्वतन्त्र रूप से बहुत पीछे प्रारम्भ हुई है। हिन्दी साहित्य की भी यही दशा है। इसका प्रारम्भ पृथ्वीराज रासो की रचना से माना जाता है परन्तु अनेक शताब्दियों तक इसमें गद्य रचना का नितान्त अभाव दीखता है। ठीक यही दशा भोजपुरी साहित्य की भी है। लोक गीतों के रूप में भोजपुरी कविता तो प्रचुर मात्रा में पाई जाती है जिसके कुछ सग्रह प्रकाशित भी हो चुके हैं[1]। परन्तु इसमें गद्य रचना का प्राय अभाव-सा ही है। आजकल भोजपुरी भाषा के जो कवि हैं वे भी पद्य रूप में ही अपनी प्रतिभा का प्रसाद हमें दे रहे हैं। गद्यात्मक काव्य लिखने की ओर उनका ध्यान अभी आकृष्ट नहीं हुआ है। इस प्रकार भोजपुरी गद्य उसके पद्य की अपेक्षा अभी अविकसित दशा में पड़ा हुआ है तथा इसका परिमाण भी बहुत थोड़ा है।

भोजपुरी गद्य में कोई प्राचीन साहित्यिक पुस्तक अभी तक देखने को नहीं मिली है। फिर भी भोजपुरी भाषा के बोलने वाले अपने दैनिक जीवन में लिखा पढ़ी के कामों में भोजपुरी गद्य को ही शताब्दियों से माध्यम मानते और व्यवहृत करते चले जा रहे हैं। बड़े बड़े राज्यों के कागजपत्र, सनद, दस्तावेज, चिट्ठी-पत्रों, पचायतनामा, व्यवसाय के बीजक, खजाना के बीजक आदि जितने मानव जीवन के व्यवहार की चीजें हैं वे सब भोजपुरी गद्य में सम्पादित हुई हैं।

भोजपुरी गद्य का विवरण प्रस्तुत करने के लिये हम इसके गद्य को साधारण-तया तीन भागों में बाँट सकते हैं —

१ प्राचीन कागज पत्रों में सुरक्षित गद्य।

२ आधुनिक पुस्तिकों में प्रयुक्त गद्य।

३ भोजपुरी लोक कथाओं में उपलब्ध गद्य।

भोजपुरी गद्य को कोई प्राचीन पुस्तक अभी तक देखने को नहीं मिली है। अत इसके प्राचीन रूप के दर्शन राजघराना, रईसों एव प्रतिष्ठित व्यक्तियों के यहाँ सुरक्षित कागज पत्रों में ही देखने को मिलता है।

प्राचीन कागज पत्रों में गद्य का रूप

भोजपुरी प्रदेश में जो सुलहनामे, दस्तावेज, बीजक आदि लिखे जाते थे वे प्राय गद्य ही में होते थे। परन्तु इन कागजपत्रों का कोई सग्रह अभी तक प्रकाशित

---

[1] दुर्गा शकर सिंह—भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस। भूमिका पृ० ३२।

नहीं हुआ है जिससे इनका सम्यक् स्वरूप जाना जा सके। ये कागज आज भी राजे, रजवाडो की सन्दूकों में बेठन में बधे पडे हैं। हाँ, डाक्टर उदयनारायण तिवारी और बाबू दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह के उद्योग से इन दो चार कागजो का प्रकाशन अवश्य हुआ है।

नीचे एक दानपत्र की प्रतिलिपि दी जाती है जो सम्वत् १७३५ की है[1]। अर्थात् ईसकी रचना आज से २७५ वर्ष पहले हुई थी। इस दानपत्र से प्राचीन भोजपुरी के स्वरूप को जाना जा सकता है[2]।

"गगा जी के तीर वशिनप्रीति शोश्ती श्री चक्रनारायणत्यादि विविध विरुदावली विराजमान मानोन्त श्री महाराज कुमार बाबू कनकशीघ्रदेवाना शदा शमरविजैना पिश्रिदत्त श्री बुधीराम पाडे वे दिहल मौजें चतर शिवार के दिहल धापमारी नाम बुधीरामपुर-शललशकठ शपयचतुर शीवा अवछिनके दिहल शकलप श्री . . .कुशहस्त दिहल शवत १७३५ शर्मे फाल्गुन बदी १ वार शुभवासरे मोजन मैं रवा। दशखत हरीनन्दन दाश"

यह दानपत्र अनेक दृष्टियो से बडा महत्वपूर्ण है परन्तु यहाँ हमारा उद्देश्य केवल भाषा से है। इस दानपत्र के अनुशीलन से स्पष्ट ही पता चल जाता है कि इसकी भाषा प्रचुर रूप में संस्कृत मिश्रित है। साथ ही इसमें समस्त पदो का भी बहुल प्रयोग किया गया है। 'विविध विरुदावली विराजमान मानोन्त' इस पद से हमारे कथन की पुष्टि पूर्णतया होती है। इसके संस्कृत गर्भित होने के कारण यह जान पडता है कि भोजपुरी प्रान्त पर काशी मडल का प्रचुर प्रभाव पडा है। काशी सदा से संस्कृत विद्या का केन्द्र रहा है। अत इन दानपत्रो में संस्कृत भाषा का प्रभाव पडना स्वाभाविक है।

उपर्युक्त उद्धरण में विभक्तियो के चिह्न और क्रियापदो से इसके भोजपुरी होने का प्रमाण मिलता है। भोजपुरी 'दिहल' (दिया) क्रिया-पद का प्रयोग इस दानपत्र में भिन्न भिन्न स्थानो पर बार बार किया गया है। मुगलो के समय में तथा अंग्रेजो के समय में भी फारसी तथा उर्दू के कचहरी की भाषा होने पर भी इस दानपत्र की भाषा शुद्ध संस्कृत मिश्रित भोजपुरी है। केवल एक ही 'दशखत' शब्द ऐसा है जो फारसी भाषा का है। इस पत्र में 'स' को 'श' लिखने की प्रवृत्ति जान पडती है। इसीलिये 'स्वस्ति' शब्द को 'शोश्ती' तथा सदासमर

---

१. सम्मेलन पत्रिका राष्ट्रभाषा अक भाग ३५ सख्या १०-११। श्रावन आश्विन २००५, पृ० ३१७

२. यह दानपत्र डा० उदयनारायण तिवारी के पास आज भी बहुत जीर्ण शीर्ण अवस्था में सुरक्षित है। उसे कीडों ने कई स्थान पर नष्ट भी कर दिया है जिससे उसके पढने में बडी कठिनाई होती है।

विजैना' को 'सदा समरविजैना' लिखा गया है। 'कुशहस्त' को कुशहस्त का रूप मिला है। आज भी देहात के लोग स तथा श के प्रयोग में विशेष अन्तर नहीं करते।

एक दूसरी सनद लीजिये जो सम्वत् १७९६ की है। यह सनद उदवन्त सिंह की है जो बिहार के शाहाबाद जिले के अन्तर्गत जगदीशपुर राज्य के बड़े प्रतापी पुरुष हो गये हैं। इनका बसाया हुआ आरा के पास एक बहुत बड़ा गांव है जो 'उदवन्त नगर' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हीं के प्रपौत्र बाबू कुंवर सिंह ने सन् १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया था। यह सनद इस प्रकार है[1] :—

"स्वस्ति श्री रिपुराज दैत्य नारायणत्यादि विवध वीरुदावली विराजमान मानोन्नति श्री महराज कुमार श्री बाबू ....जीउ देव देवाना सदासमर-विजयोना के सुवंस पाडे ब्राह्मण साकिन प्रयाग बदस्तूर पाछिल पुरोहिताई रजन्हि के दिहल इन्हका के रहल है ते ही बमोजिब हमहूं दिहल। जे प्रयाग जाय से इन्हही माने। ता० २९ माह रवि बिसाख सन् ११३७ साल मुकाम जगदीशपुर प्रगने बिहिया सम्वत् १७९६ अगहन बदी अमावस गोत सबनुक मूल उज्जैन जाति पवार।"

उपर्युक्त उद्धरण में प्रयाग निवासी सुवंश पांडेय को पुरोहिताई प्रदान करने का वर्णन है। इस सनद की भाषा भी पूर्व दानपत्र की ही भांति संस्कृत-बहुला है। समसित पदावली का प्रयोग अधिक किया गया है। 'विविध वीरुदावली विराजमान मानोन्नति', 'देवदेवाना सदा समर विजयोना' इत्यादि पद इसी बात की सूचना देते हैं। इस सनद की पदावली को पढ़कर गुप्त शिलालेखों का स्मरण हो जाता है जो अपनी समासबहुला संस्कृत भाषा के लिये प्रसिद्ध हैं।

इस सनद में 'दिहल' और 'रहल' भूतकालिक क्रिया पदों की उपलब्धि होती है जो २०० वर्षों के बाद भी आज इसी रूप में पाये जाते हैं। संबंध वाचक विशेषण 'जे' 'से' तथा विभक्तियों के चिह्न 'कें' या 'के' पाया जाता है। सम्बन्ध कारक विभक्ति का चिह्न आजकल 'कि' पाया जाता है। परन्तु आज से दो शताब्दि पूर्व इसका रूप 'कें' था जैसा कि इस सनद में मिलता है। इसमें केवल दो शब्द फारसी भाषा के आये हैं जिनमें पहला 'साकिन' है और दूसरा 'बमोजिब' है। ये शब्द भी ऐसे हैं जो भोजपुरी प्रदेश में आम जनता द्वारा व्यवहार में लाये जाते हैं।

तीसरा कागज सम्वत् १८२३ का है। यह बैरिया गांव में—जो बलिया जिले में है मिला है—इस प्रकार है[2] —

"श्री परमेस्वर प्रमेशर प्रम भटारके त्यागी राजा वलीवीक्रमा शाके शालीवाहन गत १६८८ संभलपुर पाती शाही श्री साहो गवहरजीन तखत दीली जलुशभोगरस

---

१. दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह—लोकगीत पृ० २३ भूमिका भाग।

२. डा० उदय नारायण तिवारी सम्मेलन पत्रिका भाग ३५, सं० १०–११, पृ० ११८।

पाचत्यश मडलै जमुदीपै भारतखण्डे वीहारनगरे त्यश अत्तरगोत शुबे अजीमाबाद नवाव धीरज नारयन वो शीताव राए शहर हाजीपुर शराय पटन अमल फिरग करनैल शाहब देवदेवानाम शादा शमर वीजइ नाम राजा श्री विक्रमादित्य की ली "

इस अवतरण में भी सस्कृत शब्दो की बहुलता है। इसमें सस्कृत शब्दा का प्रयोग तो हुआ है परन्तु वह विकृत रूप में ही है जैसे परमेश्वर को 'प्रमेशर' और 'परम' को प्रम लिखा गया है। सस्कृत का पुट इसमें इतना अधिक है कि सज्ञा शब्दो में भी सस्कृत के विभक्ति चिह्न लगे हैं, जैसे 'नगर में' न लिखकर नगरे लिखा है।

भाषण

उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त कुछ भाषणो में भी भोजपुरी साहित्य के सम्बन्ध में सामग्री उपलब्ध होती है। ये भाषण आधुनिक समय के ही हैं। इस सम्बन्ध में हिन्दू विश्वविद्यालय के सस्कृत के प्रोफेसर प० बलदेव उपाध्याय एम० ए० के दो भाषणा का उल्लेख आवश्यक है। इनमें से पहला भाषण हिन्दी प्रचारिणी सभा, बलिया के प्रथम अधिवेशन के स्वागत समिति के अध्यक्ष के पद से सन् १९२६ ई० में दिया गया था[1]। उपाध्याय जी का यह भाषण अनेक दृष्टियो से उपयोगी है। इसमें भोजपुरी भाषा और साहित्य के ऊपर सक्षिप्त रूप में बडा ही सुन्दर प्रकाश डाला गया है। विद्वान् लेखक ने कुछ भोजपुरी बिरहो को तथा आल्हा के एक प्रसग-सोना का शृगार-को उदाहरण रूप से इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। प्रारम्भ में भोजपुरी भाषा का साधारण परिचय तथा सक्षिप्त व्याकरण भी दिया गया है[2]। दूसरा भाषण बिहार के छपरा जिला अन्तर्गत सीवान नामक स्थान में भोजपुरी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन (सन् १९४६) में सभापति के पद से दिया गया है[3]। इस भाषण में उपाध्याय जी ने भोजपुरी भाषा और साहित्य का विवरण प्रस्तुत करते हुए भोजपुरी की उन्नति के लिये कुछ नये सुझाव भी उपस्थित किये हैं। इसमें भोजपुरी कविता के अनेक उदाहरण दिये गये है। यद्यपि यह भाषण अल्पकाय है परन्तु इसमें बहुत कुछ ज्ञातव्य बातें भरी पडी हैं।

आधुनिक पुस्तिकाओ में गद्य

---

१. हिन्दी प्रचारिणी सभा, बलिया (१९२६) द्वारा प्रकाशित।

२. वही पृ० १३-२५।

३ प्रकाशक—स्वागत मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सीवान १९४६।

राहुल सांकृत्यायन

राहुल जी का संक्षिप्त परिचय 'नाटकों' के प्रसंग में दिया जायगा। यहाँ पर उनकी आलोचना एक गद्य लेखक के रूप में की जायगी। राहुल जी ने भोजपुरी साहित्य सम्मेलन, गोपालगंज, छपरा में अध्यक्ष पद से जो भाषण सन् १९४७ में दिया था वह भोजपुरी गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस भाषण में उन्होंने भोजपुरी की गतिविधि की पूर्णरूप से समालोचना की है। राहुल जी का स्वभाव जितना सरल है उनकी भाषा भी उतनी ही सीधी और सादी है। उनकी भोजपुरी ठेठ भोजपुरी होती है। देहातियों के द्वारा दैनिक जीवन में जिस भोजपुरी का प्रयोग होता है राहुलजी ने उसी का प्रयोग अपने भाषण में किया है। उदाहरण के लिये यह अवतरण देखिये[१] :—

"हम ई नइखी कहत कि हिनुई ना पढावल जाव। जेकरा महटर, ओकील, डाकदर, इंजियर चाहे बड़का अमला फइला बने के होखे ओकरा हिनुई पढ़े के चाहीं। बड़का बिदा खातिर हिनुई पढ़ल जरूरी बा। बाकी सब लोग त ई कुलि दरजा खातिर तइयार नानु कइल जाला.........जेकरा ओतना समरथ होई से ओतना पढ़ी। लेकिन देसवा के समूचा लोग घर अऊर गाँव के एक एक बेकत ओतना ना पढ़ सकेला।"

ऊपर के उद्धरण की मीमांसा करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि राहुल जी ने ठेठ भोजपुरी का प्रयोग अपने भाषण में किया है और इसमें उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। ऊपर के गद्यांश में हिन्दी को हिनुई, मास्टर को 'महटर' डाक्टर को 'डाकदर' लिखा गया है। देहाती जनता इसी रूप में इन शब्दों का अभी भी प्रयोग करती है। अतः राहुल जी की भोजपुरी जनता की सर्वमान्य भोजपुरी है। इस अवतरण में कठिन शब्दों का नितान्त अभाव है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये[२] :—

"कतना लोग इ कहेला से बिदकत बा। होने पछिमहा लोग कहत बा, कि दिली से देवरिया ले हमनी के हेतना बडी चुके राज छोट हो जाई। ऊहे बात एगो बिहारो में कहल जात बा। लोग समझत बा कि ईहो एगो जिमदारी हवे। जो इ छोट भईल नेतागिरिओ छोट हो जाई। बाकी इ मन के भरमना ह।"

इस अवतरण में भी राहुल जी की ठेठ भोजपुरी भाषा का नमूना हमें देखने को मिलता है। 'बिदकना' तथा 'मन के भरमना' आदि भोजपुरी मुहावरों,

१. (भोजपुरी) पत्रिका वर्ष १ पृ० २०।
२. वही. पृ० २६।

का बडा ही सुन्दर प्रयोग हुआ है। 'नेतागिरिओ छोट हो जाई' इस पद में कितना व्यंग्य भरा पडा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राहुल जी की भाषा बडी प्रांजल, मुहावरेदार और मजी हुई है।

अवध बिहारी सुमन

श्री अवध बिहारी 'सुमन' ने 'जेहल क सनदि' नामक कहानियों की एक सुन्दर पुस्तक लिखी है। जहाँ तक हमें ज्ञात है भोजपुरी में मौलिक कहानियो की यह सर्व प्रथम पुस्तक है। इसमें दस कहानियाँ हैं जिनमें समाज के विभिन्न पहलुओं का दिग्दर्शन बडी सुन्दर रीति से किया गया है। डा० उदय नारायण तिवारी इस पुस्तक के विषय में लिखते हैं कि "इन कहानियो में अपने जनपद की आत्मा भली भाँति अभिव्यक्त हुई है। सुमन जी के भोजपुरी गल्पों का यह सकलन नि सन्देह रुचिकर है। भोजपुरी जनता की ठसक, रोब दाब, राग द्वेष आदि को यह पहली बार अपनी वाणी का उचित परिधान मिला है"। सुमन जी ने मलिकार, आतमघात, मवनी बाबा, कतवरू दादा, किसान भगवान्, चउर क पूजा, सनकी, दफा ३०२, जेहल क सनदि और कवि कयलास इन शीर्षको से कुल दस कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों में भोजपुरी समाज के विभिन्न अगो का चित्रण किया गया है। 'मलिकार' नामक कहानी में तिलक की दूषित प्रथा का उल्लेख किया है। लडकी का पिता अपनी पुत्र के लिये प्रचुर धन तिलक में देने में असमर्थ है। वह इसी चिन्ता में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

कहानी

'आतमघात' नामक कहानी में दुनियाँ के झझटो से परेशान होकर बलराम नामक युवक अपनी आत्महत्या कर लेता है। आजकल के तथाकथित साधू, महात्मा कितने चरित्र भ्रष्ट हो गये हैं इसका चित्र 'मवनी बाबा' नामक कहानी में पाया जाता है। 'कतवारू दादा' में वृद्ध विवाह का नगा चित्रण किया गया है। इसी प्रकार 'किसान भगवान्' में किसान की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। सुमन जी भोजपुरी समाज के विभिन्न दृश्यो को चित्रित करने में पूर्णतया सफल हुए हैं, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

'सुमन' की भाषा बडी सरल और सीधी सादी है। आपने अपनी कहानी की भाषा इतनी सरल रखी है कि अर्थ के समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती। 'आतमघात' का यह अवतरण देखिये —

---

१ 'जेहल क सनद'। प्रकाशक अजित कुमार मित्र नया विहार प्रेस लिमिटेड, कदम कुआ, पटना।

"जमुना घाट पर फूस का पलानी में बइठल बलराम आपन दुरदसा आ दुनियाँ क हाल देखि के झंखत रहलन। रहि रहि के उनका मन में उठे कि गरीब भइला ले बढ़ि के दूसर कवनो भारी पाप नइखे। बलिराम समाज का एह पाप क फल खुद भोगत रहलन। "आगा नाथ ना पाछा पगहा" वाली दसा भइलि चाहति रहे। चचेरा भाई गरीब जानि के उनके फरका कइ दिहले रहलन। घर में उनकर महतारी, मेहराए, त आऊ तीन बेकति के पूजी रहे। डेढ़ बिगहा खेत हीसा मिलल। ऊहो दुई बरिस का खाइल पीयल आ पढे का लेवा खरचा में रेहन धराई गइल।[1]"

उपर्युक्त उद्धरण में सीधी, सरल भाषा का प्रयोग पाया जाता है। इस कहानी का वर्ण्य विषय जितना सरल है, भाषा भी उतनी ही सीधी है। कठिन शब्दों को कहीं भी स्थान नहीं दिया गया है।

सुमन जी की कहानियों में भोजपुरी कहावतो का प्रयोग प्रचुर परिमाण में हुआ है। आपके प्रत्येक वाक्य में कोई न कोई कहावत पाई जाती है जिससे कथानक अत्यन्त रोचक और भावपूर्ण हो गया है। कुछ उदाहरण लीजिये.—

"अब्बार, पर उनवास' बयारि। बिपति के झोका एक ओर से ना आवे। बेल पर क मारल बबूर तर। एकही बेर माता क पूजा आ बहुरिया क नेवत। अनकर आटा अनकर घीव, साबस साबस बाबाजी। जवन रोगिया चाहे तवन बयदा बतावे[2]।"

इन उपर्युक्त मुहावरो का प्रयोग स्थान स्थान पर बडी सुन्दर रीति से हुआ है। इनकी भाषा बडी मुहावरेदार है। भोजपुरी मुहावरों का आपने बड़ी सफाई से प्रयोग किया है जिससे शैली में जान आ गई है। आप की भाषा में पद पद पर मुहावरों की भरमार है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं[3]:—

"जिनगी से हाथ धोये के परेला। जिनिगी के नाई चकोह में परलि बा। केहू आदि उठाइ के तिकवे वाला ना रहे। भोकास पारि के रोवे लगलन। एह घरी एक दम हाथ खाली बा और बुधि माटी होगइल।"

भोजपुरी लोककथाओं में गद्य

लोक कथाओं में भी भोजपुरी गद्य का स्वरूप देखने को मिलता है। ये लोक कथायें अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं अत: हम उनकी भाषा और शैली

---

१. जेहलि क सनदि पृ० १२।

२. वही. पृ० १२, २७।

३. जेहल क सनदि पृ० १, ४०।

"बेटा अबरु घोड़ा घर में ना बान्हाला।
भलाई अबरु पूछि पूछि। विपत्ति में केहू साथ ना देला।
जिन वियइली तिन ललइली, बेटा ले परोसिनी चइभली।
एक मँग मुड़नी का रे पटिया बन्हवनी।"

इन कथाओं में मुहावरों का भी प्रयोग पाया जाता है। कोई ऐसा परिच्छेद नहीं जिसमें एक, दो मुहावरे न मिलें। ये भोजपुरी जीवन से ही सबंध रखने वाले हैं और कथा को रोचक बनाने में सहायक होते हैं। मुहावरेदार भाषा का यह नमूना कितना सुन्दर है।

"हमार सास। अभी माझि के विहान ना भइल, अभी तोहार पियरी मइल ना भइल, अबरु तू जाए के कहत बाड।........लछटकही ओकर जाति ना निहुलभि। लछटकहो दिन रात हाड़ तोड़ि के घर के काम करे।..........उ ए गो आदमी से मिलल रहे।......उ मन मारिके घरे लौटि आवसु। न न पहरू बोले लागल।"

इस प्रकार इस उद्धरण में भोजपुरी मुहावरों का बड़ा सुन्दर प्रयोग हुआ है। इनके प्रयोग से अर्थ में विशेषता आ गई है जो अन्यथा सभव नहीं।

लोक कथाओं का गद्य बड़ा ही प्राजल है। इन कथाओं की मुहावरेदार भाषा में पहाड़ी नदी का सा प्रवाह है जो अत्यन्त निर्मल एव स्वच्छ होता है। इस कथन की पुष्टि में यह उद्धरण लीजिए:—

"रानी इ सोचिके मन मारिके उदास भइठलि रहली। तब सकर सुग्गा रानी से पुछ्उलि कि ए रानी! आजु का बात ह कि तू उदास बइठल बाडू। रानी आपन सब दुःख कहि सुनवली। सुग्गा कहलनि कि रानी, कहू त हम उड़त उड़त राजा के पास जाइ के तोहार दुःख कहि सुनाई।-रानी कहली कि ए हमार संकर सुग्गा, भलाई अबरू पूछि पूछि।"

(ग) नाटक

इस नाटक[1] के रचयिता प० रविदत्त शुक्ल हैं जो उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के निवासी थे। रविदत्त जी की यह कृति सभवत. भोजपुरी नाटको में सर्व प्रथम रचना है। इस नाटक की रचना सन् १८८४ ई० में हुई थी। यह हास्य रस प्रधान नाटक है[2]।

देवाक्षर चरित

१. लेखक का निजी सग्रह पृ० २८
२. काशी देशोपकारी सभा, बलिया की अनुमति और सहायता द्वारा प्रकाशित तथा लाइट प्रेस काशी (सन् १८८४ ई०) में गोपीनाथ पाठक द्वारा मुद्रित।

की विशेष विवेचना करने में असमर्थ है। प्रस्तुत लेखक ने कुछ कहानियो का संग्रह किया है उन्ही के आधार पर यहाँ संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

भोजपुरी लोक कथाओं का वर्ण्य विषय भोजपुरी समाज के जीवन से संबध रखता है। इनमें से कुछ कहानियाँ मनोरंजक, कुछ उपदेशात्मक और कुछ धार्मिक एवं पौराणिक हैं। मनोरंजन वाली कहानियाँ परिमाण में छोटी हैं। ये प्रधानतया बालको के विनोदार्थ कही जाती हैं। ढेला और पत्ती की कहानी ऐसी ही है[1]। दूसरी प्रकार की कहानियाँ वे हैं जिनमें कोई न कोई उपदेश दिया हुआ रहता है[2]। मानिक चन्दर की कथा ऐसी ही है जिसमें भाग्य के उलट फेर का सुन्दर वर्णन हुआ है।[3] इसमे जीवन की अस्थिरता का उपदेश दिया गया है। उदयभानु की कथा में हमें समाज का चित्रण उपलब्ध होता है।[4] इसी प्रकार राजाओं की कहानियो में पौराणिक कथाओं का सा आनन्द आता है।

इन लोक कथाओ की भाषा बडी सीधी-सादी एव सरल है। जैसा इसका वर्ण्य विषय है उसी के अनुसार भाषा का प्रयोग किया गया है। मानिक चन्दर की यह कथा सुनिये[5]।

"कुसुमपुर में एगो राजा राज करत रहले। उनुकरा एगो लडकी रहे जेकर नाम मोहिनी रहे। राजा के घर में धन, दौलत के ठेकान ना रहे। उनुकरा इहे एगो बेटी रहे एसे ओकर बडा दुलार करसु। इ लडकी बड़ा सुन्दर रहे अवरु एकरा गोराई से अन्हार घर में भी अजोर हो जात रहे। राजा अपना इ लडकी के बियाह बडा साध अवरु धूम धाम से मानिकचन्दर से कई दिहलन।"

उपर्युक्त कथा की भाषा कितनी सरल है। पूरे उद्धरण में एक भी कठिन शब्द नही आया है। अत कथा का प्रवाह अविरल गति से चलता जा रहा है। पढते ही सारी कथा मालूम हो जाती है।

इन कथाओं में कहावतों का प्रयोग बडी प्रचुरता से हुआ है इनके प्रयोग से भाषा में बल आ गया है और कथा का भाव अधिक स्पष्ट हो गया है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

१. लेखक की निजी संग्रह, पृ० २६।
२. वही पृ० २०।
३. वही. पृ० २७।
४. लेखक का निजी संग्रह, पृ० १।
५. लेखक का निजी संग्रह, पृ० १०।

डाक्टर सर ग्रियर्सन ने इस पुस्तक का सकेतमात्र अपनी लिंग्वस्टिक सर्वे आफ इंडिया नामक पुस्तक में किया है। परन्तु उनके उल्लेख से ज्ञात होता है कि समवत उन्हें यह पुस्तक देखने को नही मिली थी। इसकी जीर्ण शीर्ण प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के 'आर्य भाषा पुस्तकालय' में सग्रहीत है उसी के आधार पर इस पुस्तक का परिचय उपस्थित किया जाता है।

सन् १८८४ ई० में बलिया में डी० टी० राबर्ट्स नामक बडे ही मिलनसार और जनप्रिय कलक्टर बलिया में आये थे जिन्हे भारतीय सस्कृति से बडा प्रेम था। इनके नाम से बलिया में एक पुस्तकालय आज भी विद्यमान है जो 'राबर्ट्स लाइब्रेरी' के नाम से प्रसिद्ध है। इन कलक्टर साहब के प्रोत्साहन से बलिया में प्रति वर्ष रामलीला हुआ करती थी तथा नाटक खेले जाते थे। सन् १८८४ ई० में बाबू चतुर्भुज लाल डिपुटी कलक्टर के आग्रह तथा प्रेरणा से प० रविदत्त जी ने इस नाटक को इसी राममलीला के अवसर पर खेलने के लिये बनाया। इस नाटक से जनता का मनोरजन भी हो और कुछ शिक्षा भी मिले इन दोनों बातों का ध्यान इस रचना में रखा गया है।

रचना का अवसर

बलिया उन्ही दिनो में नया जिला बना हुआ था। इसके पहिले यह गाजीपुर जिले का एक भाग था। अत जनता में काफी उत्साह था। इस नाटक को खेलने के लिये रगमच का प्रबन्ध करने के लिये दूर दूर से लोग बुलाये गये थे। जब यह नाटक रामलीला के अवसर पर खेला गया तब इसे देखने के लिये शहर के गण्य मान्य रइस और प्रतिष्ठित जनता के अतिरिक्त स्वयम् भोजपुरी सस्कृति के प्रेमी राबर्ट्स साहब उपस्थित थे। यह नाटक बडी सफलता से खेला गया था जिसकी प्रशसा सभी लोगो ने मुक्त कठ से की थी[१]।

इस नाटक का नाम 'देवाक्षर चरित' है जो सस्कृत के दो अक्षर से मिलकर बना हुआ है। इसमें पहला शब्द देव है जिसका अर्थ देवता है और दूसरा 'अक्षर' है जिसका तात्पर्य लिपि से है। अत इसका पूर्ण अर्थ देवताओ की लिपि या 'देव नागरी' हुआ। इसी देवनागरी' लिपि का जीवन चरित इस नाटक में वर्णित है। किस प्रकार देवनागरी लिपि सस्कृत लिपि से उत्पन्न हुई है, इसका महत्व क्या है और आजकल इसकी अपेक्षा किस प्रकार हो रही है इन्ही विषयो का प्रतिपादन बडी सुन्दर रीति से इस नाटक में हुआ है। देवाक्षर जो इस नाटक का नेता है अपना परिचय देते हुए कहता है —

नाटक का नामकरण

१ देवाक्षर चरित भूमिका भाग

"संस्कृत ,देवन सुअन हम, देवाक्षर मम नाम।
बस देश आदिय रमत, आइ गए एहि ठाम।
श्रवण सुन्यौ या नगर को, हाकिम परम उदार।
जौ पहुँचावहु तासुढिग, मनिहौं बड उपकार।"

इस नाटक की रचना का प्रधान उद्देश्य नागरी लिपि के महत्व का प्रतिपादन करना तथा उसका प्रचार करना है। जिस समय यह नाटक लिखा गया था उस समय कचहरियों में उर्दू भाषा तथा फारसी लिपि का बोल बाला था। हिन्दी भाषा एवं नागरी लिपि घृणा की दृष्टि से देखी जाती थी। अतः कचहरियों में नागरी को भी स्थान देने की अपील इस ग्रंथ में की गई है। जनता में शिक्षा का प्रचार तभी होगा जब उनकी लिपि में शिक्षा दी जाय। लेखक कहता है कि —

रचना का उद्देश्य

"इब्तदाई तालीम कभी कामयाब नहीं हो सकती जब तक नागरी अक्षर कचहरियों में न जारी किये जायँ।"[1]

फारसी लिपि से क्या नुकसान है इसकी ओर संकेत करता हुआ नाटककार अपने एक पात्र के मुख से कहलवाता है कि[2] —

"दोहाई साहब के, सरकार हमनी के हाकिम और मा बाप के बराबर हुई। जो सरकार किहा से निआव ना होई तो उजड जाब। देखी जवन ई फारसी में खाना पूरी होत बाय एमें बडा उपद्रव मची। हमरा सीर के सरहमेयून लिखल गइल बा।"

इस प्रकार इस पुस्तक की रचना का उद्देश्य फारसी लिपि की बुराइयों को दिखलाकर नागरी लिपि को कचहरी में स्थान दिलाना है।

यह नाटक छः अंकों में लिखा गया है जिसमें कुल ४७ पृष्ठ हैं। यह पुस्तक प्रहसन है परन्तु जन- मनोरंजन के साथ ही इसमें तत्कालीन सरकारी विभागों में की जाने वाली बुराइयों को दिखला कर जनता को शिक्षित बनाना भी है। जब यह प्रहसन लिखा गया था उस समय बलिया जिले में सर्वे का काम हो रहा था। सरकारी कर्मचारी मनमाना घूस लेते थे तथा एक आदमी की जमीन दूसरे के नाम लिख देते थे। इस नाटक के पूर्वार्द्ध में इसी घूसखोरी तथा सरकारी कर्मचारियों की बेईमानी का वर्णन है। एक सर्वेयर साहब सस्ते दाम पर अन्न न लाने के कारण एक तहसीलदार को नौकरी से अलग कर देते हैं। पुस्तक के उत्तरार्ध में देवनागरी को कचहरियों में स्थान देने की अपील की गई है।[3]

वर्ण्य विषय

यह नाटक खड़ी बोली में लिखा गया है परन्तु इसके तीसरे और चौथे दृश्य या अंक भोजपुरी में निबद्ध है। इसकी भाषा सरल और सुबोध है। भोजपुरी के शब्दों का प्रयोग इसमें प्रचुर मात्रा में किया गया है। बीच-बीच में भोजपुरी कविताओं का प्रयोग अंगूठी में नगीना का काम कर रहा है। एक देहाती की यह उक्ति सुनिये[4] —

शैली एवं उदाहरण

१ देवाक्षर चरित पृ० ४। २ वही अंक ४, पृ० २१-२२।
३ वही अंक ५, ६। ४ देवाक्षर चरित अंक ३, पृ० १६।

"रउवां रुपया वाला बाटीं अदालत लड़व,
पे हमन पाच के तो एक जून पेट भर खइहू
के ठिकाना नाही बाय, अदालत कहाँ से लडब।
पहिले 'एक कवर भीतर, तब देवता और पित्तर'
एक और भगवानों के कोप हमरन पर वा कि
कई साल से सूखै पड़ल जात बाय, उ कहावत
ठीक जान परेला कि "निवलन के देवो सतावे ले।"

उपर्युक्त उद्धरण में दो भोजपुरी कहावतों का प्रयोग बडा ही सटीक और उचित हुआ है। एक दूसरा उदाहरण लीजिये[१] —

"घबडो मत, सुनली है कि आजकल
एह जिला कै हाकिम बड़ा दयावान और
इन्साफवर आइल बाटें, रइयत कै गोहार
सुनतैं निआव कै के 'दूध के दूध और पानी
कै पानी' कय देलें, से हमतो आजु हुअई
कै सपर के चलल बाटी।"

ऊपर के उदाहरण में ठेठ भोजपुरी के शब्दों के अतिरिक्त दो उर्दू के भी शब्द आये हैं परन्तु भोजपुरी ने उन्हें पचाकर आत्मसात् कर लिया है।

सर्वे के समय सरकारी नौकरों के अत्याचारों से परेशान होकर एक देहाती कहता है कि[२]:—

"का, कही बाबू, आजकल हमरन के मौत ही।
जब से एह जिलवा में बनोबस्त जारी भइल
है तब से हमन पांच अइसन जहुआइल
बाटी कि कौनो अकिलै काम नाही करत।"

भोजपुरी प्रदेश के लोग किस प्रकार अपना सब कुछ बेच कर भी मुकदमा लड़ने के लिये तैयार रहते हैं इसका वर्णन नीचे के अवतरण में देखिये[३]—

"हाइकोरट, विलायत, जहां तक होई घर,
दुआर बेचिके, सतुआ न खाइके, मुकदमा लड़ल जाई।"

कचहरियों में किस प्रकार घूस का बाजार गर्म है, उसकी और संकेत करता हुआ नाटककार लिखता है कि[४]—

"कहो बुद्धन सिंह, हमरा के ना चीन्हत बाट न।
हम उहै हई जेन तोहरा के सोमार के दिन कोठिया
पर एक रुपया इनाम देहले रहली। भाई बिरादर
होप के रउवा कै ऐसन बेमुरौवती ना चाही।
खातिर जमा रखो, हमार काम सिद्ध होय जाय तो फिर
रौआ के खुस कर देव।"

ऊपर लिखे अवतरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक की शैली सीधी-सादी, सरल, सुबोध है। जहाँ तहाँ मुहावरों तथा कहावतों का सुन्दर प्रयोग

---

१. देवाक्षर चरित पृ० १६। २. वही० अंक ४, पृ० २१। ३. वही. पृ० २०।
४. वही. पृ० १६-१७।

हुआ है। उर्दू और अंग्रेजी भाषा के शब्द भी व्यवहृत हैं परन्तु उनके भोजपुरी में प्रचलित रूप का ही प्रयोग किया गया है।

अनेक दृष्टियों से इस अल्पकाय नाटक का बड़ा महत्व है। पहले तो यह भोजपुरी भाषा का सर्वप्रथम नाटक है, दूसरे इसमें तत्कालीन भोजपुरी समाज का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। परन्तु इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आज से ७० वर्ष पूर्व इस नाटक के रचयिता ने नागरी लिपि का कचहरियों में प्रयोग तथा इसके प्रचार का प्रयास किया था।

नाटक का महत्व

२. भिखारी ठाकुर

भोजपुरी के नाटककारों में भिखारी ठाकुर का नाम प्रमुख है। ये कवि भी हैं तथा नाटककार भी। परन्तु आपकी प्रतिभा ने नाटक के क्षेत्र में अधिक विकास को प्राप्त किया है। आधुनिक कविगणों के परिचय के प्रसंग में आपके जीवन-चरित एवं कविता का परिचय दिया जा चुका है। यहाँ पर केवल इतना ही कहना पर्याप्त है आपका 'बिदेसिया नाटक' भोजपुरी समाज में अत्यन्त लोकप्रिय और प्रसिद्ध नाटक है। यह नाटक जनता को इतना पसन्द आया कि इसकी नकल पर अनेक बिदेसिया नाटक लिखे गये। इस प्रकार इनके बिदेसिया नाटक को आधुनिक बिदेसिया नाटकों का मूल स्रोत समझना चाहिये। भिखारी की नाटकीय भाषा बड़ी चुस्त एवं चलती है जिसमें भोजपुरी के ठेठ शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। आपकी भाषा में हास्य रस का पुट पाया जाता है। साथ ही विरह के प्रसंग में करुण रस की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। भिखारी ठाकुर नाटकों के लेखक ही नहीं बल्कि एक सफल अभिनेता भी हैं। आप अपनी सफल लेखनी और सुन्दर नाटचकला के द्वारा दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर लेते हैं।

३. राहुल नाटकावली

महापंडित, त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन का नाम कौन नहीं जानता। आप उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के निवासी हैं। आपका जीवन बड़ा रहस्य-मय है। पहले आप महन्त दामोदरदास के नाम से प्रसिद्ध थे परन्तु अब बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाने पर राहुल सांकृत्यायन के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप पाली भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। बौद्ध धर्म तथा दर्शन पर आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। आप प्रतिभावान् पुरुष हैं। आपकी लेखनी अविरल गति से विभिन्न विषयों, विज्ञान, धर्म, दर्शन, इतिहास, यात्रा, कहानी, नाटक तथा पुरातत्व आदि पर चला करती है और फलस्वरूप आपने पचासों ग्रंथों की रचना की है। आप बम्बई में होने वाले साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं।

भोजपुरी भाषा से आपको विशेष प्रेम है। आपकी मातृभाषा भोजपुरी ही है और आपस की बातचीत में इसका प्रयोग करना आप गौरव समझते हैं। आप भोजपुरी साहित्य सम्मेलन छपरा, बिहार के सभापति रह चुके हैं। आपने भोजपुरी में आठ नाटकों की रचना की है, जिनके नाम हैं — १. नइकी दुनियाँ,

२ ढुनमुन नेता, ३ मेहरारुन के दुरदसा, ४ जोंक, ५ ई हमार लड़ाई ६ देस रच्छक, ७ जपनिया राछस, ८ जरमनवा के हार निहचय।

जैसा कि इस ग्रंथ के नाम से विदित होता है इसमें वर्त्तमानकाल में जो नया ससार दिखाई पड रहा है उसी का उल्लेख है। राहुल जी ने इस नाटक में भोजपुरी समाज का अच्छा चित्रण किया है। किस प्रकार बूढी सास वधू को गाली देती है और तग करती है इसका वर्णन बडा सुन्दर हुआ है। समय के परिवर्तन के साथ ही परिस्थिति में कितना परिवर्तन हो जाता है इसकी भी झाँकी हमें इसमें देखने को मिलती है। पुराने समय में अन्न-वस्त्र का कितना कष्ट था और स्वराज हो जाने पर (यह नाटक भारत के स्वतन्त्र होने के पहले लिखा गया था) कितना सुख होगा इसका वर्णन करते हुए नाटक का एक पात्र बटुक कहता है कि[2]—"मुदा हमरा सुराज में भुइली में एका घर गरीब ना रहे पाई। केहू क लइका भूखा लगा न रहे पइहें। केहू मसनद पर बैंठल बैंठल घिउ मलीदा खा खा मोटाके भइसा न होये पाई आ ना केहू काम करत करत सिटुकि के लकडी होवे पाई।" लेखक ने देहातो में बिजली, सडक, नहर, खेती के उत्तम साधनो के होने से गावो की सुख-समृद्धि का जो वर्णन किया है वह सुन्दर है। पुराने गाव का नाम बदल कर 'लेनिनपुर' रखना तथा ऊँच नीच सबको साथी, कामरेड कहकर पुकारने से ज्ञात होता है कि लेखक साम्यवाद का प्रचारक है। इस नाटक की भाषा ठेठ तथा मुहावरेदार भोजपुरी है। भोजपुरी कहावतो का प्रयोग बडा सुन्दर हुआ है।

नइकी दुनियाँ[1]

इस नाटक के भी लेखक राहुल जी हैं। जैसा कि इस पुस्तक के शीर्षक से ज्ञात होता है इसमें स्त्रियो की दुर्दशा का वर्णन है। भोजपुरी समाज में स्त्रियों की जैसी दशा है उसका सजीव चित्रण राहुलजी ने इस नाटक में किया है। लेखक ने साम्यवादी दृष्टिकोण से स्त्री एव पुरुषो के समान अधिकार पर विचार किया है। युग युग से पुरुष जाति ने स्त्रियो पर कितना भयकर अत्याचार कर उन्हें घर में बन्दी बना रखा है, उन्हें अधिकार से वचित किया है, इसका सुन्दर वर्णन उपस्थित किया है। पुत्र-जन्म के अवसर पर आनन्द मनाया जाता है परन्तु बेटी का जन्म शोक का कारण होता है। जब दोनो एक ही माता के उदर से पैदा होते हैं तो दोनो में यह भेद क्यो?

मेहरारुन के दुरदसा

"एकै माई बपवा से एकही उदरवा में
दूनो के जनमवा भइल, रे पुरुखवा।
पूत के जनमवा में नाच आ सोहर होला,
बेटि के जनम परे सोग, रे पुरुखवा।"

पुरुष किस प्रकार घर में वेश्याओ को रख कर अपनी स्त्री को मारते पीटते हैं इसका भी चित्रण कितना सुन्दर है—

---

१. किताब महल, जीरो रोड, इलाहाबाद से प्रकाशित। २ नइकी दुनिया, पृष्ठ २२।

"अँखिये के देखते पतुरिया ले रखले वा,
मार गाली देला दिन रात, रे पुरुखवा।
ओहि रे ससुरवा मरदवा के किछु नाही।
तिरिया के भकसी झोकावें रे पुरुखवा।"

इस नाटक की नायिका लक्ष्मी है जो अन्य स्त्रियों को पुरुषों के अत्याचार का वर्णन सुनाती है और उन्हें संगठित होकर अपने अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करने की सम्मति देती है। पुत्री होने पर किस प्रकार लोग उसका वध कर दिया करते थे इसके विषय में वह कहती है कि—"अ बहिनी केतना जाति में लडकिन के जनमते मुवा दिहल जाला, हाँ आगि में झोकारि के ना। मरदा कमैवा के हाथ में रहित त उहे करित"[1] इस पुस्तक में सती प्रथा की घोर निन्दा की गई है। परदा प्रथा के कारण किस प्रकार स्त्रियों को घर में नजरबन्द रखा जाता है, नव विवाहिता वधू किस प्रकार अपने पति को भी नहीं पहचानती और रास्ते में ही खो जाती है इसका बड़ा सच्चा चित्र उपस्थित किया गया है। कोई स्त्री गाती है कि—

"बारे से परदा घुघटवा कढ़ौले
परबै भइल हमनी के जेहलवा।"

लेखक ने कहीं-कहीं पर अनवसर मूर्ति-पूजा की निन्दा की है।[2] पुस्तक में स्त्री-स्वच्छन्दता के लिये, जायदाद में उनके समान अधिकार के लिये वकालत की गई है और इस विषय में रूस का उदाहरण दिया गया है। स्त्री और पुरुषों में भेदभाव की भावना की ओर लक्षित करती हुई सीता एक पात्र कहती है कि:—

"आ मेहारारू के नीच नीच कहल जाला, जे
मेहरारू नीच होइत ओही से जनमल मरद
ऊँच कइसे हो जाला[3]।"

सारी पुस्तक में स्त्रियों की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दुर्दशा का बहुत सुन्दर चित्रण है। भाषा सरल एवं शैली मुहावरेदार है।

इस नाटक को राहुल जी ने हजारीबाग जेल में जुलाई सन् १९४२ ई० में लिखा था। इसमें साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इस नाटक में समाज के जितने शोषण करने वाले लोग हैं, जैसे जमींदार, साहूकार, राजा, महाराजा, उनकी पोल खोली गई है और गरीब किसानों की नग्न दशा का चित्रण किया गया है। धनहीन कृषक की यह दयनीय दशा देखिये[4]:—

"साझ बिहान के सरची नइखे, मेहरी मारे तान।
अन्न बिना मोरा लडका रोवे का करो हे भगवान्।
करजा काढ़ि काढि खेती कइली, खेतवे सूखल धान।
बैल बेंचि जिमदरवा के देली, सहुआ कहै बेइमान।"

---

१. मेहरारुन की दुरदसा पृष्ठ ७। २. वही- पृष्ठ २२-२३। ३. मेहरारुन की दुरदसा पृ० ३७। ४. जोंक पृ० ३।

देहाती किसान साहूकार एवं मिल-मालिकों के चक्कर में पड कर किस प्रकार पीसा जाता है इसका सजीव चित्रण इस पद्य में किया गया है[1]—

"हाइ हो देहिया लगली जोंक।
रात दिना हम कमवा में खटली, कपरा लेहली ठोक।
डेढा सवाई सहुग्रा वइले देले करेजवा भाक।
खोलि दुकनिया सेठवा नटे देवे के नाही राक।
मिल में वइठि मजुरवा रावे भकभी देहले झाक।

यह नाटक सन् १६४२ में ही लिखा गया था। इसमें जापानियो की निर्दयता एवं दुष्टता का वर्णन किया गया है। एक जापानी दलाल जापान की प्रशंसा करता है और किसान उसकी दलीलों का खंडन करता है। जापानियो ने कोरिया में जो अत्याचार किया था उसका भी वर्णन यहाँ किया गया है। जापान में वेश्या वृत्ति की जो प्रथा है उसके व्यापक प्रभाव से बचने के लिये जुम्मन कहता है कि[2] "हाइ छपरा आरा मोतिहारी हाइ कुलि सहर दिहात। सजग हो जा भइया। भगवाने बजार ना, कुलि छपरा के रंडीखाना बना दा। अपना तीर तरुआरिन पर सान ना धर ब।'

जपनिया राछछ

जापानियों ने चीन पर आक्रमण कर वहाँ जो अत्याचार किया है उसका उल्लेख इस पद्य में पाया जाता है[3] —

"अगिया लगौले लेले हाथ में लुकरिया
मोरा फूहान गाव।
पट पट जरे घर लपटि अकसवा,
धुआ उठे चारा ठाव।'

इसी अत्याचार के कारण जापानियों को 'राछछ' कहा गया है। चीन में लाल सेना और राष्ट्रीय सरकार में जो लडाई उस समय हो रही थी उसकी ओर भी इसमें संकेत किया गया है।

यह नाटक सन् १६४२ ई० में लिखा गया था। विद्वान् लेखक ने जर्मनी के परास्त होने की भविष्यवाणी उस समय की थी जो अन्त में सत्य निकली। इस नाटक में प्रधान दो पात्र हैं। १ भसुडी और दूसरा घरभरन। भसुडी जर्मनी की प्रशंसा करता है और घरभरन उसके अत्याचारों का वर्णन। भसुडी कहता है कि 'हिटलर का आवते जरमनी में भूखा लगा केहू ना रहि गइल।' राम सुभग भी घरभरन के विचारों का पोषक है वह जर्मनो के अत्याचारों को बतलाता हुआ कहता है कि 'मास्को का नगीचा नया पोलियाना गाव में पनरह से साठ बरिस तक के कुलि मरद मेहरारून के माघ

जरमनवा के हार निहिचय

---

१ वही पृ० १४। २ जपनिया राछछ पृ० १६। ३ वही पृ० १३।

पूस का जाड़ा पाला में एगो घर ठूंसि के ताला बन्द कर देहले". जर्मनी के इन्ही अत्याचारों के कारण राम सुभग आदि गाते हैं कि :[१]

"जितिया त होई हमार, रछछवा ना बचिहैं।
पाच पाच बरिस से मुड़िया पटकलस।
हिटलर बजवलसि गाल, जरमनवा ना बचिहैं।
लाली फउजिया रछछवन के मारत
दिहले बिताय एक साल, रछछवा ना बचिहैं।"

अन्त में इस लड़ाई से किसान मजदूरों को कितना कष्ट हो रहा उसका वर्णन कर नाटक समाप्त हो जाता है।

देस रच्छक: इस नाटक में देश की रक्षा करने वाले सिपाहियों का उल्लेख है। जापानियों की बम-वर्षा के कारण कुछ लोग वर्मा से भाग रहे हैं। वे लोग आपस में जापान के द्वारा चीन, शघाई और हांकाग में किये गये अत्याचारों का वर्णन करते हैं। बर्मा से भागने में उन दिनों में लोगों को क्या क्या कष्ट उठाना पड़ा इसका भी विवरण पाया जाता है। मुसीबत के दिनों में एक व्यक्ति दूसरे की सहायता भी करता है और अपनी कठिनाइयों का ख्याल न कर दूसरे को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करता है।

वर्मा में हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने जो बहादुरी का काम किया था उसका उल्लेख मिलता है। सोहन लाल, जो सेना का आफिसर है, कहता है कि "जमदार सुखलाल सिंह से बढ़कर हमार बहादुरी नइखे बहिन। ऊ आपन परान देके हमरा पलटन के जिऊ बचौले।"[२] शान्ता सोहन लाल की प्रशंसा करती हुई कहती है:— "सुनतानी तीनो हजार पलटन में बडका अफसर कुली धराय मराय गइले, आ अपने ही कमान अपना हाथ में ले के समुच्चा पलटन के छिन्द बिन के एह पार निकालि ले अइनी।"[३] शान्ता आगे जापानी आततायियों की निन्दा करती है। कप्तान शान्ता से कहता है कि, जहाँ देश की रक्षा का प्रश्न आयेगा वहाँ हमी सिपाही आगे दिखाई देंगे। जापानियों का हम लोगों ने वर्मा में मुकाबला किया। यदि इस देश में आयेंगे तो यहाँ भी उनसे लडेंगे।

ढुनमु नेता इस नाटक में एक ऐसे कांग्रेसी नेता का चरित्र-चित्रण किया गया है, जिनका कोई सिद्धान्त नहीं है और जो कभी कांग्रेस के पक्ष में व्याख्यान देते हैं और जमीन्दारों की सहायता के लिये तैयार हो जाते हैं। संभवतः इसीलिये इनका नाम 'ढुनमुन नेता' पड़ गया है। वे जमीन्दारों की निन्दा कर किसानों को कांग्रेस को वोट देने के लिये सलाह देते हैं। परन्तु जब जमीन्दारी प्रथा के उन्मूलन का प्रश्न आता है तो स्वयं जमीन्दार होने के कारण इस प्रथा के समर्थन में व्याख्यान देते हैं। सियार नारायण कहता है कि "हमरो जिमदारी में सौ बिगहा पर आखि

---

१. जरमनवा के हार निहिचय पृ० ३१। २. देश रच्छक पृ० २०। ३. वही. पृ० २०।

गडौले रहलन, मुदा कवना तरह से गरह टरल।"[1] ढुनमुन सिंह, जो अपने को नेता मानते हैं, महात्मा जी की सदा दुहाई देते रहते हैं। हरपाल उनका प्रतिद्वन्द्वी है और उनकी सदा आलोचना करता रहता है।[2] हरपाल गांधी जी के गाव पर जो गांधी आश्रम और हरिजन आश्रम खुल रहे हैं उनकी पोल खोलता है। हरपाल साम्यवाद में विश्वास रखता है। वह कहता है कि "जौना दिन रूस से ललका झडा उतरि जाई, किसान मजदूर राज वहाँ से बरबाद हो जाई, ओही दिन दुनियाँ भर के किसान मजदूरन के गले लात लगि जाई।"[3] अन्त में ढुनमुन का चरित्र चित्रण कर नाटक समाप्त हो जाता है।[4]

"एन कर ढुनमुन ह नाव, ई नेता हवे बड भारी।
कबहु चरखवा, खदरवा के गीत गावे मिलवो कबहु महतारी।
कबहु मजुरवा किसनवा के रजवा, सेठन के कबहु पुजारी।
छिप छिप के गावे जेपनवो के गीतिया, एनकर देहे हुसियारी।"

इस नाटक में द्वितीय महासमर की चर्चा की गई है। साम्यवादियों का इस लडाई के विषय में यह कहना था कि यह महासमर जनता की लडाई थी और इसीलिये उन्होंने जनता को इसमें भाग लेने को प्रोत्साहित किया था।

ई हमार लडाई : इस नाटक में संक्षिप्त रूपमें यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि यह लडाई जनता का युद्ध 'पीपुल्स वार' है अत इसमें सभी लोगों को भाग लेना चाहिए। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर यह नाटक लिखा गया है।

इस प्रकार कुल मिलाकर राहुल जी ने आठ नाटक लिखे हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन गत पृष्ठों में उपस्थित किया गया है।[5]

इन नाटकों की भाषा बडी, सरल, सीधीसादी और मुहावरेदार है जैसा कि ऊपर के उद्धरणों से विदित होता है। राहुल जी ठेठ भोजपुरी लिखने में सिद्ध-हस्त हैं। उन्होंने अंग्रेजी भाषा के जिन शब्दों का प्रयोग किया है उन्हें बिल्कुल भोजपुरी बना लिया है। जैसे बलिहटर (बैरिस्टर), मजिस्टर, (मजिस्ट्रेट)। आपका भोजपुरी गद्य नितान्त प्राजल, प्रवाहपूर्ण एव प्रसन्न है।

४. गोरखनाथ चौबे

उल्टा जमाना नामक नाटक के लेखक प० गोरखनाथ चौबे हैं। आप गोरखपुर जिले के निवासी हैं। कुछ दिनों तक आप हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के रजिस्ट्रार भी थे। आपने नागरिक-शास्त्र पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं जो बडी लोकप्रिय हैं।

उल्टा जमाना[6]

---

१ ढुनमुन नेता पृ० ११ २ वही पृ० १५। ३ ढुनमुन नेता पृ० २३। ४ वही. पृ० ४४। ५ नाटकों में से नइकी दुनिया, जोंक, हमार लड़ाई ये तीन नाटक किताब महल, जीरो रोड, इलाहाबाद सन् १९४२ ई० से और शेष नाटक नइकी दुनिया, छपरा बिहार से सन् १९४२ ई० में प्रकाशित हुए हैं। ६ लेखक गोरखनाथ चौबे। प्रकाशक . सतयुग आश्रम, बहादुरगंज इलाहाबाद।

आपने इस छोटे से नाटक में आजकल के समाज का सुन्दर चित्रण किया है। सुधार के नाम पर किस प्रकार उत्साही सुधारक गण अन्धेर मचाते हैं इसका उल्लेख इसमें किया गया है। किस प्रकार आधुनिक पढ़ी लिखी स्त्रियाँ घर, गृहस्थी का काम काज पर रख कर सभा सोसाइटी में अपना समय बरबाद करती हैं और घर की शान्ति को नष्ट कर देती हैं उसका सुन्दर चित्रण किया गया है। नाटक का एक पात्र स्त्रियों की परतन्त्रता की शिकायत करता है तो दूसरा उसका समर्थन करता है। कोई स्त्री कहती है कि "गरीबी जवन चाहे तवन कराबे, नाहीं त हमरी दस के मरद मेहरारू के सोना अइसन जोगवे ले। बेटी बहिन खातिर सर के धरती ऊपर क दें।"[1] आजकल समाज में जो उच्छृंखलता दिखाई पड़ती है लड़का पिता का कहना नहीं मानता, पतोहू सास की आज्ञा का उल्लंघन करती है और पत्नी पति का निरादर करती है, आदि बातों का मार्मिक चित्रण किया गया है। आजकल की शिक्षा की आलोचना करती हुई बुढ़ुवा एक पात्र कहती है कि "का आजुये कालिह क पढ़ाई, पढाई कहल जाला जे मेहरारू मरदे से बाजे, पतोहि सासू से लड़े आ घर दुआर छोड़ि के दुनिया में साभा करे। ई पढ़ाई क दिन चली बुढ़िया।"[2] यह उक्ति कितनी सटीक है। आजकल समाज में जो अनाचार फैला हुआ है उसकी बड़ी सुन्दर आलोचना निम्नांकित पंक्तियों में हुई है।

"जमाना बड़ा खराब बा। दूसरे के बहिन बेटी के आजु कालिह क अदमियाँ आपन बहिन बेटी नइसे जानत   अब त दिन ही आसी अगुरी क के पच दूसरे के लूटि लेवे चाहता।"[3]

पुस्तक की भाषा बड़ी सरल और मुहावरेदार है। विद्वान लेखक ने मुहावरों और कहावतों का पद-पद पर प्रयोग किया है। उदाहरण "एकर नतीजा ई है भिनत कि धोबी 'क कुकुर न घर क न घाट क'।"[4] "रदी क भाव पूछे छ पसेरी बनउर।"[5] सज्जी धुकधुर गते नहइहैं त हांडी के छूटी। सज्जी बात के एकके बतकहा" आदि आदि। मुहावरों का प्रयोग भी बड़ा सुन्दर हुआ है। यथा

लइकनिआ के बनहा सुग्गा बना देत बाड़ी,
तोहूँ माहके की तरे गुलरी क बिरौने बाड़ी,
अइसन जहिया होई तहिया बदरे में फूल लागि जाई।
सासु, ससुर सब उनके हाथे हाथे ले ले बा"

आदि। इस प्रकार पुस्तक की शैली चुस्त और मँजी हुई है।

---

१ उलग जमाना पृ० २८। २ वही पृ० २३। ३ वही. २०। ४ वही पृ० ४। ५. वही पृ० ५।

अध्याय ३

(अ) लोक गीतों की भारतीय परम्परा

लोक गीतों की परम्परा बहुत पुरानी है। भारतीय साहित्य में इनकी उत्पत्ति और विकास की कहानी बडी मनोरंजक है। किस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल में लोक गीतो का प्रथम प्रचार हुआ और वे किस प्रकार भिन्न-भिन्न शताब्दियों से होकर वर्त्तमान अवस्था में पहुँचे हैं। यह विषय नितान्त विचारणीय और मननीय है।

जिस प्रकार आजकल पुत्रजन्म, यज्ञोपवीत, और विवाह के अवसर पर गीत गाये जाते हैं उसी प्रकार वैदिक युग मे भी इन उत्सवों पर मनोहर गीतों के गाने का निर्देश वैदिक ग्रन्थो में उपलब्ध होता है। ये गीत 'गाथाओं' के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्राचीन वैदिक साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान-स्थान पर पाया जाता है, वे ही लोक गीत की पूर्व प्रतिनिधि हैं। 'गाथा' शब्द का अर्थ है पद्य या गीत और इस अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद के अनेक मन्त्रो में पाया जाता है।

वेद

गाने वाले के अर्थ में 'गाथिन्' शब्द का व्यवहार ऋग्वेद में किया गया है। 'गाथा' शब्द का प्रयोग एक प्रकार के विशिष्ट मन्त्र के अर्थ में ऋग्वेद में पाया जाता है। इसके साथ ही 'रैभी' और 'नाराशसी' से गाथा की पृथक्ता का प्रतिपादन भी उपलब्ध होता है। सायण भाष्य के अनुशीलन करने से स्पष्ट पता चलता है कि विवाह के अवसर पर विभिन्न वैवाहिक विधियों के समय जो गीत गाये जाते थे वे रैभी, नाराशसी और गाथा के नाम से प्रसिद्ध थे। जिस प्रसग में यह ऋचा (१०, ८५, ६) कही गई है, उससे भी इसी बात की पुष्टि होती है।[४]

ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में गाथाओं का विशिष्ट उल्लेख उपलब्ध होता

---

१. प्रकृता न्यू जीविष कएवा इन्द्रस्य गाथया। मदे सोमस्य वोचते। ऋ० वे० ८-३२-१। ऋ० वे० ८, ७१ १४। वहीं. ८-९८-९, वहीं ९-९९.४। २ इन्द्रमिद गाथिनो बृहद्। ऋ० वे० १-७-१। ३. रैभ्या सीदनुदेयी, नाराशसी न्योचनी। सूर्याया भद्रमिद्वासो, गाथयेति परिष्कृतम्। ऋ० वे० १०-८५-६। ४ आभि सूर्या स्वविवाह मरतोदित्युक्तम्। रैभी रैभ्य काश्चनर्च रैभी शसति रैभन्ते। वै देवाश्चर्षयश्च स्वर्गं लोकमायन्। इत्यादि ब्राह्मण विहिता रैभ्य सा रैभी अनुदेयी भामीद दीयमान वृध विनोदनायानुदीयमाना वयस्यासीत्। तथा नाराशसी 'भाता रत्नम्' ऋ० वे० १-१२५-१ इत्यादिका मनुष्याणां स्तुतयो नाराशस्य। सा नाराशंसी न्योचनी। वचति सेवाकर्मा। सा वधूशुश्रूषार्थं दीयमाना दास्यभवत्। सूर्याश मम भद्र वाम विचित्र दुकूलादिकर्मोच्छादन योग्य वास्त्र गाथया परिष्कृतम्। अलकृतम् इति। गाथा गीयते। इत्यादि ब्राह्मणोंका गाथा। तया गाथया यत्परिष्कृतमस्ति तद्वासो भवदिति। ऋ० वे० १०-८५-६ पर सायण भाष्य।

है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऋक् और गाथा में पार्थक्य दिखलाया गया है जिससे पता चलता है कि ऋक् दैवी होती है और गाथा मानुषी, अर्थात् गाथाओं की उत्पत्ति में मनुष्य का ही उद्योग प्रधान कारण होता था? ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुशीलन से पता चलता है कि गाथायें ऋक्, यजु और साम से पृथक् होती थी अर्थात् गाथाओं का व्यवहार मन्त्र रूप में नहीं किया जाता था। अतः प्राचीन काल में किसी विशिष्ट राजा के किसी अवदान, सत्कृत्य, को सक्षिप्त कर जो गीत लोक-समाज में प्रचुर रूप से गाये जाते थे वे ही 'गाथा' नाम से साहित्य का पृथक् अंग माने जाते थे। निरुक्त में दुर्गाचार्य ने गाथा का यह अर्थ स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है। इससे ज्ञात होता है कि वैदिक सूक्तों में कहीं-कहीं जो इतिहास उपलब्ध होता है, वह कही ऋचाओं के द्वारा और कही गाथाओं के द्वारा निबद्ध होता है। ऋचाओं के समान गाथायें भी छन्दोबद्ध होती थी।

वैदिक गाथाओं के नमूने शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण में उपलब्ध होते हैं जिनमें अश्वमेध याग करने वाले राजाओं के उदात्त चरित का सक्षिप्त वर्णन किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में ये गाथायें कहीं केवल श्लोक नाम से निर्दिष्ट हैं और कहीं 'यज्ञ गाथायें' कही गई हैं। राजा जनमेजय के विषय में यह गाथा देखिये —

"आसन्दी वति धान्याद रुक्मिण हरितस्रुजम्।
अश्व बबन्ध सारंग देवेभ्यो जनमेजयः।"

दुष्यन्त पुत्र भरत के विषय में ये गाथायें कही गई हैं —

"हिरण्येन परीवृतान् शुक्लान् कृष्णदतो मृगान्।
मष्णारे भरतो ददाच्छत बद्धानि सप्त च।
अष्टा सप्तति भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु।
गगाया वृत्रघ्ने बध्नात् पंच पचाशत हयान्।
महाकर्म भारतस्य न पूर्वे नापरे जना.
दिव मर्त्य इव हस्ताभ्या नोदापुः पचमानवाः

इन ऐतिहासिक गाथाओं की परम्परा महाभारत काल में भी अक्षुण्ण दीख पड़ती है। इसी दुष्यन्त पुत्र भरत के सबंध में महाभारत में अनेक अन्य गाथायें दी गई हैं जो नितान्त प्राचीन प्रतीत होती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण की गाथायें ठीक उसी रूप में श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में भी उपलब्ध होती हैं।

ये गाथायें राजसूय यज्ञ के अवसर पर गाई जाती थी परन्तु विवाह के अवसर पर भी गाथाओं के गाने का विधान मैत्रायणी संहिता में दिया गया है। इसी नियम के अनुसार पारस्कर गृह्यसूत्र में विवाह-विषयक दो गाथायें उपलब्ध होती हैं। उदाहरण —

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण ७ १८। २. स पुनरितिहास, अम्बद्धो गाथावद्धश्च। ऋक् प्रकार एव कश्चित् गाथेत्युच्यते। गाथा शसति, नाराशंसीः शंसति इति उक्त गाथानां कुर्वतिति। निरुक्त ४-६ पर दुर्गाचार्य की टीका। ३. श० ब्रा० १३-५-४, १३-४-३-८। ४. ऐ० ब्रा० ८-४। ५ म० भा० आदि पर्व, अ० ७४ श्लो० ११० ११३। ६. मै० सं० ३-७-३। ७. पा० गृ० सू० १-७।

"अथ गाथा गायति ।
सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति ।
या त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रत ।
यस्या भूत समभवत् यस्या विश्वमिद जगत् ।
तामय गाथा गास्यामि या स्त्रीणामुत्तम यश ।'

आश्वलायन गृह्यसूत्र में सीमन्तोनयन के समय वीणा पर गाथा गीत गाने की प्रथा का उल्लेख पाया जाता है[1] । इसी गृह्यसूत्र में सोम की प्रशसा में यह गाथा दी गई है

"सोमो नु राजा अवतु मानुषी प्रजा निविष्ट चक्रासौ ।'

इन समस्त उल्लेखो से यही प्रतीत होता है कि राजसूय यज्ञ, विवाह और सीमन्तोनयन के शुभ अवसर पर ऐसी गाथायें गाई जाती थीं जो प्राचीन काल से परम्परागत रूप में चली आती थी। राजसूय यज्ञ में ऐतिहासिक गाथाओ तथा विवाहादि के समय देवता-विषयक प्रचलित गाथाओं के गाने का नियम था, यह बात उपर्युक्त उल्लेखो से स्पष्ट ज्ञात होती है।

पाली

पाली जातकों के अनुशीलन से पाली भाषा में उपनिबद्ध गाथाओ का पता चलता है जो प्राचीन काल से प्रचलित थी और जिनमें उस काल की विख्यात लौकिक कहानियो का साराश उपस्थित किया गया है। गौतम बुद्ध के पूर्व जीवन से सबद्ध कथायें, जिन्हें 'जातक' के नाम से पुकारते हैं इन्ही गाथाओ के पल्लवीकरण से आविर्भूत हुई हैं। ये गाथायें बुद्ध भगवान की समसामयिक प्रतीत होती है। सुप्रसिद्ध सिंहचर्म जातक में, जिसमें व्याघ्र चर्म से आच्छादित गर्दभ की मनोरजक कहानी है ये दो गाथायें दी गई हैं जिनसे कथा की मूल घटना की पर्याप्त सूचना मिलती है।

'नेत सीहस्स नदित न व्यग्घस्य न दीपिनो।
पारुतो सीहचम्मेन जम्मो नदति गद्रभो'
चिर पि खा त गादेय्य गद्रभ हरित यव
पारुतो सीहचम्मेन र वमानो च दूसयी।"

जिस प्रकार भोजपुरी कहानियो के बीच बीच में गीतो का भी प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार जातक की कहानियो के बीच में इन गाथाओं का व्यवहार हुआ है। अत हम इन गाथाओ को लोकगीतो का पूर्व प्रतिनिधि कह सकते हैं।

महाकाव्य

वैदिक युग एव बौद्ध युग के अनन्तर महाकाव्य और पौराणिक युग में भी हम लोक गीतो के उल्लेखो को पाते हैं। आदिकवि वाल्मीकि ने अपने रामायण में भगवान् राम के जन्म के अवसर पर गन्धर्वों के द्वारा गीत गाने का उल्लेख किया है[2]। व्यास जी ने भी श्री मद्भागवत में कृष्ण जन्म के समय स्त्रियो के द्वारा एकत्र होकर मनोरजक,

---

१ आ० गृ० सू० १ १२ । २ जगु कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरो गणा देवा दुन्दुभयो नेदु पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत्। गायनैश्च विराविण्यो, वादनैश्च तथापरे । विरेजु विपुलास्तत्र सर्वरत्नसमन्विता । वाल्मीकि रामायण बालकाड श्लो० कुम्भकोणम्। मद्रास सस्करण १८ १६ १७ ।

सामयिक गीतों के गाने का स्पष्ट वर्णन किया है[1]। महाभारतकार के उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृष्ण जन्म के अवसर पर स्त्रियों ने एकत्रित होकर जो गीत गाया होगा वह उस समय में प्रचलित लोकगीत ही होगा।

विक्रम सम्वत् की तृतीय शताब्दि में, जब प्राकृत भाषा का बोलबाला था, लोकगीतों की उन्नति बड़े जोरों से हुई। राजा हाल या शालिवाहन के द्वारा संग्रहीत 'गाथा सप्तशती' से पता चलता है कि उस समय लोक गीतों के बनाने और गाने की धुन बहुत अधिक थी। हजारों गाथाओं में से केवल सात सौ ७०० गाथायें चुनकर इस कोश गाथा सप्तशती में संग्रह की गई और इस प्रकार काल के गाल से बचा ली गई। ये गाथाये सरल गीतिकाव्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। रस से सनी इन गाथाओं को पढकर लोक-साहित्य की माधुरी का थोड़ा परिचय प्राप्त किया जा सकता है। रसोई बनाते हुए कोई सुन्दरी फूंक मार कर आग जलाना चाहती है परन्तु आग जलती नहीं। इसका कितना रसमय हेतु इस गाथा में दिया गया है।

"रन्धण कम्मणि उणिए मा जरसु रत्तपाडलसुअन्धम्।
मुहमारुअं पिअन्तो धूमाइ सिहीण पज्जलइ।"

किसी विरहिणी की भावना का कितना सुन्दर चित्र इस निम्न गाथा में अंकित किया गया है[2]।

"अज्ज गओत्ति अज्ज गओत्ति अज्ज गओति गणिरीए।
पढम च्चिअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहिं चित्तलिओ।"

संस्कृत साहित्य के अन्य अनेक कवियों ने भी लोक गीतों के गाये जाने का उल्लेख किया है। पुत्र-जन्म के अवसर पर स्त्रियां द्वारा गीत गाने का उल्लेख पहिले किया जा चुका है। इतना ही नहीं, मेहनत मजदूरी करने के, जैसे चक्की पीसना, धान कूटना, टेकी चलाना और खेत निराना आदि के समय जिस प्रकार आजकल स्त्रियां झुंड बांध कर या अकेले गीत गाकर अपनी थकावट को हल्का किया करती हैं, प्राचीन काल में भी ठीक वैसे ही होता था। प्रसिद्ध कवयित्री विज्जका (१२वीं शताब्दी) ने धान कूटने वाली स्त्रियों के द्वारा गीत गाने का जो वर्णन किया है, वह बड़ा ही रोचक है। स्त्रियाँ धान कूट रही हैं और साथ-साथ गाना भी गा रही हैं। मूसल के उठाने और गिराने के कारण उनकी चूड़ियां झनझना रही हैं, उर स्थल हिल रहा है और मीठी हुंकार की आवाज तथा चूड़ियों के शब्द से मिलकर उनका गाना विचित्र आनन्द पैदा कर रहा है। यह श्लोक सुनिये।

"विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदो कन्दली,
परस्परपरिस्खलद्वलय - नि स्वनोद्‌बन्धुरा

---

१ कदाचिदौत्थानिक कौतुकाप्लवे, जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम्। वादित्र गीत द्विज मन्त्र वाचकै-श्चकार सूनोरभिषेचन सती। भागवत दशम स्कन्ध। जगु किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवु सिद्धचारणा विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभि सम तदा। वही. १० २ ६ लक्ष्मी वैंकटेश्वर प्रेस बंबई से प्रकाशित।
२ गाथा सप्तशती ३ ८। ३ त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० १३ [भूमिका]

लसन्ति कलहुङ्कृतिप्रसभ - कम्पितोर स्थल
त्रुटद्गमकसंकुला यलम - कडनीगीतय"

महाकवि श्री हर्ष ने नैषधीय चरित में स्त्रियों द्वारा जाँत चलाने का उल्लेख किया है। ये स्त्रियाँ जात चलाते समय गीत भी गाती थीं।[1]

अपभ्रंश काल में भी लोक गीतों का प्रचार था। उस समय के अनेक कथा ग्रंथों में नाना प्रकार की गाथाओं का उद्धरण दिया गया है। "भविस्सयत्त कहा"[2] में ऐसी अनेक गाथायें उपलब्ध होती है।

आज से लगभग ३५० वर्ष पूर्व गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी स्त्रियों के द्वारा गीत गाने का उल्लेख किया है।[3]

"चली सग लइ सखी सयानी।
गावत गीत मनोहर बानी।"

इतना ही नहीं उन्होंने रामचन्द्र के विवाह के अवसर पर भोजन करते समय गाली गाने का भी वर्णन किया है। यह प्रथा भोजपुरी प्रदेश में आज भी पाई जाती है। तुलसीदास कहते हैं—[4]

"नारि वृन्द सुर जेंवत जानी।
लगी देन गारी मृदुबानी।"

आजकल भी भोजपुरी प्रदेश में कोई बारात आती है और जब समधी, वर का पिता, भोजन करने बैठता है, उस समय स्त्रियाँ उसे मुक्त कंठ से गालियाँ देती है, परन्तु यह सुनने में सुन्दर और मनोरंजक होती है।

'ढोला मारू रा दूहा' राजस्थानी भाषा का एक प्राचीन लोक गीत है जिसमें ढोला और मारू की कहानी बड़े सुन्दर रूप से वर्णित है। लोकगीतों की भारतीय परम्परा के विषय में प० रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं कि —

"वाल्मीकि, भागवतकार, विज्जका और तुलसीदास इनमें से किसी ने यह नहीं बतलाया कि वे गीत कौन से थे। अवश्य ही वे वही कंठस्थ गीत होंगे, जो आज भी है। समय के अनुसार उन्होंने भाषा का जामा बदल लिया है। जैसे हिन्दू लोग पहले पीताम्बर ओढते थे, मुसलमानी राज में कुरते पहिनने लगे और अब अंग्रेजी राज में कोट पहनने हैं। पर कपडो के अन्दर शरीर है हिन्दू का ही। इसी प्रकार गीतों का सिलसिला प्राचीन काल से एक सा चला आ रहा है। भाव पुराने हैं। भाषा नई है।"[5]

इन उल्लेखों से स्पष्ट पता चलता है कि इन लोक गीतों की भारतीय परम्परा बड़ी प्राचीन है। हम सर्वप्रथम इनका उल्लेख गाथा रूप में वैदिक संहिताओं में पाते हैं। पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों एवं गृह्यसूत्रों में इनका वर्णन हुआ है। संस्कृत, पाली और प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में इनकी सत्ता उपलब्ध होती है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास जी ने तो गीत और गाली दोनों के गाने

१. प्रतिहट्टपथे घरट्टजात्पथिकाह्वानदसक्तुसौरभै। कलहान्न घनान्यदुस्थिवाद्धुनाप्युज्झति घर्घरस्वन॥ नै च० २-८५। २. गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा से प्रकाशित। ३ त्रिपाठी · ग्रा० गी० पृ० १४ [भूमिका] ४ रामायण बालकांड। ५ त्रिपाठी · ग्रा० गी० पृ० १४ [भूमिका]

का प्रत्यक्ष उल्लेख किया है। इस प्रकार वैदिक काल से लोक गीतों की जो धारा बही वह आज भी अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है।

आ. भारतीय भाषाओं में लोक-गीतों का संग्रह

लोक गीतों में हमारी पुरानी सभ्यता और संस्कृति निहित है। इस कारण इनका संग्रह तथा प्रकाशन वाछनीय ही नहीं अत्यन्त आवश्यक भी है। भारत में इन लोक गीतों की बहुत उपेक्षा हुई है। विदेशों में इन जनप्रिय लोक गीतों के संग्रह के लिये 'फोक सांग सोसायटी' स्थापित है जिनके तत्वावधान में विद्वान् संग्रहकर्ता गीतों का संग्रह करते हैं। डा० चाइल्ड ने इंगलैंड में गीतों का संग्रह जिस लगन तथा परिश्रम के साथ किया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। अब भारतीय विद्वानों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हो रहा है और वे भी अपनी अपनी भाषाओं में बिखरे हुए लोकगीतों का संग्रह कर रहे हैं। यों तो भारत की सभी भाषाओं में इस दिशा में कुछ न कुछ कार्य हो रहा है परन्तु बंगला तथा गुजराती भाषा में बहुत अधिक संग्रह हुआ है। परन्तु अभी हिन्दी के विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से इधर आकृष्ट नहीं हुआ है।

बंगला

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है इस दिशा में बंगला में गीतों के संग्रह का कार्य बहुत अधिक हुआ है। डाक्टर दिनेशचन्द्र सेन के तत्वावधान में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने पूर्वी बंगाल के, विशेष कर मैमनसिंह जिले के गीतों का संकलन करवाया है। इन गीतों का प्रकाशन 'पूर्व बंग गीतिका' के नाम से वृहदाकार चार भागों में कलकत्ता विश्वविद्यालय से हुआ है। इन गीतों का अनुवाद भी चार भागों में 'ईस्टर्न बंगाल बैलेड्स' के नाम से वहीं से प्रकाशित हुआ है।[1] डा० सेन ने इन गीतों का सम्पादन बड़ी वैज्ञानिक पद्धति से किया है। प्रत्येक गीत के आरम्भ में एक छोटी सी भूमिका दी गई है जिसमें उस गीत की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। कठिन शब्दों का अर्थ भी पाद-टिप्पणियों में दिया गया है। गीतों के भावद्योतक चित्र भी स्थान-स्थान पर दिये गये हैं।

इसके अतिरिक्त 'हारामणि' नामक एक अन्य लोक गीतों का प्रकाशन इसी विश्वविद्यालय से हुआ है। इस गीत में दार्शनिक तत्वों का बड़ी ही सुन्दर रीति से प्रतिपादन किया गया है। इसमें जिन गीतों का संग्रह किया गया है उन्हें 'बाउल' कहते हैं। ये गीत अपनी दार्शनिकता के लिये प्रसिद्ध हैं।

गुजराती

गुजराती भाषा के लोक गीतों के संग्रह के लिये श्री झवेर चन्द्र मेघाणी ने प्रशंसनीय कार्य किया है। आपने लोग गीत संबंधी बीसियों पुस्तकें प्रकाशित की हैं।[2] आपका 'धरती नु धावण' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है जो दो भागों में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में आपने लोक साहित्य के

---

१. कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित। २ मेघाणी की प्राय सभी पुस्तकें नीचे के पते से प्राप्त हैं। गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, गांधी रोड, अहमदाबाद।

विभिन्न पहलुओं की गंभीर मीमांसा की है। यह ग्रन्थ आलोचनात्मक है। आपकी दूसरी पुस्तक का नाम 'लोक साहित्य नु विवेचन' है।[1] यह ग्रन्थ आपके उन व्याख्यानों का संग्रह है जिन्हें आपने बम्बई विश्वविद्यालय में दिया था। यह ग्रन्थ आपकी गंभीर मननशीलता का परिणाम है। लोक साहित्य संबंधी जितनी समस्यायें हो सकती हैं उन सबका स्पष्टीकरण आपने इस ग्रन्थ में विभिन्न भाषाओं के लोक साहित्य की तुलना कर यह भी दिखलाया है कि सभी देशों में लोक-गीतों की समान भावधारा प्रवाहित होती है। यह पुस्तक आपके लोक साहित्य-संबंधी गंभीर अध्ययन का परिणाम है।

इन आलोचनात्मक ग्रन्थों के अतिरिक्त मेघाणी जी ने गुजराती भाषा के लोक गीतों का संग्रह भी प्रकाशित किया है। ये संग्रह ऋतु, संस्कार और उत्सव आदि के आधार पर पृथक्-पृथक् छापे गये हैं। 'सोरठ नु तीरे तीरे' नामक पुस्तक में सौराष्ट्र के लोक गीतों की आलोचना संक्षेप में दी गई है तथा नाविका के गीतों का कुछ संग्रह भी किया गया है। 'ऋतु गीतों' आपकी एक दूसरी पुस्तक है जिसमें ऋतु संबंधी गीतों का संकलन किया गया है तथा इतर प्रान्त के बारहमासों का तुलनात्मक अध्ययन भी उपस्थित किया गया है। मेघाणी जी की सबसे प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय पुस्तक 'रढियाली रात' है जिसे चार भागों में इन्होंने प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थ में गुजराती लोक गीतों का संग्रह किया गया है। इस पुस्तक की लोकप्रियता का पता केवल इसी बात से लग सकता है कि इसके छः सात संस्करण अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। 'सौराष्ट्र ना खंडेरोमा' नामक पुस्तक में पर्वतीय प्रदेशों में रहने वाली जातियों के गीतों का संग्रह आपने किया है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त मेघाणी ने लोक गीत संबंधी अन्य छोटी छोटी पुस्तकों की भी रचना की है। सच तो यह है कि डा० दिनेश चन्द्र सेन ने बंगला भाषा के लोक गीतों के उद्धार के लिये जो प्रयत्न किया है संभवतः उससे भी महान् उद्योग मेघाणी जी ने गुजराती लोक गीतों के लिये किया है।

श्री नर्मदाशंकर लाल 'शंकर' ने 'नागर स्त्रियोमा गवाता गीत' नामक पुस्तक लिखी है जिसमें गुजरात के नागर ब्राह्मणों की स्त्रियों में प्रचलित गीतों का संग्रह है। इस ग्रंथ में विभिन्न संस्कारों तथा उत्सवों पर गाये जाने वाले लगभग दो सौ गीतों का संकलन तथा सम्पादन किया गया है।[6] यह संग्रह बड़ा ही सुन्दर तथा विस्तृत है।

लोक गीतों के परम उत्साही संग्रहकर्त्ता देवेन्द्र सत्यार्थी का उल्लेख किये बिना यह अध्याय अधूरा ही रह जायगा। सत्यार्थी जी ने समस्त भारतवर्ष का भ्रमण करके यहाँ के लोक गीतों का

पंजाबी

संग्रह किया है। आपके पंजाबी गीतों का संग्रह 'गिद्धा' नाम से प्रकाशित हो चुका है। आपने लोक-गीतों के संबंध में अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें गिद्धा १९३६, दीवा बले

१ एन० एम० त्रिपाठी एंड कम्पनी, बम्बई से प्रकाशित। ३, ४, ५, ६ ये पुस्तकें गुर्जर ग्रन्थ-रत्न कार्यालय, अहमदाबाद से प्रकाशित। गुजराती प्रिन्टिंग प्रेस, बम्बई से प्रकाशित।

सारी रात १६४१, मैं हूँ खाना बदोश १६४१, गाये जा हिन्दुस्तान १६४६, धरती गाती है १६४८, धीरे बहो गंगा १६४८, और मीट माई पीपुल १६४६ प्रसिद्ध हैं। अन्तिम पुस्तक अंग्रेजी में लिखी गई है।

आपकी एक रचना 'बेला फूले आधी रात'[1] अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है जो आपके विभिन्न लोक गीत संबंधी लेखों का संग्रह है। सत्यार्थी जी ने जिस लगन एवं परिश्रम से इन गीतों का संग्रह किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। आपकी अन्तिम रचना में भोजपुरी के अनेक लोक गीतों का संकलन किया गया है। परन्तु जितनी गहराई में उतर कर इन पुस्तकों का सम्पादन करना चाहिए वह प्रयत्न इन पुस्तकों में नहीं दिखाई पड़ता है। सत्यार्थी जी इस समय 'आजकल' पत्रिका के प्रधान सम्पादक हैं जो दिल्ली से प्रकाशित होती है।

मैथिली

मैथिली लोकगीता' का संग्रह तथा सम्पादन श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' ने बड़े परिश्रम तथा लगन के साथ किया है[2]। आपने कई हजार लोक गीतों का संकलन किया है जिसका प्रस्तुत ग्रन्थ प्रथम संग्रह है। राकेश जी ने पुस्तक के प्रारम्भ में एक लम्बे प्राक्कथन में लोक गीतों की विशेषताओं का सुन्दर रीति से वर्णन किया है। उन्होंने १७ प्रकार के मैथिली गीतों का संग्रह इस ग्रन्थ में किया है। जिनमें सोहर, लग्न, गीत, नचारी आदि प्रसिद्ध हैं। पहले गीत दिये गये हैं, बाद में उनका अर्थ सरल भाषा में समझाया गया है। क्या ही अच्छा होता यदि कठिन शब्दों का अर्थ पाद टिप्पणियों में दे दिया गया होता। गीतों का प्रसंग या संदर्भ भी नहीं दिया गया है। कौन गीत किस अवसर पर गाया जाता है तथा उसका वर्ण्य विषय क्या है इसका भी उल्लेख होना उचित था।

हिन्दी

बंगला, गुजराती, पंजाबी, एवं मैथिली भाषा के लोक गीतों की चर्चा के पश्चात् हिन्दी की विभिन्न बोलियों में किये गये लोक गीतों के संग्रह का वर्णन अनुपयुक्त न होगा। हिन्दी के अन्तर्गत ब्रज, अवधी, राजस्थानी, बुन्देलखंडी एवं भोजपुरी प्रधान बोलियाँ मानी जाती हैं। इन बोलियों में बिखरे हुये लोक गीतों के संग्रह की ओर हिन्दी विद्वानों की दृष्टि आकृष्ट हो रही है। यद्यपि यह संग्रह-कार्य अभी प्रारम्भिक दशा में है परन्तु आशा है कि शीघ्र ही सुदृढ़ आधार पर प्रतिष्ठित होकर सुचारु रूप से होगा।

ब्रज

हिन्दी भाषा के इतिहास में ब्रजभाषा का क्या महत्व है संभवतः इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं। यदि यह कहें कि ब्रज भाषा के अभाव में हिन्दी साहित्य दरिद्र है तो यह कथन अत्युक्ति न होगा। ब्रज की भूमि राधाकृष्ण की सरस लीलाओं की रंगस्थली रही है। वहाँ राधा और कृष्ण संबंधी गीत जनता के द्वारा गाये जाते हैं। इन सुन्दर गीतों का संग्रह एवं प्रकाशन

---

१ राजकमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली। २ मैथिली लोक गीत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन १९६६ प्रयाग से प्रकाशित।

अभी तक नही हुआ था परन्तु अब ब्रज के कुछ उत्साही साहित्यिको ने ब्रज की छिपी हुई गीत राशि को प्रकाश में लाने का प्रशसनीय उद्योग किया है और इसके निमित्त मथुरा में ब्रज साहित्य मडल की स्थापना की है। इस मडल की की ओर से 'ब्रज भारती' नामक पत्रिका प्रकाशित होती है जिसमें ब्रजमडल की सस्कृति, लोक गीत, लोक कथा, लोक वार्ता, पुरातन काव्य आदि, को प्रकाश में लाने का कार्य हो रहा है। इस मडल के तत्वावधान में अनेक अनुसन्धानकर्त्ता गाव-गाव में घूम-घूम कर लोक साहित्य का सग्रह कर रहे हैं। इस मडल के द्वारा 'ब्रज ग्राम साहित्य का विवरण' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसमें ब्रज के गावो में शोध सबधी जो कुछ कार्य हुआ है उसका विस्तृत विवरण उपस्थित किया गया है। श्री सत्येन्द्र एम० ए०, पी० एच० डी०. ने 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन' नामक ग्रन्थ लिखा है[१]। इस अनुसन्धानपूर्ण ग्रन्थ में ब्रज के लोक साहित्य, लोक गीत, लोक कथाओ आदि का बडा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। सत्येन्द्र जी ने ब्रज के लोकगीतो का विपुल सग्रह किया भी है जिसका प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। ब्रज लोक सस्कृति में लोक साहित्य सबधी प्रचुर सामग्री पढ़ने के लिये प्राप्य है।

राजस्थानी

राजस्थान में भी लोक साहित्य के सरक्षण तथा प्रकाशन का कार्य बडी लगन तथा उत्साह के साथ हो रहा है। यहाँ के उत्साही तथा विद्वान कार्यकर्त्ताओ में श्री सूर्यकरण पारीक एम० ए० का नाम प्रधान है। आपने 'राजस्थानी लोक गीत' की रचना की है[२]। जिसमें राजस्थान के लोक गीतो की बडी सुन्दर आलोचना की गई है। पुस्तक पाडित्यपूर्ण है और इस विषय के प्रेमियो के लिये सग्रहणीय है।

श्री पारीक जी ने ठाकुर रामसिह एम० ए० तथा श्री नरोत्तम दास स्वामी के सहयोग से राजस्थान के लोकगीतो का प्रचुर सग्रह भी किया है जिसके दो सग्रह 'राजस्थान के लोक गीत' के नाम से दो भागों में प्रकाशित हुए हैं[३]। इन गीतों का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से हुआ है। विद्वान् लेखको ने प्रारम्भ की प्रस्तावना में लोक गीतो के सबध में अनेक ज्ञातव्य विषयो का वर्णन किया है। प्रथम मूल गीत देकर पुन उसका सरल भाषा में अनुवाद भी उपस्थित किया गया है। ऐतिहासिक गीतो के सबध में उनका थोडा परिचय भी दिया गया है। अच्छा होता यदि प्रत्येक गीत के प्रारम्भ में उसका प्रसग या सन्दर्भ दिया गया होता। पुस्तक के अन्त में गीतों में प्रयुक्त कठिन राजस्थानी शब्दों का अर्थ भी दे दिया गया है जिससे पढने वालों को सुविधा हो। गीतों से सबध रखने वाले कुछ चित्र भी इसमें दिये गये हैं जिससे पुस्तक का महत्व बढ गया है।

इन लोक गीतो के सग्रह के अतिरिक्त इन तीनो विद्वानों ने 'ढोला मारुरा दूहा' नामक ग्रन्थ का सम्पादन विद्वत्तापूर्ण रीति से किया है[४]। राजस्थान में ढोला

१ साहित्य रत्न भंडार, आगरा १९४९ से प्रकाशित। २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से संवत् १९९९ में प्रकाशित। ३ राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता से सन् १९३८ में प्रकाशित। ४ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित।

और गारु इन दो प्रेमियों की कथा प्रसिद्ध है जो काल के प्रभाव से विस्मृति के गर्त में गिरती जाती थी। विद्वान सम्पादकों ने इसी सुप्रसिद्ध लोक गाथा का पुनरुद्धार किया है। यह ग्रन्थ लोक साहित्य का अनमोल रत्न है। 'कृष्ण रुक्मिणी री वेलि' में कृष्ण और रुक्मिणी की कथा विस्तार से कही गई है[१]। इनके अतिरिक्त नरोत्तम दास स्वामी ने 'राजस्थान रा दूहा' नामक ग्रन्थ दो भागो में लिखा है जिसका पहला भाग प्रकाशित हो चुका है[२]। 'राजिये रा दूहा' का सम्पादन तथा प्रकाशन स्वामी जी ने बड़े परिश्रम के साथ किया है[३]। इसके साथ ही इन्होंने 'बीकानेर के गीत' 'देश के गीत' 'बालको के गीत' नामक पुस्तको का सम्पादन कर राजस्थान के लोक गीतो को जनता के सामने लाने का प्रशसनीय उद्योग किया है। उन पुस्तको में राजस्थान की सच्ची सस्कृति हमें देखने को मिलती है। राजस्थानी जनता का सच्चा प्रतिबिम्ब इनमें उपलब्ध होता है।

इन प्रकाशित लोक गीतो के सग्रह के अतिरिक्त श्री स्वामी जी और पारीक जी ने जिनका देहावसान अभी कुछ वर्ष हुए हो गया, सैकड़ो चारणी और ऐतिहासिक लोकगीतों का सग्रह किया है जो अभी अप्रकाशित हैं। यदि इन गीतो का प्रकाशन हो जाय तो लोक साहित्य के प्रेमियो का बड़ा उपकार हो।

अभी हाल ही में राजस्थान के उत्साही कार्यकर्ताओं ने 'राजस्थान रिसर्च सोसाइटी' की स्थापना की है जिसका उद्देश्य राजस्थान की सस्कृति का प्रचार है। इस सोसाइटी के द्वारा 'राजस्थान भारती' नामक एक शोध सबधी पत्रिका भी प्रकाशित होती है जिसमें राजस्थानी साहित्य में अनुसधानात्मक कार्य का विवरण रहता है। राजस्थान की सस्कृति की जानकारी प्राप्त करने वाले विद्वानो के लिये यह पत्रिका नितान्त उपयोगी है।

बुन्देलखण्ड में लोक साहित्य सग्रह सबधी कार्य बड़े उत्साह तथा लगन के साथ हो रहा है। यहा के विद्वानों ने 'लोक वार्ता परिषद्' नामक सस्था की स्थापना की है जिसका प्रधान स्थान ओरछा राज्य का टीकमगढ स्थान है। इस सस्था के पीछे

बुन्देलखडी

प० बनारसी दास चतुर्वेदी तथा श्री कृष्णानन्द गुप्त का विशेष हाथ है। इस परिषद के द्वारा 'लोकवार्ता'[७] नामक खोज सबधी त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन होता था जिसमें लोक गीत लोक कथा रहन-सहन, रीति रिवाज, सस्कार और उत्सव आदि सभी विषयो पर अधिकारी विद्वानो के महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते थे। यह पत्रिका विशेषकर बुन्देलखण्ड की सस्कृति को प्रकाश में लाने को प्रकाशित की गई थी। यद्यपि इस पत्रिका में बुन्देलखण्डी गीतो और कथाओ का प्रचुर प्रकाशन हुआ था परन्तु इन गीतो का पुस्तकाकार सग्रह अभी देखने में नहीं आया।

हिन्दी की अवधी बोली में लोक साहित्य का सग्रह (जहाँ तक हमें ज्ञात है) अभी तक नहीं हुआ है। प्रयाग विश्वविद्यालय में सस्कृत के

---

१ हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग से प्रकाशित। २ राजस्थानी सीरीज, पिलानी, जयपुर से प्रकाशित। ३ सस्ती राजस्थानी ग्रन्थमाला, बीकानेर। ४, ५, ६, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित। ७ इस पत्रिका का प्रकाशन कुछ ही अंकों के निकलने के पश्चात् बन्द हो गया।

अवधी

अध्यापक डाक्टर बाबूराम सक्सेना ने अपनी पुस्तक 'अवधी भाषा का विकास' एवोलूशन आफ अवधी, लिखते समय अवधी के कुछ लोक गीतो का सग्रह अवश्य किया था परन्तु वह सग्रह अभी प्रकाशित नही हुआ है। प० रामनरेश त्रिपाठी की कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत) में अवश्य अवधी के कुछ गीतो का सग्रह है परन्तु वह परिमाण में बहुत कम है। मिश्र बन्धु परिवार के एक सज्जन अवधी लोकगीतो का सग्रह लखनऊ विश्वविद्यालय के रिसर्च विद्यार्थी के रूप में कर रहे थे परन्तु उनका सग्रह अभी अपूर्ण ही है।

खडी बोली

अवधी के समान खडी बोली में भी लोक साहित्य का सग्रह अभी बिल्कुल नही हुआ है। मेरठ और बिजनौर के जिलो में खडी बोली के गीत प्रचुर मात्रा में गाये जाते है। यदि इन गीतो का सग्रह कर प्रकाशन किया जाय तो बडा लाभ हो। त्रिपाठी जी के ग्रामगीतो में खडी बोली के गीत अवश्य पाये जाते है। भाषा शास्त्र की दृष्टि से भी खडी बोली के गीतो का सकलन आवश्यक है।

भोजपुरी

भोजपुरी में लोकसाहित्य के सग्रह का कार्य बहुत कुछ हुआ है परन्तु अभी इस दिशा में बहुत कार्य करना शेष है। आजकल भोजपुरी के विद्वान् अपनी बोली की निधियो को प्रकाश में लाने के लिये परिश्रम कर रहे हैं। आजतक भोजपुरी में जो लोक गीतो के सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं उनकी विस्तृत चर्चा 'भोजपुरी साहित्य' वाले प्रकरण में पीछे की जा चुकी है। यहाँ उनके पिष्टपेषण की आवश्यकता नही। अत पुस्तक तथा लेखक का नामोल्लेख ही यहाँ पर्याप्त है।

१ भोजपुरी ग्राम्य गीत भाग १	कृष्णदेव उपाध्याय।
२ भोजपुरी ग्राम गीत भाग २	
३ भोजपुरी लोक गीतो में करुण रस	श्री दुर्गाशकर प्रसाद सिह।
४ भोजपुरी ग्राम्य गीत।	ए० जी० आर्चर।
५ ग्राम गीत स० क० भाग ५	रामनरेश त्रिपाठी।

त्रिपाठी जी के इस ग्रन्थ में भोजपुरी बोली के ही गीत सबसे अधिक है। यद्यपि इसमें अन्य बोलियो के भी गीत उपलब्ध हैं।

उत्साही भोजपुरियो ने भोजपुरी साहित्य सम्मेलन भी स्थापित किया है जिसका उद्देश्य इस साहित्य की वृद्धि करना है। प० महेन्द्र शास्त्री के सम्पादकत्व में पटना से 'भोजपुरी' पत्रिका भी प्रकाशित होती है जो भोजपुरी में ही छपती है।

'बलिया की हिन्दी प्रचारिणी सभा भी इस कार्य मे अग्रसर है।'

लोक गीतों का रचना काल

भोजपुरी लोक गीतो की रचना कब हुई इस विषय में कुछ निश्चित रूप से बतलाना बडा कठिन है। जब से मानव सृष्टि है तभी से इन गीतो की

रचना भी प्रारम्भ हुई होगी। पीछे यह दिखलाया गया है कि इन गीतों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। परन्तु इनकी कोई निश्चित तिथि बतलाना कठिन है। यहाँ भोजपुरी गीतों में से कुछ के रचनाकाल का अनुमान हम आसानी से कर सकते हैं।

किसी भी वस्तु की परीक्षा के लिये दो प्रकार के प्रमाणों की आवश्यकता होती है। १. बहिरंग तथा २. अन्तरंग। लोक गीतों के समय निर्धारण में हमें बहिरंग प्रमाणों की उपलब्धि नहीं होती। आजकल भोजपुरी लोक गीतों की कोई भी प्राचीन हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं होती जिससे इनके समय का निर्धारण किया जा सके। डाक्टर चाइल्ड ने इंगलैण्ड और स्काटलैंड के गीतों का जो विराट संग्रह प्रकाशित किया है उसमें उन्हें गीतों के अनेक हस्तलिखित प्रतियों की उपलब्धि हुई थी जिससे उन गीतों के काल निर्णय में सहायता मिलती है परन्तु भोजपुरी में आजतक कोई भी ऐसी पुरानी प्रति उपलब्ध नहीं है। जगनिक कृत आल्ह खण्ड की भी कोई प्राचीन प्रति नहीं मिलती जिससे हम उसके निर्माणकाल का निर्णय कर सकें। आजकल जो लोकगीत प्राप्त हैं उनके उद्धरण या निर्देश भी किसी ग्रन्थ में नहीं मिलते। इन गीतों के लेखकों के नाम भी अज्ञात हैं जिनके काल निर्णय से इनके समय का कुछ पता चल सकता। इस प्रकार बहिरंग प्रमाणों के आधार पर हम इन गीतों का काल निर्णय करने में नितान्त असमर्थ हैं।

लोक गीतों में कुछ ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है, ऐसे समाज का चित्रण है जिनके आधार पर हम इन गीतों के निर्माण काल का अनुमान कर सकते हैं। इनमें ऐतिहासिक घटनायें बहुत थोड़ी हैं।

बलिया के एक लोक गीत में स्थानीय इतिहास का पुट है यह पंक्ति इस प्रकार है.—

"राजा भइले रजुली बहोरन भइले धुनिया।
मारेले दलगंजनदेव, हलवेले दुनिया।"

इस गीत में बलिया जिले के बैरिया नामक कस्बे के निवासी सुप्रसिद्ध बहोरन पांडे का, जिनके वंशज वहाँ आज भी मौजूद हैं और हलदी के राजा दलगंजनदेव का, दो नाम आये हैं। ये दोनों सज्जन आज से १००-वर्ष पूर्व विद्यमान थे। अतः इससे यह ज्ञात होता है कि यह गीत इस काल से पुराना नहीं है। हमारे पास ऐसे बहुत से गीत संग्रहीत हैं जिनमें सिपाही विद्रोह के समय अवध के नवाबों का लखनऊ छोड़कर भागने और इस कारण दुःख प्रकट करने का वर्णन पाया जाता है।

"महल में बैठी बेगम रोवे डेहरी पर रोवे खवास रे।
मोती महल के बैठक छूटल, छूटल मीना बाजार रे।
बाग जर्मनिया के घूमल छूटल छूटल मुलुक हमार रे।

एक दूसरे गीत में सिपाही विद्रोह के समय की लूट का जीता जागता वर्णन किया गया है। तीसरे गीत में लार्ड लेक के नाम का भी उल्लेख हुआ है।[1]

---

१. लेखक का निजी संग्रह पृ० ५०।

"मेरी जान वही देखा कम्पनी निशान।
लाट लेक मार ले ला आइ के हिन्दुस्तान।"

अंग्रेजो से बगावत कर स्वतन्त्रता का झडा ऊँचा करने वाले कुँअरसिंह के विषय में अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। इन उल्लेखों से पता चलता है कि ये गीत कम से कम लगभग एक सौ वर्ष प्राचीन है।

कुछ ऐसे गीत भी उपलब्ध है जिनमें मुगलो के अनाचार एव व्यभिचार का वर्णन पाया जाता है[1]। हिन्दू स्त्रियो को बलात् पकड लेना, उनके साथ विवाह कर लेना, आदि का उल्लेख मिलता है इन गीतो में कही पर बहन अपने भाई को गाय का दूध पीकर मुगल से लडने के लिये उत्तेजित करती है और कही वह उसकी लम्बी जैसी सूप दाढी देख कर उससे घृणा करती है।[2]

"सूप अइसन दाढी मोगलवा के बरधा अइसन आंखि,
ओहि मुहें लिहलन मोगल चुमवा, रजलो के छूटि उबिलाई।"

एक अन्य गीत में मुगलो से लडने का वर्णन पाया जाता है। इस प्रकार इन गीतो का समय मगलकाल समझा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त गीतो में कुछ ऐसी प्रथायें मिलती है जो प्राचीन काल में थी परन्तु आजकल नही हैं। जैसे कन्या का अपने लिये स्वय वर पसन्द करना और किसी कुमारी से विवाह के लिये वर का स्वय प्रस्ताव करना। ये दोनो प्रथायें इस देश में पहले थी। परन्तु अब नही है। गीतो में पर्दे की प्रथा का अभाव भी पाया जाता है। इनमें स्त्रियो का समाज में नीचा स्थान दिखलाया गया है। वे पुरुषो के वश में पराधीन दिखलाई गई है। उक्त सामाजिक परिस्थिति मुगलो के पूर्व काल की सूचना देती है।

इन अनुमानो के आधार पर हम कह सकते है कि जिन गीतो के सग्रह को हमने प्रयोग किया है उनमें से कुछ लगभग ३०० वर्ष पुराने है और कुछ आधुनिक काल के हैं।

१- त्रिपाठी : ग्रामगीत परिचय पृ० १६ २१। २ वही- पृ० २०।

अध्याय ४

(अ) लोक गीतों के वर्गीकरण की पद्धति

भोजपुरी लोकगीतों की सख्या प्रचुर है। जो भोजपुरी लोकगीत अद्यावधि उपलब्ध होते हैं उनके प्रकार इतने अधिक हैं कि किसी भी लोक गीतो के अनुसन्धानकर्ता को आश्चर्य सागर में डुबो देते हैं। लोक गीतों के भेदो अथवा प्रकारो की इतनी बहुलता है कि इनका किसी श्रेणी मे विभाजन अथवा वर्गीकरण कठिन है। इनकी विविधता ही इस कठिनता का कारण है। अगले पृष्ठों में एक निश्चित सिद्धान्त के आधार पर इनके वर्गीकरण का प्रयत्न किया जायगा। परन्तु इन्ही श्रेणियो के भीतर सभी लोक गीत अन्तर्भुक्त हो जाते हैं यह कहना उचित नही होगा।

अब तक जो लोक गीत उपलब्ध हुए हैं उनकी समष्टि पर पूर्णतया विचार करके हमने निम्नाकित दृष्टि से उन्हें पाच प्रधान भागो में विभक्त किया है।

१ सस्कारो की दृष्टि से।
२ रसानुभूति की प्रणाली से।
३. ऋतुओ एव व्रतो के क्रम से।
४ विभिन्न जातियों के प्रकार से।
५ क्रिया गीत के आधार पर। इन पर क्रमश यहाँ विचार किया जायगा।

१. संस्कारों की दृष्टि से वर्गीकरण

भारतीय जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान है। यदि यह कहा जाय कि धर्म ही भारतीयो का प्राण है तो इस कथन में कुछ अत्युक्ति न होगी। हमारे धार्मिक जीवन में विभिन्न सस्कारो का कितना महत्व है सभवत यह बतलाने की आवश्यकता नही। जन्म से लेकर मरण तक हमारा सारा जीवन सस्कारमय है। जन्म ही क्यो, जन्म होने के पूर्व भी कुछ ऐसे सस्कार हैं जो किये जाते हैं। ऐसे सस्कारो में गर्भाधान और पुसवन मुख्य हैं। वैदिक साहित्य में पुसवन सस्कार के अवसर पर गाये जाने वाले मन्त्रों का उल्लेख मिलता है।

आजकल उपलब्ध लोकगीतों में सस्कार सबधी गीतो की सख्या अधिक है। भारतीय जनता गावो में रहती है। गावों में शहरो की अपेक्षा धार्मिक भावनायें अधिक प्रबल रूप में विद्यमान हैं। अत इन गीतो में सस्कार के गीतों की अधिकता होना स्वाभावसिद्ध है। दूसरी बात यह भी है कि ये गीत उछाह या उत्सव के अवसर पर गाये जाते हैं।

हमारे धर्मशास्त्रियो ने षोडश सस्कार का विधान किया है। इनमें भी गर्भाधान, पुसवन, पुत्रजन्म, मुडन, यज्ञोपवीत, विवाह सस्कार ही प्रधान हैं। प्राचीन काल में गर्भाधान सस्कार किया जाता था परन्तु सभवत परदे की प्रथा के कारण अथवा अनावश्यक समझ कर यह सस्कार आजकल नही किया जाता।

पुसवन सस्कार की भी यही दशा है। गर्भ में जो सतति स्थित है वह पुत्र ही उत्पन्न हो पुत्री कदापि न हो इस हेतु पुसवन सस्कार किया जाता था परन्तु यह सस्कार आजकल नितान्त अप्रचलित है। सभवत मुसलमानी शासन में पर्दे की प्रथा की भयकरता के कारण यह सस्कार त्याग दिया गया हो। वैदिक काल में इस सस्कार का विशेष प्रचलन था। समाज में इन पूर्वोक्त सस्कारो के अप्रचलित होने के कारण इन सस्कारो से सबध रखने वाले गीत भी उपलब्ध नही होते। लोक गीतो की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नही होती। अत प्राचीन-काल में इन सस्कारो से सबध रखने वाले लोक गीतो का क्या स्वरूप था यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता।

पुत्रजन्म

सबसे प्रथम तथा प्रधान सस्कार जिससे सबध रखने वाले लोक गीत उपलब्ध होते हैं, पुत्र जन्म है। पुत्र का जन्म भारतीय समाज में तथा ससार के अन्य देशो में भी बडे उछाह का अवसर माना जाता है। पुसवन सस्कार का उद्देश्य ही यह है कि जो सन्तान उत्पन्न हो वह पुत्र ही हो। अत ऐसी परिस्थिति में जब पुत्र का जन्म होता है तब कितना आनन्द और उत्सव मनाया जाता है इसका अनुमान सहज ही में किया जा सकता है। पुत्र जन्म के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'सोहर' कहते हैं। इन गीतो में भारतीय समाज के उछाह का वर्णन मिलता है। इस अवसर पर गाये जानेवाले इन 'सोहरो' का विस्तृत परिचय अन्यत्र दिया जायगा। लोक गीतो में सोहरो की सख्या अत्यधिक है जिसका प्रधान कारण इनका समाज में अधिक प्रचार है।

पुत्र जन्म के बाद दूसरा सस्कार 'मुडन' है। बालक के प्रथम बार केश कर्तन को मुडन कहते हैं। प्राचीनकाल में इसे 'गोदानविधि' कहते थे। यह कार्य किसी नदी के किनारे अथवा किसी तीर्थ स्थान में किया जाता है। इस सस्कार के गीत कम सख्या में उपलब्ध होते हैं।

यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत सस्कार अपना विशेष महत्व रखता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'जनेऊ के गीत' कहलाते हैं। इन गीतो के अध्ययन से इस सस्कार पर किये जाने वाले विधि विधानो का अच्छा परिचय मिलता है। यह सस्कार आजकल प्रधानतया ब्राह्मण तथा क्षत्रियो तक ही सीमित रह गया है अत जनेऊ के गीतो का प्रचार तथा इनकी सख्या बहुत अधिक नही है।

विवाह

विवाह सस्कार सभवत सभी सस्कारो में सर्व प्रसिद्ध तथा सर्वाधिक प्रचलित है। भारत में सभवत कोई भी जाति नही है जिसमें विवाह के गीत प्रचलित न हों। आर्य सस्कृति में पले हुए ब्राह्मण क्षत्रियो से लेकर आधुनिक सभ्यता के वातावरण से दूर रहने वाली मध्य प्रदेश की गोड तथा छोटा नागपुर की सन्याल जातियों में भी ये गीत समान रूप से प्रचलित हैं। मनुष्य के जीवन में विवाह एक प्रधान घटना है। इसीलिये इसे सर्वप्रधान सस्कार माना जाता है। जिन जातियों में धार्मिक भावनाओ का अभाव है वे भी इस अवसर

पर धार्मिक रूप में नहीं अपितु सामाजिक रूप में गीतों को गाकर अपना अपना आनन्द प्रकट करती हैं। समस्त लोकगीतों में वैवाहिक गीतों की संख्या आधे से भी अधिक है। विवाह के अवसर पर अनेक विधि विधान सम्पादित किये जाते हैं। जिनमें संबंध रखने वाले अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। विवाह के पूर्व तिलक या फलदान की विधि बरती जाती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत पृथक् हैं। इसी प्रकार हलदी, मड़प, जेवनार, भावर आदि अवसरों पर विभिन्न गीत गाये जाते हैं। कोहबर के समय हास्यरस संबंधी गीत प्रयोग में आते हैं जिनमें कुछ अश्लीलता भी रहती है।

विवाह के पश्चात जब कन्या प्रथम बार अपनी ससुराल जाती है उसे 'द्विरागमन' अथवा गवना कहते हैं। करुणरस की बहुलता होने के कारण ये गीत अपना विशेष महत्व रखते हैं। इन प्रधान संस्कारों

गवना

के अतिरिक्त जब बालक बारह दिन का होता है उस समय 'बरही' नामक संस्कार तथा उसके छ मास के होने पर 'अन्नप्राशन' संस्कार किया जाता है। इन अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों की संख्या अधिक नहीं है। इस प्रकार संस्कार की दृष्टि से उपर्युक्त प्रकार के गीत उपलब्ध होते हैं।

२. रसानुभूति की प्रणाली से

लोक गीतों के अनेक रसों की अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दर रीति से हुई है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि " न ग्राम गीतों में रस है, अलंकार नहीं।" यह कथन अक्षरशः सत्य है। इन लोक गीतों में भिन्न रसों की जो अविरल धारा प्रवाहित होती है उसका अन्त थोत कदापि सूखता ही नहीं। करुणरस में ओतप्रोत इन लोक गीतों के सामने अनेक कवियों की उक्तियाँ भी फीकी जँचती हैं। कहीं ढोलक पर गाये जाते हुए आल्हा को सुनकर शरीर में रोमांच हो जाता है और अंग-प्रंग फड़कने लगता है तो कहीं हास्य रस से परिपूर्ण झूमरो को पढ़कर बत्तीसी चमकने लगती है। प्रातःकाल गंगा स्नान के लिये जाने वाली स्त्रियों के कलकंठ से भक्ति का उद्रेक करने वाले भजनों को सुनकर किसका मन शान्त रस की धारा में प्रवाहित नहीं हो जाता। यों तो इन गीतों में सभी रसों की अवतारणा की गई है परन्तु निम्नांकित पाँच रसों में ही इन गीतों की अधिक रचना उपलब्ध होती है। इन रसों में भी करुणा का ही पुट सब से अधिक है। इन गीतों को रसों के अनुसार निम्न प्रकार से विभक्त कर सकते हैं।

१ शृंगार रस।
२ करुण रस।
३ वीर रस।
४ हास्य रस।
५ शान्त रस।

शृंगार रस के गीतों के अन्तर्गत प्रधानतया सोहर, जनेऊ और विवाह के गीत आते हैं। सोहर के गीतों में गर्भिणी की शरीर यष्टि का बड़ा सुन्दर

शृंगार रस

वर्णन पाया जाता । गर्भवती होने पर किस प्रकार स्त्रियों का शरीर पीला पड जाता है, पयोधर स्थूलता को प्राप्त हो जाते हैं, मुंह पियराने लगता है और पैर भारी मालूम पडता है। इन विषयों का वर्णन बडी सुन्दर रीति से इन गीतों में किया गया है। जनेऊ के गीतो में भी कहीं-कहीं शृंगार का पुट पाया जाता है। विवाह के गीत तो शृंगार रस से लबालब भरे पडे हैं। इनमें संयोग तथा विप्रलम्भ, दोनों प्रकार के शृंगार का सुन्दर वर्णन है। शृंगार रस में ओतप्रोत ये गीत ग्रामीण होते हुए भी ग्राम्य नहीं हैं।

करुण रस के गीतों में गवना जतसार निर्गुन पुरबी, रोपनी तथा सोहनी के गीतों की गणना की जाती है। इन लोक गीतों की आत्मा करुण रस है यदि ऐसा कहें तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। यद्यपि उपर्युक्त सभी गीतों में

करुण रस

करुण रस का पुट पाया जाता है परन्तु गवना के गीतों में करुण रस बरसाती नदी की भाँति उमडता हुआ दीख पडता है। लडकी के बिदाई के समय जो गीत गाये जाते हैं वे बडे ही हृदयद्रावक होते हैं। इन मर्मस्पर्शी गीतों को सुनकर कुछ देर के लिए श्रोता अपनी सुधबुध खो देता है। ये बिदाई के गीत मानो करुण रस के महाकाव्य हैं जिनमें ग्रामीण कवि की आत्मा की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से हुई है।

इसी प्रकार से जतसार, निर्गुन, पुरबी, रोपनी एवं सोहनी के गीतों में भी करुण रस की प्रधानता पाई जाती है। जतसार में स्त्री के दुःखदाई जीवन का वर्णन पाया जाता है। 'निर्गुन' में भी करुण रस की स्रोतस्विनी तीव्र वेग से बहती हुई दिखाई देती है। 'पूरबी' गाने उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में गाये जाते हैं। इन गीतों के गाने का लय इतना द्रावक होता है कि श्रोता का हृदय इसे सुनकर पिघलने लगता है। इन गीतों में भी वही पुरानी गाथा पाई गई है। वही विरह की कहानी, वही वियोगिनी की दुर्दशा। पति के वियोग में वही पुराना प्रलाप और वही रोना धोना। यद्यपि इन गीतों में कहीं-कहीं शृंगार का भी पुट पाया जाता है परन्तु इनमें करुण रस की प्रधानता है। रोपनी और सोहनी के भी गीतों में करुण रस की अभिव्यंजना हुई है।

भोजपुरी में गेय गीतों के अतिरिक्त कुछ प्रबन्धात्मक गीत भी पाये जाते हैं जिसमें किसी विशेष घटना को कथानक के रूप में विस्तृत रीति से कहा गया है। साथ ही उनमें गेयता भी है। इन प्रबन्धात्मक लोक गीतों

वीर रस

को 'लोक गाथा' का नाम दिया गया है। इन्हें अंग्रेजी में 'बैलेड' कहते हैं। उदाहरण के लिये हम आल्हा, विजयमल, लोरकी, नयकवा बनजारा, सोरठी और 'भगवती के गीत' को ले सकते हैं। आल्हा वीर रस का महाकाव्य है जिसके प्रत्येक पद में वीरता कूट कूट कर भरी पडी है। इसमें आल्हा का जीवन चरित बडे विस्तार से गाया गया है। आल्हा का विवाह, माडागड की लडाई, ऊदल के विवाह के समय का युद्ध, ये ऐसे वीर रस के प्रसंग हैं जिनको सुनकर मुर्दा दिल में भी जोश उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार महुबे पर आक्रमण करने वाले पृथ्वीराज के साथ आल्हा और ऊदल

का युद्ध भी अपना विशेष महत्व रखता है और वीर रस का उद्रेक करता है। कथावस्तु का विस्तार छोड़कर यदि हम छन्द की दृष्टि से न भी देखें तो आल्हा वीर रसात्मक महाकाव्य का उत्कृष्ट उदाहरण सिद्ध होता है। आल्हा जिस छन्द में लिखा गया है उसके पठन मात्र से ही अंग-प्रंग फड़कने लगते हैं। हमने आल्हा के कितने ऐसे गवैयों को देखा है जो जोश में ढोल पर आल्हा गाते-गाते अपना होश खो बैठते हैं और कुछ समय के लिये बेसुध हो जाते हैं।

सोरठी में रहस्य रोमांच की कथा बड़ी सुन्दर रीति से लिखी गई है। इसके बीच बीच में अद्भुत रस भी पाया जाता है। लोरकी भोजपुरियों का वीररसात्मक महाकाव्य है जिसमें लोरिकायन या लोरकी नामक वीर की कथा विस्तार से लिखी गई है। 'विजयमल' में कुंअर विजयी नामक वीर की वीर कथा का वर्णन किया गया है। किस प्रकार इसने शत्रु को रण में परास्त कर विजय प्राप्त किया इसका विस्तृत वर्णन पढ़ने को हमें यहाँ मिलता है। इस प्रकार से इन वर्णनात्मक गीतों में वीर रस का पुट प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

इन लोक गीतों में यद्यपि करुण रस की ही प्रधानता है फिर भी अन्य रसों का आनन्द लेने के लिये भी प्रचुर प्रसंग उपलब्ध होते हैं। विवाह के गीतों में (जैसा पहिले कहा जा चुका है) संभोग शृंगार उपलब्ध होता है परन्तु विवाह के अन्तर्गत एक विशिष्ट प्रकार के गीतों (कोहबर के गीत) में हास्य रस पाया जाता है। विवाह के पश्चात् वर एक सुसज्जित घर में बैठाया जाता है जहाँ कमरे के एक कोने में उसकी पत्नी भी बैठी रहती है। वहाँ गाँव की युवती तथा बूढ़ी स्त्रियाँ आती हैं और उस नये दूल्हे से अनेक प्रकार का हास परिहास करती हैं। कोई तो उसे काला पहाड़ की उपमा से सुशोभित करती है तो कोई उसके कुल की उत्पत्ति रावण से बतलाती है। कोई उसे निरक्षर भट्टाचार्य कहकर सम्बोधित करती है तो कोई उसके माता पिता के चरित्र को दूषित बतलाती हैं। कहने का आशय यह है कि हास्य रस के जितने प्रसंग हो सकते हैं उन सब की अवतारणा वहाँ की जाती है। इसी प्रकार से झूमर के गीतों को झूम-झूमकर बड़े प्रेम से एक साथ स्त्रियाँ गाती हैं। ये 'झूमर' हास्य रस से लबालब भरे रहते हैं यद्यपि इनमें शृंगार रस का भी अभाव नहीं है। इनमें कहीं अपने प्रियतम पर कोई फबती कसी जाती है तो कहीं देवर से हँसी या मजाक का अवसर उपस्थित किया जाता है।

हास्य रस

भजन, निर्गुन, तुलसी माता और गंगा जी के गीतों में शान्त रस पाया जाता है। सन्ध्या समय तथा रात्रि के पिछले पहर में स्त्रियाँ भजन गाती हैं जिन्हें 'सञ्झा' और 'पराती' कहते हैं। इन गीतों में भगवान् की स्तुति होती है जिन्हें सुनकर भक्ति का उद्रेक होता है। प्रातःकाल गंगा स्नान के लिये झुंड में जाती हुई स्त्रियाँ गंगा जी का गीत गाती हैं जिनमें संसार के झंझटों से मन को हटाकर भगवान् में लगाने का वर्णन रहता है। तुलसी जी के गीतों में तुलसी माता की देवता के रूप में स्तुति की जाती है। बहुत से ऐसे निर्गुन गीत भी उपलब्ध

शान्त रस

होते हैं जो कबीरदास जी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन निर्गुनों में शान्तरस का सुन्दर प्रवाह पाया जाता है।

लोक गीतों का जब हम सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं तो देखते हैं कि इनमें से अधिकांश किसी न किसी ऋतु अथवा व्रत या उत्सव से सबंध रखते हैं।

ऋतु गीत

विभिन्न ऋतुओं के आने पर हृदय में जो उल्लास उत्पन्न होता है, उसका प्रकाशन भोजपुरी कवियों ने इन गानों में किया है। चैत्र का महीना हमारे वर्ष के आरम्भ का मास है। इन दिनों में वसन्त अपने पूरे साज, समाज के साथ विराजमान रहता है। कहीं कोयल अपनी कूक सुनाती है तो कहीं अन्य पक्षी कलरव करते सुनाई पड़ते हैं। अतः चैत्र मास में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'चैता' कहते हैं। इनका विस्तृत विवरण यथावसर अन्यत्र प्रस्तुत किया जायगा। इसके पूर्व मास अर्थात् फागुन मास में होली का त्योहार मनाया जाता है। यह भी ऋतु सबंधी उत्सव है। इस मास में जो गाने गाये जाते हैं उन्हें 'फगुआ' या होली कहते हैं। ये गीत बड़ा आनन्द प्रदान करते हैं। फागुन मास की मादकता इन गीतों में भी पाई जाती है। 'फगुआ' और चैता वसन्त ऋतु के गेय गीत हैं।

इसी प्रकार वर्षा ऋतु में सावन के महीने में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'कजली' कहते हैं। स्त्रियाँ झूलों पर बैठ कर इन गीतों को बड़े आनन्द से गाती हैं। इस ऋतु में 'आल्हा' भी गाया जाता है। इन्ही दिनों में बारहमासा भी गाया जाता है जिसमें प्रत्येक मास का वर्णन बड़ा रुचिकर प्रतीत होता है।

ऋतु सबंधी गीतों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी गीत हैं जिनका सबंध

व्रत गीत

स्त्रियों के व्रतों से है अर्थात् जो स्त्रियों द्वारा विशेष स्त्री व्रतों के अवसर पर गाये जाते हैं। इन गीतों में बहुत से गीत, पिड़िया के गीत, गोधन के गीत, नागपचमी के गीत, षष्ठी माता के गीत, शीतला माता के गीत और तीज के गीत प्रसिद्ध हैं।

श्रावण शुक्ला पचमी को नागपचमी का त्योहार मनाया जाता है। इस दिन स्त्रियाँ अनेक विधिविधानों को सम्पन्न करके नाग देवता की पूजा करती हैं और गीत गाती हैं। भादो, भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को बहुला का व्रत और इसी मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को तीज का व्रत स्त्रियाँ करती हैं और अपने कोमल कठ से मधुर गीत गाती हैं। इसी प्रकार कार्तिक मास के शुक्ल प्रतिपदा को गोधन का व्रत और कार्तिक शुक्ल षष्ठी को छठी माता का व्रत किया जाता है। अगहन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को पिड़िया के गीत गाये जाते हैं। चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के नवरात्र के दिनों में शीतला माता के गीत सुनने को मिलते हैं। इस तरह ऋतुओं के क्रम से तथा व्रतों और त्योहारों के आधार पर इन उपर्युक्त गीतों का विभाजन किया जा सकता है।

४. विभिन्न जातियों के प्रकार से

हम लोकगीतों का वर्गीकरण विभिन्न जातियों में विशेष रूप से उन गीतों के प्रचार के आधार पर भी कर सकते हैं। कुछ ऐसे गीत हैं जो केवल किसी जाति विशेष के द्वारा ही गाये जाते हैं, जैसे बिरहा। यह अहीरों के द्वारा ही विशेष रूप से गाया जाता है। यदि इसे हम अहीर जाति का राष्ट्रीय गान कहें तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी। अहीर जाति में बिरहा गाने का इतना अधिक प्रचार है कि वे लोग जब कभी अवसर मिला, इसे गाते रहते हैं। खेतों में निराई करते समय अथवा हल चलाते समय या घास का गट्ठर सिर पर लाद कर घर जाते समय, अहीर सदा बिरहा के गान में मस्त रहता है। इस गीत का उसके यहाँ इतना महत्व है कि विवाह जैसे मांगलिक अवसर पर बिरहा का गाया जाना आवश्यक समझा जाता है। अहीरों की बारात में बिरहा की बहार सुनकर किसका मन मुग्ध नहीं हो जाता। कन्या पक्ष तथा वर पक्ष के अहीरों में दो दल बन जाते हैं। पहिले एक दल बिरहा सुनाता है फिर दूसरे दल का व्यक्ति इसका उत्तर देता है। यह क्रम बहुत देर तक चलता रहता है और जिसे अधिक बिरहा याद रहता है उसी की विजय मानी जाती है। बिरहा का अधिक संख्या में याद होना ही उनकी विजय का मापदंड है।

इसी प्रकार पचरा गीत का प्रचार दुसाधों (एक प्रकार की अस्पृश्य जाति) में अधिक है। दुसाध जाति में जब कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है अथवा भूत प्रेतादि बाधा से पीडित होता है तब उस जाति में जो बूढ़ा दुसाध होता है उसे बुलाकर पचरा गवाया जाता है। वह पचरा गाकर कुछ तन्त्र मन्त्र भी करता है और इस प्रकार रोगी निरोग हो जाता है। पचरा गीत का प्रचार केवल दुसाधों में ही पाया जाता है।

तेली 'विजयमल' अधिक गाते हैं। विजयमल में कुंवर विजयी की वीरगाथा सुन्दर तथा वीररसमय शब्दों में गाई गई है जिसके गान का विशेष प्रकार तेलियों में उपलब्ध होता है। नेटुआ आदि जातियाँ लोरकी गाने में बड़ी दक्ष होती हैं। इसी प्रकार कहार नामक जाति जिन गीतों को गाती हैं उन्हें 'कहरवा' कहते हैं। कहार जाति के द्वारा अधिक गाये जाने के कारण ही इनका नाम 'कहरवा' पड़ गया है। धोबी भी एक विशेष प्रकार का गीत गाते हैं जिन्हें 'धोबियट' कहते हैं।

वर्षा ऋतु में एक विशेष जाति के लोग ढोल को गले में बाँध कर 'आल्हा' गाते फिरते हैं। इस गीत को गाकर भिक्षा का आयोजन करना इनका व्यवसाय हो गया है। ये बड़े ही उच्च स्वर से वीर रस में आल्हा का पाठ करते हैं जो बड़ा ही प्रभावोत्पादक होता है। इसी प्रकार गोपीचन्द तथा भरथरी के गीतों के गाने का प्रचलन 'साइयों' में अधिक है।

५. क्रिया गीत के आधार पर

कुछ ऐसे भी लोक गीत पाये जाते हैं जो काम करते समय गाये जाते हैं। काम करते समय गीत गाते रहने से थकान का अनुभव नहीं होता है और साथ ही मनोरंजन भी होता रहता है। ऐसे गीत को अंग्रेजी में 'एक्शन सांग' कहते

है। हमने इन गीतों का नाम 'काम करते समय के गीत' अथवा 'क्रिया गीत' रखा है। इन गीतों की श्रेणी में जतसार, रोपनी, सोहनी, और कोल्हू आदि के गीत आते है। जात में आटा पीसते समय जो गीत गाया जाता है उसे 'जतसार' कहते हैं इसे दो स्त्रियाँ मिलकर एक साथ ही गाती हैं। सोहनी के गीत उस समय गाये जाते है जब स्त्रियाँ खेत में निराई का काम करती हैं। यह गीत स्त्री समूह कोरस के द्वारा गाया जाता है। इसी प्रकार धान रोपते समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'रोपनी' के गीत कहते है। जब तेली तेल पेरने के लिए कोल्हू चलाता है उस समय भी गीत गाये जाते हैं जो कोल्हू के गीत के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये गीत एक विशेष कार्य करते समय गाये जाते है अत इन्हें पृथक् श्रेणी में रखा गया है।

प्रधान रूप से लोक गीतो क उपर्युक्त पाच प्रकार के वर्गीकरण के पश्चात् इनके वर्ण्य विषय के आधार पर भी इनका विभाजन किया जा सकता है। जिस प्रकार काव्य का विभाजन मुक्तक और महाकाव्य के रूप में किया गया है ठीक उसी प्रकार इन गीतो का विभाजन भी गीत और प्रबन्ध गीत के रूप में किया जा सकता है। गेय गीत वे छोटे-छोटे गीत है जिनका कथानक छोटा है और जिनमें गेयता की प्रधानता है। गेयता ही इनकी आत्मा है। इस श्रेणी के गीतो में संस्कार तथा ऋतु सम्बन्धी सभी गीत आ जाते है, प्रबन्ध गीतो में कथानक की प्रधानता रहती है। एक ही कथा का वर्णन विस्तार पूर्वक उसमें पाया जाता है। यद्यपि इन गानो में भी गेयता रहती है, परन्तु उनमें कथानक की ही प्रधानता रहती है। अंग्रेजी शब्दो के द्वारा यदि इन दोनो का पार्थक्य प्रकट करना चाहें तो पहिले प्रकार के गीतो को 'लीरिक' और दूसरे प्रकार के गीतो को 'बैलेड' कह सकते हैं। इस द्वितीय श्रेणी के गीतो में आल्हा, लोरिक, विजयमल, नयकवा बनजारा आदि गीत हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी गीत हैं जो उपर्युक्त पाच श्रेणियो में अन्तर्भुक्त नही होते, जैसे चरखे के गीत, मेले के गीत, और अनुभव के वचन हैं। न सभी गीतो को प्रकीर्णक श्रेणी में रखा जा सकता है।

त्रिपाठी जी तथा पारीक का वर्गीकरण

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम गीतो का वर्गीकरण निम्नांकित ग्यारह श्रेणियो में किया है।[१] १ संस्कार सबंधी गीत। २ चक्की और चरखे के गीत। ३ धर्मगीत। ४ ऋतु संबंधी गीत। ५–७ खेती, भिखमगो तथा मेले के गीत। ७ जाति गीत। ९ वीरगाथा। १० गीत कथा तथा ११ अनुभव के वचन।

इस उपर्युक्त वर्गीकरण पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि यह श्रेणी विभाग वैज्ञानिक नही है। हमारे उपर्युक्त पाँच विभागो में ही इन सभी गीतो का अन्तर्भाव हो जाता है। संस्कार और धर्मगीत एक ही श्रेणी में आ सकते हैं। भिखमगो के गीत और मेले के गीतो की कोई पृथक श्रेणी नही है। अनुभव के वचन जैसे घाघ और भड्डरी की उक्तियाँ गीत कोटि में नही

---

[१] कविता कौमुदी भाग ५ ग्राम गीत पृ० ४५।

आती। अतः त्रिपाठी जी का यह ग्यारह विभाग हमारे उपर्युक्त पाँच विभागों का बृहदीकरण मात्र है।

राजस्थानी लोक गीतों के विद्वान् पं० सूर्यकरण पारीक ने अपनी पुस्तक में राजस्थानी गीतों का क्षेत्र विस्तार दिखलाते समय इन गीतों को उनतीस विभागों में विभक्त किया है। इस वर्गीकरण के विषय में भी हमें वही बात कहनी है जो त्रिपाठी जी के विषय में कही गयी है। पारीक जी के वर्गीकरण में भी हमें कुछ क्रम नहीं दिखाई पड़ता। उन्होंने हास्य, शृंगार तथा वीर रस को तीन श्रेणियों में रखा है जिनको एक श्रेणी में रखा जा सकता है। उसी प्रकार से भाई बहन तथा पति पत्नी के गीतों का अन्तर्भाव संस्कार या ऋतु संबंधी गीतों में किया जा सकता है।

(आ) लोक गीतों के प्रकार

लोक गीतों के अनेक प्रकार पाये जाते हैं। कुछ गीत ऐसे हैं जो विभिन्न संस्कारों के अवसरों पर गाये जाते हैं। विभिन्न ऋतुओं में उनके अनुसार कुछ गीत गाये जाने की प्रथा है। भिन्न-भिन्न जातियाँ एक विशिष्ट प्रकार के गीतों को गाती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ गीत ऐसे भी उपलब्ध होते हैं जो किसी काम के करते समय गाये जाते हैं। यहाँ हम सर्वप्रथम संस्कार संबंधी गीतों का उसके समय के अनुसार वर्णन करेंगे। संस्कारों में सर्व प्रथम संस्कार (जो आजकल किया जाता है) पुत्र जन्म है।

(क) संस्कार सम्बन्धी गीत

सोहर — पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'सोहर' कहते हैं। किसी-किसी गीत में इस शब्द का प्रयोग भी पाया जाता है जैसे —

बाजेला अनंद बधाय, महल उठे 'सोहर' हो।

'सोहिलो' अथवा 'मंगल' शब्द के अभियान से इन्हीं गीतों का संकेत किया गया है। कहीं-कहीं पर सोहर के स्थान पर 'मंगल' शब्द भी व्यवहृत हुआ है।[२]

गावहु ए सखि गावहु, गाइ के सुनावहु हो,
सब सखि मिलिजुलि गावहु, आजु मंगल गीत हो।

तुलसी दास जी ने भी रामचरित मानस में राम जन्म के अवसर पर मंगल गीत ही गवाया है।

"गावहिं मंगल मंजुल बानी,
सुनि कलरव कलकंठ लजानी।"

सोहर शब्द की उत्पत्ति 'शोभन' से ज्ञात होती है। सोहर के गीत सोहिलो के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। संभवतः यही 'शोभन' शब्द शोभिलो सोहिलो सोहर के रूप में परिवर्तित होता हुआ इस रूप में आ गया है। भोजपुरी में 'सोहल'

---

१ पारीक राजस्थानी लोक गीत पृ० २२ २५। २ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १

का अर्थ अच्छा लगना या सुहाना है जो संस्कृत के 'शोभन' का अपभ्रंश है।

पुत्र जन्म के अवसर पर जो मंगल गीत गाये जाते हैं वे 'सोहल' छन्द में होते हैं। इस सोहर छन्द में निबद्ध होने के कारण ही इन गीतों का नाम भी 'सोहर' पड गया है। भोजपुरी गीतों में जो सोहर उपलब्ध होते हैं उनमें तुक नहीं होता और न वे पिंगल शास्त्र के नियमों से जकड़े ही रहते हैं। वे तो पहाड़ी नदी की भाँति स्वच्छन्द रूप से बहते चले जाते हैं। तुलसीदास जी 'रामलाल नहछू' में जो सोहर लिखे हैं उनमें तुक मिलाया है और प्रत्येक पद में मात्रायें भी बराबर रखी हैं। उन्होंने पिंगल के अनुसार शुद्ध करके सोहर छन्द लिखा है।

बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो।
अहिरिनि हाथ दहेडि सगुन लेइ आवइ हो।
उभरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो।
रूप सलोनि बोलिनि बीरा हार्थाहि हो।
जाकी ओर विलोकहिं मन उनसाथहि हो।
दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगन्धन बीरा हो।
नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो।

पुत्र जन्म भारतीय ललनाओं की ललित कामनाओं की चरम परिणति है। मानी हुई मनौतियों का मनोरम परिणाम है। इस शुभ अवसर पर पास पडोस की स्त्रियाँ (विशेषत ग्राम गीतों की पंडिता वृद्धायें) एकत्र होकर नव प्रसूता स्त्री के 'सूतिकागृह' के दरवाजे पर बैठ जाती हैं और रमणीय गीतों को सुना सुनाकर घर भर की स्त्रियों का विशेषत जच्चा का मनोरंजन किया करती हैं। यह गीत बारह दिन तक गाया जाता है और जब बालक का 'बरही' संस्कार समाप्त हो जाता है तभी इन गीतों की भी समाप्ति होती है।

देहातों में न तो कोई बच्चा जनने का अस्पताल ही होता है और न शिशुपालन की शिक्षा में शिक्षित धाय ही उपलब्ध होती है। ऐसी दशा में देहाती का घर ही उसका अस्पताल है और गाँव की अनपढ़ एवं अशिक्षित चमाइन ही उसकी धाय है। जब स्त्री को प्रसव पीडा उत्पन्न होती है तो गाँव की बूढी स्त्रियाँ बुलाई जाती हैं। वे समय जाती हैं कि प्रसवकाल समीप आ गया है और वे स्त्री को धैर्य प्रदान करती हैं।

पुत्र जन्म के समय विभिन्न विधि विधान

जब बालक पैदा हो जाता है तो घर का कोई पुरुष गाँव की चमाइन (चमार की स्त्री) को जो धाय का काम परम्परा से करती आती है बुला जाता है। वह तुरन्त आती है और बालक के नाल को काटने के लिये छुरी माँगती है। यदि

---

[1] रामलला नहछू पृ०

छुरी या कैंची कुछ उपलब्ध न हुई तो साग काटने की हँसिया-हँसुआ ही काम में लाया जाता है। घ ी घरा में सुन्दर छुरी रखी जाती है। गीतो में कही न कही सोने की छुरी माँगने का वर्णन पाया जाता है। जिस छुरी से धाय नाल काटती है वह उपहार रूप मे उसी को दे दी जाती है इसलिये चाँदी या सोने की छुरी लेने का वह विशेष आग्रह करती है। सूतिकागृह को भोजपुरी मे 'सउरी' कहते हैं। इस सूतिकागृह के आगे, दरवाजे पर, निरन्तर मिट्टी की अँगीठी में जिसे 'बोरसी' कहते हैं-आग जला करती है जिससे बुरी प्रेतात्मायें घर में प्रवेश कर नव-जात बालक को हानि न पहुँचावें। इस बोरसी में उपला (गोइठा), लकडी या धान की भूसी जला करती है जिससे आग कभी बुझने न पाये। आग में जलने के लिये जो चीज डाली जाती है उसे 'पाराग' कहते हैं। कहीं-कहीं गीता में सोने की 'बोरसी' में चन्दन की लकडी जलने का वर्णन पाया जाता है। जच्चा बारह दिना तक उसी घर में ही पडी रहती है। धाय सबेरे शाम आती है और जच्चा की परिचर्या कर चली जाती है। जच्चा को 'अलवाति' कहा जाता है और उसकी सेवा सुश्रूषा का बडा ध्यान रखा जाता है। उसके खाने के लिये हलुआ-जिसे 'कांची' कहते हैं और दूध दिया जाता है। गरीब लोग हल्दी मे दूध मिलाकर पीने को देते है। सभवत पीने से देह का दर्द दूर हो जाता है और दूध पीने से शरीर की पुष्टि होती है। इस समय जच्चा को खट्टा, तीता आदि खाने को नही दिया जाता क्योंकि इससे हानि हो सकती है।

सूतिका गृह के बाहर उसकी रक्षा के लये कोई बूढ़ी औरत दिन रात निगरानी करती है। पहरेदार की भाँति वह चौबीस घटा वही रहती है। इसे 'सउरी अगोरना' कहते हैं। बूढी औरता के द्वारा सदा चौकन्ने रहने ए ध्यान-पूर्वक रक्षा के कारण ही 'सउरी अगोरना' भोजपुरी में एक मुहावरा हो गया है जिसका अर्थ है सतर्कता के साथ किसी वस्तु की रक्षा करना। सूतिका गृह में धाय के अतिरिक्त कोई भी स्त्री या पुरुष नही जा सकता। बच्चे भी इससे वचित रखे जाते हैं। सूतिका गृह में बिल्ली न घुसने पाये इस बात का ध्यान रखा जाता है। क्योंकि डर रहता है कि बिल्ली के रूप में यमराज बालक को स्पर्श न करदे जिसे 'जम छना' कहते हैं। जच्चा जितने दिना तक सूतिका गृह में रहती है उतने दिनों तक उसके शरीर का प्रसाधन एव अलकरण नहीं होता। उसके लम्बे बाल खुले रहते हैं। गाँव के पुरोहित या पडित से कोई शुभ दिन जच्चा के स्नान के लिये पूछा जाता है। यह रविवार या मगलवार ही होना चाहिये। उस दिन स्त्री सूतिकागृह से निकल कर, स्नान करती है अपने शरीर का अलकरण और प्रसाधन करती है और सास और जेठानी के पैर छूकर उनका आशीर्वाद प्राप्त करती है।

बालक जब छ दिन का होता है तो 'छठी' नामक सस्कार किया जाता है और बारह दिन का हो जाता है तो 'बरही' सस्कार सपादित किया जाता है। 'बरही' सस्कार स्त्री के सूतिकागृह से निकलने के पश्चात् ही होता है। इस दिन पिता नवजातक बालक का मुह सर्वप्रथम देखता है उसे गोद में लेकर रुपया देता है। घर के अन्य पुरुष भी ऐसा ही करते हैं। इसी दिन ज्योतिषी को बुलाकर

बालक का नामकरण किया जाता है। भाई बन्धुओं को भोज (दावत) दिया जाता है। यह दिन बडी प्रसन्नता का होता है।

एक बात और। बालक जब पैदा होता है तो उसके जन्म की प्रसन्नता में थाली (छीपा) बजाई जाती है। देहातो में किसी अन्य वाद्य यन्त्र के उपलब्ध न होने के कारण थाली ही बजाई जाती है। सभवत यह उस प्रथा का प्रतीक है जो प्राचीन काल में इस अवसर पर गायन और वादन के रूप में किया जाता था। थाली के बजाने से बालक के का ो में शब्द प्रवेश करता है जिससे उसके सुनने की शक्ति दृढ होती है इस कारण थाली बजाने का यह वैज्ञानिक रहस्य भी है। 'थाली बजाना' आजकल भोजपुरी में एक मुहावरा भी है जिसका अर्थ किसी घटना का साक्षीभूत होना है।

बालक जब 'सतइसा' में पड जाता है तो यह बुरा माना जाता है। बालक का पिता उसका मुह सत्ताइस दिनो तक नहीं देखता और अन्तिम दिन तेल में बालक का प्रतिबिम्ब देखकर ही उसे पुन देखता है। उस दिन पूजा पाठकर उस अशुभ नक्ष की शान्ति की जाती है।

पुत्र जन्म के अवसर पर धनी घरो में 'पौंरिया' नचाने की भी प्रथा है। पौंरिया प्राय मुसलमान होते हैं जो पुत्र होने पर रामचन्द्र के जन्म लेने की कथा को गा-गाकर नाचते हैं। 'श्री रामचन्द्र जनम लिहले चइत रामनवमी' यह उनके गीतो की प्रधान टेक है। परन्तु यह प्रथा धीरे-धीरे अब उठती चली जा रही है। राम के जन्म के अवसर पर महर्षि वाल्मीकि ने भी गन्धर्वों के गाने और अप्सराओं के नाचने का वर्णन किया है।

जगु कलच गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरो गणा ।
देवदुन्दुभयो नेदु पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् ।।

वा० रा० बालकाण्ड १८।१६.

सभवत पौंरियो की उपर्युक्त प्रथा इसी प्राचीन प्रथा का अवशेष मात्र है।

पुत्र जन्म के अवसर पर पिता घर से दूर कहीं परदेस में गया हो तो उसे सन्देश भेजने (जिसे 'लोचन' ले जाना कहते हैं') की भी प्रथा है। गाँव का नाई या बारी (एक जाति) इस शुभ सन्देश को पिता के पास तुरन्त पहुँचाता है। गीता में वाल्मीकि के आश्रम में लव कुश के पैदा होने का सन्देश राम के पास शीघ्र पहुँचाने का उल्लेख पाया जाता है। उस समय पिता सन्देश वाहक को मनोवाछित द्रव्य प्रदान करता है। अपने आनन्द को मूर्त रूप में प्रकट करने के लिये न, धान्य, हाथी, घोडा आदि लुटाता है। कालिदास ने रघु के जन्म के अवसर पर पुत्र जन्म का सन्देश पहुँचाने एव दान देने का वर्णन किया है।

जनाय शुद्धान्तचराय शसते, कुमारजन्मामृतसमिताक्षरम् ।
अदेयमासीत् त्रयमेव भूपते शशिप्रभ छत्रमुभे च चामरे ।।

रघुवश ३।१६

पुत्र जन्म के गीतो में आनन्द के उल्लास का विशद वर्णन होना स्वाभाविक है। इनमें जच्चा के हृदय में गुदगुदी पैदा करने वाली झाँकी भी देखने को मिलती है।

सोहर का वर्ण्य विषय कहीं-कहीं सन्तानहीन बांझ स्त्रियों की करुण दशा का चित्र सहृदयों के हृदय में विशद सहानुभूति उत्पन्न करता है। कोई बन्ध्या स्त्री अपनी मनोव्यथा का वर्णन करती हुई कह रही है कि जिस प्रकार वन में कोयल कुहुकती है उसी प्रकार मेरा हृदय पुत्र के बिना दुःखी रहता है। जिस प्रकार अँगीठी (बोरसी) की आग धीरे-धीरे जलती है उसी प्रकार मेरा पुत्रहीन हृदय धीरे-धीरे कष्ट पाता हुआ जलता रहता है।

"जइसन वन में के कोइरिया, बने बने कुहुकेले हो।
ए राम ओइसन जियरा हमार कुहुवेला, एकरे बालक बिनु हो।
जइसन बोरसी कै आग हवे धीरे-धीरे सुनुगेना हों।
ओइसे जियरा हमार सुनुगेला, एकरे बालक बिनु हो।"

इस गीत मे पुत्रहीन स्त्री का विलाप सचमुच पाषाण हृदय को भी पिघला देने वाला है।

सोहरो का प्रधान वर्ण्य विषय प्रेम है। इसमें स्त्री पुरुष की रतिक्रिया, गर्भाधान, गर्भिणी की शरीर-यष्टि, प्रसव पीडा, दोहद, उसकी पूर्ति, धाय का बुलाना और पुत्र जन्म का वर्णन पाया जाता है। भवभूति ने पुत्र या सन्तति को स्त्री और पुरुष दोनों के अभिन्न प्रेम की गाँठ कहा है[1]। वास्तव में जब दोनों का प्रेम मूर्त रूप ग्रहण करता है तब उसे सन्तति कहते हैं। जिस समय इन दोनों के प्रेम में गाँठ पड़ती है उसका वर्णन कितनी सयत भाषा में किया गया है। स्त्री कहती है[2] —

"ए सजइत बूझि जाहु आपन अवगुनवा,
मुसुकि जनि बोलहु हो।
ए सजइत मिलि जुलि बन्हली मोटरिया,
खोलत बेरिया अवसर हो।"

भवभूति ने जिसे ग्रन्थि कहा है, गीतों में इसी को 'गठरी' कहा गया है। गर्भवती होने पर गर्भिणी अनेक वस्तुओं को खाना चाहती है। इसे संस्कृत में 'दोहद' कहते हैं। कालिदास ने रघुवंश में इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है[3]। गीतों में दोहद का उल्लेख अनेक स्थानों पर आया है तथा पति उस दोहद की पूर्ति करता हुआ प्रयत्नशील पाया जाता है। पति स्त्री से पूछता है कि तुम्हें कौन सी वस्तु खाने में अच्छी लगती है।[4]

"आरे पातरि पातरि सुनर मुख दुरहरि हो।
कवन कवन फलवा मन भावे, कहिना समुझावहु हो।"

---

१ अन्तःकरण-तत्त्वस्य, दम्पत्यो· स्नेह संश्रयात्। आनन्दग्रन्थिरेको य मपत्यमिति कथ्यते।
२. उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भा० १ पृ० ६७ ६८। ३. न मेदिया सखी किंचिदीप्सिन, रघुवायतो वस्तुषु येषु मागधी। इतिहस्य पृच्छयनुवेलमाद्दृतं, प्रियसखीमुत्तरकोशलेश्वरः रघुवंश ३।५। ४ भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ५१-५२।

इस पर स्त्री उत्तर देती है :—

"भातावा त भावेला धानहिं केरा,
दलिया रहरि केरा हो।
ए प्रभु रेहुश्रात भावेला मछरिया,
मासु तीतिले केरा हो।
ए प्रभु फलवा त भावेला निबुआ,
केरवा नरियर भावे हो।"

गर्भ का सांगोपांग तथा विस्तृत वर्णन इन गीतों में उपलब्ध होता है। गर्भिणी का शरीर पिराने लगता है, वह प्रसव वेदना से व्याकुल है।[1] ऐसी दशा में वह उस पुरुष (अपने पति) को बुलाने का आग्रह करती है जिसने उसे यह कष्ट दिया है।

"कापारा त हमरो टनवेला, श्रोदारा चीलीकेला ए।
राजा दुनियाँ भइले अनसुन, कवन वही कुसल ए।"

इतने में उसका पति धगड़िन (धाय) को बुलाने के लिये दौड़ पड़ता है और धगडिन से अपने घर चलने के लिये कहता है। अब वह पूछती है किसलिए मुझे बुला रहे हो तब वह उत्तर देता है कि[2] :—

"ना मोरी माई बियाले, त बहिना आसापति ए।
ए धगडिन मोरा घरे घरनी बेयाकुल, रउरा के चाहेले ए।"

गर्भिणी की शरीर यष्टि का कितना सहानुभूतिपूर्ण वर्णन इस मनोरम गीत में पाया जाता है[3]।

"दुबरा से अइने नंदलाला, नाजो के मुहवा देखेले हो।
आमा दुलहिन के ओठवा झुरइले, हरदी मुहवा पीयर रे।
सासु मोरा मुहवा निरेखे, ननद मुहवा चूमेले हो।
बहुआ धीरे धीरे अगव वेदनिया, होरिल तोहरा होइहै हो।"

पुत्र जन्म के एक गीत में लव, कुश के जन्म का जब समाचार राम को मिलता है तब हाथी, घोड़ा, गया, भैंस आदि दान करते हैं। पुत्र जन्म के बाद सीता वाल्मीकि के आश्रम से, जब अयोध्या लौटती हैं तब वहाँ घोड़ा, हाथी कुछ भी नहीं पाती। इस पर जब वे प्रश्न करती हैं तो उत्तर मिलता है कि पुत्र जन्म के उत्सव पर रामचन्द्र ने घोडा, हाथी, गाय, भैंस को ब्राह्मण और भाटों को दान में दे दिया है[4]।

"हथिया ना देखो हथिसारावा, भँइसि डील डाबर हो।
लालाना गोऊना देखो गोऊसालावा, अजोध्या हमार लुटि गइले हो।
हथिया त देखो बभन दान, भेंइसि भटन दान हो।
ललना गइया भइल साधु दान, गोबिन का जनम भइले हो।"

---

१. वही पृ० ५६। २. वही पृ० ५७। ३. वही भूमिका पृ० ३०। ४. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ६४।

किम्बहुना रामचन्द्र ने ही नही, सीता की सास और ननद ने भी इस अवसर पर प्रचुर दान दिया —

"काकाना ननद दान कइलि, दुलरी कइली सासु दान हो।
राम धन, धान लुटवले, उछाह सतति भइले हो।"

जहाँ इन गीतो में पुत्र के पैदा होने पर महान् उत्सव मनाया जाता है वहाँ पुत्री के जन्म के कारण विषाद की गहरी रेखा माता के मुह पर दिखाई पडती है। वह कहती है कि जैसे पुरैन का पत्ता हवा के कारण काँपता है वैसे ही मेरा हृदय पुत्री के जन्म होने से भावी दुख के कारण थरथर काँप रहा है। पहिले पुत्र पैदा होने पर मुझे शाल ओढने और बिछाने को मिलता था, मैं मेवा खाती और सुखपूर्वक सोती थी। परन्तु अब पुत्री जनने के कारण कुश ओढने के लिये और कुश ही बिछाने के लिये मुझे दिया गया है। जगली फल भोजन में मिलता है और खुखुडी—मक्का की सूखी बाल या हल्की लकडी जो जल्दी जल जाती है—'पासग' जलाने को मिली है। वस्त्र न मिलने के कारण रात को नीद भी नही आती। यह गीत सुनिये[1] —

"साल ओढन साल डासन, मेवा फल भोजन रे।
ए ललना चनन के जरेला पसँगया, निनरि भल आवेला रे।
जइसन दह में के पुरइन दहे विचे कापेले रे।
ए ललना ओइसन कापेले हमरो हियरा, धिया कारे जनम रे।
कुस ओढन, कुश डासन, बन फल भोजन रे।
ए ललना खुखुडी के जरेला पसगिया, निनरियो ना आवेला रे।"

२. खेलवना

यह गीत भी सोहर के समान पुत्र जन्म के सुखद अवसर पर गाया जाता है परन्तु सोहर से इसमें कुछ भिन्नता रहती है। सोहर में विशेषकर पुत्र जन्म की पूर्वपीठिका का वर्णन रहता है परन्तु खेलवना के गीतो में उत्तरपीठिका का। पुत्र के लिये ललचने वाली स्त्री, गर्भ की वेदना से व्याकुल तरुणी, वधू के मगल साधन में लगी सास, धाय को दौडकर बुलाने वाला पति बालक के उत्पन्न होने पर धनधान्य माँगने वाली धायें सब सोहर के प्रतिपाद्य विषय हैं। परन्तु सद्योजात शिशु का रोदन, माता का आनन्द, सास की प्रसन्नता, अपने कुलाकुर के पैदा होने के हेतु सर्वस्व लुटा देने वाले पिता का हर्ष 'खेलवना' के मुख्य विषय हैं। यद्यपि सोहर और खेलवना के गीतो के बीच में कोई निश्चित सीमान्त रेखा नही खीची जा सकती परन्तु स्थूल रूप से दोनो गीतो में यही पार्थक्य है। इन दोनो प्रकार के गीतो का वर्ण्य विषय समान होने के कारण 'सोहर' के भीतर ही 'खेलवना' का अन्तर्भाव माना जाता है। खेलवना के एक गीत में ननद अपनी भावज से कहती है कि मैं तुम्हारे पुत्र होने पर नथिया, सुलनी, हार, जोसन, हलका, हसुली, कगना, कठा और टीका आदि अनेक गहना को उपहार (नेग) में लूगी[2] —

---

१ भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ७१। २ वही पृ० १०४।

"जाहु तोरा ए भउजी होरिला होइले, तबे आइबि तोरा आगनवा ।
नथिया भी लेवो, झुलनी भी लेवो, लेवो जडाऊ कागनवा ।
कंठा भी लेबो, टीका भी लेबो, लेबो सब सोना के गाहानवा ।"

'सोहर' प्रेम की मधुर कहानी कहते हैं अत इनके प्रत्येक पद में रस कूट-कूट कर भरा रहता है। भोजपुरी सोहर सरसता और कोमलता के लिये प्रसिद्ध है।

मैथिली और भोजपुरी सोहर

मैथिली सोहरो की परम्परा बडी प्राचीन है। इनमें भी भोजपुरी सोहरो की भाँति दोहद प्रसवपीडा, आनन्द, उछाह का वर्णन पाया जाता है। परन्तु शृगार रस की अपेक्षा इनमें करुण रस का पुट अधिक है।

तलफि तलफि उठय जियरा कौना विधि बोधव हे।
ललना हमरो बलमु परदेस सदेश न पावल हे।"

इस गीत में[१] विरह की कितनी गभीर व्यजना हुई है। भोजपुरी सोहरो में तुक का नितान्त अभाव रहता है परन्तु मैथिली 'सोहर' तुकान्त होता है। लेकिन कोई कोई 'ब्लैंक वर्स' की तरह भी लिखा गया है[२]।" इनके वर्ण्य विषय के सबध में 'राकेश' जी लिखते हैं कि "सोहर में माशूक, आशिको और नायिकाएँ नायको की जुल्फें सवारने के लिये बेचैन नही दीखतीं। सोहर सुखान्त होता है और इसमें आशा की निर्झरिणी टेढी नागिन सी बल खाती बिजली सी दौडती चली गई है[३]।"

इस प्रकार हम भोजपुरी और मैथिली सोहरो में समानता पाते हैं। दोनो की भाव धारा का प्रवाह समान रूप से पाया जाता है। दोनो की आत्मा समान है।

३. मुंडन के गीत

बालक जब कुछ बडा हो जाता है तब उसका मुडन सस्कार किया जाता है। इसे सस्कृत में 'चूडाकर्म' कहते हैं। तुलसीदास ने वशिष्ठ के द्वारा राम के चूडाकर्म सस्कार करने का उल्लेख 'राम चरित मानस' में किया है। यह हमारे षोडश सस्कारो में से एक सस्कार है। इस सस्कार के पहले बालक के बालो को नही काटा जाता। देहातो में तो केशों को साफ रखने के लिये कघी भी नही लगाते। फलस्वरूप बालो में जटायें पड जाती हैं। यह सस्कार बालक के तीसरे, पाँचवें या सातवें वर्ष—विषम वर्ष—में किया जाता है। इससे अधिक दिनो तक बालक को बिना मुडन सस्कार किये रखना अनुचित समझा जाता है।

कोई स्त्री जिसके पुत्र का मुडन सस्कार बारह वर्ष तक नही हुआ है इस घटना के अनौचित्य की ओर अपने पति का घ्यान आकर्षित करती हुई कहती है कि[४]

---

१. राम इकबाल सिंह राकेश, मैथिली लोकगीत पृ० ८०। २ वही पृ० ५०। ३. वही पृ० ५०। ४ आर्चर भोजपुरी ग्राम्य गीत पृ० १६३।

'आरे आरे स्वामी कवन राजा बहल कुछ मानहु हो।
बारह बरस के लाल भये तुहु मुडन करावहु हो।"

अर्थात् ऐ पति ! मेरा कहना मानो। बालक बारह वर्ष का हो गया है। अब तो इसका मुडन करावो। स्त्रियाँ पुत्र की प्राप्ति के लिये भिन्न-भिन्न देवताओं की मनौती मानती है और कहती है कि यदि मुझे पुत्र होगा तो हे देव! तुम्हारे स्थान पर उसका मुडन करूँगी। इस प्रकार बालक का मुडन सस्कार किसी पवित्र तीर्थ या देवस्थान में होता है। इस कार्य के लिये भोजपुरी प्रदेश के अधिकाश लोग मिर्जापुर जिले में स्थित विन्ध्याचल की देवी के पास जाते हैं और वहीं बालक का मुडन सस्कार किया जाता है। जो लोग किसी विशिष्ट तीर्थ स्थान में मुडन कराने का मनौती नहीं मानते थे गगा या किसी समीपस्थ नदी के किनारे बालक का मुडन कराते हैं।

यह अवसर बालक के घरवालो के लिये बडे उत्सव का समय होता है। गाँव की बूढी स्त्रियाँ बाजे के साथ गगा के किनारे पहुँचती है। वहाँ बालक की माता स्नान करके गीले कपडा के साथ गगा के इस पार बैठी रहती है, और दूसरी स्त्रियाँ बालक को नाव में बैठाकर उस पार ले जाती हैं। इस पार एक खूटा गाड कर उसमें नई रस्सी बाँध देते है जिसमें आम के पत्ते लगे रहते हैं। इस रस्सी को नाव पर बैठी स्त्रियाँ अपने साथ उस पार तक लेती जाती हैं। इस प्रकार वे पूरी गगा को रस्सी से नाप लेती हैं। इस प्रक्रिया को 'गगा ओहारना' कहते हैं। जब स्त्रियाँ उस पार से लौट कर आती हैं तो नाई बालक के बाल को कैंची से काटता है। वह इसके लिये दक्षिणा भी माँगता है जिसके मिल जाने पर ही वह केश-कर्तन कार्य समाप्त करता है। जब नाई बाल काटने लगता है तब बालक की बहन अथवा उसकी फूआ उन बालो को अपने आँचल (फाड) में रखती जाती है जिसे 'झालर परीछना' कहते है। इसके लिये वह अपना 'नेग' माँगती है और लडके का पिता प्रसन्न होकर उसे रुपया या गहना देता है। घर लौट कर आने पर भाई बन्धुओ और ब्राह्मणो को 'भोज' दिया जाता है। ये लोग आकर आनन्द से भोजन करते है और बालक को आशीर्वाद देते हैं।

मुडन के गीतो में कही तो कोई स्त्री इन्द्र भगवान् से जल न बरसाने की प्रार्थना करती है तो कहीं बालक की फूआ अपने भानजे के मुडन में शामिल होने के लिये चली आ रही है। कही भाई अपनी बहन से 'झालर परीछने' की प्रार्थना करता है तो कहीं वह बहन अपने पिता से 'नेग' के रूप में आभूषण माँगती हुई दिखाई पडती है। नीचे के गीत में कोई बालक अपनी फूआ से से 'नेग' माँगने के लिये आग्रह करता है तब वह विभिन्न गहनों की याचना करती है।[1]

"दादी के जनमल कवन फुआ, फुआ झालरि परीछहु हो
आज हमार मुडन नेग रउरा माँगहु हो।

---

१. आर्चर भो० ग्रा० गी पृ० १६३।

लेवो मैं नाके के बेसर काने के तरिवन हो।
लेवो में हाथ के कगनवा त झालर परीछवो हो।"

एक दूसरे गीत में बालक की फूआ अपने नेग के रूप में पाँच मुहर और एक कपडा (साडी) माँग रही है।[१]

"परिछब ए बाबू परिछन परिछि देखाइब हो।
पाँच मोहर एक चीर भतीजवा नेछावर हो।।"

बालक के मुडन के लिये सारे गाँव में निमत्रण देने का यह उल्लेख देखिये[२],

"पाच ही पान के विडवा त लवग डोमल हो।
नउवा सगरे नेवत देइ आव ललन जी के मुडन हो।।"

मुडन के दिन वर्षा न करने के लिये भगवान् से प्रार्थना करने वाली बालक के फूआ की यह विनती कितनी प्रेम पूर्ण है।[३]

"अगना के ठाढी कवनी फुआ देव मनावेली हो।
जनी देव गरीजहु जनी देव वरीसहु जनी झर लावहु हो।
आज भतीजवा के मुडन हम झालर परीछव हो।"

५. जनेऊ के गीत

भोजपुरी द्विजाति-समाज में जनेऊ तथा विवाह दो प्रधान सस्कार समझे जाते हैं। यद्यपि विवाह के समान जनेऊ के अवसर पर विशेष धूमधाम नहीं रहता परन्तु तो भी उच्च वर्ण के लोग ब्राह्मण और क्षत्रिय बडे उत्साह के साथ अपने बालको का यज्ञोपवीत सस्कार करते हैं।

जनेऊ शब्द यज्ञोपवीत का अपभ्रश रूप है। इसे 'उपनयन' सस्कार भी कहते हैं। 'उपनयन' शब्द का अर्थ है वह सस्कार या विधि जिसके द्वारा विद्यार्थी गुरु के समीप लाया जाता है, उपनीयते गुरुसमीप प्राप्यते अनेनेति उपनयनम्। प्राचीन काल में यज्ञोपवीत सस्कार के पश्चात् बालक गुरु के पास आश्रम या गुरुकुल में पढने के लिये भेज दिया जाता था। इसलिये इस सस्कार को 'उपनयन' कहते थे। यज्ञोपवीत धारण करने के समय से ब्रह्मचारी को कुछ व्रता अर्थात् नियमो का पालना करना आवश्यक होता है इसलिये इसे 'व्रतबन्ध' भी कहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये यज्ञोपवीत धारण करना नितान्त अनिवार्य है। मनु ने लिखा है कि मनुष्य जन्म से शूद्र होता है परन्तु सस्कार के पश्चात् ही द्विज कहलाता है

"जन्मना जायते शूद्र सस्कारात् द्विज उच्चते"

प्राचीन काल में जो जनेऊ पहिना जाता था वह अपने हाथ के कते हुए सूत का ही बना हुआ होता था। कई गीतो में सूत कात कर जनेऊ बनाने का उल्लेख पाया जाता है। ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत आठ वर्ष की अवस्था में होना चाहिये। क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य का बारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत होना शास्त्र सम्मत है।[४] उपनयन सस्कार के समय के विषय में

---

१ वही पृ० १६२। २ आर्चर भो० ग्राम्य गीत पृ० १६२। ३ वही पृ० १६२।
४ अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्, गर्भाष्टमे वा। एकादशे क्षत्रियम्, द्वादशे वैश्यम्।

शतपथ ब्राह्मण का यह मत है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत संस्कार वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म ऋतु में और वैश्य का शरद् ऋतु में करना चाहिये।[१] इसीलिये आजकल ब्राह्मणों के यहाँ जो यज्ञोपवीत होता है वह फागुन और चैत्र के महीनों में ही होता है।

धनी तथा प्रतिष्ठित लोग यज्ञोपवीत संस्कार को सम्पादित करने के लिये किसी विद्वान् कर्मकांडी अथवा काशी के वैदिक पंडित को—जिसे वेदुआ कहते हैं—बुलाते हैं। यज्ञोपवीत संस्कार होने के एक दिन पहले बालक के अभ्यासार्थ उसे एक कच्चे सूत का धागा इसलिये पहना देते हैं कि यह शौचादि के समय जनेऊ को प्रयोग में लाना सीख जाय। भोजपुरी प्रदेश में इस कच्चे सूत के धागे को 'गोबर जनेऊ' कहते हैं। यज्ञोपवीत संस्कार की पूर्व रात्रि को बालक को व्रत रहना पड़ता है। दूसरे दिन वैदिक जी आते हैं तथा संस्कार कार्य प्रारम्भ हो जाता है। यज्ञस्थान के पास वेदी बनती है। सोलह मिट्टी के कच्चे 'पुरवों' में चने की दाल भरकर उस पर जनेऊ रख दिया जाता है। अनेक प्रारंभिक विधि-विधानों के पश्चात् बालक के बाल प्रथम बार छुरे (उस्तरे) से काटे जाते हैं। इसके पूर्व बालक के बाल छुरे से नहीं काटे जाते। नाई इन बालों को काटने के लिये अपनी दक्षिणा माँगता है जो सवा रुपये से कम नहीं होती। नाई बाल काटता जाता है और बालक की बहन या फूआ उन बालों को अपने आँचल में रखती जाती है। इस कार्य के लिये वह अपनी दक्षिणा—जिसे नेग कहते हैं लेती है जो आभूषणों के रूप में उसे दिया जाता है। इस कार्य के पश्चात् बालक के शरीर में हलदी लगाकर उसे स्नान कराया जाता है। साथ ही गाँव की स्त्रियाँ अपने कलकंठ से यह गाती जाती हैं :

"पाँच सखी आही गौलिके,
हरदी चढाव हमरा लाल के।
बारहो बाजन बजाइके,
हरदी चढाव हमरा लाल के।"

स्नान करने के पश्चात् बालक का यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है। वह मूज का डाँडा, मृगचर्म का वस्त्र और पलास का दंड धारण करके ब्रह्मचारी बन जाता है। जहाँ मृगचर्म पहनने के लिये नहीं मिलता वहाँ मृग चर्म का बना यज्ञोपवीत ही उसे पहना दिया जाता है। यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् वह ब्रह्मचारी बालक गुरुकुल में विद्या पढने जाने के लिये धन की याचना करता है जिसे 'भीख माँगना' कहते हैं। वह अपनी माता, कुटुम्ब की स्त्रियों तथा अन्य सम्बंधियों के पास जाता है और 'भीख' माँगता है। यह भिक्षा तीन बार माँगी जाती है। पहिली भिक्षा आचार्य को दी जाती है, दूसरी माता को और तीसरी पिता को। उच्च तथा धनी घरानों में ब्रह्मचारी को इस भिक्षा में हजारों रुपये मिलते हैं जो आदर और प्रतिष्ठा का सूचक

१. वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम्। सर्वकालमेके। शा० प० ब्रा०।

समझा जाता है। यह प्रथा उस प्राचीन प्रथा की याद दिलाती है जब प्रत्येक गृहस्थ का पुत्र ब्रह्मचारी बनकर गुरुकुल में रहता था और भिक्षा की याचना कर अपना निर्वाह करता था। भिक्षा माँगने के पश्चात् ब्रह्मचारी खड़ाऊँ पहने, कोपीन धारण किये और पलाश दंड लेकर काशी और काश्मीर विद्या पढ़ने के लिये चल पड़ता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि प्राचीन काल में काशी और काश्मीर ही विद्या के प्रधान केन्द्र थे और बिना वहाँ गये किसी की शिक्षा पूरी नहीं समझी जाती थी। वही पुरानी प्रथा आज भी चली आ रही है। काशी जाने के लिये ब्रह्मचारी ज्योंही प्रस्तुत होता है और अभी दो चार कदम भी नहीं चलने पाता कि घर वाले 'लौटि आव बबुआ' कह कर उसे बुला लेते हैं और इस प्रकार ब्रह्मचारी रहकर विद्याध्ययन करने का २०–२५ वर्षों का कार्य केवल पाँच सात मिनटों में ही समाप्त हो जाता है।

प्राचीन काल में गुरुकुल से लौटने के पश्चात् ब्रह्मचारी का समावर्तन संस्कार होता था। वह अपने ब्रह्मचारी के वेष को त्याग कर गृहस्थ की वेशभूषा को धारण करता था। शरीर का अलंकरण और प्रसाधन करता था। ठीक इसी प्रकार (भोजपुरी) ब्रह्मचारी के काशी से पढ़कर लौटने के पश्चात् उसका समावर्तन संस्कार किया जाता है। उसकी पादुका, कोपीन और मृगचर्म को हटाकर नूतन वस्त्रों से उसे सुसज्जित किया जाता है। उसके शरीर पर अंगराग लगाया जाता है और उसको आभूषण पहिनाया जाता है। वैदिक जी तथा अन्य गुरुजनों के आशीर्वाद के पश्चात् यह कार्य समाप्त होता है। प्राचीन भारत में चूडाकर्म यज्ञोपवीत और समावर्तन ये तीन पृथक्-पृथक् संस्कार थे और भिन्न-भिन्न समयों पर किये जाते थे परन्तु आजकल ये तीनों संस्कार केवल चौबीस घंटे के भीतर समाप्त कर दिये जाते हैं। फिर भी इस प्रथा से चाहे यह विकृत ही क्यों न हो, प्राचीन भारतीय संस्कृति की झलक हमें देखने को मिलती है। अतः इस दृष्टि से इस प्रथा का मूल्य कुछ कम नहीं है।

जनेऊ के जो गीत पाये जाते हैं उनमें इस संस्कार में किये जाने वाले प्रायः विभिन्न कृत्यों का वर्णन पाया जाता है। कहीं पर ब्रह्मचारी किसी स्त्री को माता कहकर सम्बोधित करता हुआ भिक्षा देने की प्रार्थना करता है तो कहीं वह विद्या पढ़ने के लिये काशी और काश्मीर जाने के लिये प्रस्तुत है। नीचे के गीत में ब्रह्मचारी किसी स्त्री से भिक्षा की याचना कर रहा है। गृहस्वामिनी उससे पूछती है कि तुम क्या लोगे?

वर्ण्य विषय

"किया लेबे बरुआ रे धोती रे पोथी, किया लेबे पीयर जनेव।
किया लेबे बरुआ रे सोबरन भिखिया, जाही धरे कान्हर जनेव।"

भिक्षा माँगने का यह दूसरा दृश्य देखिये। ब्रह्मचारी काशी से आकर किसी के घर भिक्षा माँगने गया है। वह कहता है कि ऐ माता। मुझे भिक्षा दो, हम दूर देश के रहने वाले हैं। परन्तु भिक्षा देने में विलम्ब होने के कारण

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १०७।

वह चला जाता है और पुनः भिक्षा देने पर भी नहीं लेता है। तब गृहस्वामिनी कहती है कि तुम भिक्षा माँगकर चले जाते हो और देने पर भी नहीं लेते।[1]

"कासी जी से उजे अइली रे बरुआ ठाढ़ भइले।
कवन बाना दुआर भीखि देहु भिखि देहु।
मायरी कवनी देई हम दूर देसी हो लोग।
दीहल भीखियो ना लेला रे बरुआ।
माँगी घरे चलि जाई।"

प्राचीन काल में घर मे चर्खे से सूत कात कर उसका जनेऊ बना कर पहना जाता था। एक गीत में बहन द्वारा काते गये सूत के जनेऊ का भाई द्वारा पहनने का उल्लेख पाया जाता है:

"कवनी सुहइया सूत कातेली भल ओटैली।
पूरेले कवन राम जनेऊ, कवन बरुआ पहिरसु।"

बालक अपने पिता से पूछता है कि ऐ माता! मेरा जनेऊ कैसे होगा। इस पर वह उत्तर देती है कि पहले 'मूंज-डांडा' (करधनी) पहनना पड़ेगा, तब मृग चर्म धारण करना होगा फिर जनेऊ पहिनोगे[2]।

"माई हमरो जनेउवा रे बाबा कवन विधि होइहैं।
आरे पहिले परिहें मूज के डाडा, तब मिरिगछाला,
तब परिहें बरुआ रतन जनेउवा रे।"

यज्ञोपवीत में पलाश दंड धारण करना ब्रह्मचारी के लिये अत्यन्त आवश्यक है। अतः एक गीत में पिता अपने पुत्र के जनेऊ के लिये पलाश का दंड काट रहा है और मृगछाला को ढूंढ रहा है। जनेऊ की सामग्री एकत्रित करने के लिये पिता की बेचैनी देखने योग्य है।[3]—

"ए जाहि बन सिकियो ना डोलेला,
बघवो ना गरजेला रे।
ए ताहि बने नसले कवन बाबा,
काटिले पारास डांडा खोजेले मिरिगछाला रे।
ए हमरा दुलरुवा के जनेव हवे,
काटिले पारास डांडा, खोजिले मिरिगछाला रे।"

मनु ने द्विजातियों के यज्ञोपवीत के लि एक निश्चित काल निर्धारित किया है और उस अवधि को पार कर लेने पर उनको व्रात्य की संज्ञा दी है। एक गीत में उस माता की चिन्ता कितनी स्पष्ट झलकती है जिसका लडका १२ वर्ष का हो गया है परन्तु जनेऊ से वंचित है। वह अपने पति से कहती है[4]—

ओहारे पइसी जगावेली कवन देई।
सुनु पिया पंडित रे।
बरहो बरिसवा के तालाभा
बरुआ देह पालहु रे।"

---

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १११। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० १ पृ० १०६।
३. वही पृ० १०८। ४. वही पृ० ११३।

इस पर चतुर पति उत्तर देता है कि —

"आरे धनी छुनछुनी बरुआ कुछु चाहेला रे।
अछत, चनन, मोतिया, ठेठी बन्हन रे।
लाख टका, लाख धोती, मोतिया गेठी बन्हन रे।

इस प्रकार इन जनेऊ के गीतो में माता और पिता की प्रसन्नता विविध विधि-विधानो एव नियमो का उल्लेख पाया जाता है। जनेऊ के सभी गीतो में चाहे वे बुन्देल खडी हो चाहे मैथिली चाहे राजस्थानी हो चाहे गुजराती—एक ही समान भावधारा पाई जाती है वही सामाजिक वर्णन, उन्ही प्रथाओ का उल्लेख, हमीरपुर जिले में प्रचलित यह बुन्देलखडी गीत देखिये जिसमें जनेऊ के उछाह का वर्णन पाया जाता है।[1]

बुन्देलखडी और मैथिली जनेऊ के गीत

"बरावन धोतिया सुखत होइहै,
वरूआ जेवत होइहै।
वेद उठे क्वने रामा अगना।
अगना ढोल धमाके पडित वेद बाचें, वेद उठे झनकार
मोरे आजा के अगना।"

भोजपुरी गीतो में लडकी के विवाह में बास का मडप बनाने का वर्णन पाया जाता है परन्तु मैथिली लोकगीतो में जनेऊ में भी मडप तैयार करने का उल्लेख किया गया है जो एक नई प्रथा है।[2]

"हरिहर बसवा कटाएब मारव छायब रे।
आजु मोर लाल के जनेऊवा केहि केहि नेवतव रे।"

"लापर परीछने" का वर्णन मैथिली गीतो में भी पाया जाता है। कोई बहन कहती है कि[3]—

"नये हम पहिनव पहिरन नये किछु ओढन हे।
पिअरि वस्तर हम पहिनव लापर परिछव हे।"

जनेऊ देने के लिये पलाश दड, मृगछाला तथा मूज के दड का वर्णन भी इन गीतों में होता है।[4]

५. विवाह

विवाह हमारा सबसे प्रधान और प्रसिद्ध सस्कार है। हिन्दुओ में जहाँ मुडन और यज्ञोपवीत सस्कार नही होता वहाँ भी विवाह सस्कार अवश्य ही सम्पादित होता है। यह इतना व्यापक और प्रधान सस्कार है ज। ससार की सभी सभ्य अथवा असभ्य जातियों में समान रूप से पाया जाता है।

मनु ने आठ प्रकार के विवाहो का विधान किया है—१ ब्राह्म २ देव ३ आर्ष ४ प्राजापत्य ५ आसुर ६ गान्धर्व ७ राक्षस और ८ पैशाच। आजकल जो विवाह प्रचलित है और जिसका उल्लेख लोक गीतों में पाया जाता है वह ब्राह्म और देव का मिश्रण

---

१. त्रिपाठी हमारा ग्राम साहित्य पृ० ६२। २ राकेश मै० लो० गी० पृ० ६७। ३ राकेश: मै० लो० गी० पृ० ६४। ४ वही पृ० ६२।

कहा जा सकता है। यो तो गान्धर्व विवाह आये दिन हुआ करते हैं परन्तु गीतो में इनका उल्लेख नही मिलता।

अन्य समाजो की भाति भोजपुरी समाज में भी विवाह बडी धूमधाम से सम्पादित किया जाता है।

भोजपुरी वैवाहिक प्रथा

भोजपुरी समाज में लडकियो का विवाह एक विषम समस्या बन गई है। इसका प्रधान कारण है तिलक और दहेज की कुत्सित प्रथा। स्त्रियाँ बहुधा कहती हैं कि लडकी के पैदा होने से पृथ्वी तीन अगुल नीचे दब जाती है और पुत्र जन्म से तीन अगुल ऊपर चली आती है। लडके वाले के घर जब लडकी वाला विवाह का प्रस्ताव लेकर जाता है तब वह उससे अपने लडके के लिये मनमाना तिलक मागता है। धनी और प्रतिष्ठित लोगो की तो बात ही क्या, साधारण लोग भी हजार रुपये के नीचे बातें नही करते।

वर पक्ष वाले प्राय यह कहते हुये सु जाते हैं कि —

"बिना हजार कै बजार ना लागी।"

अर्थात् बिना एक हजार रुपया तिलक लिये मै अपने लडके का विवाह नही करने का।

वर के चुनाव में लडकी का पिता स्वतन्त्र होता है। वह अपनी कन्या से इस विषय में सलाह नही लेता। लोक लाज के मारे कन्या इस विषय में सलाह दे भी नही सकती। अत अपनी सुविधा के अनुसार जो प्राय आर्थिक हुआ करती है—पिता वर को चुनता है और इस प्रकार कभी कभी अवाछनीय वर के साथ भी लडकी का विवाह कर देता है। यह एक उल्लेखनीय बात है कि अपनी पुत्री के भावी पति के चुनाव में पिता वर की विद्या की ओर उतना ध्यान नही देता जितना उसकी कुलीनता और वैभव की ओर। इससे तिलक का 'भाव' बढ जाता है।

वर का चुनाव हो जाने पर लडकी का पिता वर के हाथो में कुछ पया और एक जोडा जनेऊ देता है। इस विधि को 'वररक्षा' कहते है। कही-कही इसे 'फलदान' भी कहा जाता है। इस 'वररक्षा' से अभिप्राय यह है कि आज से अमुक वर 'सुरक्षित' हो गया। अब दूसरे से उसके विवाह की चर्चा नही हो सकती। वररक्षा के पश्चात् तिलक की तिथि निश्चित की जाती है। उस दिन लडकी का पिता अथवा भाई अपने कुटुम्बियो के साथ तिलक चढाने के लिये निश्चित रुपया, बर्तन और कपडो को लेकर वर पक्ष के यहाँ जाता है। इस दिन वर पक्ष वाले के यहाँ बडा उत्सव मनाया जाता है। नाच, गान होता है। गाव भर के लोगो को भोज (दावत) दिया जाता है। रात्रि के समय, शुभ मुहूर्त में लडकी का भाई वर के हाथो में रुपया और सुपारी देता है। बर्तन एव वस्त्र प्रदान करता है और उसके सिर पर चन्दन का टीका (तिलक) लगाता है। इसी टीका लगाने के कारण ही इस प्रथा को 'तिलक चढाना' कहते हैं जो उत्सव के अर्थ में आजकल मुहावरे के रूप में प्रयुक्त होता है। 'तिलक चढते' समय स्त्रियाँ सुन्दर गीत गाती रहती है जिनमें आनन्द और उत्साह का वर्णन रहता है। कन्यापक्ष वालो को सुस्वादु भोजन कराकर यह कृत्य समाप्त होता है।

अब कन्या पक्ष की ओर आइये। जिस दिन से तिलक चढ जाता है उसी दिन लडकी के घर में वर के यहाँ भी 'सगुन' गाया जाने लगता है। यह

'सगुन' शब्द शकुन का अपभ्रश है जिसका अर्थ शुभ लक्षण है। विवाह की निश्चित तिथि के पूर्व मडप की तैयारी होनी है। यह मडप कच्चे एव हरे बाँसो से तैयार किया जाता है जिनकी सख्या ८ या ९ होती है। मडप व किार तैयार किया जाता है जिसकी लम्बाई वन्या वे हाथा से ७ हाथ की होती है। मडप को 'फम' से छाते हैं जिससे धूप और वर्षा से रक्षा होती रहे। बाँसो के गाडने में भी प्राथमिकता का विचार किया जाता है और अनेक विधियाँ सम्पन्न की जाती हैं। इस मडप विधि को 'माडो गाडना' कहते हैं। माडो' शब्द मडप का ही अपभ्रश है। इस समय के गीत 'माडो के गीत' के नाम से प्रसिद्ध हैं। मडप के केन्द्र में पिता अपनी पुत्री को विवाह के समय लेकर बठता है। इस मडप के निर्माण में योग देना सारे गाँव के लोगो के लिये आवश्यक है।

भोजपुरी वर की वेश-भूषा भी बडी सुन्दर होती है। धोती के स्थान पर उसे जामा पहनाया जाता है। यह घाघरानुमा होता है जो कमर में ऊपर से बाँध लिया जाता है। शरीर में अँगरखा और पैर में जरीदार जूता होता है। उसके सिर पर 'सेहला' सुशोभित रहता है जिसे 'मउरि' कहते हैं। यह शब्द सस्कृत मौलि (सिर) का अपभ्रश रूप है। 'मउरि' को गाँव का माली बडे प्रेम से तैयार करता है। 'सेहला' के जो गीत मिलते हैं उसमें मालिन द्वारा उनके बनाये जाने का उल्लेख पाया जाता है। गीता में सोने के मउरि बनाने का भी वर्णन है जिसका अर्थ बहुमूल्य मउरि समझना चाहिये। आँखो में काजल और मुह में पान का बीडा सुशोभित होता है। यदि वर की अवस्था छोटी हुई तो वह अलकार भी धारण करता है? वर को नौशा भी कहते हैं जिसका अर्थ नया बादशाह है।

बारात जाने के एक दिन पहले ही सारे कुटुम्बियो को भात खिलाया जाता है जिसे 'भतवानि' कहते हैं। जो इस दावत मे (खाने के लिये) उपस्थित होता है उसका बारात में चलना आवश्यक होता है। 'भतवानि' के गीतो में विभिन्न भोज्य वस्तुओ का उल्लेख रहता है। भतवानि के दूसरे दिन बारात जाने के थाडी देर पूर्व 'मातृपूजा' होनी है जिसे 'मन्त्रिपूजा' कहा जाता है। इसमें गाँव की वृद्ध स्त्री पुरुषो की पैर-पूजा वस्त्र और रुपये से की जाती है। मातृपूजा के पश्चात् माटी कोडाई लावा भुजाई और इमली घोटाई आदि अनेक विधियाँ सम्पन्न की जानी हैं। इमली घोटाई के अवसर पर लडके का मामा अपनी बहन को जल पिलाता है। इस समय मामा का उपस्थित रहना अत्यन्त आवश्यक होता है। इन सब विधि विधाना के समाप्त होने पर वर पालकी में बैठकर विवाह के लिये चलता है। वर के घर से चलने के पहिले घर तथा गाँव की स्त्रिय' लोढा लेकर उसे वर के सिर पर घुमाती हैं और अपने कनकठ से 'परीछि ना लेहु मारे राम रे ललनवा' गाती जानी हैं। इस विधि को परीछावन' कहते हैं। सभवत यह वर की मगल यात्रा के लिये किया जाता है। इस समय वर को दधि अक्षत का टीका भी लगाते हैं जो मगल का सूचक है।

भोजपुरी बारात का दृश्य बडा सुन्दर होता है। बारात के आगे हाथिया

की पंक्तियां चलती हैं जिन पर वर पक्ष के प्रतिष्ठित लोग बैठते हैं। हाथियों के पीछे घुड़सवार चलते हैं जो अपने सिर पर पगड़ी (मुरैठा) बांधे घोड़ों को 'कदम' चाल से बड़ी श्रदा के साथ 'जमाते' ले चलते हैं। घोड़ों के पीछे 'समधी' जी की 'पालकी' और उसके पीछे वर की 'नालकी' चलती है। वर की नालकी के साथ नाई (हजाम) चलता है जो समय-समय पर चँवर हिलाता जाता है। नालकी के पीछे साधारण बारातियों का समूह चलता है जो नये वस्त्रों से सुसज्जित होने के कारण बड़ा ही सुन्दर लगता है। बारात के बीच में कहीं बैंड बजता है तो कहीं रोशन चौकी। 'सींगा' वाले–शृंग के आकार का एक विशेष बाजा—अपनी 'धूतू' 'धूतू' की मधुर ध्वनि से सारे वायुमंडल को गुंजित कर देते हैं। बारात के अन्त में भोजपुरी लठैत जवान चलते हैं जिनकी उपस्थिति बारात की रक्षा के लिये अत्यन्त आवश्यक समझी जाती है। इस प्रकार बड़े सजधज के साथ भोजपुरी बारात चलती है।

लड़की वाले के घर बारात के पहुँचने पर उसके द्वार पर वर की पूजा होती है जिसे 'द्वारपूजा' कहते हैं। इस विधि के द्वारा वर का स्वागत किया जाता है। जिस समय द्वार पूजा होती रहती है उस समय इधर पंडित लोग आपस में शास्त्रार्थ करते हैं और उधर स्त्रियाँ सुमधुर गीत गाती हैं। द्वार पूजा के पश्चात् कन्या पक्ष की ओर से बारातियों को भोजन का निमन्त्रण दिया जाता है जिसे 'अइगा (आज्ञा) माँगना' कहते हैं।

भोजन के निमन्त्रण के पश्चात् वर का बड़ा भाई, भावी वधू को मंडप में आकर गहना और वस्त्र देता है। वह इन समस्त चीजों को वधू के हाथ का स्पर्श करा कर रख देता है। इस विधि को 'कन्या निरीक्षण' कहते हैं जिसे भोजपुरी में 'गुरहत्थी' कहा जाता है। इस अवसर पर भी स्त्रियाँ गीत गाती हैं। गुरहत्थी के बाद वर मंडप में लाया जाता है जहाँ शास्त्रीय पद्धति से उसका कन्या के साथ विवाह कार्य प्रारम्भ होता है। विवाह के समय लड़की का पिता अपनी पुत्री को गोद में लेकर बैठता है। वह वर के पैर को पूजता है और शास्त्रीय रीति से अपनी पुत्री को वर के लिये दान रूप में दे देता है। इस प्रथा को 'कन्यादान' कहते हैं। जो पिता या भाई 'कन्यादान' करता है वह अपनी पुत्री या बहिन के घर का अन्नग्रहण करना तो दूर रहा, उस गाँव का पानी तक नहीं पीता। 'कन्या दान' के समय के गीत बड़े ही मर्मस्पर्शी होते हैं। दिन भर व्रत रहने वाला पिता अपनी पुत्री से कहता है कि—

"दिनवा हरेलू ए बेटी भुखिया रे पिअसिया,
रतिया हरेलू सिर पगिया नु रे।"

अर्थात् दिन भर कन्यादान की चिन्ता से व्रत रहने के कारण मेरी भूख, प्यास भूल गई है और रात को वर के पैरों पर गिरने के कारण मेरे सिर की पगड़ी भी नीची हो गई है। इसमें पिता के हृदय की कितनी गंभीर वेदना भरी हुई है। कन्यादान के पश्चात् सप्तपदी होती है जिसे 'भाँवर घूमना' कहते हैं। यह महत्वपूर्ण विधि है क्योंकि इसके पश्चात् कन्या वर के गोत्र में चली

जाती है। इसके बाद सुमगली होता है जिसमें वर कन्या को सिन्दूर अर्पण करता है। इन सभी अवसरो पर गीत गाये जाते हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। विवाह के पश्चात् वर को एक राजाये हुए घर, जिसे 'कोहवर' कहते हैं—में ले जाते हैं जहाँ गाँव की युवती और बूढ़ी स्त्रियाँ एकत्रित हो वर वर से अनेक प्रकार का विनोद या परिहास करती हैं जो बहुत ही सयत और शिष्ट होता है। 'कोहवर' के गीता को परिहास गीत' कहते हैं। इस प्रकार विवाह कृत्य समाप्त होता है।

जब बारात वहाँ से विदा होकर लौटती है तब घर और गाँव की स्त्रियाँ वर को पुन 'परीछने' के लिये तैयार होती हैं और

'हसत खेलत मोर बाबू गइले
मन बेदिल काहें अइले।"

गा-गाकर उसे परीछती हैं और पालकी से उतारती हैं। विवाह के चौथे दिन वर एव कन्या दोना के यहाँ 'चौथारी' होती है। इस दिन वर और कन्या किसी नदी के किनारे जाते हैं और स्नान करके उस कक्ण को, जिसे उन्होंने विवाह में पहना था, त्याग देते हैं। वे ग्राम के देवी, देवताओ का दर्शन कर घर आते हैं। इस प्रकार वररक्षा से जो विवाह का कार्य प्रारम्भ हुआ था, वह अनेक विधि विधानो के पश्चात् विवाह के चौथे दिन (चौथारी) को समाप्त होता है।

विवाह के गीतों के भेद

विवाह के गीता में दो प्रकार के गीत गाये जाते हैं। एक तो कन्या के घर में गाये जाने वाले और दूसरे वर के घर में गाये जाने वाले। कन्या पक्ष के गीत वरपक्ष के गीता से अधिक करुण और मधुर होते हैं। विशेषकर बेटी के विदा के गीत तो पत्थर को पिघला देने की क्षमता रखते हैं। वरपक्ष के गीता में शोभा, सजावट और धूमधाम अधिक होती है। विवाह सबधी विभिन्न विधिया के समय गाये जाने वाले कन्यापक्ष के गीतो के भेद २२ है और वरपक्ष के गीत १६ प्रकार के हैं।

(क) कन्या पक्ष

१ तिलक के गीत
२ सन्झा के गीत
३ माडो के गीत
४ माटी कोडाई के गीत
५ कलसा धराई के गीत
६ हरदी के गीत
७ लावा भुजाई के गीत
८ मन्त्रि-पूजा के गीत
९ द्वार पूजा के गीत
१० गुरहथी के गीत

(ख) वर पक्ष

१ तिलक के गीत
२ सगुन
३ भतवानि के गीत
४ माटी कोडाई के गीत
५ लावा भुजाई के गीत
६ इमली घाटाई के गीत
७ हरदी के गीत
८ मन्त्रि पूजा के गीत
९ वस्त्रधारण के गीत
१० मउरि के गीत

११ विवाह के गीत	११ परिछावन के गीत
१२ भाँवर के गीत	१२ डोमकछ के गीत
१३ चूमने के गीत	१३ परिछावन के गीत
१४ द्वार रोकने के गीत	१४ गोडभराई के गीत
१५ कोहबर के गीत	१५ कोहबर के गीत
१६ परिहास के गीत	१६ कगन छुडाई के गीत
१७ भात के गीत	
१८ वर उबटने के गीत	
१९ माडो खोलाई के गीत	
२० बारात बिदाई के गीत	
२१ कगन छुडाई के गीत	
२२ चौथारी के गीत	

इन गीतो के भेदो का अनुशीलन करने पर पता चलता है कि इनमें कुछ ऐसे है जो बारात आने या जाने के पूर्व गाये जाते है और कुछ उसके लौट जाने पर। वर पक्ष के गीतो में तिलक से लेकर परिछावन (न० १ से ११तक) तक के गीत बारात के जाने के पूर्व ही गाये जाते है। डोमकछ बारात के चले जाने पर रात को नाटक का अभिनय करते हुए गाया जाता है। परिछावन से लेकर कगन छुडाई (न० १३ से १५ तक) के गीत बारात से वर के लौट आने पर गाये जाते हैं। विवाह के लिये जाते समय वर के परिछावन के गीत और विवाह करके लौट कर आये हुये परिछावन के गीतो में बडा अन्तर है। पहिले में हर्ष है तो दूसरे में चिन्ता।

कन्या पक्ष के गीतो में तिलक से लेकर मातृ पूजा तक के गीत (न० १ से ८) बारात से आने के पहिले ही गाये जाते हैं। द्वार पूजा से लेकर परिहास (न० ९ से १५ तक) के गीत बारात आने के पश्चात् पहिले दिन गाये जाते हैं। भात से बिदाई तक (न० १७, २०) बारात के दूसरे दिन और कगन छुडाई और चौथारी (न० २१, २२) के गीत चौथे दिन गाये जाते हैं। इन दोनो पक्षो म के गीतो में कुछ ऐसे भी गीत हैं जो दोनो में समान हैं जैसे माटी कोडाई, लावा भुजाई, मातृपूजा और हलदी आदि के गीत।

विवाह सबधी प्रधान-प्रधान प्रथाओ का वर्णन पिछले पृष्ठो में किया जा चुका है। प्रत्येक विधि के लिये सैकडो गाने उपलब्ध हैं जिससे भोजपुरी गीतो की बहुलता का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

वर्ण्य विषय

विवाह के गीतो का वर्ण्यविषय बडा विस्तृत है। इसमें कहीं पुत्री अपने पिता से सुन्दर और योग्य वर खोजने की प्रार्थना करती है तो कहीं उसकी माता पति को पुत्री के वर खोजने के लिये प्रेरित करती है। कहीं पिता योग्य वर न मिलने की चिन्ता से व्याकुल दीख पडता है तो कहीं माता पुत्री जन्म के कारण अपने भाग्य को कोसती है। कहीं बारात के आने और बाजा बजने का उल्लेख है तो कहीं माता अपने जामाता से यह बिनती करती है कि मेरी पुत्री

को आराम से रखना। इन गीता में एक ऐसी प्रथा का वर्णन मिलता है जो आजकल यूरोप में प्रचलित है। वह है वर का कन्या के कुटुम्बियो से विवाह का प्रस्ताव करना। कुछ गीत ऐसे उपलब्ध है जिनमें वर कन्या के आँगन में जाकर बैठा है और आने का कारण पूछने पर कहता है कि इस घर में एक कुमारी कन्या है, मैं उससे विवाह करने आया हूँ। नीचे के गीत में यह दृश्य देखिये [१]

"पुरुब से अइले रे जोगी, पछिम कइले जाले।
कवन बाबा चौपरिया ए जोगी, बइसे आसन मारी।
हम त बिआहन अइली ए बाबा, तोहार बिटिया कुवारी।"

कोई पूछता है कि ऐ जोगी! तुम कहाँ से आये हो और यहाँ क्यों बैठे हो। इस पर वह उत्तर देता है कि इस घर में एक कुंवारी कन्या है। मैं उसी से विवाह करने के लिये यहाँ आया हूँ।

सयानी पुत्री अपने पिता से ऐसे सुन्दर एव योग्य वर को खोजने के लिये कहती है जिसे देखकर घर के लोग हसे नही। वह बार-बार इसके लिये प्रेरणा करती हुई कहती है कि [२]

"वर खोजु, वर खोजु, वर खोजु रे बाबा।
अब भइला बियाहन जोग ए।
आरे हमारा वे बाबा सुनर वर खोजेले,
हसे जनि दुअरवा ने लोग ए।"

वर के खोजने के लिये कन्या के पिता की परेशानी का जैसा जीता जागता चित्र इन गीतो में मिलता है वैसा अन्यत्र उपलब्ध नही। इस गीत में उसकी दुखद कथा का हाल सुनिये। वह अपनी पुत्री से कहता है [३]—

"पुरुब खोजलो बेटी पछिम रे खोजलो,
अवरु ओडइसा जगनाथ ए।
आरे तीनो भुवन तुहुँ वर खोजलो,
कतही ना मिले सिरिराम ए।"

अर्थात् मैंने दुनिया की खाक छान डाली परन्तु तुम्हारे योग्य वर नहीं मिला।

इन गीतों में बाल-विवाह का वर्णन पाया जाता है। पुत्र विवाह करने के लिये जा रहा है। माता उसकी छोटी अवस्था देखकर चिन्तित हो कर कहती है कि मेरा लाल ब्याहने जा रहा है। दूध के बिना उसके होठ सूख न जायें। इसी प्रकार से पुत्री की माता कहती है कि मेरी बेटी छोटी है दूध और पान के बिना उसका गला न सूख जाय। [४]

"ऊँच रे मन्दिल चढि हेरेली कवन देई,
कवन गाँव नियरा कि दूर ए।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १२०। २ वही पृ० १२४। ३ वही पृ० १२१। ४ वही पृ० १५३।

हमरा कवन दुलहा बियहन चलले
दूध बिनु ओठ सुखाई ए।
हमारा कवनी मुहवा सासुर चलली
दूध बिनु ओठ सुखाई ए।"

इस गीत से पता चलता है कि दुधमुँहे कन्या का विवाह भी हुआ करता था।

विवाह में दहेज देने की प्रथा है। परन्तु जहाँ जामाता को अभिलषित दहेज नहीं मिलता वहाँ वह रूठ जाता है और उसे दहेज दिये बिना पिता का पिंड नहीं छूटता।[१] 'शिवजी के विवाह' के गीतों में उनकी बीभत्स आकृति और अलौकिक बारात का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। तुलसीदास जी ने रामायण में शिव विवाह का जो वर्णन किया है उससे यह बहुत समानता रखता है।[२] कन्या के घर बारात आने का यह दृश्य कितना सुन्दर है।[३]

"काहावा के हथिया सींगारलि आवेले,
काहावा के झींन लाहास।
काहावा के राजा बिअहन आवेले
माथे मुकुट मुखो पान।"
गोरखपुर के हथिया सीगारलि आवेले
पटना के झींन लाहास।
कासी के राजा रे बिअहन आवेले
माथे मुकुट मुखे पान।"

विवाह में कोहबर के समय गाये जाने वाले गीतों में वर से मीठा मजाक किया गया है। ये परिहास बड़ी शिष्ट भाषा में है

"ठीक दुपहरिया अइह मोरे राजा हो
हम रउरा से करबि लराई।
निचवा रजाई रे उपरा दोलाई।
ताहि बीचे होखेला लराई।[४]

यह ग्रामीण प्रेम की लड़ाई कितनी मधुर है। इस प्रकार इन गीतों में अनेक प्रसंगों की योजना बड़ी समुचित रीति से की गई है और वर्णन इतना सजीव है कि आँखों के आगे चित्र उपस्थित कर देता है।

मैथिली भाषा में विवाह के गीतों को 'लग्न गीत' कहते हैं। इस समय 'सम्मरि' नामक गीत भी गाये जाते हैं जो बड़े मधुर होते हैं। 'सम्मरि' शब्द स्वयम्वर का अपभ्रंश है। इन 'सम्मरि' के गीतों में सीता स्वयम्वर, रुक्मिणीहरण और उषा स्वयम्वर आदि के गीत प्रसिद्ध हैं। परन्तु 'सम्मरि' अन्य अवसरों पर भी गाये जाते हैं अतः इन्हें शुद्ध वैवाहिक गीतों में अन्तर्गत नहीं ले सकते। मैथिली 'लग्न गीतों' का विषय भी वही पुरानी जन्म

अन्य भाषाओं में विवाह गीत

१ भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ४०। २ वही भाग १ पृ० १६६ आगे। ४ वही ,, ० १८४।

की निन्दा, सुयोग्य एवं सुन्दर वर खोजने के लिये पुत्री की पिता से प्रार्थना और पिता की परेशानियाँ हैं।[1]

"निरधन तपसिया हमें न बिआहब,
मरि जइबौं जहर चबाय हे।"

वर के चुनाव में राजस्थानी लडकी अपनी भोजपुरी और मैथिली बहनो से अधिक चतुर दीख पडती है। उसका चुनाव बडा सस्कृत है। वह पिता से कहती है, बाबाजी! देश के बजाय भले ही परदेश में मुझे देना पर वर मेरी जोडी का देखना। काला वर मत ढूढना जो कुल को लजावे। गोरा वर मत ढूढना कि थोडा सा परिश्रम करते ही पसीना आ जाय। लम्बा वर मत ढूढना जो खडा-खडा ही साँकर (शमी का फल) चूट ले। ठिगना वर भी न ढूढना जिसे लोग बौना कहें। ऐसा वर खोजना जो काशीवास कर चुका हो अर्थात् पंडित हो। गीत सुनिये[2]

"कालो मत हेरो, बाबाजी, कुल ने लजावे
गोरो मत हेरो बाबाजी, अग पसीजे।
लाँबो मत हेरो बाबा, सागर चूटे।
ओछो मत हेरो, बाबा बावन्यू बतावे।
ऐसा वर हेरो, कासी रो बासी
बाम्री रे मन भासी, हसती चढ अरसी।

राजस्थानी में विवाह के गीतो को 'बनडे' अर्थात् दुल्हा दुलहिन कहते हैं। यहाँ भी भिन्न भिन्न अवसरो पर विशेष प्रकार के गीत गाए जाते हैं जो विवाह सबधी विधियो से सबद्ध है।

रायबरेली जिले से प्राप्त इस अवधी गीत में दुष्टा सास की चिन्ता से दुःखी लडकी को समझाता हुआ उसका पिता कहता है कि चार दिन का राजा का राज है तुम्हारी सास भी थोडे ही दिन रहेगी। फिर घर में तुम्हारा ही राज होगा[3]

"का तेरी बेटी रे दान दहेज थोर,
की रे सुघर वर छोट।
की तेरो बेटी सोना खराब भए
काहे तेरो मन दलगीर।

सुनत हो बाबा सास दारुनियाँ
एही से मन दलगीर।
चार दिना बेटी राजा के रजई
चार दिना फौजदारि।

---

१ रविशेख मे० लो० गी० पृ० १३२। २ पारीक रा० लो० गी० भाग १ पृ० १६० ६१।
३ त्रिपाठी हमारा ग्राम साहित्य पृ० ६७।

चार दिना बेटी सास है दारुन,
खातिर राज कुमार।"

इस प्रकार भोजपुरी, मैथिली, ब्रज, बुन्देलखंडी, राजस्थानी और अवधी विवाह के गीतों का वर्ण्य विषय प्रायः समान ही है। भिन्न-भिन्न प्रथाओं के कारण कुछ साधारण भेद अवश्य है परन्तु इनमें मौलिक एकता विद्यमान है।

५. (अ) वैवाहिक परिहास

दुलहा (वर) जब विवाह के लिये अपनी ससुराल जाता है तब दुलहिन की सहेलियाँ, ननद और भौजाई दुलहे से हँसी, मजाक करती हैं। विवाह के पश्चात् जब वर कोहबर में लाया जाता है उसी समय में हास्य के प्रसंग छेड़े जाते हैं। यह नितान्त स्वाभाविक भी है। जैसे विवाह के गीतों में आनन्द और उल्लास रहता है और गवने के गीतों में करुण रस का प्रवाह बहता हुआ दिखलाई देता है उसी प्रकार इन गीतों में विशुद्ध हास्य का फौवारा फूटता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इन गीतों के ग्रामीण होने पर भी इनका हास्य ग्राम्य न होकर नागर है, भद्दा या भोंडा न होकर विशुद्ध और संयत है। हिन्दी के रीति-काल के कवियों की कविता की भाँति इन गीतों में अश्लीलता तथा उच्छृंखलता को कहीं स्थान नहीं दिया गया है। अनेक गीतों में हास्य की अभिव्यक्ति अभिधा के द्वारा न होकर व्यंजना के द्वारा की गई है। हँसी भी इतनी चुभती हुई है कि समझदार के दिल में गुदगुदी पैदा किये बिना नहीं रह सकती।

६. गवना

गवना शब्द संस्कृत के 'गमन' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ जाना है। इस दिन लड़की पिता के घर से चली जाती है—विदा हो जाती है—इसलिये इसे 'गवना' कहते हैं। कुछ लोग विवाह के दूसरे ही दिन बारात के साथ लड़की की विदाई कर देते हैं परन्तु जिनके यहाँ यह प्रथा नहीं है वे गवना करते हैं। गवना विवाह के पहले, तीसरे, पाँचवें अथवा सातवें वर्ष अर्थात् विषम वर्षों में होना चाहिये। पहिले जब छोटे-छोटे लड़के लड़कियों का विवाह होता था उस समय तीन, पाँच या सात वर्ष के बाद गवना कराना आवश्यक था जिससे वर कन्या वयस्क हो जायें। परन्तु आजकल युवक युवतियों का विवाह होने के कारण गवना एक वर्ष के भीतर ही हो जाता है।

गवना भी विवाह के ही समान बड़े धूमधाम से किया जाता है। गवना के समय वर का पिता वधू को लाने नहीं जाता। अपनी पुत्र वधू का रोना सुनना उसके लिये निषिद्ध है। ऐसी दशा में वर, घर के अन्य लोग एवं कुटुम्बी ही जाते हैं। गवना के समय गाजा-बाजा, पालकी-नालकी, हाथी-घोड़े सभी जाते हैं परन्तु इनकी संख्या थोड़ी होती है। निश्चित तिथि को वर पक्ष के लोग आते हैं और कन्या की विदाई कराकर लेकर चले जाते हैं।

प्रथा

कन्या की विदाई का समय बड़ा ही कारुणिक होता है। जहाँ वर पक्ष

वालों में आनन्द और उल्लास छाया रहता है वहाँ कन्या पक्ष के लोगो में विषाद की अमिट रेखा दिखाई पड़ती है। इस समय पर माता, पिता, भाई, बहन, कुटुम्बी एवं गाँव की स्त्रियों का सामूहिक करुण क्रन्दन सुनकर बड़े-बड़े धैर्यशालियों का भी धीरज छूट जाता है। कही पुत्री की माता अपनी प्राण प्यारी पुत्री को गले से चिपटा कर रोती दिख पड़ती है तो कही पिता उदासीन दिखाई देता है। कहीं छोटे-छोटे भाई बहन "फूका फार फार" कर रोते हैं तो कही गाँव की स्त्रियों की आँखों से आँसुओं की झड़ी झड़ती है। कहीं कुटुम्बियों के नेत्रों में आँसू छलक रहे हैं तो कही अन्य लोग शोकग्रस्त मुद्रा में खड़े हैं। माता का रोना तो पत्थर को भी पिघलाये देता है। जब बिदा के समय पुत्री को पालकी में बिठाकर भेजने का अवसर आता है तब वह दृश्य तो और भी हृदयविदारक होता है। इधर वर पक्ष वाले वधू को पालकी में चढाने के लिये जल्दी मचाते रहते हैं उधर पुत्री की मा, भावज उससे चिपट कर रोती हैं और उसे छोडती ही नही, उस समय सभी के धैर्य का बाध टूट जाता है और सब लोग फूट फूट कर रोने लगते हैं। नाइन—नाई की स्त्री—किसी प्रकार पुत्री को पालकी में बिठाती है और बारात बिदा होती है। लडकी को अनजाने स्थान पर किसी प्रकार की उदासीनता न हो इसलिये उसके साथ छोटा भाई भी जाता है। जहाँ भाई नहीं होता वहाँ घर की नौकरानी या दासी जाती है।

गवना के समय दहेज देने की प्रथा है। मध्यम वित्त के लोग लडकी के प्रयोग के लिये पलंग, ओढ़ना, बिछौना, बर्तन, मिठाई, खाजा आदि देते हैं परन्तु धनी लोग गाय, बैल, भैंस, घोडा, हाथी एवं मोटर तक देते हैं। पिता जितना ही अधिक दहेज देता है उसकी उतनी ही अधिक प्रशंसा होती है।

पुत्री की बिदाई के अवसर पर गाये जाने के कारण इन गीतों में वियोग की धारा अविच्छिन्न रूप से बहती है। विवाह के गीतों में जहाँ आनन्द, उल्लास एवं परिहास का वर्णन है वहाँ गवना के गीतों में विषाद का दृश्य दीख पडता है। कहीं भाई अपनी बहन की पालकी के पीछे-पीछे रोता जाता हुआ दिखाई पड़ता है तो कही बहिन अपने भाई, माता, एवं पिता के वियोग के दुःख से दुःखी होकर रोती, कलपती, बिलखती चली जाती है। कहीं पुत्री की माता अपने जामाता से प्राण प्यारी पुत्री को आदर के साथ रखने तथा उससे प्रेम करने का उपदेश देती है तो कही पुत्री के भावी वियोग जन्य दुःख का अनुमान कर विलाप करती है। साराश यह है कि इस अवसर पर जिन विषयों का वर्णन किया गया है वे सभी करुण रस में ओत-प्रोत हैं।

वर्ण्य विषय

पुत्री की बिदाई का यह दृश्य कितना करुण है। इसमें माता, पिता, भाई सभी विह्वल होकर रोते दिखाये गये हैं। परन्तु भावज की आँखों में आँसू की एक बूंद भी नही है।[१]

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १६६।

"केकरा ही रोवले गागा बढ़ि अइली,
'केकरा के रोवले अनोर।
केकरा हीं रोवले चरण धोती भीजे,
केकरा नयनवा ना लोर।
बाबा के रोवले गांगा बढ़ि अइली,
आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भीजे
भऊजी नयनवां ना लोर।"

इन पंक्तियों में पुत्री के प्रति पिता की कितनी ममता भरी पड़ी है। कालिदास ने शकुन्तला की विदाई के अवसर पर कण्व को भी रुलाया है।

ससुराल जाते समय रोती हुई पुत्री को सान्त्वना देती हुई माता कहती है कि ऐ बेटी! चुप रहो। मैं पीछे से तुम्हारे सहोदर जेठे भाई को भेजूंगी। अत. रोओ मत।[1]

"आरे रोवेली माइ रे धिया भीजेला रे बटुक।
आरे चुप होखु चुप ए बाचावा चुप होखु रे।
आरे पाछा से पठइबो रे बाचावा,
सहोदर जे भाई।"

पुत्री की माता अपने जेठे पुत्र से कहती है कि तुम मेरी समधिन से कह देना कि वह मेरी बेटी को गाली न देगी और न पैर से ठुकरायेगी। मेरी बेटी जब सोई हो तो उसे कच्ची नींद में न जगायेगी।[2]

"सुन सुन लोकनी सुनहु जेठ भाई।
कहिहु समधीनी आगे अरज हमारी।
लाते जनि मरिहै, पाराते जनि गारी।
आरे कांच ही नीनीये जनि जगइहै मोरि दुलारी।"

इस गीत में माता की ममता छलकी पड़ती है।

बहन के प्रेम के कारण उसका भाई उसकी बिदाई के समय पालकी के दरवाजे को रोक लेता है जिससे वह ससुराल न जाय। संभवत. वह प्रेमी भाई यह समझता है कि मेरे दरवाजा रोक लेने से बहिन का जाना न हो सकेगा।

"आठहि काठकेरा डडिया, नेतावे लागेला ओहार।
फानावेले कवन राम डडिया, बहू चढ़ि चलु रे हमार।
छकेले कवन भइया डडिया, बहिना जाये ना देउ।"

इस प्रकार गवना के गीतों में करुण रस की नदी बल खाती, बिलखती अविच्छिन्न गति से चलती जाती है।

मिथिला में गवना के गीतों को 'समदाऊनि' कहते हैं। इसके विषय में

---

१. वही पृ० १६५। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १८६-९०। ३. राकेश: मै० लो० गी० पृ० १७०।

राकेश जी लिखते[१] कि[२] "विवाह संस्कार की समाप्ति के बाद जब दुलहिन डोली में बैठकर ससुराल जा की तैयारी करती है, उस समय मिथिला में एक विशिष्ट शैली का गीत गाया जाता है जो 'समदाऊनि' के नाम से प्रसिद्ध है। 'समदाऊनि' का सबसे बड़ा गुण है स्वाभाविकता। इसका शृंगार प्रेम और करुणा के मोतियों से हुआ है। न 'समदाऊनि' के गीतों में पुत्री के प्रति माता और पिता का प्रेम उमड़ा पड़ता है और पुत्री के अश्रुपात से नदियों में बाढ़ तक आ जाती है। नीचे के गीत में कवि ने बेटी की जुदाई में विसूरती हुई माँ और माँ की याद में तड़पती हुई बे ी—दोनो के हृदय को निकाल कर रख दिया है। इस गीत के शब्द-शब्द से करुणा फूट कर बह पड़ी है।'

गवना के अन्य गीत

"गैया जे हुकरय दुहान केर बेर।
बेटी क माए हुकरय रसोइया केर बेर।
गैया के बाधिनो मै खुटा में लगाय।
बछिया के लेल जाय भागल जमाय।
धियवा के कनइत में गगा बहिगेल।
दमदा के हमहृत में चादरि उडि गेल।"

"समदाऊनि' के इन करुणा भरे गीतों में पुत्री के विदा के समय माँ, बाप ही नही रोते बल्कि पशु भी रागवेदना में रोते दिखाई पड़ते हैं।

"रानी जे रोवे रामा रोवै रनिवसवा,
राजा जे रोवे दरवजवा रे सखिया।
हाथी जे रोवे रामा रोवै हथिसरवा,
घोड़ा जें रोवे घोड़सरवा हे सखिया।"

राजस्थानी भाषा में गवना के गीतों को 'ओल्यूं' कहते हैं। "इनके भाव इतने करुण होते हैं कि सुनकर हृदय थाम कर आँसू रोकना कठिन हो जाता है। स्त्रियाँ गाती हुई जोर-जोर रोने लगती हैं। पुरुषों की आँखें भी छलछला जाती हैं।" नीचे एक गीत में पुत्री की उपमा कोयल से दी गई है। कवि कहता है कि ऐ कोयल! इस वन को छोड़कर कहाँ जा रही है। तुम्हारी माता उन्मना हो रही है, छोटी बहिन अकेली रो रही है। तेरा बड़ा भाई उदास फिरता है और तेरी भावज बिलखती है —

"वनखड की ऐ कोयल, वनखड छाड कठै चनी।
थारी माम्रूजी थारे बिन अणमणा।
थारी छोटी बैनड रोवै अकेलडी।
थारो वीरो सा फिरे छै उदास।
बिलखन थारी भावजड़ी।
वनखड की ऐ कोयल वनखड छोड कठै चली।"

---

१ भो० ग्रा० गी० पृ० ७३-७४। २ राकेश मै० लो० गी० पृ० १८४। ३. पारीक, रा० लो० गी० भाग १ पृ० १७८। ४ वही पृ० १६०।

(ख) ऋतु संबंधी गीत

कजली

सावन के मन भावन महीने में भोजपुरी प्रदेश में जो गाने गाये जाते हैं उन्हें 'कजली' कहते हैं।

सावन के महीने में प्रकृति सर्वत्र हरी दिखाई पड़ती है तथा मेघों के आगमन के साथ ही साथ प्रकृति में एक विचित्र प्रकार की मादकता संचरित होती है। महाकवि कालिदास ने 'मेघालोके भवति सुखिनोप्यन्यथावृत्तिचेत:" लिखकर इसी मादकता या मस्तीपन की ओर संकेत किया है। प्रकृति की इसी पृष्ठभूमि में सावन मास में 'कजली' गायी जाती है।

'कजली' का नामकरण इस मास में घिरने वाले बादलों की कालिमा के कारण पड़ा है जो काजल के समान काले-काले आकाश में घूमते दिखाई पड़ते हैं। अत. काजल के समान रूप वाले बादलों की वर्ण समता के कारण ही 'कजली' की व्युत्पत्ति है। परन्तु भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने इस नामकरण का कुछ दूसरा ही कारण दिया है। उनका कथन है कि मध्यभारत में दादू राय नामक एक राजा था जिसके राज्य में कोई भी मुसलमान गंगा को नहीं छू सकता था। एक बार उसके राज्य में बहुत बड़ा अकाल पड़ा। उस समय इस राजा ने अपनी देवभक्ति के बल से पानी बरसाया। इससे वह बड़ा ही लोकप्रिय हो गया। कुछ दिनों के बाद जब इसका देहान्त हो गया तब इसकी स्त्री नागमती इसकी लाश के साथ सती हो गई। उस राज्य की स्त्रियों ने अपने दु:ख को प्रकट करने के लिये एक नये राग को आविष्कृत किया जिसका नाम 'कजली' पड़ा। भारतेन्दु ने यह भी लिखा है कि इस नामकरण के अन्य भी दो कारण हैं।

१. दादू राय के राज्य में 'कजली' नामक वन था अतः उसी के नाम पर इस गीत का नाम 'कजली' पड़ा है।

२. श्रावण भादों की शुक्ल पक्ष की तीज का नाम—जिस दिन यह गाना खूब गाया जाता है—ही कजली तीज है। इस नाम से भी इसकी उत्पत्ति मानी जाती है।[१]

भारतेन्दु जी की दादूराय की कहानी में ऐतिहासिक अंश कितना है यह कहना तो कठिन है परन्तु कजली तीज के दिन गाये जाने के कारण इस गीत का नाम 'कजली' पड़ा है इसमें बहुत कुछ तथ्य है।

सावन के महीने में हरएक गाँव में, बाग में या तालाब के किनारे झूले लगाये जाते हैं जिनमें गांव के स्त्री पुरुष झूला झूलते हैं। इन झूलों को लगाने के लिए बड़ी तैयारी की जाती है। सुन्दर रंगीन रस्सी होती है और काठ के तख्ते में उसे बाध कर किसी पेड़ की शाखा से लटका देते हैं। इसी सुसज्जित झूले पर बैठ कर नर-नारी झूले का आनन्द लेते हैं और 'कजली' गाते हैं। कोई पुरुष झूले पर खड़े होकर उसे झटका देकर जोर से चलाता रहता है जिसे 'पेंग बढाना' कहते हैं। उस प्रकार सावन में झूले का दृश्य बड़ा ही आनन्द-दायक होता है।

सावन के महीने में भोजपुरी प्रदेश में कजली गाने की बड़ी प्रथा है। प्राय: प्रत्येक

---

१. डा० ग्रियर्सनः ज. ए. सो. बं. भाग ५३ खंड १ [१८८४] पृ० २३७।

गाँव में झूले पडते हैं और वहाँ स्त्रियाँ झूला झूलती हुई गाना गाती जाती हैं। मिर्जापुर की कजली बहुत प्रसिद्ध है जैसा कि इस उक्ति से पता चलता है :

"लीला रामनगर की भारी,
कजली मिर्जापुर सरदार।"

अर्थात् रामनगर की रामलीला बहुत बडी होती है परन्तु मिर्जापुर की कजली श्रेष्ठ है। यहाँ कजली के दंगल भी हुआ करते हैं जहाँ गवैयो की दो पार्टियाँ रात-रात भर कजली गाती रहती हैं। इसमें दंगल जीतने वालों को पुरस्कार भी दिया जाता है। दोनों दलों के गवैये मधुर राग में अपनी कजली सुनाते हैं। ये प्राय स्वरचित होती हैं जिनमें सामयिक विषयों पर रचना की गई रहती है।

वर्ण्य विषय

कजली का वर्ण्य विषय प्रेम है। इसमें शृंगार के उभयपक्ष की झाकी हमें देखने को मिलती है। परन्तु सभोग शृंगार का वर्णन अपनी प्रधानता रखता है जो स्वाभाविक ही है। एक गीत में राधा और कृष्ण के झूला झूलने का उल्लेख मिलता है। यह वर्णन कितना सुन्दर है।[1]

"झूला झूले राधिका प्यारी,
सग में कृष्ण मुरारी ना। टेक
कथि के पालना कथि के डोरी,
कथि के गछिया ना। टेक
सोने के पालना रेसम के डोरी,
चनन के गछिया ना।" टेक

कहीं-कहीं इन गीतों में पति पत्नी की प्रेमलीला का बडा ही सुन्दर वर्णन बन पड़ा है। नीचे का यह गीत देखिये :[2]

"आरे बाबा बहेला पुरवैया,
अब पिया मोरे सोवें ए हरी। टेक
कलिया चुनि चुनि सेजिया डसावली,
सइयाँ सुतेले आधि रात,
देवर बडी भोरे ए हरी। टेक
लवंग खिलि-खिलि बिरवा लगवली,
सइयाँ चामेले आधि राति
देवर बडा भोरे ए हरी।" टेक

कहीं झूला झूलने के लिये उत्सुका भावज अपनी ननद से पूछती है कि ऐ ननद! बादल उमडे चले आ रहे हैं, मैं सावन में कजली खेलने कैसे जाऊँ?

"कइसे खेले जाई हम सावन में कजरिया,
बदरिया घिरि अइले ननदी।"[3]

इस पर ननद मना करती है कि आजकल का दिन मस्ती का है। कोई मनचला तुम्हें रास्ते में पकड लेगा अत मत जाओ.

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० १७६। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० पृ० १७५। ३. वही. पृ० १७४।

"तू तो चललू अकेली, तोरा संग ना सहेली
गुंडा घेरिलीहैं तोहि के डगरिया में।
बदरिया घिरि अइले ननदी।"[१]

संभोग शृंगार के साथ ही वियोग शृंगार की गभीर अभिव्यजना इन गीतो मे हुई है। पति वियोग के कारण इनमें विरहिणी की वेदना मूक स्वर से बोल रही है। उनका करुण क्रन्दन श्रोताओं को करुण रस की धारा से भिगो देता है। डा० ग्रियर्सन ने इन गीतो के विषय में ठीक ही कहा है कि इन गीतो का वातावरण करुण रस से पूर्ण है यद्यपि इनमें विभिन्न भावनायें और भाव पाये जाते हैं।[२]

सावन के महीने में पति के आगमन की अवधि थी। परन्तु उसके न आने से प्रोषितपतिका स्त्री की व्याकुलता का यह वर्णन कितना स्वाभाविक है। वह स्त्री अपनी सखी से कहती है कि पति ने आज आने को कहा था। सूर्य डूब चला, सन्ध्या हो गई परन्तु पति अभी तक नहीं आया। ए काग! शुभ शकुन सूचित करने वाली अपनी बोली बोलो। परन्तु अब तो काली घटायें घिर आईं, बादल बरसने लगे, बिजुली कौंधने लगी। भला मेरा पति अब कैसे आयेगा।[३]

"सोने के थारी में जेवना परोसलो, जेवना ना जेवे हो,
सखिया साझे भइल वेरी विसवे,
सामी घरे ना अइले हो।
बोलु बोलु कागवा सुलच्छन बोलिया,
हरि घरे ना अइले हो।"

इसी प्रकार एक दूसरी कजरी में कोई विरह विधुरा नायिका सखियो के उल्लास को देखकर अपने भाग्य को कोसती पश्चाताप कर रही है।[४]

"बादर बरसे बिजुरी चमके,
जियरा ललचे मोर सखिया।
सइयाँ घर ना अइले पानी बरसे लागल,
मोर सखिया।"

कजली भिन्न-भिन्न रागों में गाई जाती हैं जिनका स्वर युक्त उदाहरण 'स्वरलिपि' के अध्याय में दिया जायगा। हिन्दी के 'प्रेमघन' आदि अनेक कवियों ने भी कजरी लिखी है।[५]

---

१. भो० ग्रा० गी० पृ० १७५। २. दि वर्स आफ दीज साग्स आर रादर मेलंकली, दो दे आर यूज्ड टू एक्सप्रेस डिफ्रेन्ट फीलिंग्स एण्ड सेन्टीमेन्ट्स। ज. ए. सी. बं. भाग ५३ खंड १ [१८८४] पृ० २३७। ३. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २३६-३७। ४. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २३४। ५. एक 'कजली संग्रह' काशी से प्रकाशित हुआ है।

फगुआ

होली के त्योहार के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'फाग' या 'फगुआ' कहते हैं। होली का उत्सव फाल्गुन पूर्णिमा-परिवा को मनाया जाता है। अत फाल्गुन मास में गाये जाने के कारण ही इन गीतों का नाम 'फाग' या 'फगुआ' पड गया है। होली के अवसर पर गेय होने के कारण इन्हें 'होली' या 'होरी' भी कहते हैं। माघ मास की शुक्ल पचमी 'वसन्त पचमी' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी दिन से वसन्त का आगमन माना जाता है और आज से ही गाँव-गाँव में 'फाग' गाना प्रारम्भ हो जाता है जिसे ग्रामीण भाषा में 'ताल ठोंकना' कहते हैं। गाँव के लोग आज से किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के द्वार पर एकत्रित होकर फाग गाते हैं और श्रोताओं को आनन्दित करते हैं। परन्तु फाग का चरम उत्कर्ष होली के दिन देखने में आता है। जिस दिन होली होती है उसके एक दिन पूर्व की रात्रि में 'होलिका' जलाई जाती है जिसे भोजपुरी में 'सवत् जलाना' कहते हैं। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नया वर्ष प्रारम्भ होता है और पुराना वर्ष समाप्त हो जाता है। सभवत इसी कारण इस प्रथा को 'सवत् जलाना' कहते हैं। सवत् जलाने के लिए गाँव का कोई चौराहा या मुख्य स्थान चुना जाता है। वहाँ पर गाँव के लडके बीसो दिन पहले से ही लकडी, उपला, टूटा छप्पर, पुराना काठ, पत्तो, और सूखी घास आदि लाकर इकट्ठा करते रहते हैं। हिन्दी के किसी कवि ने होली जलाने के लिये काष्ठादि वस्तुओ के चुराने का सकेत अपने एक पद्य में किया है

नामकरण एव प्रथा

'चोरी करि होरी रची, भई तनक में छार।'

इस प्रकार होली जलाने के दिन तक काष्ठादि का बहुत बडा सग्रह हो जाता है।

होली जलाने का एक शुभ मुहूर्त होता है। इस समय गाँव के बालक, युवा और वृद्ध 'होरी' के स्थान पर एकत्रित होते हैं। स्त्रिया अपने बालको के शरीर में उबटन लगाकर उनकी मैल को इसी 'सवत्' में जलने के लिए डाल देती हैं। उनका यह विश्वास है कि ऐसा करने से बालक की सारी बीमारियाँ 'सवत्' के साथ ही जल जाती हैं और वह अग्रिम वर्ष में पूर्णतया नीरोग रहता है। शुभ मुहूर्त आने पर 'सवत्' में आग लगा दी जाती है। गाँव के लोग सवत्' की प्रदक्षिणा करते हैं, उसमें धूप, जौ आदि पदार्थ जलने के लिये डालते हैं जिससे उसकी सुगन्धि फैलती है। जब होली जलती रहती है उसी समय गाँव के लडके सूखी पत्तियों को लाठी में बाधकर के अथवा जलती लकडी को लेकर घुमाते हैं जिसे लुकाडी भाजना कहते हैं। इस पुरातन प्रथा का क्या रहस्य है यह कहना कठिन है। सभवत यह वीरता प्रदर्शन के लिये किया जाता हो।

"सवत् जलने' के दूसरे दिन अर्थात् चैत्र कृष्ण परिवा को होली का महान् उत्सव मनाया जाता है। यो तो ब्रज की होली प्रसिद्ध है ही परन्तु भोजपुरी प्रदेश में भी यह उत्सव कुछ कम उत्साह एव उमग के साथ नहीं मनाया जाता। इस दिन आबाल-वृद्ध-वनिता सभी में मस्ती दिखाई पडती है। होली के दिन गाई जाने वाली गालियों में अश्लीलता की मात्रा अधिक होती है। मनोविज्ञान वेत्ताओ का कहना है कि मनुष्य के मस्तिष्क में जो भावनायें

सुपुप्त होती हैं—जिन्हें वह किसी कारण प्रकट करना नहीं चाहता—वे उचित अवसर आने पर स्वत: प्रकाश में आती हैं। अतः मनुष्य के मन में काम वासना की जो छिपी भावना है वह इसी होली के अवसर पर प्रकट होती है। इस अवसर पर गाली देना उसी सुपुप्त भावना का स्वाभाविक उद्गार है।

होली के अवसर पर जो गालिया गाई जाती हैं उन्हें 'कबीर' कहते हैं। इन सभी गालियों के साथ कबीर का नाम सबद्ध है। जैसे:—

"अ र र र र र र र र भइया सुन ल मोर कबीर।"

इन गालियों को 'कबीर' क्यों कहते हैं यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन है। कबीर की अटपटी निर्गुन बानी तत्कालीन समाज के लिये लोकप्रिय नहीं हो सकी अत. कबीर के प्रति अपनी अस्वीकृति या आत्मक्षोभ दिखलाने के लिए ही लोगों ने इन गालियों को 'कबीर' का नाम दे दिया है।

गवैये भावावेश में आकर घुटने के बल खड़े हो जाते हैं और दोनों हाथों से जोरों से झाल पीटते हुए —

"ब्रज में हरि होरी मचाई।
इतते आवत नवल राधिका, उतते कुंवर कन्हाई।
हिलि मिलि फाग परसपर खेलत,
सोभा बरनी न जाई।
आरे घरे घरे बजत बधाई।"

गाता जाता है। गीत की ध्वनि जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब झट से यकायक गीत समाप्त हो जाता है। सचमुच होली गाने का दृश्य बड़ा ही चित्ताकर्षक होता है।

होली हमारा परम आनन्द और मस्ती का त्योहार है। अत ऐसे मंगलमय अवसर पर गेय गीतों में उछाह एवं हर्ष का वर्णन होना स्वाभाविक है। इन गीतों में कहीं राधा और कृष्ण के होली खेलने का वर्णन है तो कहीं शिवजी 'होरी खेलते' हुए दिखाई पड़ते हैं। कहीं राम और सीता सोने की पिचकारी में रंग भरकर एक दूसरे पर डाल रहे हैं तो कहीं पवनसुत हनुमान जी लंका में होरी मचाते हुए पाये जाते हैं।

वर्ण्य विषय

राम और सीता के होली खेलने का यह वर्णन देखिये [१]—

"होरी खेले रघुबीरा अवध में होरी।
केकरा हाथ कनक पिचकारी,
केकरा हाथ अबीर।
राम के हाथ कनक पिचकारी,
सीता के हाथ अबीर।
होरी खेले रघुबीरा अवध में होरी।"

'फगुआ' के इस गीत में राम के बाल रूप का कितना मधुर वर्णन किया गया है [२]

'प्रन एहि मेरो रघुवर जी से खेलबि होरी
जाके सिर पर मुकुट बिराजे,
साँवर गोर दुनो जोरी।
भाल बिसाल तिलक बिच सोभे,
सोभा सिन्धु खरोरी।
जाके कर सर, धनुष बिराजे,
फिरत अवध के खोरी।
बालक रूप अनूप बनल बा,
ओढत पीत पटोरी।
प्रन एहि मेरो, रघुवर जी से खेलबि होरी।"

इस प्रकार होली के गीतों में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दिखाई पड़ता है।

---

१. भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० १२६। २ वही पृ० २२४।

राजस्थानी लोक गीतों में होली

राजस्थानी लोक गीतों में भी होली के गीतों में वही आनन्द और मस्ती की धारा प्रवाहित होती है जो हमें भोजपुरी गीतों में उपलब्ध होती है। हमारे प्रदेश में होली ढोलक पर गाई जाती है परन्तु राजस्थान में इस गीत के साथ चग—एक प्रकार का बाजा—अथवा 'डफ' बजाने की प्रथा है जो बहुत पुरानी है। चग के बजने का यह वर्णन सुनिये [१]

"रगीली चग बाजणू
म्हारे रैंजी मढायो चग बाजणू।
म्हारो रेगर मढ में लायो जे।
रगीली चग बाजणू।"

राजस्थान में होली के अवसर पर लड़कियाँ और स्त्रियाँ, गहनो और वस्त्रो से सजधज कर मिल-जुलकर गाती-बजाती, खेलती-कूदती और नाचती है। इस समय एक विशेष प्रकार का नृत्य होता है जिसे 'लूर' कहते हैं जिसमें स्त्रियाँ हाथ बाँधकर चक्राकार नाचती हैं। इसको 'लूवर' या घूमर भी कहते हैं। कोई स्त्री अपनी सखी से कहती है कि अब होली आ गई, आओ मिलजुलकर 'लूर' खेलें।[२]

"होली आयी ए सहेल्यां,
मिल खेला लूर होली आयी ए।
कोई कोई ओढ्या झीणी झीणी चूनड,
कोई कोई ओढ्या दिखणी चीर।
होली आयी ए सहेल्याँ, मिल खेला लूर।"

मैथिली होली

मैथिली होली के गीतों में भी शृगार, अनन्द एव उछाह का ही वर्णन उपलब्ध होता है। रति क्रीडा का यह वर्णन देखिए [३]

"गोरी कहमा गोदउलू गोदना।
बहियाँ गोदउली छतिया गोदउली
बाकी रहल दुनु जोबना।
पिया के पलग पर रोदना।
गोरी कहमा गोदउलू गोदना।।"

इसी प्रकार अन्य मैथिली 'फागो' में भी शृगाररस का समुद्र लहराता दिखलाई पडता है।

चैता

चैत्र के मनभावन मास में 'चैता' गाया जाता है। चैत्र के महीने में गेय होने के कारण ही इसका नाम 'चैता' पड गया है। वसन्त में चैता की बहार

१ पारीक, रा० लो० गी० भाग १ पृ० ६७। २ वही पृ० ६६। ३ राकेश मै०गी पृ० २७६।

बडी आनन्ददायिनी होती है। न ी के किनारे, किसी मेले में, अमराई की शीतल छाया में, मन्दिर में जहाँ देखिये वही मस्त भोजपुरी चैता गाने में तल्लीन दिखाई पड़ता है। लोक गीतो के जितने भी प्रकार हैं उनमें मधुरता, सरसता एव कोमलता में चैता अपना सानी नही रखता। यह सत्य है कि सोहर और जतसार में भी करुण रस का भण्डार है परन्तु हृदय को विभोर करने की जो शक्ति 'चैता' में पाई जाती है वह अन्यत्र उपलब्ध नही। इस दृष्टि से चैता को लोक-गीतो में सर्वश्रेष्ठ स्थान मिलना चाहिये।

चैता दो प्रकार का होता है। १ झलकुटिया २ साधारण। झलकुटिया चैता उसे कहते हैं जो सामूहिक रूप में झाल कूट कर बजाकर गाया जाता है। साधारण 'चैता' वह है जिसे केवल एक आदमी गाता है। जब चैता सामूहिक रूप (कोरस) में गाया जाता है उस समय गाने वाले दो दलो में विभक्त हो जाते हैं। पहिला दल एक पक्ति कहता है तो दूसरा उसके टेक पद को जोरो से गाता है। उदाहरण लीजिये—

पहिला दल गायेगा

"रामा चइत की निंदियाँ बडी वइरिनिया"

तो दूसरा दल कहेगा

हो रमा, सुतलो वलमुआ

पहिला दल गायेगा

नाही जागे हो रामा

दूसरा दल गायेगा

सुतलो वलमुआ।

इस प्रकार से गाने का क्रम कभी नही टूटता और प्रत्येक दल वाले को गाते समय थोडा विश्राम भी मिल जाता है। पहला दल जिस स्वर में गायेगा दूसरा दल उससे उच्च स्वर में टेक पद को गायेगा। जब चैता गान पराकाष्ठा (क्लाइमेक्स) पर पहुँचता है तो गाने वाले उच्चतम स्वर का प्रयोग करते हैं। दोनो ओर से लगातार झाल बजता रहता है। गवैये भावावेश में आकर घुटने के बल खडे हो जाते हैं। 'आहो रामा' 'आहो रामा' 'आहो रामा' की गगनभेदी ध्वनि से आकाश गूजने लगता है। श्रोतागण आनन्द में मग्न हो गवैये का मुह देखते रहते हैं और गवैये गाने के जोश में अपनी सुधबुध को थोडी देर के लिये सचमुच भूल जाते हैं। चैत का महीना, रात्रि का समय, चैता का राग और झाँझ की झनकार सब मिलकर एक अजीब समा बाँध देते हैं। यह है झलकुटिया चैता।

चैता के गाने का भी एक विशेष ढग है। इसकी प्रत्येक पक्ति में पहिले 'आहो रामा' या 'रामा' और अन्त में 'हो रामा' शब्दो का प्रयोग किया जाता है। जैसे[1]

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग० २ पृ० २३६।

'रामा नदिया के तीरवा चनन गाछि विरवा हो रामा।'
अथवा– 'रामा मोर पिछुवरवा काहार भइया हितवा हो रामा'।'

इसके गाने की दूसरी विशेषता यह है कि दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पदो की पुनरावृत्ति उस पंक्ति के गायन समाप्त होने पर पुन की जाती है। अर्थात् दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पद टेक पद का काम करते है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी

'आहो राम सूतल रहलीं पिया सगे सेजिया हो रामा।
बाते बाते, लागि गइले पियवा से रेरिया हो रामा।
बाते बाते
आहो रामा मुहवा से निकलेला, केलिया कुबोलिया हो रामा।
ताहि बोलिये, पियवा भइले वयरगिया हो रामा।
ताहि बोलिये

उपर्युक्त गीत की दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पद 'बाते बाते' हैं। ये ही पद इस पंक्ति के गाने के बाद टेक रूप में पुन गाये जाते हैं। चौथी पंक्ति में 'ताहि बोलिये' शुरु तथा अन्त में दोनों समय गाया जाता है। यही बात अन्य पंक्तियो में भी समझनी चाहिये।

इसकी तीसरी विशेषता यह है कि इसके गाने में प्रथम अवरोह, फिर आरोह और पुन अवरोह होता है। अर्थात् प्रारम्भ में मन्द स्वर, बीच में उच्च-स्वर और पुन अन्त में मन्दस्वर का प्रयोग किया जाता है। चैता के गीतो की स्वरलिपि देखने से यह बात स्पष्ट ज्ञात हो जायगी। बिन्दुओ के द्वारा इसे निम्नांकित प्रकार से प्रकट कर सकते हैं।

उच्चतम स्वर–आहो रामा सूतल रहली पिया सगे सेजिया हो रामा बाते बाते।
उच्च स्वर– . . . . . .
मन्द स्वर– . .

इसी प्रकार आरोहावरोह के क्रम से यह गीत गाया जाता है। 'हो रामा' और 'बाते बाते' में लम्बित स्वर का प्रयोग किया जाता है। जैसे आहो रामा बाते३ बात३.

चैता प्रेम के गीत हैं अत इनमें सयोग शृगार की कहानी रागों में लिखी गई है। इनमें कहीं आलसी पति का सूर्योदय के बाद तक सोने से जगाने का वर्णन है तो कहीं पति पत्नी के प्रणय कलह की झांकी देखने को मिलती है। कहीं ननद और भावज के पनघट पर पानी भरते समय किसी मनचले की छेड़-खानी का उल्लेख है तो कहीं सिर पर मटका रख कर दही बेचने वाली ग्वालिनों से कृष्ण जी के 'गोरस' मागने का वर्णन है। कहीं जानकी के स्वयम्बर की रचना की गई है तो कहीं फूल चुनने के लिये गई हुई किसी नायिका के कान्त कर में चुभे कांटे का उसके प्रियतम द्वारा निकालने का विवरण है। विरह के साथ सेज पर सोनेवाली स्त्री किसी चिड़िया से प्रार्थना करती है

वर्ण्य विषय

प्रेम में विघ्न पहुंचाने वाली कोयल को मार डालो। आशय यह है कि सभोग शृंगार के विभिन्न पहलुओं का इनमें बड़ा सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है।

कोई स्त्री बहेलिया से कहती है कि मैं जब पति के साथ सोती हू तभी यह कोयल शब्द सुनाकर जगा देती है, इस वैरिन को मार डालो .[1]

'आहो रामा सूतल रहली पिया सगे सेजिया हो रामा।
बिरही कोइलिया, सबद सुनावे हो रामा।
बिरही कोइलिया।
आहो रामा गोड तोर लागेनी बाबा के बहेलिया हो रामा।
बिरही कोइलिया, मारि ले आऊ हो रामा।
बिरही कोइलिया।

ननद के आचरण पर आशका करनेवाली भावज की यह दुष्टता भरी उक्ति कितनी तथ्यपूर्ण है।[2]

'आहो रामा हम तोसे पूछेली ननदी सुलोचनी हो रामा।
तोहरे पिठिया, धूरिया कइसे लागल हो रामा।
तोहरे पिठिया।
आहो रामा बाबा के दुअरवा नाचेला नेटुअवा हो रामा।
भितिया सटल धूरि लागल हो रामा,
भितिया सटल।'

. आलसी, दीर्घसूत्री एवं निष्क्रिय पति को बार बार जगाने वाली स्त्री की यह प्रेम उक्ति कितनी मर्मस्पर्शिनी है। जब उसका पति जगाने पर भी नहीं जगता तब वह अपनी ननद से उसे जगाने की प्रार्थना करती है।

ननद के अस्वीकार करने पर वह कहती है कि तुम्हारे लिये तो तेरा भाई सो रहा है परन्तु मेरे लिये इसका सोना सूर्य और चन्द्रमा के अस्त होने के समान है :[3]

"रामा साँझहि के सूतल फूटलि किरिनिया हो रामा।
तवो नाही जागेला हमरो बलमुआ हो रामा।
राम चुर घीची मरली पइरिया घीची मरली हो रामा।
तवो नाही जागेला सँइयाँ अभागा हो रामा।
रामा तोरा लेखे ननदी तोर भइया निंदिया के मातल हो रामा।
रामा मोरा लेखे चान सुरुज छपित भइले हो रामा।"

यमुना में क्रीडा करते समय कृष्ण जी के छिप जाने पर गोपियों की चिन्ता का कितना सुन्दर चित्रण नीचे लिखे चते में हुआ है। यह चैता सरसता, मधुरता और हृदय की द्रविकता में अत्यन्त सुन्दर है। यहाँ कृष्ण की उपमा माणिक्य से दी गई है।[4]

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २४८-४६। २. वही. पृ० २५०। ३. वही भाग १ पृ० ३४०-४१। ४. वही. भाग २ पृ० २४६-४७।

"आहो रामा मानिक हमरो हेरइले हो रामा।
ओहि यमुना में, केहु नाही खोजेला हमरो पदारथ हो रामा।
ओहि यमुना में।
आहो रामा ओहि रे जमुनवा के चीकटि मटिया,
चलत पाँव बिछिलइले हो रामा।
ओहि यमुना में।
आहो रामा ओहि रे जमुनवा के करिआ मटिया,
देखत मन घबरइले हो रामा।
ओहि जमुना में।"

-अधिकाश चैता गीतो के कर्ता का नाम प्राप्त होता है। बुलाकी दास का नाम अनेक चैतो की अन्तिम पक्ति में आता है। जैसे !

"दास बुलाकी चइत घाटो गावे हो रामा।
गाई गाई बिरहिनि समुझावे हो रामा।"

ये बुलाकी दास यू० पी० के बलिया जिले के रसडा कस्बा के पास के रहने वाले थे जहाँ पर इनका मठ आज भी विद्यमान है। इन्होने सैकडो चैता गीतो का निर्माण किया है परन्तु ये गीत प्रकाशित न होने के कारण मौलिक रूप में ही चलते रहे हैं। कुछ लोग चैता और घाटो में अन्तर मानते हैं परन्तु हमारी सम्मति में चैता के गीतो को ही घाटो कहते हैं। बुलाकीदास का नाम 'घाटो' से सबद्ध है परन्तु इन 'घाटो' को देखने से पता चलता है कि चैता और घाटो में कुछ भी अन्तर नही है।

मैथिली में चैता को 'चैतावर' कहते हैं। इनमें वसन्त की मस्ती और रगीन भावनाओ का अनोखा सौन्दर्य अकित है। कोई स्त्री कहती है कि जब चैत (वसन्त) बीत जायगा तब मेरा मूर्ख पति आकर क्या करेगा। बौर में 'टिकोरे' निकल आये, टहनी-टहनी में रस का सचार हो गया परन्तु प्रिय नही आया।[1]

"चैत बीति जयतइ हो रामा।
तब पिया की करे अयतइ।
आरे अमुआ मोजर गेल,
फरि गल टिकोरवा।
डारे पाते भेल मतवलवा हो रामा।"

कठोर पति के प्रति किसी विरहिणी का यह उपालम्भ कितना मार्मिक है।[2]

"आयल चैत उतपतिया ए रामा,
नई भेजे पतिया।
बिरही कोइलिया शब्द सुनावै,
कल न पडय अब रतिया हे रामा।
बेली चमेली फुले बगिया में
जोबना झूलल मोर अगिया हो रामा।"

---

[1] १. मै० लो० गी० २५५। २. वही. २८६-८७।

बारहमासा

पावस ऋतु में जो आनन्दमय गीत गाये जाते हैं उन्हें 'बारहमासा' कहते हैं। इन गीतों में विरहिणी की वेदना की अभिव्यक्ति पायी जाती है। वाणिज्य-व्यवसाय के लिये पति परदेस चला गया है। वरसों से लौटकर नहीं आया। वर्षा का दिन है। छप्पर चू रहा है परन्तु कोई छाने वाला नहीं है। ऐसी दशा में विरहिणी का विरह उत्कर्ष को प्राप्त करता है और उस की वेदना 'बारहमासा' के रूप में प्रकट होती है। इन गीतों में वर्ष भर के समस्त मासों—बारह महीनों—में होने वाले दुःखों का वर्णन पाया जाता है अतः उन्हें 'बारहमासा' कहते हैं। इन लोकगीतों में विरह की अधिकता होती है अतः इन्हें यदि 'विरहमासा' कहें तो कुछ अनुचित नहीं होगी। जिन गीतों में बारहों महीनें का विरहजन्य प्रकृति चित्रण होता है उसे 'बारहमासा', जिनमें छः मासों का वर्णन होता है उन्हें 'छःमासा' और जिनमें केवल चार मास—आषाढ, सावन, भादों, कुवार का प्रकृति चित्रण उपलब्ध होता है वह 'चौमासा' के नाम से पुकारा जाता है। भोजपुरी में विशेषकर बारहमासा ही पाये जाते हैं। 'छःमासा' तो प्रायः होता ही नहीं, हाँ चौमासा दो चार अवश्य प्राप्त होते हैं।

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कवि जायसी ने भी अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक पद्मावत में 'बारहमासा' लिखा है। नागमती वियोग खंड में नागमती का विरह वर्णन इसी 'बारहमासे' में किया गया है। जायसी ने नागमती का वियोग वर्णन आषाढ मास से प्रारम्भ किया है और ज्येष्ठ मास में इसकी समाप्ति की है। प्रत्येक महीनें में होने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन कवि ने बड़ी ही खूबी के साथ किया है। प्रथम दो, तीन महीनों का यह वर्णन लीजिए

"चढा असाढ गगन घन गाजा, साजा विरह दुंद दल बाजा।
धूम, साम, धौरे घन धाए, सेत धजा बक पांति देखाए।

•

सावन बरस मेह अति पानी, भरनि परी, हौं विरह झुरानी।
लाग पुनरबसु पीउ न देखा, भइ बाउरि, कह कंत सरेखा।
रकत के आँसु परहिं मुंह टूटी रेंगि चली जस बीर बहूटी।"

इसी प्रकार जायसी ने शेष महीनों के भी प्राकृतिक सौंदर्य का बड़ा ही सुन्दर वर्णन उपस्थित किया है। इससे पता चलता है कि बारहमासा लिखने की *प्रथा आज से ३५० वर्ष पूर्व में प्रचलित थी। जायसी के बाद अन्य सन्त* कवियों—विशेषकर भोजपुरी सन्त कवियों—ने भी बारहमासा लिखा है जिसमें विरहिणी के वियोग की बड़ी मार्मिक व्यंजना की गई है।

वर्ण्य विषय

बारहमासा प्रायः वर्षा ऋतु में गाया जाता है। परन्तु अन्य ऋतुओं में गाने के लिए उसका निषेध नहीं है। मन में जब भी भावों की घटा छा जाय तभी इन्हें गाया जा सकता है। भोजपुरी प्रदेश में बारहमासा गाने का बहुत प्रचार है। देहात के लोग इन गीतों को गाना और सुनना बहुत पसन्द करते हैं क्योंकि उन्हें एक

साथ ही बारहो महीने के दुख-सुख का दृश्य सामने दिखाई पड़ने लगता है। बारहमासा प्राय आषाढ मास के वर्णन से प्रारम्भ होता है और ज्येष्ठ मास के वर्णन से समाप्त होता है।

इन बारहमासो में विप्रलम्भ शृंगार का ही वर्णन प्रधान रूप से पाया जाता है। जिस प्रकार सस्कृत भाषा में प्रवास कथन में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार लोकगीतो में वियोग वर्णन में, यह छन्द बहुधा प्रयुक्त हुआ है। बहुत सभव है कि जायसी ने लोक साहित्य में प्रचलित बारहमासो की लोकप्रियता को देख कर नागमती के वियोग वर्णन के लिये इनका प्रयोग करना उचित समझा हो। कही तो इन गीतो में परदेस जाने के लिये पति को रोकने के लिये स्त्री की प्रार्थना सुनाई पड़ती है तो कही प्रोषितपतिका स्त्री अपनी सखी से विषम वियोग जन्य अपने दुखो का वर्णन करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

नीचे के इस गीत में कोई विरहिणी प्रत्येक मास में अपने दुखो को गिनाती हुई कहती है कि [१]

'प्रथम मास असाढ सखि हो, गरजि गरजि के सुनाई।
सामी के अइसन कठिन जियरा, मास असाढ नहि आय।
सावन रिमझिम बुनवा बरिसे, पियवा 'भीजेला' परदेस,
पिया पिया कहि रटेले कामिनि, जगल बोलेला मोर।'

विरहिणी को अपने उजडे हुए जीवन के साथ प्रकृति के सौन्दर्य में सामजस्य नही दीखता। उसे भादो की रात्रि भयावनी मालूम पड़ती है और माघ का महीना मतवाला दिखाई पडता है [२]

''भादो भवन सोहावन न लागै,
आसिन मोहि न सोहाई।
कातिक कन्त विदेस गइले हो,
समुझि समुझि पछताई।
अगहन आवन कहि गइले ऊधो,
पूस बितल भरि मास।
माघ मास जोबन के मातल,
कैसे धरब जिय आस।'

एक दूसरी वियोगिनी पति के विरह से उत्पन्न अपनी हार्दिक वेदना को अपनी सखी से प्रकट करती हुई कहती है कि [३]

'भादो मास भयावन ए सखि,
घन बहुत घहराई।
केकरा सरनवा जाई के बइठी,
जीव मोरे बहुत डेराई।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३२३। २. वही पृ० ३२६। ३. वही भाग २ पृ० २०२।

कातिक में सखि, कतिकी लागे,
सभे सखि गंगा नहाई।
हमरो ललन परदेस ए सखि।
केकरा सगे गगवा नहाई।'

मैथिली लोक-गीतों में वारहमासा का प्रधान स्थान है। इनका प्रचार भी मिथिला प्रान्त में बहुत है। 'राकेश' जी इन गीतों के विषय में लिखते हैं कि[1]

मैथिली लोक गीतों में बारहमासा

'वारहमासा' मैथिल लोक साहित्य की अनुभूत्यात्मक अभिव्यंजना है। इसके नैसर्गिक सौन्दर्य के सामने कीट्स के हल्के पैर गहरे नील रंग की बनफशा सी आँखें और मलाईदार वक्ष प्रदेश वाली नायिका भी फीकी पड जाती है। 'बारह मासा' की भाव धारा पुरानी शराब से चोखी और चित्र देवदास सा स्वच्छ है। पद में शृंगार की रोचक सरसता है। जिस तरह ग्रामीण वधू की लज्जाभ आँखों में काले रंग का काजल उसके लावण्य में निखार ला देता है, उसी तरह वसन्त की पुष्प श्री-सी रंगीन ग्रामीण कलाकारों की सूक्ष्म वृत्तियों ने 'वारहमासा' के मुख मरकत पर पन्ने का पानी चढ़ा दिया है।

"राकेश" जी की उपर्युक्त उक्ति मैथिली बारहमासा के गीतों पर अक्षरश: चरितार्थ होती है। वियोग विधुरा नायिका की यह मनोवेदना सुनिये[2]

"पूस लघु दिन राति बडि धिक
केहन सुन्दर जोग रे।
सुतलि रहितहु कंत संग सखि,
करम नहि मोर भोग रे।
कातिक सखि सब मुदित खेलय
श्याम चकवा खेल रे।
हम कतय बसि सेज पर सखि
नयन नीरस मेल रे।"

बँगला लोक-गीतों में भी बारहमासा की कुछ कमी नहीं है। बँगला में इसे 'बारमाशी' कहते हैं जो बारहमासा का ही रूपान्तर है। बँगला साहित्य में

बँगला में बारहमासा

पल्लीगान में और विजयगुप्त के 'मनसा मंगल' में बेहुला की बारहमासी का वर्णन पाया जाता है। भारत चन्द्र के 'अन्नदामंगल' में भी यह वारहमासा मिलता है।

भोजपुरी एवं मैथिली बारहमासा की भाँति बँगला 'बारमाशी' में भी स्त्री की विरहजन्य वेदना का वर्णन उपलब्ध होता है। इस 'बारमाशी' की यह विशेषता है कि इसमें प्रत्येक मास में होने वाले व्रतों का भी विवेचन है। यह 'बारमाशी' सुनिये जिसमें वियोगिनी के विरह ज्वाला की मार्मिक व्यंजना हुई है।[3]

---

१ मै० लो० गी० पृ० २६०। २ मैथिली लोक गीत पृ० २६२। ३ हारामणि मुहम्मद मन्सूरउद्दीन द्वारा सम्पादित।

"यौवन ज्वाला बड़ई ज्वाला सहिते ना पारि।
यौवन ज्वाला तेज्य करे, गलाय दिव दड़ि।
दुख यौवन प्रानेर बैरी।
झाड़ेर वाश काट रे सादु बान्दिग्रो वांगेला।
तुम मादु वाणिज्य गेले के खावे कमेला। टेक
हाटे जाम्रो बाजारे जाम्रो, गाछे पाका बेल।
तुम सादु वाणिज्य गेले, राखाले मारखे टेल।"

इसी प्रकार एक दूसरे गीत में फागुन मास की असहनीयता का सुन्दर वर्णन हुआ है।[१]

"ए मास गल रे सादु लइल मोर मने।
फागुन मासेर दुष्क सहन के मने।"

उपर्युक्त गीतों के देखने से ज्ञात होगा कि भोजपुरी, मैथिली और बँगला 'बारहमासा' में समान भाव धारा प्रवाहित हो रही है।

(ग) व्रत संबंधी गीत

स्त्रियाँ विभिन्न मासों में बहुरा, तीज, पिड़िया और गोधन आदि का व्रत करती हैं और उस दिन गीत गाती हैं। इन सभी प्रकार के गीतों का वर्णन विभिन्न मासों के क्रम से प्रस्तुत किया जाता है। यों तो माता देवी की पूजा किसी समय भी की जा सकती है और की भी जाती है परन्तु चैत मास की शुक्ल पक्ष की नवमी को 'माता देवी' की पूजा विशेष रूप से होती है। देहात में सात प्रकार की माता देवी मानी जाती हैं जैसे शीतला माता, गलसुआ माता, पनिसहा माता, बड़की माता ए छोटकी माता आदि। परन्तु इन सबमें शीतला माता ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी पूजा एक विशेष अवसर पर होती है अतः इनका यहाँ उल्लेख किया गया है। इसके बाद अन्य मासों में होने वाले व्रतों के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों की चर्चा की गई है। ये व्रत संबंधी गीत स्त्रियों द्वारा ही गाये जाते हैं।

१. शीतला माता के गीत

चेचक को शीतला माता के नाम से पुकारते हैं। यह कहना कठिन है कि ऐसी भयंकर बीमारी को जिसमें शारीरिक गर्मी की विशेष प्रधानता रहती है शीतला क्यों कहते हैं। डा० तारापुरवाला[२] ने लिखा है कि मनुष्य की यह प्रवृत्ति होती है कि वह नीच तथा भयंकर वस्तु को किसी सुन्दर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है। जैसे रसोई बनाने वाले ब्राह्मणों को महाराज (बहुत बड़ा राजा) कहते हैं। इसी प्रकार से इस भयंकर बीमारी को शीतला कहने लगे हों तो कुछ आश्चर्य नहीं। कुछ काल के अनन्तर इसी शीतलादेवी को अधिक महत्व देने के लिये 'मातादेवी' के नाम से पुकारने लगे। सारी बीमारियों में संभवतः चेचक या शीतला ही ऐसी बीमारी है जो देवी या देवता के रूप में पूजी

---

१. हारामणिः मुहम्मद मन्सूरउद्दीन द्वारा सम्पादित। २. एलिमेन्ट्स आफ दि साइन्स आफ लैंग्वेज, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

जाती है। इसका कारण सभवत इसकी भयकरता ही है। शीतला देवी का वाहन गधा है जो उनकी भयकरता एव वीभत्सता को सूचित करने के लिये पर्याप्त है।

भोजपुरी प्रदेश में जब किसी को शीतला की बीमारी होती है तो उसकी कुछ भी दवा नही की जाती। वह रोगी माता देवी की दया पर छोड दिया जाता है। उसकी बीमारी के अच्छा होने पर शीतला माता की प्रशसा में गीत गाये जाते है और उनसे प्रार्थना की जाती है कि वे रोगी को नीरोग कर दें। माली जाति विशेष देवी की भक्त और प्रिय पात्र समझी जाती है। अत रोगी के झाड-फूक के लिये माली या मालिन बुलायी जाती है। शीतला माता का निवासस्थान नीम का पेड समझा जाता है अत वह नीम की टहनी से रोगी को झाडती है जिससे शीतला माता प्रसन्न होकर रोगी को आरोग्य प्रदान करे। मालिन देवी की प्रिय सेविका है अत उसके द्वारा किया गया झाड-फूक नीरोग होने का साधन समझा जाता है। इसी कारण से इन गीतो में मालिन का बार-बार वर्णन आता है।

जब किसी पुरुष के ऊपर शीतला देवी का प्रकोप होता है तब उसके घर वालो को अनेक नियमो का पालन करना पडता है जैसे बाल का न कटाना, रोटी का न खाना, दाल में हल्दी न डालना, शाकभाजी को न छौंकना, जूता न पहिनना और किसी को प्रणाम न करना। ऐसा विश्वास है कि इन नियमो का पालन करने से देवी प्रसन्न होती है और रोगी शीघ्र आरोग्य लाभ कर लेता है। इसीलिये शीतला देवी की प्रार्थना करना और उपर्युक्त नियमो का पालन नितान्त आवश्यक समझा जाता है।

यद्यपि शीतला माता का वाहन गधा है परन्तु गीतो में उनके वाहन का उल्लेख घोडा किया गया है। सभवत पूजनीय एव पवित्र माता को ऐसा अपवित्र पशु वाहन रूप में देना भक्त को रुचिकर नही प्रतीत हुआ अत उसने घोडे का वर्णन किया है। शीतला माता को बगालिन देवी भी कहा गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि प्राचीन काल में बगाल शक्ति उपासना का केन्द्र था अत शक्ति की प्रतीक शीतला माता को बगालिन देवी कहना स्वाभाविक ही है। एक गीत लीजिये जिसमें देवी को मूर्तिमान् स्वरूप प्रदान किया गया है[१]—

"कवना वरने तोरा घोडवा ए सीतलि, कवना वरने असवार।
बागालिनि देवी हो, लीही ना पुजवा हमार।
लाल वरने मोरा घोडवा ए सेवका, सुरुज वरने असवार।
मइया रग रसिया रे हाथ लेले बसिया,
तीतील ले ले जोडिआई।।"

इस गीत से यह पता चलता है कि शीतला देवी को त्तित्तिर (तीतर) पसन्द है और यह उन्हें भेंट चढ़ाया जाता है।

शीतला माता के विषय में अन्य जो गीत उपलब्ध होते है उनमें भावुक भक्त की प्रगाढ भक्ति का भलीभाति परिचय मिलता है। इन गीतो में चेचक से पीडित बालक के लिये आरोग्य प्रदान की प्रार्थना की गई है। शीतला माता बडी दयालु है, थोडे से उपकार के

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ शीतला माता के गीत।

लिए भक्त के मनोरथ की सद्य पूर्ति कर देती है। वह नीम के पेड में हिंडोला लगाकर झूल रही है, इतने में उन्हें प्यास लगती है। रात का समय, गाव है दूर। गांव में आकर वे मालिन की लडकी को जगाती है और पीने के लिये पानी मागती है। मालिन की बेटी कहती है कि ऐ माता! मेरी गोद में लडका सो रहा है, मै कैसे उठू? शीतला के आग्रह करने पर वह उठती है और पानी पिलाती है। तब शीतला माता प्रसन्न होकर उसकी अभिलाषा की पूर्ति कर देती हैं। वही इतनी दयालु हैं कि भक्त की आर्त प्रार्थना को अस्वीकार नहीं कर सकती[1]

"निमिया की डाली मइया लावेली हिलोरवा
कि झुली झुली।
मइया गावेली गीत, कि झुली झुली॥
झुलत झुलत मइया का लगली पियसिया कि
चली भइली।
मलहोरिया अवास कि चली भइली॥
सुतलु बाडू कि जागलि ए मालिनि।
उठि के मोंहि के पनिया पिआऊ॥"

पानी लेकर प्रसन्न हुई माता आशीर्वाद देती है—

"धियवा जुडासु मालिन आपन ससुरवा,
पतोहिया तोर जुडासु नइहरवा।"

एक दूसरे गीत में सेविका की प्रार्थना और नैराश्य का भाव इतने सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है कि पढते ही बनता है। एक बाझ स्त्री अपनी 'डाली' लेकर माता शीतला के दरबार में उपस्थित होती है। सबकी पूजा की डाली माता ले लेती हैं परन्तु उस अभागिनी की डाली पडी रह जाती है। इस पर वन्ध्या स्त्री दु खित होकर जल भरने के लिये जंगल में जाने को तैयार हो जाती है और कहती है कि ऐ माता! आपकी पूजा के लिये पानी भरते-भरते मेरे सिर की चांद घिस गई और देवघर मन्दिर लीपते-लीपते मेरे हाथ घिस गये। तो भी ऐ माता! आपकी कृपा नहीं हुई, मेरे बांझिन होने का कलंक नहीं छूटा। इसपर माता आश्वासन देती है कि तुम्हें पुत्र देकर मैं तुम्हारे वन्ध्या के कलक को धो दूगी।[2]

"पनिया भरत ए मइया, चनिया मोर खिआइल हो।
आरे देवघर लिपत ए मइया, हथवा खिआइल हो।
आरे तबहू ना छूटेला ए मइया,
बझिनिया केरि नइया हो।"

शीतला माता पुत्र ही नहीं देती, प्रत्युत यदि वह बालक बीमार पड जाता है तो उसकी रक्षा भी करती हैं। चेचक के निकलने से जब बालक का शरीर जलने लगता है, बेहद पीडा होती है, तब उसकी दयामयी जननी भक्ति भावना में झूमते-झूमते शीतला माता से प्रार्थना करती है कि मैं बालक की माता हूँ। मैं आचर पसार कर भीख मांग रही हूँ। ऐ मेरी दुलारी मां! इस बालक को जीवन की भिक्षा दीजिये।[3]—

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २६९-७०। मिलाइये: हि० ग्रा० सा० पृ० २२७। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २७१-७२। ३. वही पृ० २६१-६२।

"पटुका पसारि भीखि मागेली बालकवा के माई
हमरा के बालकवा भीखि दी।
मोरी दुलारी हो मइया,
हमरा के बालकवा भीखि दी।
मोरी मानावा राखनि मइया,
हमरा के बालकवा भीखि दी।"

बालक की दर्द भरी आहों से व्याकुल होकर उसकी मा जब इन गीतों को मस्ती में झूम झूमकर गाती है तो सुनने वाला के शरीर में रोमाञ्च हो जाता है और जान पडता है कि नीम की डाल पर झूलने वाली शीतला मा, अपने आनन्दमय झूले से उतरकर, जल्दी-जल्दी बालक की सेज के पास आकर खडी हो जाती है और अपना वरद हस्त फैलाकर नीरोग होने का आशीर्वाद देती है।

शीतला माता का लाल फूल विशेष कर अड़हुल का फूल परम प्रिय है। परन्तु कहीं कहीं उनकी पूजा के लिये चम्पा का फूल चुनने का भी उल्लेख पाया जाता है।[1]

बंगला लोक गीतों में भी शीतला माता के गान पाये जाते हैं। उनमें भी भोजपुरी गीतों के समान ही भाव उपलब्ध होते हैं। राजस्थानी लोक गीतों में शीतला देवी को 'सेडल माता' कहते हैं। बालक के चेचक निकलने पर माता से प्रार्थना की जाती है और उनकी ही कृपा से बालक को आरोग्य लाभ होता है। एक राजस्थानी गीत में शीतला के निकलने पर दादी, फूफी आदि सबधियों के थर थर कॉंपने और मॉं, बाप के डरने का उल्लेख पाया जाता है। परन्तु 'सेडल माता' की दया से बालक चगा हो जाता है।[2]

"दादी भूवा थर थर कॉंपी,
डरप्या माम्रो अर बाप,
बला ल्यू सेडल माता ओ

जब तेरी माता मान लियो ओ,
सोयो सारी रात,
बला ल्यू सेडल माता ओ।

२ नागपंचमी के गीत

श्रावण शुक्ला पचमी को 'नाग पचमी' कहते हैं। इस दिन सर्प की पूजा होती है। इस दिन लडकियाँ प्रात काल उठकर मकान की भित्ति पर गोबर से एक रेखा खींचती हैं तथा घर के प्रधान दरवाजे पर सर्प की दो मूर्तियाँ गोबर की बनाती हैं। शहरों में जहाँ गोबर का अभाव रहता है कागज पर बने नाग के चित्र को स्त्रियाँ दरवाजे पर चिपका देती हैं। नाग की मूर्ति बनाने के पश्चात उसकी यथाविधि पूजा की जाती है। एक कटोरे में दूध और धान की खील लावा भरकर एकान्त स्थान में रख दिया जाता है। लोगों का

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २६७। २ पारीक राजस्थान के लोक गीत भाग १ पूर्वार्द्ध पृ० १८-१६।

विश्वास है कि इस दिन नागराज आते है और दूध पीते हैं । जो इस दिन नाग की पूजा करते हैं उन्हें सर्प काटने का भय नही रहता । यदि काटे भी तो उसका कुछ असर नही होता । इस तिथि को 'नाग पचैयां' भी कहते हैं जो 'नाग पंचमी' का अपभ्रंश है ।

नाग पूजा भारत में अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है । आज भी बंगाल में सर्पो की अधिष्ठात्री देवी 'मनसा' की पूजा का प्रचुर प्रचार है तथा 'मनसा' की उपासना पूजा और स्तुति में सैकड़ों ग्रन्थों की रचना की गई है । वहाँ नागपूजा की परम्परा मनसा सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है ।

नाग पंचमी के गीत अधिक नही उपलब्ध होते । इस दिन मदारी जीवित सर्पो को दिखलाते हैं और भिक्षा माँगते हैं । नीचे के गीत में यह वर्णन मिलता है कि जो सर्प को भिक्षा देगा उसे पुत्र पैदा होगा, वह सुखी होगा परन्तु जो भिक्षा नही देगा उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति नही हो सकती ।[1]

"जे मोरा नाग के भिखिया ना दीहैं
दुनो बेकति जरि जइहैं हो, मोरे नाग दुलरुआ ।
जे मोरा नाग के भीखि उठि दीहैं
दुनो बेकति सुखी रहिहैं हो मोरे नाग दुलरुआ ।"

३. बहुरा

बहुरा का व्रत भाद्र कृष्ण चतुर्थी को किया जाता है । उसे 'बहुला' भी कहते हैं । इस व्रत की कथा की नायिका बहुला है । इसीलिये इस व्रत का नाम बहुला या बहुरा पड गया है । इस दिन कन्यायें तथा युवतियां दिन भर व्रत रखती हैं । सायकाल को नदी या जलाशय में स्नान कर बहुला नामक गाय, उसके बछड़े तथा सिंह की बालू की प्रतिमा बनाकर फल-पुष्प आदि से उनकी विधिवत् पूजन करती हैं । तदनन्तर बहुला की कथा सुनती हैं । स्त्रियां जौ के सत्तू तथा गुड़ को शाम को खाती हैं । यह व्रत संन्तान का दाता और ऐश्वर्य को बढाने वाला है ।

किसी ब्राह्मण देवता के घर बहुला नामक गाय थी । एक दिन वह जंगल में चरने गयी जहाँ सिंह ने उसे पकड़ लिया । अपने प्यारे बछड़े को समझा-बुझाकर पुन. लौट आने का वादा करने पर सिंह ने बहुला को छोड़ दिया । वह अपने प्यारे पुत्र को संतोष देकर पुनः सिंह के पास लौट गई । उसकी दृढ प्रतिज्ञा एवं सत्य वचन से प्रसन्न होकर सिंह ने उसे मुक्त कर दिया । यही बहुला की संक्षेप में कथा है ।

इस कथा से पुत्र के प्रति माता के असीम प्रेम का पता चलता है । साथ ही सत्यवादिता के महत्व का दर्शन भी होता है ।

बहुरा स्त्रियो के लिये पुत्र का व्रत माना जाता है । अतः बहुरा के गीतों में माता का पुत्र के प्रति अकृत्रिम स्नेह और सत्य प्रतिज्ञा की महिमा का उल्लेख होना चाहिये । परन्तु बहुरा के जो गीत हमें प्राप्त हुए हैं उनमें यह बात नही पाई जाती । प्रस्तुत लेखक ने बहुरा के जिन गीतो का संकलन किया है उनमें सास और बहू का शाश्वतिक विरोध, पति पत्नी का प्रेम और सौन्दर्य के कारण किसी

वर्ण्य विषय

1. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ८५ ।

व्यक्ति के मोहित होने का वर्णन ही अधिक पाया जाता है। सास की दुष्टता का यह वर्णन देखिये :

"कोरी नदियवे सासु दहिया जमवली,
रचि एक अमरित लावेली जोरनवा ए हरी।
अपने त वेचें सासु गांव का गोयेंडवा,
हरि हरि हमरा के भेज जमुना पार ए हरी।"

रेशमी नामक किसी सुन्दरी के सौन्दर्य को देखकर किमी राजा के मुग्ध होने का यह वर्णन कितना मधुर है.[1]

"पहिरि ओहिरि रेसमी चलनी बजरिया,
परिगइले राजावा के दीठी गोरिया रेसमी।
किया गोरी रेसमी रे सांचवा के ढारल,
किया तोहरा के गढ़ेला सोनार गोरिया रेसमी।"

इसी प्रकार बहुरा के अन्य गीत भी शृंगार रस से ओतप्रोत हैं।

४. गोधन

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को 'गोधन' व्रत मनाया जाता है। भोजपुरी प्रदेश में इस दिन गोबर से एक मनुष्य की प्रतिकृति बनाकर उसकी छाती पर ईंटें रखी जाती हैं और उसी को स्त्रियां मूसल से कूटती हैं।

प्रथा

इस प्रक्रिया को 'गोधन कूटना' कहते हैं। गोधन कूटने के पूर्व कहानियाँ कही जाती हैं और स्त्रियाँ भटकटैया, रेंगनी और चना लेकर घर भर के समस्त व्यक्तियों को शाप देती हैं जिसे 'सरापना' कहते हैं। वे घर के प्रत्येक व्यक्ति का नाम लेकर कहती हैं कि 'अमुक को खांव, अमुक को चबांव"। घर के ही लोगों को नहीं बल्कि पास-पड़ोस के लोगों को भी वे इसी तरह 'खाती और चबाती' हैं। फिर अपनी जीभ को भटकटैया के कांटे से दागती हैं। इसके पश्चात् खील लावा और मिठाई आदि चीजें गोधन बाबा के स्थान पर भेजी जाती हैं। वहाँ 'गोधन' को कूटते समय स्त्रियाँ कहती हैं कि जिनको खाया चबाया है उन सबको 'हनुमन्ते' का बल हो। इस प्रकार ये सभी 'मृत' व्यक्तियों को जिलाती हैं। यह सब पूजन मध्याह्न के पूर्व ही हो जाता है। इसके बाद बहन अपने भाई को मिठाई खिलाने के लिये जाती है। सर्वप्रथम वह उसे चना खिलाती है, पुनः विविध प्रकार के मिष्ठान्न देती है। भाई प्रसन्न चित्त होकर उसे रुपया अथवा गहने देता है। इस प्रकार यह व्रत समाप्त हो जाता है।

"गोधन" शब्द 'गोवर्धन' का अपभ्रंश ज्ञात होता है। प्राचीन काल में गोवर्धन की पूजा का उल्लेख पाया जाता है। यही प्राचीन गोवर्धन पूजा इस विकृत 'गोधन' की पूजा के रूप में आज भी विद्यमान है। गोबर की बनी हुई मनुष्य की प्रतिमा वास्तव में इन्द्र की प्रतिकृति है। भगवान् कृष्ण ने इन्द्र के

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ५१।

गर्व को चूर्ण किया था। अत यह 'गोधन कूटने' की प्रथा इन्द्र के मद चूर्ण करने का प्रतीक है। परन्तु इस दिन स्त्रियां अपने प्रिय व्यक्तियों को मृत्यु का अभिशाप क्या देती हैं। इसका रहस्य सुलझाना एक विषम पहेली है।

इस व्रत का प्रधान उद्देश्य भाई और बहन में प्रेम भावना की वृद्धि है। इसी का वर्णन हम इन गीतो में भी पाते हैं। साथ ही गोधन के व्रत में जो विधि बरती जाती है जैसे प्रियजनों को अभिशाप देना, उसका भी उल्लेख पाया जाता है। भाई के लिए बहिन की यह शुभकामना कितनी सुन्दर है[1]

वर्ण्य विषय

"कवन भइया चलले अहेरिया,
कवन बहिन देली असीस हो ना।
जियसु रे मोर ए भइया,
मोरा मऊजी के बाढसु सिर सेन्दुर हो ना।

यह कितनी मंगलमयी कामना है। एवमस्तु।

५. पिड़िया

पिडिया का व्रत कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर अगहन शुक्ल प्रतिपदा पूरे एक मास तक रहता है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन जो गोधन की गोबर की मूर्ति बनाकर पूजा होती है, उसी गोबर में से थोडा सा अश लेकर कुवारी लडकियां पिडिया लगाती हैं। घर की किसी दीवाल पर गोबर की छोटी-छोटी सैकडो मनुष्य की आकृतियां बनाई जाती हैं। इसके साथ ही उस पर आटे के द्वारा चित्र कर्म भी किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया को 'पिडिया लगाना' कहते हैं। पिडिया शब्द 'पिंड' शब्द का अपभ्रश रूप है जिसमें लघु अर्थ में 'इया' प्रत्यय जोडा गया है। पिंड का अर्थ बडी गोली वस्तु है जैसे मृत्पिड। अत 'पिडिया' का अर्थ हुआ गोबर का छोटा गोला। दीवालो पर जो गोबर की आकृति बनाई जाती है वह गोली-गोली होती है इसी कारण इस व्रत का नाम पिडिया है।

व्युत्पत्ति

केवल कुवारी कन्यायें ही अपने प्रिय भाइयो की मगल कामना के लिये पिडिया का व्रत करती हैं। वे प्रति दिन प्रातःकाल पिडिया की कथा सुनती हैं और तभी किसी भोज्य पदार्थ को ग्रहण करती हैं। यदि किसी दिन किसी बालिका ने गलती से भोजन कर लिया तो दूसरे दिन उसे प्रायश्चित करना पडता है।

प्रथा

इस प्रकार यह क्रम पूरे एक मास तक चलता रहता है। अगहन शुक्ल प्रतिपदा को पिडिया की समाप्ति होती है। इस दिन लडकियाँ नये चावल और नये गुड से बनी हुई खीर रसिआव खाती हैं। इस समय वे अपने कान में रूई ठूस लेती हैं जिससे भोजन करते समय कोई शब्द सुनाई न पडे। यदि भोजन के समय कोई शब्द कानो में पड गया तो वे भोजन छोड देती हैं। इसीलिये

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ८४।

इस समय छोटे-छोटे बच्चे घर से बाहर निकाल दिये जाते हैं। भोजनोपरान्त दूसरे दिन गोधन की मूर्तियों को नष्ट कर उन्हें किसी नदी में बहा देते हैं। इस क्रिया को 'पिडिया दहवाना' कहते हैं। इस प्रकार यह एक मासिक व्रत समाप्त होता है।

वर्ण्य विषय इन गीतों में भाई बहन का अटूट प्रेम वर्णित है। एक गीत में बहिन अपने भाई से कहती है कि मैं लड्डू और चिउडा से पिडिया को पूजूंगी। ऐ भाई! यह पिडिया का व्रत मैं तुम्हारे ही उपलक्ष में कर रही हूँ।[1]

"लड्डुआ चिउरवा से हम पूजवि पिडियवा हो
तोहरी बयइया भइया पिडिया बरतिया हो।"

पिडिया के गीतों में कहीं-कहीं स्त्री पुरुषों के प्रेम का भी वर्णन पाया जाता है परन्तु इन गीतों में प्रधान पुट भाई और बहन के स्वाभाविक प्रेम का ही है। इन गीतों में कहीं-कहीं पिडिया के व्रत में किये जाने वाले अनेक विधि विधानों का भी उल्लेख पाया जाता है।[2]

६. छठी माता के गीत

छठी का व्रत कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को किया जाता है। यह व्रत केवल स्त्रियों का ही है परन्तु मिथिला में इसे स्त्री पुरुष दोनों करते हैं। इसे 'षष्ठी व्रत' भी कहते हैं। ठी शब्द

नाम करण इसी का अपभ्रंश रूप है। इसे 'डाला छठ' के नाम से भी पुकारते हैं। क्योंकि इस दिन सारी पूजा की सामग्री को एक बड़े डाला (बाँस की बनी हुई बड़ी टोकरी) में रखकर नदी या तालाब के किनारे ले जाते हैं और इस डाला को देवता को चढाते हैं। इस व्रत में सूर्य की पूजा प्रधान होने के कारण इसे 'सूर्य षष्ठी व्रत' भी कहते हैं। मिथिला में यह व्रत 'छठ' के नाम से प्रसिद्ध है।

उद्देश्य एवं विधि इस व्रत का प्रधान उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति और उसका र्घायु होना है। यह व्रत बडा ही कठिन होता है क्योंकि इसमें दो दिन तक उपवास करना पडता है। इस व्रत को करने वाली स्त्रियों को पचमी के ही दिन एक बार बिना नमक का भोजन करना पडता है। दूसरे दिन षष्ठी को स्त्रियाँ बिना जल के दिन भर उपवास करती हैं। इस दिन सन्ध्या को अर्घ्य दिया जाता है।

देहातों में किसी नदी या तालाब के किनारे वे लडके जिनकी मातायें और बहनें यह व्रत रखती हैं मिट्टी का एक छोटा सा चबूतरा एक दिन पहले जाकर बना देते हैं जिसे 'पाट बनाना' कहते हैं। जब यह चबूतरा सूख जाता है तब

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ६५। २ भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ६१।

उसे गोबर मिट्टी से लीप देते हैं। दूसरे दिन उनकी मातायें और बहिनें आकर इसी चबूतरे पर बैठती हैं और सूर्य नारायण को अर्घ्य देती हैं।

जब षष्ठी का व्रत समाप्त हो जाता है तब सप्तमी को सवेरे सूर्य को अर्घ्य प्रदान करने के लिये स्त्रियाँ किसी जलाशय या नदी के किनारे जाती हैं और उन्हीं चबूतरों पर बैठती हैं जिनको उनके लड़कों अथवा संबंधियों ने पहले तैयार किया था वे एक बड़े 'डाला' में सूर्य को अर्घ्य देने के लिये केला, नीबू, नारंगी, ईख और अनेक प्रकार के पक्वान्न साथ लेकर जाती हैं। इस घाट पर मालिन फूल और फल एवं ग्वालिन दूध लाती है जिसका उपयोग सूर्य नारायण को अर्घ्य प्रदान करने में किया जाता है। इस दिन जो पकवान पूजा के निमित्त पकाया जाता है उसे 'अधरवटा' कहते हैं। इसमें सूर्य के चक्र का चिह्न अंकित रहता है। इससे ज्ञात होता है कि प्रधानतया यह व्रत सूर्य का ही है।

इस व्रत में स्त्रियाँ पंचमी और षष्ठी इन ोनों दि ों को उपवास रखती हैं तथा सप्तमी को सवेरे बहुत पहिले से उठकर सूर्य नारायण को अर्घ्य देने की तैयारी में संलग्न रहती हैं ? कितनी बन्ध्या स्त्रियाँ सूर्योदय से घंटों पहले कमर भर जल में खड़े-खड़े सूर्य के उदय की प्रतीक्षा करती हैं। वे सूर्य के शीघ्र उदय न होने के कारण व्याकुल हो जाती हैं और उनसे बड़ी चतुरता से प्रार्थना करती हैं कि ऐ भगवन्! शीघ्र उदय लीजिये। छठी माता के गीतों में ऐसे अनेक गीत हैं जिनमें इस प्रकार की प्रार्थना की गई है :[1]

"दुधवा, धिउवा लेके गवालिनि बिटिया ठाढ़।
फलावा, फूलवा लेले मालिनि बिटिया ठाढ।
धूपवा, जलवा रे लेके बाभानवा रे ठाढ।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दियाउ।"

कहीं-कहीं वह स्त्री यह प्रार्थना करती है कि ऐ भगवन्! खड़े-खड़े मेरे पैर दुखने लगे और कमर में पीड़ा होने लगी है। अतः कृपाकर अब तो शीघ्र उदय लीजिये :

"खड़े-खड़े गोड़वा दुखाइलि ए अदितमल, डांड़वा पिराइल।
हाली देनी ऊग ए अदितमल, अरघ दिआउ।"

छठी माता का व्रत विशेष कर के सन्तान प्राप्ति की कामना से किया जाता है। कोई बन्ध्या स्त्री षष्ठी माता से पु की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करती हुई कहती है कि ऐ माता! मेरा जीवन निरर्थक सा प्रतीत होता है। मेरी सास 'दुकारती' है, ननद गालियों की बौछार करती है और मेरा 'ब्याहता पति' डंडों से मेरी खबर लेता है। मेरा दोष केवल यही है कि मेरी गोद पुत्र के बिना सूनी है। पुत्रहीन स्त्री की दशा का यह वर्णन कितना मार्मिक है।[2]

"सासू मारे हुदुका ए दीनानाथ ननदिया मारे गारी।
ए संठो लागल पुरुखवा ए दीनानाथ,
हमरा के डडा से मा ी।

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २५२। २. वही पृ० २५७।

आरे सबके डलियवा ए दीनानाथ लिहली उठाई।
थाये बाझि के उलियवा ए दीनानाथ, ठहरें तवाई।"

पुत्र और पति को कुशल पूर्वक रखने के लिये भी छठी माता से इन गीतों में प्रार्थना की गई है। कोई स्त्री कहती है कि ऐ माता! मैं आपके मन्दिर की गली को झाड़ू लगाऊँगी। मेरे पुत्र एवं पति को सकुशल रखिये :

"सोरिया रउरी बहारवि, पुतवा भीख दी,
सोरिया रउरी बहारवि, पुरुखवा भीख दी।"

मिथिला में षष्ठी व्रत

षष्ठी व्रत के विषय में 'राकेश' जी लिखते हैं कि "छठ के गीत" पूर्णतः धार्मिक गीत हैं। मिथिला के धार्मिक मनोभाव, धर्म के नाम पर प्रचलित वहम, पारिवारिक विचार और मान्यताएँ, घरेलू निष्ठा और आत्मसंयम में 'छठ' के प्रिय विषय हैं। किन्तु धर्म के रंगीन चोले में बन्द होते हुए भी छठ की गीत शैली अपनी सहज वर्णांकित अभिव्यक्ति के कारण अपनी परिधि में प्रायः पूर्ण है।[1]" इन गीतों में हार्दिक श्रद्धा, निष्ठा भरे उल्लास और आत्म लक्षी उच्चता भरी पड़ी है। मिथिला के इन गीतों में भी पुत्र प्राप्ति की कामना की गई है :[2]

"खोंइछा के लेल अछना गेरुलि सुध नीर।
चलि भेल कओन देइ पुत मागे भीख।

बन्ध्या की करुण कथा इन पंक्तियों में पाई गई है :

"सब के उलियवा, दीनानाथ देलि अगुआय।
बाझन उलियवा दीनानाथ देलि पछुआय।"

घ. जाति संबंधी गीत

१. अहीरों के गीत

भोजपुरी लोक-गीतों में बिरहा अपना विशेष स्थान रखता है। यह बड़ा ही लोकप्रिय गीत है। अहीर लोगों का तो यह जातीय गान (नेशनल साग) ही है। उमग भरा अहीर जवान जब ललकारते हुए बिरहा गाता है तो श्रोताओं के हृदय में एक विचित्र उत्साह पैदा हो जाता है। खेत में घास काटते हुये गायों की चरवाही के समय, विवाह करने के लिये बारात में गाते हुये, एवं लाठी लेकर जाते हुये सर्वत्र अहीर लोग बिरहा को गा-गा अपनी थकावट को मिटाते रहते हैं। मंगलमय अवसरों पर जिस प्रकार उच्च जातियों में नाच, गान होता है उसी प्रकार अहीर लोगों में बिरहा गाया जाता है। विवाह के अवसर पर बिरहा गाने के लिये अहीरों में प्रतिद्वन्द्विता होती है। वे दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। एक के बाद दूसरा दल बिरहा गाता है और जो बिरहा गाने में असमर्थता प्रकट करता है वह दल पराजित समझा जाता है। सच तो यह है कि अहीरों की योग्यता बिरहा गाने से ही समझी जाती है।

---

१. राकेशः मैथिली लोक गीत पृ० ३१६। २. वही. पृ० ३२१।

विरहो के विषय में एक भोजपुरी कवि कहता है[1]

"नाहीं बिरहा कर खेती भइया,
नाहीं बिरहा फरे डाल।
बिरहा बसेले हिरिदया में ए रामा,
जब उमगेले तब गाव।"

इन कवित्व पूर्ण विरहो के उद्‌गम की कहानी कितने सुन्दर रूप में ऊपर के पद्य में कही गई है। डा० ग्रियर्सन ने इन विरहो के विषय में लिखा है कि यद्यपि इन विरहो का विशेष साहित्यिक मूल्य नही है परन्तु जनता के भीतरी विचारो और आकाक्षाओ के प्रतीक होने के कारण इनका महत्व बहुत अधिक है। वास्तव में विरहा एक जगली फूल के समान है।[2]

जिस प्रकार हिन्दी में बरवै और दोहा छन्द अल्पकाय होने पर भी अपनी चुस्त पदावली और सरस भावधारा से श्रोताओ को रस से आप्लावित कर देते है उसी प्रकार विरहा लोकगीतो में सबसे छोटा छन्द है। परन्तु इसकी पदावली इतनी गुगठित और भाव इतने सुन्दर होते है कि लोगो के हृदय पर इसका असर हुए बिना नहीं रहता। बिहारी के दोहो के समान थोडे शब्दो में इतना अधिक भाव भरना और सुनने वाला के हृदय पर सीधे चोट करना इन विरहा का काम है। एक उदाहरण लीजिये

रसवा के भेजलो भवरवा के सगिया,
रसवा ले अइले हा थोर।
अतना ही रसवा में केकरा के बटवो,
सगरी नगरी हित मोर।

कोई नायिका कहती है कि ऐ सखी! मैने भवरा को रस लेने के लिये भेजा। लेकिन वह थोडा ही रस लाया। मेरे पास रस इतना थोडा है कि मैं किसे-किसे इस रस में से बाटू क्योंकि गाँव के रहने वाले सभी मेरे मित्र हैं। इस विरहे में भँवरा और रस शब्द में श्लेष है जिससे इस विरहे में सरसता आ गई है।

कोई स्त्री अपने विरहावस्था का वर्णन करती हुई कहती है कि "पी पी" रटते हुये मेरी देह पीली पड गई है परन्तु गाँव के लोग कहते हैं कि इसे पाडु रोग हो गया है। वे मेरे हृदय के मर्म को नही जानते हैं। मेरा गवना अभी नही हुआ है अत मेरी यह दुर्दशा है।[3]

"पिया पिया कहत पियर भइली देहिया,
लोगवा कहेला पिडरोग।

---

१ डा० उपाध्याय, भो० ग्रा०गी० भाग १ पृ० ४६। २ अई कान्ट से देट दे पजेस मच लिटरेरी एक्सेलेन्स आन दि कान्ट्रेरी सम आफ देम आर दि वियरेस्ट डोगेरेल। बट दे आर वेल्युएबल ऐज बीग वन आफ दि फ्यू ट्रस्टवर्दी एक्सपोनेन्ट्स ह्विच वी हैव आफ दि इनर थाट्स ऐन्ड डीजायर्स आफ दि पीपुल। दि विरहा इज एसेन्शियली ए वाइल्ड फ्लावर। ज० रा० ए० सो० भाग १८ [१८८६] पृ० २०। ३ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४६।

गउवा के लोगवा मरमियो ना जानेले
भइले गवना ना मोर।"

इन विरहों में विरह की दशा के वर्णन के अतिरिक्त सुन्दर अनुभवपूर्ण उपदेश भी भरे पड़े हैं। कोई बूढ़ी स्त्री नवयुवतियों को उपदेश देती हुई कहती है कि तुम लोग अपने यौवन को सभालकर रखो क्योंकि दुष्ट लोग 'हुडार' (भेडिया) की भाँति तुम्हारे सतीत्व पर आक्रमण करने के लिये छिपे बैठे हैं।[1]

'पिसना के परिकल मुसरिया तुमरिया,
दुधवा के परिकल बिलार।
आपन आपन जोवनवा सभारिहे ए बिटियवा,
रहरी में लागल बा हुडार।"

काशी के बाबू रामकृष्ण वर्मा उपनाम बलवीर को ये बिरहे इतने प्रिय थे कि इन्होंने इन्ही की रीति पर अपने 'विरहा नायिका भेद' में साहित्यिक बिरहों की रचना की है।[2]

बिरहे विरह के गीत हैं। विरह वर्णन के माध्यम होने के कारण ही इन गीतों को 'विरहा' कहते हैं। इनमें विप्रलम्भ शृगार का सुन्दर चित्रण किया गया है। पति के वियोग में विरह से तड़पने वाली नायिका, प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा करने वाली स्त्री, प्राणवल्लभ के परदेश चले जाने के कारण शरीर का प्रसाधन न करने वाली पत्नी की दशाओं का मार्मिक चित्रण इन विरहा में हुआ है। जहाँ इन विरहा में हृदय की कोमल भावनाओं का वर्णन है वहाँ वीरता एव साहस के कार्यों का भी उल्लेख है।

विरहा दो प्रकार का होता है एक छोटा और दूसरा बडा। छोटा विरहा 'चारकड़िया' के नाम से प्रसिद्ध है। अर्थात् जिसमें केवल चार चरण या पद हो वह 'चारकडिया' विरहा है। यही आज कल अत्यन्त लोकप्रिय एव प्रसिद्ध है। लम्बा विरहा गाथा रूप में होता है जिसमें रामायण और महाभारत की कथा गायी जाती है। वह गीत नहीं बल्कि गाथा है।

विरहा के गाने का एक विशेष प्रकार है। अहीर लोग कान में अगुली डालकर बड़े जोरों से इसे गाते हैं। वे बड़े जोरों से अलाप लेते हैं और पूरा जोर लगाकर शब्दों का उच्चारण करते हैं। अन्त में 'बाजरवोई' भी कहते हैं जो निरर्थक पदावली है। इस प्रकार वे जन मन का अनुरजन करते हैं।[3]

२. चमारों का गीत :

चमारों के जातीय गीत बड़े ही मनोरजक होते हैं। विवाह आदि अवसरों पर वे अपने सगे सबधियों का झुड लेकर अपने यजमान किसानों के घर दूल्हे की न्योछावर लेने जाते हैं। उस समय उनकी जाति के कोई दो छोकड़े लड़के जिनमें एक पुरुष बना रहता है और दूसरा स्त्री, और जो कई रग के कपड़े

१ डा० उपाध्याय भो० ग्राम्य गीत भाग १ पृ० ४७ [पृ० भाग]। २ लहरी बुकडिपो काशी से प्रकाशित। ३ विरहा के विशेष वर्णन के लिए देखिये डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४७-४८ [भूमिका]।

पहने रहते हैं नाचते और गाते चलते हैं। एक तीसरा पुरुष जो 'करिगा' कहलाता है हंसी मजाक करता है। इसका काम विदूषक का है। वह जब कोई दिल्लगी की बात कहता है तब उसे नाच मण्डली का प्रधान व्यक्ति चमडे के तल्ले से पीठ पर 'ठोकता' या पीटता है। चमारों का मुख्य बाजा 'डफरा' और 'पिपिहिरी' है। 'डफरा एक छोटे नगाडे की आकृति का होता है जो लकडी से धीरे धीरे पीट कर हाथ से बजाया जाता है परन्तु 'पिपिहिरी' मुह से बजाई जाती है। चमारों का नाच सार्वजनिक होता है और प्राय प्रत्येक श्रेणी के लोग इसके देखने के शौकीन होते हैं। करिगा गांव के जालिम जमीदार, कजूस महाजन आदि की खरी आलोचना करता है। निम्नलिखित गीत में छुआछूत का ढोंग करने वाले पडितों पर कितना गहरा व्यग किया गया है।[1]

"पडित मुनि बड ज्ञानी, जल छानि के पीवत पानी।
वही मूत का बना जनेवा, उस कर पाग बनाई।
धोती पहिन के रोटी खावे पाग में छून ओलिआई।"

३. कहारों के गीत

कहार डोली या पालकी ढोने का काम करते हैं। दूल्हा को दुलहिन के घर और दुलहिन को दूल्हा के घर पहुँचाने का काम भी कहार करते हैं। डोली, खडखडिया पालकी नालकी या पीनस उठाकर जब ये चलते हैं तब शृगार रस के रसीले गीतों से अपनी सवारी को रास्ते भर गुदगुदाते चलते हैं। पति के घर जाने वाली दुलहिन और विवाह के लिये जाते हुये दूल्हे को शृगार रस के गीत कितने मधुर लगते हैं इसे अनुभवी ही जान सकते हैं। कहारों के गीतों को 'कहरुवा' भी कहते हैं। कहार लोग वैवाहिक उत्सवों पर नाचते हैं। नाचते समय 'हुडुक' नाम का बाजा बजाते हैं।

नीचे के गीत में बूढे कहार जो भारभूत है क्योंकि न तो वह पालकी ढो सकता है और न मजूरी कर सकता है का वर्णन किया गया है[2]

"बुढवा कहरवा के आई बुढइया
तौ फेंके तलौनें में जाल।
बुढऊ न पावैं जो एको मछरिया,
तो मीजे के गाल।"
"बुढवा मोरे जिय के जरनिया टिकुली देखे जरि जाय।
हे देवी दाई तोके रोट चढौबे, जो ई बुढवा मरि जाय।"

सचमुच बूढे का खाना और नाव का डूब जाना बराबर है। एक दूसरे गीत में बाल विवाह का सुन्दर वर्णन किया गया है। स्त्री कहती है कि मेरा पति इतना बच्चा है कि अपनी टोपी बेंच कर 'लाई और गट्टा' खा डालता है।[3]

---

१ विशेष के लिये देखिये त्रिपाठी ह० ग्रा० सा पृ० २१६ २२६। २ त्रिपाठी हमारा ग्राम साहित्य पृ० १६२। ३ वही पृ० ११२। दु० श० सिं०—लोक गीत पृ० २४६ २५२।

गउवा के लोगवा मरमियो ना जानेले
भइलें गवना ना मोर।"

इन बिरहों में विरह की दशा के वर्णन के अतिरिक्त सुन्दर अनुभवपूर्ण उपदेश भी भरे पड़े हैं। कोई बूढ़ी स्त्री नवयुवतियों को उपदेश देती हुई कहती है कि तुम लोग अपने यौवन को सभालकर रखो क्योंकि दुष्ट लोग 'हुडार' (भेड़िया) की भांति तुम्हारे सतीत्व पर आक्रमण करने के लिये छिपे बैठे हैं[१]

"पिसना के परिकल मुसरिया तुसरिया,
दूधवा के परिकल बिलार।
आपन आपन जोबनवा सभारिहे ए बिटियवा,
रहरी में लागल बा हुडार।"

काशी के बाबू रामकृष्ण वर्मा उपनाम बलवीर को ये बिरहे इतने प्रिय थे कि इन्होंने इन्हीं की रीति पर अपने 'बिरहा नायिका भेद' में साहित्यिक बिरहों की रचना की है।[२]

बिरहे विरह के गीत हैं। विरह वर्णन के माध्यम होने के कारण ही इन गीतों को 'बिरहा' कहते हैं। इनमें विप्रलम्भ शृगार का सुन्दर चित्रण किया गया है। पति के वियोग में विरह से तड़पने वाली नायिका, प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा करने वाली स्त्री, प्राणवल्लभ के परदेश चले जाने के कारण शरीर का प्रसाधन न करने वाली पत्नी की दशाओं का मार्मिक चित्रण इन बिरहों में हुआ है। जहाँ इन बिरहों में हृदय की कोमल भावनाओं का वर्णन है वहाँ वीरता एव साहस के कार्यों का भी उल्लेख है।

बिरहा दो प्रकार का होता है एक छोटा और दूसरा बडा। छोटा बिरहा 'चारकड़िया' के नाम से प्रसिद्ध है। अर्थात् जिसमें केवल चार चरण या पद हो वह 'चारकड़िया' बिरहा है। यही आज कल अत्यन्त लोकप्रिय एव प्रसिद्ध है। लम्बा बिरहा गाथा रूप में होता है जिसमें रामायण और महाभारत की कथा गायी जाती है। वह गीत नहीं बल्कि गाथा है।

बिरहा के गाने का एक विशेष प्रकार है। अहीर लोग कान में अगुली डालकर बड़े जोरो से इसे गाते हैं। वे बड़े जोरो से अलाप लेते हैं और पूरा जोर लगाकर शब्दो का उच्चारण करते हैं। अन्त में 'बाजरवोई' भी कहते हैं जो निरर्थक पदावली है। इस प्रकार वे जन मन का अनुरजन करते हैं।[३]

२. चमारों का गीत :

चमारो के जातीय गीत बड़े ही मनोरजक होते हैं। विवाह आदि अवसरो पर वे अपने सगे सबधियों का झुड लेकर अपने यजमान किसानो के घर दूल्हे की न्योछावर लेने जाते हैं। उस समय उनकी जाति के कोई दो छोकड़े लड़के जिनमें एक पुरुष बना रहता है और दूसरा स्त्री, और जो कई रग के कपड़े

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्राम्य गीत भाग १ पृ० ४७ [पृ० भाग]। २ लहरी बुकडिपो काशी से प्रकाशित। ३ बिरहा के विशेष वर्णन के लिए देखिये - डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४७-४८ [भूमिका]।

पहने रहते हैं नाचते और गाते चलते हैं। एक तीसरा पुरुष जो 'करिंगा' कहलाता है, हंसी मजाक करता है। इसका काम विदूषक का है। यह जब कोई दिल्लगी की बात कहता है तब उसे नाच मंडली का प्रधान व्यक्ति चमड़े के तल्ले से पीठ पर 'ठोकता' या पीटता है। चमारों का मुख्य बाजा 'डफरा' और 'पिपिहिरी' है। 'डफरा' एक छोटे नगाड़े की आकृति का होता है जो लकड़ी से धीरे धीरे पीट कर हाथ से बजाया जाता है परन्तु 'पिपिहिरी' मुंह से बजाई जाती है। चमारों का नाच सार्वजनिक होता है और प्रायः प्रत्येक श्रेणी के लोग इसके देखने के शौकीन होते हैं। करिंगा गांव के जालिम जमींदार, कंजूस महाजन आदि की खरी आलोचना करता है। निम्नलिखित गीत में छुआछूत का ढोंग करने वाले पंडितों पर कितना गहरा व्यंग किया गया है।[१]

"पंडित मुनि बड़ ज्ञानी, जल छानि के पीवत पानी।
वही सून का बना जनेवा, उस कर पाग बनाई।
धोती पहिन के रोटी खावे पाग में छूत अंसिआई।"

३. कहारों के गीत

कहार डोली या पालकी ढोने का काम करते हैं। दूल्हा को दुलहिन के घर और दुलहिन को दूल्हा के घर पहुँचाने का काम भी कहार करते हैं। डोली, खड़खड़िया, पालकी, नालकी या पीनस उठाकर जब ये चलते हैं तब शृंगार रस के रसीले गीतों से अपनी सवारी को रास्ते भर गुदगुदाते चलते हैं। पति के घर जाने वाली दुलहिन और विवाह के लिये जाते हुये दूल्हे को शृंगार रस के गीत कितने मधुर लगते हैं, इसे अनुभवी ही जान सकते हैं। कहारों के गीतों को 'कहँरवा' भी कहते हैं। कहार लोग वैवाहिक उत्सवों पर नाचते हैं। नाचते समय 'हुड़ुक' नाम का बाजा बजाते हैं।

नीचे के गीत में बूढ़े कहार जो भारभूत हैं क्योंकि न तो वह पालकी ढो सकता है और न मजूरी कर सकता है का वर्णन किया गया है :[२]

"बुढ़वा कंहरवा के आई बुढ़इया
तौ फेंके तलौनें में जाल।
बुढ़ऊ न पावैं जो एको मछरिया,
तो मीजें.........के गाल।"
"बुढ़वा मोरे जिय के जरनिया, टिकुली देखे जरि जाय।
हे देवी दाई तोके रोट चढ़ौबे, जो ई बुढ़वा मरि जाय।"

सचमुच बूढ़े का खाना और नाव का डूब जाना बराबर है। एक दूसरे गीत में बाल विवाह का सुन्दर वर्णन किया गया है। स्त्री कहती है कि मेरा पति इतना बच्चा है कि अपनी टोपी बेंच कर 'लाई और गट्टा' खा डालता है।[३]

१. विशेष के लिये देखिये : त्रिपाठी : हि० ग्रा० सा पृ० २१९-२२६। २. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य पृ० १६१। ३. वही पृ० ११२। द्व० श० सिं०—लोक गीत पृ० २४६-२५२।

"जहाँ देखे लाई गट्टा तहाँ मचलाई राम।
टोपि बदलि दुलहा खाई लाई गट्टा राम।"

४. तेलियों के गीत

कोल्हू तेली का परम साधन है। वह इसी के द्वारा अपनी जीविका का उपार्जन करता है। देहात में ऊख पेरने के लिये पहले पत्थर के कोल्हू चलते थे। पेरने वाले रात के तीसरे पहर में उठकर बैलों को जोत देते थे और उनके पीछे लगे हुए लम्बे काठ पर बैठकर जाड़े की लम्बी और ठंढी रात के सन्नाटे में बड़े ही मर्मभेदी गीत गाते थे। वे गीत प्रेम, विरह और करुण रस के अद्‌भुत इतिहास हैं। आजकल लोहे के कोल्हू चल पड़े हैं। अब हाँकने वाला को बैलों के पीछे नहीं चलना पड़ता है। इससे अब रात या दिन के किसी समय मे कोल्हू चलाया जा सकता है। इसलिये रात के वे गीत भी अब समाप्त हो चले हैं।

ईख के अतिरिक्त तेल भी कोल्हू में पेरा जाता है। तेली कोल्हू के पास में जुड़े हुये काठ पर बैठकर बैल को हाँकता है और वह धीरे-धीरे अपनी परिधि पर घूमता रहता है। बैल परिश्रम का प्रतीक है जिसकी अभिव्यक्ति 'कोल्हू का बैल' या 'तेली का नाटा' मुहावरे में पाई जाती है। तेल पेरने के लिये समय समय पर, तौलकर सरसों, बरे अथवा तिल को कोल्हू में डालते जाते हैं जिसे 'घानी' कहते हैं।

तेलियों के गीतों में जिन्हें कोल्हू के गीत भी कहते हैं शृंगार रस की मात्रा प्रचुर परिमाण में पाई जाती है। कोल्हू में तेल पेरने वाले तेली को भला अपने काम से कहाँ फ़ुरसत जो वह जाकर अपनी प्रिया के साथ प्रेम सलाप करे। अपने पति की 'खूसटता' पर क्रुद्ध होकर उसकी स्त्री कहती है कि कोल्हू का 'ढेकुआ' ही टूटकर उसके सिर पर गिर जाय जिससे उसके पति का सिर फूट जाय, फिर हलदी लगाने के लिये तो वह घर अवश्य ही आयेगा।[१]

"टुटते ढेकुवा फुटते कपरवा,
हरदी ओडरे घर अउते हो लालनवा।
कोलहु तोरा टूटे जारि तोरि फाटे,
रस बहि लागे ा दिरवो हो लालनवा।"

क्यों न हो। जब प्रियतम बार-बार कहने पर भी कहना नहीं मानता और कुरमिन के शृंगार कर 'कोल्हुआर' में जाने पर भी वह पतियों में छिप जाता है तब उसकी दूसरी दवा ही क्या है। संस्कृत में एक शुष्क वैदिक का भी ऐसा ही वर्णन किया गया है जो रति विलास से पूरे उदासीन दीख पड़ते हैं

सामगायनरत मे, नोच्छिष्टमधर कुरु।
उत्कंठितासि चेद्‌भद्रे, वाम कर्णं दशस्व मे।

तेलिन 'घानी' लगाती है और तेली तेल पेरता जाता है। इस तैलिक कर्म का उल्लेख भी एक गीत में हुआ है।[२]

---

१ त्रिपाठी ग्राम गीत पृ० ४५७। २ वही पृ० ४४७।

कौनी की जुनिया तेलिन घनिया अरे लगावे।
अरे कौनी जुनिया ना।
कोइलरि सबद सुनावै कि कौनी जुनिया ना।
आधी की रतिया तेलिनि घनिया लगावै,
कि पिछली रतिया ना।
कोइलरि शबद सुनावै कि पिछली रतिया ना।

इसी प्रकार तेलियो के गीतो में शृगार रस लबालब भरा हुआ है ?[1]

५. गड़ेरियों के गीत

गडेरियो के भी जातीय गीत होते हैं। अपने विवाह आदि उत्सवो में वे अपने ही गीत गाते बजाते हैं। उनका काम दिन भर तो भेड चराना होता है परन्तु रात को वे अपने भेडो को किसी व्यक्ति के खेत मे 'हिरा' देते हैं। रात को जब भेड की चरवाही से उन्हें फुरसत मिलती है तब वो एक साथ बैठकर अपने गीत गाते हैं। उनके एक मुख्य गीत का नाम 'सिउरिया' है और दूसरे का 'पढोकीमार'।[2] भोजपुरी में इनके गानो का सग्रह अभी बहुत कम हुआ है। आशा है कोई उत्साही युवक इस काम को अपने हाथ में लेगा।

६. धोबियों के गीत

अहीर, कहार, गोंड और तेलियो की तरह धोबी भी अपने जातीय उत्सवो में नाचते, गाते हैं। इनके गीत भी प्राय अहीरो के विरहे जैसे होते हैं। केवल गाने के स्वर में थोडा अन्तर होता है। इनके भावो में स्वभावत धोबी कुटुम्ब की सजीवता रहती है। धोबी लोग 'हुडुक' नामक बाजा बजाते हैं। कई धोबी एक साथ मिलकर खडे-खडे गीत गाते हैं और उनके बीच में खास ढग की पोशाक पहने हुए धोबी का एक लडका नाचता है। यह तो प्रसिद्ध है कि धोबी कपडे नहीं खरीदता। अतएव सभी धोबी नाचगान के समय साफ सुथरे कपडे पहने रहते हैं। धोबियो के गीतों में इनके पेशे का भी उल्लेख यत्र-तत्र पाया जाता है।

धोबी और धोबिन रोज प्रातःकाल घाट पर जाते हैं और शाम तक वही कपड़ा धोते रहते हैं। धोबी अपनी थकावट को मिटाने के लिये तम्बाकू भी पिया करता है। धोबी अपनी पत्नी को स्मरण दिलाता हुआ कहता है कि घाट पर चलना है अत खाने के लिये मोटी लिट्टी लगाना, साथ में एक टिकिया तम्बाकू और थोडी सी आग भी मत भूलना।[3]

"मोटी मोटी लिटिया लगैहै धोबिनिया
कि बिहने चले का बा घाट।
तीनहि चीजें मत भूलिहै धोबिनिया
कि टिकिया, तमाकू, थोडा आगि।

---

१. त्रिपाठी हमारा ग्राम साहित्य पृ० १६८-१६६। २. वही. पृ० २००। ३ त्रिपाठी हमारा ग्राम साहित्य पृ० २१६-२१७।

७. दुसाधों के गीत :

हिन्दुओं की निम्न श्रेणी में परिगणित जातियाँ विशेष कर चमार और दुसाध एक विशेष प्रकार का गीत गाती है जिसे 'पचरा' कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

पचरा — उपर्युक्त जातियों में किसी व्यक्ति को जब कोई प्रेत बाधा सताती है अथवा वह किसी रोग से बीमार पड़ जाता है तो गाँव का बूढ़ा ओझा उसकी दवा के लिये बुलाया जाता है। 'ओझा' घर के एक भाग को गोबर से लिपवाता है धूप देता है, अड़हुल के फूल से देवी की पूजा करता है, आरती करता है और फिर पचरा गाना आरम्भ करता है। वह अपनी मस्ती में आकर 'पचरा' गाता जाता है और देवी के आवाहन का अभिनय भी करता जाता है। रोगी बड़े ध्यान से उसे सुनता है। पचरा के गाने से धीरे-धीरे रोग अच्छा होने लगता है और रोगी कुछ ही दिनों में चंगा हो जाता है। इस जाति के लोग रोगों की चिकित्सा नहीं करते बल्कि उनका विश्वास है कि 'पचरा' गाने से सारे आधिभौतिक तथा आधिदैविक दुःख दूर हो जाते हैं। ऐसा कहा जाता है जहाँ पचरा गाया जाता है वहाँ देवी जी का आवास रहता है अतः पचरा गाने वाले इसे सभी काल में सभी जगह नहीं गाते। यह पवित्र स्थान में उचित अवसर पर ही गाया जाता है। भक्त देवी से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि आपकी पूजा के लिये पूरी सामग्री मैंने इकट्ठा कर ली है[1]

"आरे आम के पलउआ ए देवी,
गइया केरा घीव हो।
आरे परास के लकड़िया ए देवी,
करीले आहुतिया हो।"

८. गोंड़ों के गीत :

संयुक्त प्रान्त के पूर्वी जिलों में विशेषकर गाजीपुर और बलिया में गोंड नामक एक जाति रहती है जिनका काम सेवा वृत्ति है। इस जाति का पुरुष वर्ग पानी भरता है, लकड़ी चीरता है, मजूरी करता है। इनकी स्त्रियाँ भाड़ झोंकने का काम करती हैं। ये गोंड मध्यप्रान्त की गोंड जाति से भिन्न हैं। इस जाति के गीत सुन्दर होते हैं। ये लोग विशेष अवसरों पर एक विशेष प्रकार का नाच भी नाचते हैं जो 'गोंडऊ नाच' कहा जाता है। यह नाच 'फोक डान्स' का उत्कृष्ट नमूना है। यह बड़ा ही जनप्रिय होता है और इसे देखने के लिये दूर-दूर गाँवों से लोग आते हैं। इस समय एक विशेष बाजे को जिसे हुडुका कहते हैं बजाते हुये ये लोग गीत गाते हैं। इनके अभिनय को "हरबोलाई" कहते हैं। गोंडों के गीतों में कुछ अश्लीलता की मात्रा भी पायी जाती है। परन्तु सभी गीतों की यह दशा नहीं है। स्त्री पुरुष के रति कलह का एक रमणीय दृश्य देखिये। स्त्री कहती है कि ऐ पति! पहिले तुमने मुझे गाली दी और मैंने जब कुछ उत्तर दिया तो तुम रुष्ट होकर साधू बन गये। यह तुमने अच्छा नहीं किया।[2]

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० पृ० ३५६। २. वही पृ० ३४६।

"सूतल रहली पिया सगे सेजिया
वाते वाते वढि गइले रेरिया हो।
पिया वाउर कइल।
पहिले त पिया तुहु मोहि परिग्रवल
मोहि वोलिया त भइल फकीरवा हो,
पिया वाउर कइल।"

एक गीत में गोंडो के पानी भरने के काम की ओर सकेत किया गया है। स्त्री पति से कहती है कि तुम घर पर ही रहो और 'बखरी' में पानी भरा करो :

"नरियर के टीववा तूरेला दूनो हिकवा,
वर तू घर ही रहित ना।
आरे भरित तुहु वखरी के पनिया,
वर तू घर ही रहित ना।"

इन गीतों में हास्यरस की व्यंजना भी कहीं-कहीं हुई है जो इनका स्वाभाविक गुण है।[1]

"खुर खुर खुर खुर टाटी बोले,
हम जानि पियवा मोर।
पियवा के मेसे मेसे अइले,
कागाना ले गइले चोर।
झुलनी मन के ना वनी।"

इन गीतों में भक्ति भावना भी पाई जाती है। एक गीत में भक्त सहायता के लिये भगवान् से प्रार्थना कर रहा है। इस प्रकार गोंडो के गीत सुन्दर हैं।

ङ. क्रिया गीत

क्रिया गीत अथवा काम करते समय गाये जाने वाले गीतों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। अब उन्हीं गीतों का उदाहरण सहित वर्णन उपस्थित किया जाता है। ये गीत जतसार, रोपनी एवं सोहनी हैं। जिनकी चर्चा इसी क्रम से की जायगी।

जंतसार

चक्की पीसते समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'जात के गीत' अथवा 'जतसार' कहते हैं। 'जतसार' शब्द 'यन्त्रशाला' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ है वह शाला या घर जहाँ आटा का यन्त्र रखा गया हो। यही 'यन्त्रशाला' शब्द विगडते विगडते जतसार के रूप में विद्यमान है।

नामकरण

चक्की, चूल्हा और चरखा देहातो में पहले घर-घर होते थे। चक्की में आटा पीस लिया, चूल्हे पर रोटियाँ पका ली। यदि इन कामों से अवकाश मिला तो चरखे पर कपड़ो के लिए सूत तैयार कर लिया। बस इन तीन चकारों की

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३५० ।

बदौलत देहात के लोग बहुत ही सुखी और स्वतंत्र थे। स्त्रियाँ चक्की पीसती थीं। इससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहता था और उनके बच्चे हृष्टपुष्ट होते थे। चक्की पीसते समय वे जो गीत गाती थीं, उससे जीवन की धारा शुद्ध होती रहती थी। समय का सदुपयोग होता था, परिश्रम करने की आदत बनी रहती थी और पैसे की बचत भी होती थी। परन्तु अब देहातों में भी आटा पीसने का काम, चक्की के स्थान पर, मशीनें लेती जा रही हैं। ये मशीनें हमारे आटे को पीसने के साथ ही साथ 'जात के गीतों' को भी पीसती चली जा रही हैं। ये गीत हमारे घरों में सच्चरित्रता के रक्षक, स्त्रियों के सदाचार के पोषक और शुद्धता के स्रोत हैं।

जात पीसने का समय एवं ढंग

जात पीसने का समय रात का तीसरा पहर है। स्त्रिया शाम को ही पीसने के लिये अनाज रख लेती हैं और पहर छ घडी रात रहे उठकर वे जात लेकर बैठ जाती हैं। जात के दोनों ओर आमने सामने बैठ कर प्राय स्त्रियाँ आटा पीसती हैं। कभी-कभी अकेले भी जात पीसा जाता है परन्तु दो स्त्रियों के साथ रहने से पीसने में अधिक आसानी होती है। जब ननद, भावज या दो बहुएँ आटा पीसती हैं तब जाता चलाते समय एक दूसरे के पैर पर पैर रख कर बैठती हैं परन्तु यदि सासू और वधू पीसने बैठती हैं तो वधू सासू के पैर पर अपना पैर नहीं रख सकती। यहाँ भी सासू की श्रेष्ठता का ध्यान रख कर विनय का पालन किया जाता है।

जात के गीत आटा पीसने की थकावट को दूर करते हैं। साथ ही आटा पीसने वालियों के मन को प्रेम, करुणा और उदारता से भिगो कर कुटुम्बियों के असहनीय बर्ताव के कारण पैदा हुए विक्षोभ को निकालते भी रहते हैं। जात के गीतों के एक-एक शब्द स्त्री सदाचार की नींव की एक-एक ईंट हैं। जाडा की ठढी रात के सन्नाटे में, उषाकाल के मन्द मन्द समीर में, जतसार दूर से सुनने वालों को बडे मधुर जान पडते हैं। देहात में किसी भी गाँव में निकल जाइये, रात के पिछले पहर में, अनेक घ ो से जात की घुरघुर की ध्वनि के साथ एक एक कडी पर दम लेकर गाया जाता हुआ जात का गीत सुनने को मिलेगा।

वर्ण्य विषय

जैसे 'झूमर' शृंगार रस का कलश है वैसे ही जतसार में करुण रस की सरिता सिमटी पडी दिखाई पडती है। करुण रस की बडी मार्मिक अभिव्यंजना इन जात के गीतों में हुई है। इन गीतों में कहीं तो प्रिय विहीना दु खिनी विधवा का करुण क्रन्दन सुनने को मिलता है तो कहीं वन्ध्या की मनोवेदना लक्षित होती है। कहीं विरहिणी की व्याकुलता का वर्णन है तो कहीं सासू के द्वारा वधू की नारकीय यन्त्रणा का चित्रण। कहने का आशय यह है कि करुण रस के जितने भी मार्मिक प्रसग हो सकते हैं प्राय इन सभी की अवतारणा इन गीतों में हुई है।

पति के परदेश चले जाने पर किसी विरह विधुरा नायिका की निम्नलिखित उक्ति कितनी मर्मबेधिनी है। उसकी सास उससे कहती है कि तुम्हारा पति तो परदेस चला गया है अब तो किसकी कमाई खायोगी। सास घर से निकाल देती

है। दुखिया स्त्री झाड़ू और टोकरी लेकर वन में चली जाती है तथा भाड़ झोंकने के लिए पत्ती बुहारती है। परदेस से लौटा हुआ पति मार्ग में अपनी दुखिया स्त्री को न पहचान कर पूछता है कि तुम किसकी स्त्री हो। वह उत्तर देती है कि मैं वह अभागिन स्त्री हूँ जिसका पति परदेस में चला गया है[1]

"ए राम हरि मोरे गइले बिदेसवा,
सकल दुखवा देइ गइले हो राम।
ए सासु, ननदिया बिरही बोलेली,
केकर कमइया खइबू हो राम।

ए राम काखे जाति लिहली दउरिया
त हाथे के बढनिया लिहली हो राम।
ए राम धई लिहली गोडिनिया के भेसिया,
त पतई बहारे लगली हो राम।
ए राम बारहो बरिस पर अइले
त बगिया में ठाढ़ भइले हो राम।
ए राम कवना अभागवा के तिरिया,
त बगिया बहारेलू हो राम।
ए राम हरि मोरे गइले बिदेसवा,
त बगिया बहारेली हो राम।

इस उपर्युक्त गीत में करुण रस का सागर हिलोरे मार रहा है। निर्धनता के कारण वियोगिनी का भाड़ झोंकने का वर्णन कितना मार्मिक है। इस गीत के प्रत्येक अक्षर से करुण रस चुआ पड़ता है।

किसी विधवा की मनोवेदना का यह नीचे लिखा वर्णन कितना मार्मिक है। वह अपने शरीर को अलंकृत देखकर कहती है कि आज मेरे माग में सिन्दूर के बिना यह सारा शृंगार व्यर्थ है। 'तबहू ना देहिया सोहावनि एकली सेन्दुरवा बिनु ए राम' इस एक पंक्ति में कितनी वेदना, और कितना क्षोभ भरा पड़ा है। ससुराल में पचीसो आदमी हैं परन्तु पति के बिना ससुराल उसे तनिक भी सुहावनी नहीं मालूम पड़ती।[2]

"राम बगिया में पाच पेड़ आमवा,
पचीस गो महुअवा बाटे हो राम।
राम तबहू ना बगिया गमक देले,
एकली बेइलिया बिनु हो राम।
राम सेर भरि सोनवा पहिरलो,
पसेरी भरि चनिया हो राम।

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ६६। २. वही भाग २ पृ० ११५-११६।

राम तबहू ना देहिया सोहावनि,
एकली सेनुरवा बिनु हो राम।
राम सासु घरे पाच गो देवरवा,
पचीस गो भसुरवा बाटे हो राम।
राम तबहू ना ससुरा सोहावन
एकली कन्हैया बिनु हो राम।"

इसी प्रकार जात के गीतों में करुण रस की सरिता अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती दिखाई पडती है। ग्रामीण कवियो ने इन्ही जतसारो को लोक हृदय की वेदना को व्यक्त करने का माध्यम बनाया है।

रोपनी के गीत

बिहार के शाहाबाद जिले में जहाँ धान की पैदावार अधिक होती है रोपनी के गीतो का बहुत प्रचलन है। पहिले धान का बीज एक खेत में घना बो दिया जाता है। जब वह कुछ बडा हो जाता है तब शुभ मुहूर्त पर एक दिन उसे उखाड कर दूसरे खेतो में थोडी-थोडी दूरी पर गाडते अथवा रोपते हैं। इस समय जो गीत गाये जाते हैं, वे 'रोपनी के गीत' कहे जाते हैं। ये गीत प्राय मुसहरो की स्त्रियाँ गाती हैं क्योंकि रोपनी का काम प्राय वे ही किया करती हैं। इन गीतो का सग्रह लेखक ने बडी कठिनाई से किया है।[१]

खेत में पानी लगा है। कभी-कभी ऊपर से जल वष्टि भी हो रही है। नीचे भी जल और ऊपर भी जल। ऐसे समय में मुसहरिनें धान के हरे पौधो को लेकर खेत में रोपती जाती हैं और अपने सुन्दर गीतो से जलसिक्त श्रोताओं को रस सिक्त बनाती जाती हैं। सोहनी और रोपनी का काम घर से बाहर खेतो में करना पडता है। सभवत इसीलिये इन गीतो में पुरुषो के द्वारा स्त्रियो को छेडने का प्रसग अनेक बार आया है। पति वियोग विधुरा कोई स्त्री उदासीन खडी है। एक पथिक आकर उससे अनुचित प्रस्ताव करता है। तब वह स्त्री उत्तर देती है कि यदि मेरा पति आ गया तो इस उद्दडता का उचित पुरस्कार तुम्हें दिलाऊँगी।[२]

"कबही त लवटीहैं मोर बनिजरवा
पनही से तोहि के पिटइबो हो राम।"

गृहस्थी का कष्ट भी इन गीतो में प्रतिबिम्बित दीखता है। कोई स्त्री ससुराल के कष्टों को अपने पति से निवेदित करती हुई कहती है कि जब से मैं यहाँ आई तब से काम करते-करते मेरे शरीर का चर्म सूख गया और सुख सपना हो गया। आज तक मैंने रुपये का मुह नही देखा। अब मैं मायके जाकर उपले बनाकर जीवन बिताऊँगी।[३]

"जहिया से अइली पिया तहरी महिलिया में
राति दिन कइली टहलिया रे पियवा।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ८, वक्तव्य। २. वही. पृ० २६४। ३. वही भाग २ पृ० ३०१।

घर के करत काम सूखल देही के चाम,
सुखवा सापानावा होई गइले रे पियवा।
हरवा जोतत तोर गोड़वा पिरइले,
रुपया के मुंह नाही देखनी रे पियवा।
चिपरी के पाथि पाथि दिन हम काटवि,
अब नाहिं आइबि तोर दुअरिया रे पियवा।"

इस उदाहरण में पत्नी के हृदय की आह गीत बन कर निकली है। इससे देहात के एक वर्ग की करुण आर्थिक दशा का भी पता चलता है।

स्त्रियों का अटूट एवं शुद्ध पति प्रेम तो बहुत देखने को मिलता है परन्तु पुरुषों का शुद्ध स्त्री प्रेम दुर्लभ पदार्थ है। परन्तु रोपनी के एक गीत में यह भाव देखने को मिलता है। कोई पति परदेश गया है। इतने में उसकी मां से रुष्ट होकर उसकी स्त्री मायके चली जाती है। परदेस से लौटने पर जब वह घर में अपनी स्त्री को नही पाता तो उसको खोजने के लिये मनीहार का रूप धरकर निकल पड़ता है और अन्त में अपनी स्त्री को पा लेता है।[1]

"देहु ना आमा हो ढेबुआ रे पइया
चुरिया बहाने धनि देखवि हो राम।
खोरियन खोरियन फिरेला चुरिहरवा।
चुरिया रे पहिरवे गहकिनिया हो राम।"

सोहनी के गीत

आषाढ़ में बोये हुए खेत जब अच्छी तरह से जम जाते हैं तब सावन में उनमें उगी हुई घास और दूसरे व्यर्थ पौधों को खुरपी या हँसियों से काट कर फेंक दिया जाता है। इस कार्य को 'सोहनी' कहते हैं। अतः इस समय जो गीत गाये जाते हैं वे 'सोहनी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन गीतों को 'निराई' या 'निरवाही' के भी गीत कहते हैं। यह काम प्रायः चमार की स्त्रियां किया करती हैं। जिस किसान को अपने खेत में 'सोहनी' करानी होती है वह दस, पन्द्रह चमारियों को बुला लाता है। चमारिनें अपनी खुरपी से खेत सोहती जाती हैं और साथ ही थकावट को दूर करने के लिये कलकंठ से गीत भी गाती जाती हैं। सोहनी के इन गीतों को लिखने के लिये लेखक को चमारियों का 'सत्संग' करना पड़ा है और अनेक बार खेतों की मेड़ पर बैठकर इस मौलिक साहित्य को लिपिबद्ध भी करने का अवसर मिला है।

सोहनी के गीतों में यह विशेषता है कि वे किसी संक्षिप्त कथानक को लेकर लिखे गये हैं। इसीलिये ये आकार में अन्य गीतों से बड़े हैं। कहीं इनमें मुगलों के अत्याचार का वर्णन है तो कहीं उनसे लड़कर किसी अबला का उद्धार करने का। कहीं बधू का सास के द्वारा सताये जाने का विवरण है तो कहीं पति का पत्नी के आचरण पर विश्वास न कर उसकी अग्नि परीक्षा करने का उल्लेख है।

---

१. डा० उपाध्याय, भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २६५।

किसी-किसी गीत में सौतिया डाह की भी झाकी हमें देखने को मिलती है। कोई पति अपनी नयी व्याही स्त्री को लेकर सो रहा है। तब उसकी दूसरी स्त्री सौतिया डाह के कारण कहती है कि अभी दरवाजा खोलो। नहीं तो 'टागे' से इस दरवाजा को काट दूँगी। पति और सौत के बालों को पकड़कर खींचूँगी और सौत की छाती पर सड़क बनवा कर आने जाने का रास्ता बनाऊँगी।[1]

"ओहि टागावा पर सान चढइबों
ओहि से जजीरिया कटइबो ए बालम।
एक हाथे धरबो मे सामी के जुलुफिया,
एक हाथे सवती के झोंटवा ए बालम।
सवती के छतिया पर सडक कुटइबों
लाख आवेला लाख जाला ए बालम।"

चन्दा, कुसुमा और भगवती देवी के सुप्रसिद्ध गीत इन्हीं निरवाही के गीतों के अन्तर्गत हैं। इन्हीं गीतों में लचिया और जयसिंह के गीत भी विद्यमान हैं। जयसिंह राजा ने लचिया नामक स्त्री से अनुचित प्रस्ताव किया। इस पर रोष से क्रोधित होकर लचिया ने कटारी निकाल कर जयसिंह की जान ले ली और इस प्रकार उसने अपने सतीत्व की रक्षा की।[2]

"छोड़ु, छोड़ु जयसिंह हमरो अंचरवा हो ना।
जयसिंह तोहरा से सुन्दर मोर रजवा हो ना।
अइसन बोली जनि बोलु रानी लचिया हो ना।
लाची चलि चलु हमरी सेजरिया हो ना।
अतना वचन लाची सुनही ना पवली हो ना।
लाची काढ़ि कटरिया जिउवा लिहली हो ना।"

इस प्रकार सोहनी के गीतों में दिव्य सतीत्व का उल्लेख पाया जाता है। विरहिणी का वर्णन भी इनमें कहीं-कहीं उपलब्ध होता है। रूठ कर परदेस गये हुमे भाई को खोजने का वर्णन एक गीत में बड़ा सुन्दर हुआ है।[3] सोहनी के गीतों की लय बड़ी मनमोहक होती है जिसे सुनकर श्रोता का मन बरबस आकर्षित हो जाता है।

(च) विविध गीत

कुछ ऐसे भी गीत हैं जो उपर्युक्त वर्गीकरण के अन्तर्गत नहीं आते। इन गीतों में झूमर, अलचारी, पूरबी, निर्गुन, पाराती और भजन मुख्य हैं। रोते हुये बालकों को प्रसन्न करने के लिये एवं उन्हें पालने पर सुलाते समय स्त्रियाँ गीत गाती हैं जिन्हें 'पालने के गीत' कहते हैं। छोटे-छोटे बालक विभिन्न खेलों, गुल्ली डंडा, कबड्डी को खेलते समय पद्यात्मक वाक्यों को गाते रहते हैं। ऐसे गीतों को 'खेल के गीत' कहते हैं। इन सभी गीतों का समावेश यहाँ किया गया है।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २६८। २. त्रिपाठीः ग्राम गीत पृ० ३६१।
३. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २८३।

झूमर

झूमर उन गीतो को कहते है जो विभिन्न अवसरो पर गाये जाते हैं। कभी तो ये यज्ञोपवीत के अवसर पर सुनाई पडते हैं तो कभी विवाह के समय पर गाये जाते हैं। इसीलिये इसको जनेऊ और विवाह के गीतो से पृथक कर दिया गया है। किसी भी विशेष सस्कार के अवसर पर उस सस्कार सबधी गीतो के गाने के पश्चात झूमर गाया जा सकता है और गाया भी जाता है। इसीलिये झूमर के गाने के लिये कोई विशेष निर्दिष्ट समय या अवसर नही है बल्कि ये प्रत्येक अवसर पर गेय हैं।

स्त्रियाँ एक साथ मिलकर झूम-झूम कर इस गीत को गाती हैं इसीलिये इसका नाम 'झूमर' पड गया है। जिन्होने इस गीत को गाये जाते हुए देखा है वे सहज ही समझ सकते हैं कि झूमने से झूमर का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। झूमर मस्ती का गाना है। अत इसे गाते समय विशेष कर झुड में स्त्रियो का झूमना स्वाभाविक ही है।

झूमर के गीत सभोग श्रृगार से लबालब भरे रहते हैं। इनके प्रत्येक पद में कूट कूट कर रस भरा है। अत प्रत्येक झूमर को रस कलश कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। भाव जैसा सुन्दर एव सरस है भाषा भी वैसी ही चलती है। इसके साथ ही गाने की गति सोने में सुगन्ध की उक्ति चरितार्थ करती है। झूमर द्रुत गति से गाया जाता है। शब्दो का उच्चारण शीघ्रता से किया जाता है जिससे गाने की विधि में एकरसता सदा बनी रहती है। टेक पद की पुनरावृत्ति प्राय. प्रत्येक पक्ति के बाद की जाती है। उदाहरण के लिये नीचे का गीत लीजिये

"ना जानो यार झुलनी मोर काहा गिरा।
पनिया भरन जाऊँ राजा ना जानो।
यहाँ गिरा ना जानो वहाँ गिरा ना जानो
ना जानो यार झुलनी मोर काहा गिरा।"

इसके गाने की दूसरी विशेषता यह है कि प्रथम दो शब्दो तथा अन्तिम दो शब्दो का उच्चारण शीघ्रतर किया जाता है। जैसे—

"बेर बेर बरजा यार निबुआ जनि लगाव रे।"

इसमें रेखाकित शब्दो का उच्चारण अधिक शीघ्रता से किया जायगा। इसकी तीसरी विशेषता यह है कि यह गीत आकार में छोटा होता है अर्थात् ६, ८ पक्तियों से अधिक बडा नही होता। इसके छन्दविधान और भाव व्यजना में भी गहरा सबध है।

'झूमर' के गीतो में कही तो प्रेमी पति के द्वारा परदेश से लाई गई नाक की झुलनी का तालाब में गिरने का वर्णन पाया जाता है तो कही प्रेमी और प्रेमिका के अटूट प्रेम का चित्रण उपलब्ध होता है। कही पति पत्नी के प्रेम कलह का वर्णन है तो कही रूपगर्विता नायिका की गर्वोक्ति।

प्रेम करने के कारण बदनाम किसी नायिका की उक्ति कितनी सुन्दर है और उसकी प्रम की निष्ठा कितनी दृढ

"तोरे कारन बदनाम रे सवलिया।
जैसे कचहरी में कलम चलतु है,
वैसे चलबि तोरा साथ रे सवलिया।
जैसे कुवन में घडा डुवतु है
वैसे डुवबि तोरे साथ रे सवलिया।"

किसी नायिका के नाक की झुलनी कही गिर गई है उसके लिये उसके खोजने की परेशानी में बडा आनन्द छिपा पडा है। नीचे के गीत में यह भाव है

"ना जानो यार झुलनी मोर काहा गिरा।

रोटिया पोवन जाऊँ, राजा ना जानो।
यहाँ गिरा ना जानो, वहाँ गिरा ना जानो।
ना जानो यार वेलने में लिपट गया।
सेजिया सोवन जाऊँ, राजा ना जानो।
यहाँ गिरा ना जानो, वहाँ गिरा ना जानो।
ना जानो यार सेजिया में लिपट गया।"

मैथिली झूमर

भोजपुरी और मैथिली झूमर में समानता पाई जाती है। भावो की समता के साथ ही पदावली भी प्राय एक ही प्रकार की मिलती है। बालक पति वाली किसी युवती स्त्री की यह उक्ति कितनी मधुर एव मार्मिक है।[१]

"नइहरवा में सुनहत रहति पिया छइ लरिकवा,
त दिन मा चारि ना।
पिया के नइहर में बोलयबो। टेक
वेचबइ ये गोल बरदा किन बइ धेनुगइया
त दुधवा पिलाय ना
पिया के करबो जवनमा
त दुधवा पिलाय ना।"

अलचारी

अलचारी शब्द लाचारी का अपभ्रंश है। लाचारी का अर्थ विवशता या आजिजी है। उर्दू कविता में इस विषय पर अनेक गजलें लिखी गई हैं जब किसी स्त्री का पति उसका कहना नही मानता अथवा वह परदेस चला जाता है तो लाचार अवस्था में जो गीत वह गाती है उन्हें अलचारी कहते हैं। वास्तव में पहिले भोजपुरी में 'अलचारी' गीतो का प्रयोग केवल विवशता के भावो को प्रदर्शन के लिये ही होता था परन्तु अब समय के परिवर्तन के साथ इसका प्रयोग अन्य भावो को व्यक्त करने के लिये भी होने लगा है।

कोई स्त्री अपने हठीले पति को बार-बार मना करती है कि तुम व्यापार

१. मैथिली लोक गीत पृ० २२२।

करने के लिये उत्तर दिशा में मत जावो क्योंकि वहाँ की बंगालिन स्त्रियाँ तुम्हें अपने जाल में फँसा लेंगी।[1]

बारहि बार तोहि बरजो मोर सामी,
से उत्तरी बनिजिया मति जइह मोरे सामी।
उत्तरी बनिजिया के उत्तरी बंगालिन,
से रहिहैं करेजवा लगाइ मोर सामी।"

पूरबी

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर में और बिहार के पश्चिमी जिलों आरा, छपरा में इन गीतों का प्रचुर प्रचार है। भोजपुरी प्रान्त के पूर्वी जिलों में गाये जाने के कारण ही इन गीतों का नाम 'पूरबी' पड गया है। आजकल पूरबी गीतों का इतना अधिक प्रचार है कि उपर्युक्त जिलों में कहीं भी चले जाइये इसकी मधुर ध्वनि आपके कानों में अवश्य सुनाई पडेगी। पुत्र जन्म में, तिलक में, बारात में, अथवा अन्य किसी मंगलमय उत्सव पर इसका गाना अनिवार्य सा हो गया है। इधर कुछ ही वर्षों में 'पूर्वी गीतों का जितना प्रचार हुआ है उतना 'बिदेसिया' को छोडकर अन्य किसी गीत का नही।

'पूरबी' या 'पूर्वी' गीतो के एक रचयिता प० महेन्द्र मिश्र हो गये हैं जो बिहार प्रान्त के छपरा जिले के ग्राम मिश्र वलिया पोस्ट जलालपुर के निवासी हैं। अभी हाल ही में आपका देहावसान हुआ है। आप एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। आपने हजारों 'पूर्वी' गीतो की रचना की है। आपकी कविताओं, गीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें 'महेन्द्र मंगल' प्रसिद्ध है।[2] यद्यपि आपने अपने जीवन में धन बहुत पैदा किया परन्तु आपकी कीर्ति इन 'पूर्वी' गीतों के कारण ही अमर रहेगी। आपने अपने रचित गीतों में अपने नाम की छाप लगा दी है। इसीलिए प्रत्येक पूर्वी गीत में 'कहेले महेन्दर मिसिर' यह अवश्य पाया जाता है। उदाहरण:

"कहत 'महेन्दर मिसिर' सुनु प्यारी सखिया
से तेरह बरिस बीति गइले हो राम।"

पूर्वी गीतों की सबसे बडी विशेषता यह है कि इनके गाने की लय बडी ही मधुर है। जिन्होंने इन गीतों को किसी वारवनिता के द्वारा गाये जाते हुए सुना है वे ही इसकी मधुरता का अनुमान कर सकते हैं। ये गाने द्रुतगति से गाये जाते हैं। गाते समय ऐसा मालूम होता है कि एक शब्द दूसरे शब्द को धक्का देकर आगे बढा रहा हो।

विशेषता

---

१. दुर्गा शंकर सिंह लोकगीत पृ० ३४४-३४५। २. दुर्गा शंकर सिंह० भो० लो० गी० पृ० ४१५।

अन्य लोक गीतों की भांति 'पूर्वी' गीतों में भी विप्रलम्भ शृंगार का ही वर्णन अधिक पाया जाता है। परदेस में गये हुए पति के पास, उसकी विरह विधुरा नायिका के द्वारा, संदेश भेजने का नीचे लिखा वर्णन कितना हृदय द्रावक है।[1]

वर्ण्य विषय

"पिया मोरे गइले रामा पुरुबी बनिजिया,
कि देके गइले ना, एक सुगना खिलौना।
कि देके गइले ना।

उडल उडल सुगा, गइले कलकतवा
कि जाइके बइठे ना, ओहि सामी जी के पगिया
कि जाइके बइठे ना।
पगरी उतारि सामी जाघ बइठवले,
कि कहु सुगा ना, मोरे घर के कुसलतिया
कि कहु सुगा ना।
माई तोर कूटनी, बहिनि तोर पिसनी,
कि जइया कइली ना, तोर दुलरी दोकनिया
कि जइया कइली ना।"

पति के वियोग में धनाभाव के कारण स्त्री की कैसी दुर्दशा हो गई है उसका उपर्युक्त वर्णन बड़ा ही मर्मभेदी है।

परदेसी पति के आने की प्रतीक्षा करने वाली तथा अटारी पर चढ कर उसके मार्ग को देखने वाली स्त्री का यह चित्रण कितना सुन्दर उतरा है। ग्रामीण कवि ने क्या ही सुन्दर चित्र खींचा है।[2]

को था ऊपर चढि, झाकेली बारि धनिया,
कि आही अइले हा, भलमरजी मोर बलमुआ
कि ना हो अइले हा।"

विरह की मार्मिक व्यंजना के साथ ही संयोग शृंगार का भी उल्लेख इन गीतों में पाया जाता है। परदेस से लौटे हुए पति के द्वारा लाई गई टिकुली को लगाकर शृंगार करनेवाली रूप गर्विता नायिका की यह उक्ति कितनी सरस है।[3]

"सइयाँ मोरे गइले रामा, पुरुबी बनिजिया,
से लेइ हो गइले ना, रस बेंदुली टिकुलिया
से लेइ हो अइले ना।
टिकुली में साटि रामा, बइठली अटरिया
से चमके लगले ना, मोर बेंदुली टिकुलिया।
से चमके लगले ना।"

इनमें कहीं पर मायके जाने की उत्कृष्ट अभिलाषा दीख पड़ती है तो कहीं राधाकृष्ण की रासलीला का वर्णन पाया जाता है।[4]

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३८८। २ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० पृ० ३८६। ३. वही पृ० ३६४ ६५। ४ वही पृ० ३६७।

'पूर्वी' गीतों के भाव और भाषा दोनों में माधुर्य है। इनके गाने में एक अपूर्व सरसता है। इसीलिए ये गीत ग्रामीण जनता के हृदय में अनायास ही घर कर लेते हैं। भोजपुरी प्रदेश में इन गीतों का प्रचार बहुत अधिक है।

निर्गुन

भक्ति भावना से ओत प्रोत गीतों को 'निर्गुन' कहते हैं। यद्यपि भजन और निर्गुन का वर्ण्य विषय एक ही है परन्तु इन दोनों की गाने की लय में बहुत अन्तर है। निर्गुन की एक विशेष 'लय' होती है जिसमें वह गाया जाता है। इस लय में बड़ी हृदय ग्राहकता होती है। यह सुनने में बड़ा मधुर होता है और श्रोताओं को आनन्द सागर में डुबो देता है। निर्गुन की दूसरी विशेषता यह है कि इसकी दूसरी पंक्ति प्रायः 'आहो रामा' से प्रारम्भ होती है और इसकी 'हो रामा' में समाप्ति पायी जाती है।

"पाँच पचीस कोस बसेले महाजन हो,
आहो रामा कवना अवगुनवे हरि मोरे सेले हो राम।"

उपर्युक्त गीत की दूसरी पंक्ति 'हो रामा' से प्रारम्भ हुई है और अन्त में भी 'हो रामा' आया है। यही क्रम पूरे गीत में चलता है। कहीं कहीं 'आहो रामा' के स्थान पर 'कि आहो मोरे रामा' भी गाया जाता है।

कबीरदास की वाणी जिसमें निराकार ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया गया है 'निर्गुन' के नाम से प्रसिद्ध है। कबीर ने ईश्वर की निर्गुन सत्ता का प्रतिपादन करते हुए अनेक पद कहे हैं। ये पद भी निर्गुनी तत्व के वर्णन के कारण 'निर्गुन' कहे जाते हैं। कबीर के 'बीजक' में ऐसे पद प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं।

नामकरण

कबीर के 'निरगुनियों' और लोक गीतों के इन पदों में वर्ण्य विषय प्रायः एक ही था अतः इन लोक गीतों को भी 'निर्गुन' के नाम से पुकारा जाने लगा। कबीर दास का नाम निर्गुन गीतों से चिरकाल से सम्बद्ध है अतः इन लोकगीतों के रचयिता भी कबीर ही मान लिये जाते हैं। परन्तु भोजपुरी 'निर्गुन' के कर्ता कबीर 'बीजक' के कबीर से नितान्त भिन्न हैं। इन गीतों को महत्व प्रदान करने की दृष्टि से ही इनमें महात्मा कबीर का नाम जान बूझ कर जोड़ दिया गया है, नहीं तो ये वास्तव में किसी ग्रामीण कवि की ही रचनायें हैं। नीचे के इस 'निर्गुन' में कबीर दास का नाम आया है।[1]

"गावेले कबीरदास इहे निरगुनवा हो राम।
आहो रामा जगवा में केहू नाहिं आपन हो राम।"

इसी प्रकार एक दूसरे निर्गुन में भी कबीर दास के नाम की छाप पाई जाती है।[2]

"गावेले कबीरदास इहे निरगुनवा हो।
कि आहो मोरे रामा, गाइ गाइ सखी समुझावेले हो राम।"

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग० २ पृ० ३६८। २ वही, पृ० ३७७।

'निर्गुन' लिखने की परम्परा कबीरदास से प्रारम्भ होती है। कबीर के सम्प्रदाय में प्राय जितने भी सन्त कवि हुए हैं उन्होने इस छन्द को अपनी कविता का माध्यम बनाया है।

वर्ण्य विषय जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है इन 'निर्गुन' गीतो में प्राय भक्ति की भावना का उल्लेख पाया जाता है। अपने जीवन में दान पुण्य न करने वाले किसी भक्त का निम्नलिखित पश्चाताप कितना मार्मिक है

"नाहि कइली दान पुनवा अवरु धरमवा हो।
कि आहो मोरे रामा, पिया अवले गवना कराव हो राम।
आई देली गाहाना, पिता जी दले गइया हो,
कि आहो मोरे रामा, चलही के नेहिया सब छूटल हो राम।

आत्मा को प्रेमिका और ईश्वर को प्रियतम मानना यह निर्गुन सन्तो की प्राचीन परम्परा रही है। इस परम्परा का अनुकरण ऊपर के गीत में हुआ है। इस ससार से नाता तोडकर प्रेमी के परमात्मा से मिलने को गवना का रूपक दिया गया है।

एक दूसरे 'निर्गुन' में परमात्मा के बिना निराश्रित आत्मा की तडपन का दृश्य बडी सुन्दर रीति से चित्रित किया गया है।

"काना जोगी काना जोगी कुववा खोनवले,
कि आहो मोरे रामा, डोरिया हो बरत दिनवा
बीतल हो रामा।
टूटि गइले डोरिया, मरि गइले कुववा,
कि आहो मोरे रामा,
केकरा दुअरिया दिनवा काटबि ए राम।
हाथ छूछ फाड छूछ केहू नाही बात पूछे
कि आहो मोरे रामा,
केकरा हो दुअरिया दिनवा काटवि ए राम।"

इस गीत में निराश्रित भक्त की आत्मा पुकार रही है कि मैने जीवन भर कुछ भी कार्य नही किया। केवल कर्म रूपी रस्सी का जीवन भर बँटता रहा, अब मैं ईश्वर की दया बिना कहाँ जाऊँ।

पराती और भजन

स्त्रिया केवल शृगार और करुण रस के ही गीत नही गाती बल्कि समय समय पर भक्ति से ओतप्रोत पराती और भजन भी गाया करती है। जहाँ उनका हृदय शृगार और करुण रस से लबालब भरा रहता है वहाँ उसमें भक्ति की भी कुछ कम मात्रा नही होती। घर के झझटो से जब उन्हें अवकाश मिलता है, बाल बच्चो के किचकिच से फुरसत मिलती है तब वे भगवान की स्तुति में दो चार भजन बडे प्रेम से गाती है। ये भजन या तो रात को सोने के पहिले गाये जाते है अथवा प्रात काल में, प्रात काल में गाये जाने के कारण ही इन्हें

'पाराती' कहते हैं। भजन वे हैं जो सभी समय गाये जाते हैं। पाराती और भजन के वर्ण्य विषय में कुछ भी अन्तर नहीं है। केवल दिन के एक विशेष भाग प्रातःकाल में गाये जाने से ही इन्हें यह संज्ञा प्राप्त है। जब स्त्रियाँ किसी तीर्थ यात्रा को अथवा गंगा नहाने जाती हैं तब वे प्रायः भजन ही गाती हैं। उनके कलकंठ से उनके भजनों को सुनकर भक्ति का जैसा उद्रेक मनुष्य के मन में होता है उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है।

ये भजन भक्ति से ओतप्रोत होते हैं इनमें भगवान् की स्तुति रहती है। कहीं इनमें किसी तीर्थयात्रा में चलने का वर्णन है तो कहीं इस पापी मन को भक्ति करने का उपदेश दिया गया है। इतने दिनों तक इससे विमुख रहने के लिये कोसा गया है।[1]

"राम नाम मुख बोलु ए भाई।
छोड़ु अब जग चतुराई।
... ...
ए मनवा पापी भजन कब करबे।
जिनगी बितावी भजन कब करबे।"

मनुष्य जीवन की नश्वरता का नीचे लिखा यह वर्णन कितना सटीक उपदेश-पूर्ण एवं यथार्थ है।[2]

का देखि के मन भइले हो दीवाना। का देखि के
मानुस देहि देखि जनि भूल,
एक दिन माटी होई जाता। टेक।
अरे हे देहिया कागद की पुड़िया,
बूंन पड़त मिहिलाना।" टेक।

नीचे लिखी पंक्तियों में राम के बालरूप का वर्णन भी भावपूर्ण है। भक्त कहता है कि हे भगवान! आप इसी रूप में मेरे मनमन्दिर में विराजिये। मैं कभी आपको न भूलूँ।[3]

"रउरा रामजी हरी, रउआ नाहीं बिसरी, घटा भरी। टेक।
छोटे छोटे बालक सावर रूप
बड़ी बड़ी अँगिया सुरति अनूप।
बाया हाथे धेहुँ, दहिना हाथे तीरवा
गेलन खेलत गइलो सरजू का तीरवा।" टेक।

कहीं-कहीं इन भजनों में रहस्यवाद की गंभीर व्यंजना हुई है। नीचे के भजन में नैहर से नाता तोड़कर पति के धाम जाने का जो वर्णन किया गया है यह रहस्यवाद की परम्परा के ही अन्तर्भुक्त है। यहाँ आत्मा की कल्पना स्त्री से की गई है और परमात्मा को पति माना गया है। यह संसार ही नैहर है और गुरु की कृपा से ईश्वरोन्मुख होने का नाम ही गवना है। गुरु की दया हो कर डोली

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३५६। २. वही पृ० ३६० ३६१। ३. वही पृ० ३६६।

है जिस पर यह जीव अपने प्रियतम परमात्मा से मिल जाता है। यह कल्पना कितनी कमनीय है।[1]

"गोरे नइहरवा से नातवा छोड़वले जाला पियवा।
काचे काचे बसवा के डोलिया बनवले,
ताहि पर काया के सुतवले जाला पियवा।
चारि कहार मिलि डोलिया उठवने,
आगे आगे रहिया देखवले जाला पियवा।"

पालने के गीत

बूढ़ी दादियाँ और मातायें अपने प्यारे पौत्रों और पुत्रों को पालने में सुलाकर उनको मधुर गीत सुनाती रहती हैं जिनका केवल एकमात्र उद्देश्य बालक को प्रसन्न रखना होता है। जिन घरों में लक्ष्मी का अभाव है वहाँ मातायें अपनी गोदी में ही लेकर बालकों को सुलाती अथवा खेलाती हैं। गरीब माता का गोद ही बालक का पालना है। इन गीतों को 'पालने के गीत' या लोरिक कहते हैं। अंग्रेजी साहित्य में ऐसे गीतों का जिन्हें क्रेडिल साग्स, लुलाबिस या नरसरी रहाइम्स कहते हैं बड़ा प्रचार है। सैकड़ों पुस्तकें इस विषय पर लिखी गई हैं और लोक-साहित्य के प्रेमियों ने इन गीतों का संग्रह कर उन्हें प्रकाशित किया है। परन्तु भोजपुरी में एक तो पालने के गीत ही बहुत कम हैं और जो हैं भी वे केवल बूढ़ी दादियों के मुख में ही सुरक्षित हैं।

पालने के ये गीत प्रधानतः तीन अवसरों पर गाये जाते हैं। १ बालक को खिलाने के समय २ बालक को प्रसन्न रखने के समय और ३ बालक को सुलाने के समय। जब छोटा बालक दूध अथवा अन्न खाना नहीं चाहता और रोता रहता है उस समय उसकी मा गीत गाकर उसके ध्यान को रोने से हटाती है और उसे भोजन की ओर प्रवृत्त करती है। वह तरह-तरह के प्रलोभन देकर उससे खाने के लिये आग्रह करती है। रोते बच्चों को दूध पिलाने में यह गीत महामन्त्र का काम करता है। बालक गीत के संगीत को सुनकर चुप हो जाता है और दूध पीना प्रारम्भ कर देता है।

"चाना मामा आरे आव, पारे आव, नदिया किनारे आव।
सोने के कटोरवा में दूध भात ले ले आव।
बबुआ के मुहवा में घूट, घूट, घूट।"[2]

लड़कों को चन्द्रमा प्रिय लगता है। उसको दिखलाते हुये यह गीत गाया जाता है। दूध पिलाने के लिये एक दूसरा गाना भी प्रसिद्ध है जिसमें गाय के शुद्ध दूध की प्रशंसा की गई है। मा कहती है कि मेरे बालक की गाय ने अभी पहिली बार बच्चा दिया है। अब बच्चे के पीने के लिये 'बाटी' (मिट्टी का पात्र जिसमें दूध दूहा जाता है) में दूध लावो।

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४५ (भूमिका) पष्ठ भाग। २ लेखक का निजी संग्रह।

"बबुआ के गइया आटी, दूधवा ले अब भरि काटी।
बबुआ पियसु भरि काटी।"

एक दूसरे गीत में इसी बात को दूसरे शब्दों में कहा गया है। यहाँ 'काटी' के स्थान पर गगरी का प्रयोग किया गया है।

"आउ रे गइया अगरी, दूधवा ले आऊ भरि गगरी।
बबुआ पियसु भरि गग री।"

इन गीतों का दूसरा प्रयोजन बालक को निद्रा देवी की ोद में समर्पित करना है। यदि माता घर में अकेली हुई तो उसके लिये बालक को सुलाना अत्यन्त आवश्यक होता है नहीं तो उसके रुदन से कार्य में बाधा पड़ती है। अत: बच्चे को सुलाने के लिये वह अनेक गीत गाती है। इन ीतों में सगीत का पुट होना अनिवार्य है जिससे मुग्ध होकर बालक सो जाता है। बच्चों को सुलाने का यह गीत बड़ा प्रसि है।

"हाल हाल बबुआ, कुइई में ढेबुआ।
माई अकसरुआ, बाप दरवरुआ।
हाल हाल बबुआ।"

वास्तव में ये गीत ृहकार्य में संलग्ना माता के लिये बड़े सहायक हैं। यदि हठीला बालक इतने पर भी नहीं सोता तो माता एक दूसरा लम्बा गाना सुनाती है जिसके माधुर्य में मस्त होकर वह सो जाता है। मा गाती है कि बच्चे का मामा आकर उसके कान में 'बाला' गहना पहिनाता है। बालक बुढ़िया के हाथ की मिठाई लेकर खाता है।

"घुघुआ माना, उपजे धाना।
एहि मुहे अइले बबुआ के मामा।
नाक दुनो धइके छेदा दिहले काना।
ओहि में पहिरा दिहले सो के बाना।
नई भीति उठेले पुरानी भीति गिरेले।
सभरिहे बुढ़िया दाई।
तोरा हाथ के मिठाई।
लड़िका तूरि तूरि खाई।"

इस गीत में बालक को गहने और मिठाई का लालच देकर सोने का अनुरोध किया गया है।

कुछ गीत ऐसे भी हैं जो किसी विशेष प्रयोजन के लिये नहीं गाने जाते बल्कि उनका एक मा उद्देश्य बालक को प्रसन्न रखना होता है। बालक के रोने से माता के गृह कार्य में बाधा पड़ती है। अतः वह यही चाहती है कि बालक यदि न भी सोवे तो प्रसन्नता पूर्वक चारपाई अथवा पालने में पड़ा हुआ खेलता रहे। इसलिये वह उसे गा-गाकर प्रसन्न रखती है। कभी वह बालक के रूप की प्रशंसा करती है तो कभी मा और बाप की :

"ए बबुआ तू कथी के।
तने सोना स रुपा के।

माई लवग के, बाप चउवा चन्नन के ।
पितिया पीतम्बर के, लोग बिराना माटी के ।
ए बबुग्रा तू कथी के।
सने सोना सने रूपा के।"

एक दूसरे गीत में माता बालक के सुन्दर मुग की प्रशसा कर रही है और कहती है कि·

ग्ररर बरर पूग्रा पाकेला,
चोलर खोइछा नाचेला ।
चोलर भइले मोर,
मोर बाबू के मुहवा र ।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न गीतों को गा-गाकर माता बालक का मनोरजन करती है और उसे प्रसन्न रखती है ।

इन गीतो का वर्ण्य विषय बाल मनोरजन है। अत उन्ही के खाने निे और पहिनने का उल्लेख इन तिो में हुआ है। कही माता बालक को दु दूध पिलाती है तो कही उसे मिठाई खिलाने का प्रलोभन

वर्ण्य विषय

देती है। कही मामा उसको कान का गहना देता है तो कहीं कोई उसे खिउना देता है। कही उसके सौन्दर्य का वर्णन है कहीं उसके माता पिता के रूप का । पालने के गीत प्राय किसी न किसी भाव को लेकर लिखे गये हैं। परन्तु कोई-कोई गीत अर्थहीन भी है। उनमें निरर्थक पदावली का प्रयोग किया गया है।

जैसे—

घुघुग्रा माना उपजे धाना ।
एहि मुहे अइले बबुग्रा के मामा ।

इस गीत में 'घुघुग्रा माना' निरर्थक पद है। दूसरा गीत यह लीजिये

हाल हाल बबुआ,
कुरई में ढेबुग्रा।"

इन दोनो पदो का कुछ भी अर्थ नहीं है। ये केवल सगीत पैदा करने के लिये प्रयुक्त हुये हैं। इसी प्रकार चाना मामा आरे आव, पारे आव, इस गीत में पहिली पक्ति बिल्कुल निरर्थक है। 'अरर बरर पुआ पाकेला, चोलर खोइछा नाचेला' इस गीत में भी यही बात है। अग्रेजी में सैकडा ऐसे पालने के गीत हैं जिनका कुछ भी अर्थ नही है। इनकी रचना का उद्देश्य केवल बालक के कानो के लिये सुखद सगीत दा करना है।

खेल के गीत

भोजपुरी में बालको के खेल के गीत अत्यधिक सख्या में उपलब्ध होते हैं। जितने प्रकार के खेल पाये जाते हैं उनके ीत भी उतने ही भिन्न है। इन गीतो में कही तो 'दाव न खेलाने वाले' दूसरे पक्ष वालो की निन्दा है तो कही स्वय बहादुरी के साथ कबड्डी के दाव पढाने का उल्लेख है। कही चुपचाप से रहने के लिये शपथ खिलाया गया है तो कही जानवरो को चिढाने के गीत पाये जाते

है। खेल के इन गीतों में खेल की विभिन्न विधियों का उल्लेख भी पाया जाता है। यों तो बालकों के खेलों की संख्या बहुत है परन्तु उनमें से प्रधान ये हैं :

१. कबड्डी।
२. गुल्ली डंडा।
३. आँख मुदौवल।
४. सुप्पी।
५. जानवर सबंधी गीत।

इन खेलों में से कबड्डी का खेल सबसे अधिक प्रिय और प्रसिद्ध है। कबड्डी के खेल में दो दल होते हैं। जहाँ यह खेल होता है उस स्थान के बीच में एक सीधी रेखा खींच देते हैं। पहिला दल स रेखा के एक ओर खड़ा होता है तो दूसरा दल उसके विपरीत दूसरी ओर। अब एक दल का एक आदमी दूसरे दल में कोई गीत गाता हुआ जाता है और उस पक्ष के किसी व्यक्ति को छूकर भागने का प्रयत्न करता है। गीत गाते हुये दूसरे दल में घुस कर स विधि को 'कबड्डी पढ़ाना' कहते हैं। दूसरे दल के लोग कबड्डी पढ़ाने वाले व्यक्ति को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। यदि उन्होंने उसे पकड़ लिया तो वह खेल से बाहर निकाल दिया जाता है इसे खेल की भाषा में 'मर जाना' कहते हैं। यदि कबड्डी पढ़ाने वाला आदमी दूसरे दल के व्यक्तियों को छूकर भाग आता है तो वह जित व्यक्ति को छुवेगा वे सभी मर जायें। इसी प्रकार यदि किसी दल के सभी व्यक्ति 'मर गये' तो उस पक्ष की हार समझी जाती है। देहातों में कबड्डी का यह खेल बड़ा लोकप्रिय है तथा सभी बच्चे इसे खेलते हैं।

कबड्डी के खेल की दो विशेषताएँ हैं एक तो इसमें दौड़ने से शरीर पुष्ट होता है। दूसरे 'कबड्डी पढ़ाने' में फेफड़ों का व्यायाम होता है। जो लड़का अधिक देर तक कबड्डी पढ़ाता रहता है उसके विजयी होने की अधिक आशा रहती है। 'कबड्डी पढ़ाते' समय लड़के कोई न कोई गीत गाते रहते हैं। यह गीत राग से नहीं गाया जाता परन्तु इसमें लय अवश्य रहता है। कबड्डी पढ़ाते समय अधिक लड़के केवल 'कबड्डी, कबड्डी' ही कहा करते हैं परन्तु कुछ दूसरे गीत भी गाते हैं। ये गीत केवल तुकबन्दी हैं। इनमें भाव और भाषा का विशेष ध्यान नहीं रहता परन्तु संगीत उत्पन्न करने के लिये तुक अवश्य मिलाया जाता है। यह गीत लीजिये :

"कबड्डी मे लबड़ी पाताल हाहाराई।
"चील्ह कउवा हाक पारे बाघ लरिआई।"

इस गीत का कुछ भी अर्थ नहीं है। विभिन्न शब्दों को जोड़कर यह गीत तैयार किया गया है। हाँ 'हाहाराई' में तुक अवश्य प्रयत्न पूर्वक मिलाया गया है। दूसरा गीत लीजिये :

"ए कबड्डी रेता, भगत मोर बेटा।
भगताइन मोरी जोरी, खेलबि हम होरी।"

यहाँ भी बेटा और रेता ए जोरी, होरी में तुक मिलाया गया है। कबड्डी पढ़ाते समय एक ही साँस में सारा गीत गाना पड़ता है जो बड़ा कठिन काम है। इस-

लिये चतुर लड़के ऐसा गीत चुनते हैं जिसको गाते समय सांस लेने की थोड़ी फुरसत मिल जाय। जैसे—

"आम छू, आम छू, मउर्डा झनक छू।"

यहाँ आम छू आम छू कहते हुये थोड़ा सास लेने के लिये समय मिल जाता है। कहीं-कहीं 'झनक छू' की जगह पर 'बादाम छू' पाठ भी पाया जाता है।

कबड्डी खेलते समय यदि एक पक्ष के लोग दूसरे पक्ष का 'दाव' आने पर उसे खेलने का अवसर नहीं देते तब अन्य दल वाले उनकी शिकायत करते हैं और कहते हैं कि जो मेरा 'दाव नहीं खेलायेगा उसकी मा गुजरी है।

"हामार दउवा ना खेलावे अवकर माई गुजरी।
खाले गिरगिटवा बियाले मूसरी।"

इस गीत से पता चलता है कि गुजरी (ग्वालिन) शब्द अपमान जनक समझा जाता था।

दूसरा खेल गुल्ली डंडा है। इसमें बांस या लकडी के छोटे डंडे से जो एक हाथ से बड़ा नहीं होता लकड़ी की बनी छोटी गुल्ली को मारते हैं। दूसरे दल के लोग जो कुछ दूर खड़े रहते हैं उसे पकड़ने (लोकने) की कोशिश करते हैं। यदि गुल्ली को वे 'लोकने' में असमर्थ रहे तब उसे खिलाड़ी के पास पृथ्वी में खोदे गये एक छोटे से गड्ढे में फेंकने का प्रयत्न करते हैं। खिलाड़ी गुल्ली को पुनः डंडे से मारता है और वह गुल्ली जहाँ गिरती है उस स्थान तक गड्ढे से डंडे से नापते हैं। इस गुल्ली को कभी पैर पर रखकर, कभी हाथ में और कभी ऊँगलियों पर रखकर मारते हैं जिनके सात विभिन्न नाम हैं। एड़ी, दोड़ी, तिलिया, चौरी, चम्पा, सेम, गुतेग। इन शब्दों की निरुक्ति कैसे हुई है यह कहना कठिन है। कुछ लोग इसका मनमाना अर्थ करते हैं जिसका कुछ महत्त्व नहीं है। आज-कल गुल्ली के स्थान पर रबर के गेंद का प्रयोग किया जाता है। गुल्ली डंडे का खेल बहुत प्राचीन जान पड़ता है।

तीसरा खेल 'आँख मुँदौवल' है जिसे 'आँख मिचौनी' भी कहते हैं। इसमें किसी लड़के की आँख बन्द करके अन्य लड़के उसे मारते हैं। छुआछून के खेल में एक लड़का खड़ा रहता है और दूसरे बालक बैठे रहते हैं। यदि कोई लड़का गलती से खड़ा हो गया और खड़े लड़के ने उसे छू दिया तो अब उसे खड़े होकर दूसरों को छूना पड़ता है। जो लड़के बैठे रहते हैं वे खड़े बालक को चिढ़ाने के लिये गीत गाते हैं।

"एक बेर के छुअले का भइले।
किरवा बिनि बिनि खा गइले।"

आचरण की दृष्टि से लड़कों और लड़कियों का एक साथ खेलना अनुचित समझा जाता है। अतः प्रायः छोटी लड़कियां भी लड़कों के साथ नहीं खेलती। यदि कोई लड़की भूल से खेलने लगती है तो दूसरे बालक उसे चिढ़ाते हुये गाते हैं कि

"बेटवा में बिटिया गुलेल खेलेले।
भर माथे सेनुरा जियान करेले।"

यहाँ 'सिन्दूर नष्ट' करने का अर्थ पातिव्रत धर्म को छोड़ना है जो लडकी या स्त्री के लिये बड़ा अपराध है।

छोटे-छोटे बालक एक हाथ पर दूसरा हाथ रखकर एक खेल खेलते हैं और खेलते समय यह गीत गाते हैं।

"ताई ताई पुरिया, घी मे चभोरिया।
हम खाई कि भउजी खाई,
भउजी पतरंगिया।"

अर्थात् गर्म-गर्म चपातियों को घी में चुपड लिया। मेरी भावज पतली अग वाली है अतः उसे ये रोटियाँ नहीं पचेंगी। अतः मैं इन्हे खा रहा हूँ। यह बाल मनोरंजन का गीत है। बालक को भोजन के अतिरिक्त और क्या चाहिये।

कभी-कभी मौन व्रत धारण करने वाला खेल भी बालक खेलते हैं जिसे 'चुप्पी' कहते हैं। दस पाच लडके एक साथ बैठ जाते हैं। उनमें से एक लडका निम्नांकित 'गीत' का गान करता है। इस 'गीत' को सुनते ही सब लड़के मौन होकर बैठ जाते हैं। जब कोई बीच में बोल उठता है तो अन्य लडके उसे खूब चिढाते हैं। वह गीत है :

"ओका बोका, तीन तडोका
लाठी लउवा, चन्द काठी।
बाग में बगउवा डोले,
सावन में करइला फूले।
ओ करइला के नांव का,
हजइल बिजइल पानवा फूलवा
पुऊवा पक्क।"

इस गीत में कुछ ऐसे शब्द हैं जैसे ओका, बोका, तीन तडोका जो हिन्दी भाषा के शब्द नहीं ज्ञात होते। बहुत सभव है कि ये किसी असभ्य जाति (प्रीमीटीव ट्राइब) के भाषा के शब्द हों जिनकी शेष पदावली तो परिवर्तित हो गई है परन्तु ये शब्द उस जाति की स्मृति रूप में ज्यों के त्यों विद्यमान हैं।

एक अन्य खेल में भी निरर्थक पदावली का प्रयोग हुआ है। बालक एक पर एक मुट्ठी बाधकर उसे एक हाथ ऊँचा बनाकर दूसरे हाथ से काटने का अभिनय करते हुये यह गीत गाते हैं।

"तार काटो तरकुल काटो काटो रे बनखाजा।
हाथी पर के घुघुआ चमकक चले राजा।
राजा के रजइया, बाबू के पिटारा।
हींची मारो घीचि मारो, मूसर अइसन बेटा।"

देहातों में रासलीला की भांति एक खेल होता है जिसमें दो लडकियां अपने हाथों को एक दूसरे से जोड़ कर नाचती हैं। इसे 'झाकका झूमरि' कहते हैं। इस खेल में जितनी ही अधिक लडकियां भाग लेती हैं उतना ही अच्छा होता है और सुन्दर लगता है। वे गाती हैं :

"क हाड़ी झिगड़ा बड़ेरी लागे घूआँ।
सासु पकवली गल गल पूआ।

अपने खइली घिग्राहवा पूग्रा।
हमारा के दिहली तेलहवा पूग्रा।
ना खाइबि पूग्रा, खेलवि जूग्रा।
ना खाइबि पूग्रा, खेलवि जूग्रा।"

यद्यपि यह गीत रास लीला का है परन्तु इसमें पूग्रा के साथ तुक मिलाने को जूग्रा कर दिया गया है। दूसरी विशिष्ट बात यह है कि इसमें सास की दुष्टता की ओर संकेत किया गया है। वह स्वय तो घी का पूग्रा खाती है परन्तु वधू को तेल का पूग्रा देती है।

इन खेल के गीतों के अतिरिक्त विभिन्न जानवरो को चिढाने या उक्साने के भी गीत पाये जाते हैं। इन गीतो में कहीं तो उस विशेष जानवर की शारीरिक बनावट का वर्णन है तो कहीं उसके स्वभाव का उल्लेख किया गया है। सांड़ का यह वर्णन कितना सटीक एवं हास्योत्पादक है

"सांडवा के पीठि पीठि बदुरी विग्राइल जाला।
हे हाहा, हे हाहा, हे हाहा, हे।"

'बदुरी' का अर्थ 'ककुद्' है। भाव है कि साड की पीठ पर 'बदुरी' होती है। गीदड के स्वभाव की परख एक दूसरे गीत में है:

"एक देखि लपकी, दुई देखि झपटी।
तीनी देखि चलेला पराई।"

अर्थात् गीदड एक आदमी को देखकर लपकता है, दो को पाकर झपट्टा मारता है परन्तु तीन मनुष्यो को देखकर भाग चलता है। बन्दर की पूँछ के नीचे का स्थान लाल होता है। इसका उल्लेख एक अन्य गीत में है:

"चोकर के लिट्टी कसइली के दाल।
ए बनरा तोर चूतरे लाल।"

एक अन्य गीत मे हाथी के मोटी एव बडी रोटी लिट्टी खाने का वर्णन है।[1]

"हथिया हथग तोरा खाये के लिटंग"

---

१. इस अध्याय में जो गीत उद्धृत किये गये हैं वे सभी लेखक के निजी संग्रह के हैं। अत इनका सर्वत्र उल्लेख नहीं किया गया है।

अध्याय ५

लोक गीतों में भोजपुरी संस्कृति का चित्रण

भारतीय संस्कृति के विकृत एवं श्रेष्ठ दोनों प्रकार के स्वाभाविक चित्रण इन लोक गीतों में उपलब्ध होते हैं। इनमें न तो अतिरंजना है और न अत्युक्ति। ग्रामीण कवि ने समाज में जो कुछ देखा है एवं अनुभव किया है उसका उसी रूप में वर्णन उपस्थित किया है। इन गीतों में हमें अशिक्षित और असंस्कृत भोजपुरी समाज का ज्यों का त्यों रूप देखने को मिलता है, साथ में भारतीय संस्कृति के अनुकरणीय आदर्शात्मक उल्लेख भी हैं। पुत्र जन्म के समय उछाह एवं उत्सव की परन्तु पुत्री के पैदा होने पर विषम दुःख की अभिव्यंजना इन गीतों में हुई है। भोजपुरी समाज में स्त्रियों का जो स्थान है, बाल विवाह, वृद्ध विवाह एवं बहु विवाह के कारण किस प्रकार उनका जीवन नारकीय बन जाता है इसका मर्मस्पर्शी वर्णन इन गीतों में मिलता है। सास और बहू, ननद और भावज के शाश्वतिक कलह की चर्चा भी दिखाई पड़ती है जिसकी पुष्टि प्रत्यक्ष उदाहरणों से होती है। परन्तु इसके साथ ही भोजपुरी जीवन के उज्ज्वल पक्ष का भी चित्रण कुछ कम नहीं है। भाई और बहन का सहज, स्वाभाविक एवं अकृत्रिम प्रेम, जो आज के जीवन में कथा मात्र शेष रह गया है, इन गीतों में पाया जाता है। माता और पुत्री के अलौकिक प्रेम की दिव्य झाँकी इनमें हमें देखने को मिलती है। स्त्रियों के सतीत्व का दिव्य एवं स्वर्गीय दृश्य हम इन गीतों में पाते हैं।

सामाजिक जीवन के साथ ही साथ धार्मिक जीवन का चित्रण भी इनमें हुआ है। व्रत के गीतों में कहीं सूर्य की पूजा पाई जाती है तो कहीं छठी माता की। शिव, कृष्ण आदि देवताओं का वर्णन मिलता है। साथ ही स्त्रियाँ गंगा माता और तुलसी माता के भी गीत गाती हैं। इनमें शीतला माता की पूजा भी बड़ी विधि से की गई है।

इन गीतों में भव्य आर्थिक जीवन की कल्पना भी हमें देखने को मिलती है। झूमर के सभी गीत 'सोने की थारी में जेवना परोसलो' से प्रारम्भ होते हैं। प्रियतम के भोजन की थाली सोने की बनी है तो साथ ही उसका लोटा भी सुवर्णमय है। वह चन्दन के पलंग पर, जो रेशम से बुनी गई है, सोता है। स्त्री की कंघी भी सोने की ही है।

राजनैतिक अवस्था का भी थोड़ा वर्णन इन गीतों में मिलता है। मुगलों के समय शासन की शिथिलता एवं अत्याचार तथा सिपाही विद्रोह के समय नवाबों की बेगमों का मर्मस्पर्शी दृश्य उपस्थित किया गया है। इन लोक गीतों में सामाजिक, धार्मिक आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन के वर्णन में भारतीय संस्कृति का हमें सच्चा परिचय प्राप्त होता है। उपर्युक्त बातों का दिग्दर्शन हम इन लोक गीतों के उदाहरण के उद्धरणों द्वारा करेंगे।

(क) सामाजिक जीवन का चित्रण

भोजपुरी समाज के प्राय प्रत्येक पहलू का वर्णन इन गीतो में पाया जाता है। गार्हस्थ जीवन का चित्रण हमें यहाँ देखने को मिलता है। सास वधू, ननद भावज, माता पुत्री, पिता पुत्र, भाई बहन, देवर भौजाई, और ससुर पतोहू आदि यावत् पारिवारिक सबध जो हो सकते हैं उन सभी का दिग्दर्शन यहाँ कराया गया है। स्त्री जीवन की पूरी गाथा इन गीतो में गाई गई है।

समाज में स्त्रियों का स्थान

पीछे कहा गया है कि भोजपुरी समाज में स्त्रियो का स्थान कुछ बहुत ऊँचा नही है। भोजपुरी समाज में यह कहावत प्रचलित है कि पुत्री के जन्म होते समय पृथ्वी तीन बालिस्त (बित्ता) नीचे दब जाती है मानो वह उसके भार को सह नही सकती। जहाँ पुत्र का जन्म उजेली रात (अजारिया) माना जाता है वहाँ पुत्री के जन्म की उपमा अधेरी रात से दी जाती है। इसी एक उपमा से पुत्री के अनादर का अन्दाजा लगाया जा सकता है। एक गीत में कोई माता कहती है कि यदि मै जानती कि मुझे पुत्री पैदा होगी तो मै मिर्च पी जाती। उसकी कटुता से लडकी मर जाती और मैं इस दु खद प्रसव वेदना से मुक्त हो जाती।[1]

> "जाहु हम जनिती धियवा कोखी रे जनमिहे,
> पिहितो में मरिच धराई रे।
> मरिच के झाके झुके धियवा मरि रे जाइति,
> छुटि जाइते गरुवा सताप रे।"

एक दूसरे गीत में कोई स्त्री यह कहती है कि यदि पुत्री जन्म की मुझे तनिक भी आशका होती तो मैं अपने पति के साथ सेज पर न सोती और घर के दीपक को बुझा देती। इतना ही नही, भोजपुरी प्रदेश में किसी स्त्री का महत्व पुत्र या पुत्री पैदा करने ही से कूता जाता है। पुत्र या पुत्री का जन्म हो पर प्रसव कालीन विधि विधानों में भी अन्तर कर दिया जाता है। यदि स्त्री बालक जनती है तो उसके भोजन आदि के विषय में अधिक सतर्कता रखी जाती है। उसके ओढने के लिये दुशाला दिया जाता है और खाने के लिये मेवा आदि फल। उसकी 'पसगी' में चन्दन की लकडी जलाई जाती है परन्तु लडकी के पैदा होने पर कुश की घास बिछाने के लिये और वही ओढने के लिये दी जाती है। वन में उत्पन्न होने वाले जगली फल मेवा के स्थान पर खाने को मिलते हैं। उसके पसगी में खुखुडी (दानो से रहित सूखा भुट्टा) जलाई जाती है जिसके दूषित धुएँ से उसे नीद नही आती।[2]

> "साल ओढन साल डासन, मेवा फल भोजन रे।
> ए ललना, चनन के जरेला पसगिया, निनरि 'भल' आवेला रे।
> अइसन दह में के पुरइन, दहे बिच कापेले रे।
> ए ललना, आइसन कापेले हमरो हरिजी,
> धिया कारे जनम नु रे।

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भग २ पृ० १३१। २ भो० ग्रा० गी०भाग १ पृ० ७१।

कुस ओढ़न कुस डासन, बन फल भोजन रे।
ए ललना, खुखुरी के जरेला पर्सगिया,
निनरियो ना आवेला रे।"

पुत्री के जन्म का नाम सुनते ही पिता का हृदय इस प्रकार कांपने लगता है जैसे तालाब में पुरइन का पत्ता। 'ओइसन कांपेले हमरो हरिजी, धिया का रे जनम नु रे" यह उक्ति कितनी मार्मिक है। साथ ही इसमें कितना सत्य छिपा पड़ा है।

पुत्र जन्म के मंगलमय अवसर पर 'सोहर' गाया जाता है परन्तु पुत्री के जन्म पर हर्ष का अभाव होने के कारण कोई गीत नहीं गाया जाता। जहाँ पुत्र का नाल सोने की छुरी से काटा जाता है वहाँ पुत्री के नाल को काटने के लिये लोहे की कुन्द चाकू ही पर्याप्त समझी जाती है। कोई दुखी पिता कहता है कि ऐ पुत्री! जिस दिन तू पैदा हुई उसी दिन तूने मेरे लिये गाली 'बेसाहा' अर्थात् मुझे गाली सहनी पड़ेगी यह निश्चित होगया[1]

"जाहि दिन बेटी हो तोहरा जनमवा
हमरे सीरे बेसहलु गारि ए।"

देहातों में प्राय बात-बात पर 'ससुर' की गाली दी जाती है। पिता का संकेत इसी गाली की ओर है। संस्कृत के एक कवि ने भी कन्या के जन्म को कष्ट का ही पर्याय माना है। वह कहता है कि

"पुत्रीति जाता महती हि चिन्ता,
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्क
दत्वा सुख प्राप्स्यति वा नवेति,
कन्यापितृत्व खलु नाम कष्टम्।"

कन्या ज्यों-ज्यों बड़ी होने लगती है, पिता की चिन्ता त्यों-त्यों बढ़ने लगती है। विवाह के वय को प्राप्त करने पर पिता की चिन्ता उग्र रूप धारण कर लेती है। उसे पुत्री के विवाह की चिन्ता से नींद भी नहीं आती। उसकी स्थिति घर में भारभूत सी मालूम होने लगती है और घर के लोग यही चाहते हैं कि शीघ्र ही इसका विवाह कर ससुराल भेज दिया जाय। गवना के गीतों में इस स्थिति का उल्लेख हुआ है। बिदा के समय भाई अपनी बहन की पालकी को प्रेमवश पकड़ कर उसे जाने से रोकता है। इस पर उसकी बहन कहती है कि ऐ भाई! मेरी पालकी छोड़ो। मुझे अब ससुराल जाने दो। तुम सात सात नौकरानियों के भार को सह सकते हो परन्तु मेरा अकेला भार नहीं सहन कर सकते।[2]

विवाह के पहिले

"छोड़ु छोड़ु भइया डडियावा, घरे जाये रे देउ।
मानो उड़िया के भारावा एगो हमरो नाही।"

इन उपर्युक्त पंक्तियों में बहन की अन्तर्वेदना की अभिव्यक्ति कितनी मार्मिक रीति से हुई है।

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १४६। २ वही पृ० १६५।

कोई पुत्री अपने पिता से कहती है कि ऐ पिताजी ! जिसके घर में कुँवारी लडकी पडी हुई है वह भला निश्चिन्त कैसे सो सकता है। इतना सुनकर पिता चिन्तित होकर उठता है बाजार से पचाग खरीद कर लाता है और पुत्री के के विवाह की परेशानियों का ध्यान कर उसकी आँखों से आँसुओं की झडी लग जाती है [1]

'मरिचि के पतवा झलारी हो बाबा,
नगर में सार होइ जाइ ए।
जेकरा ही घरे बाबा धियवा कुँवारी,
से कइसे सोवे निभेद ए।
अतना वचन बाबा सुनही न पवले,
उठले दवन झइराइ ए।
पतोरा बेसाहि बाबा घरे चले अइले,
नैना झराझरि लोर ए।"

पुत्री की उक्ति बडी तथ्यपूर्ण है। 'जेकरा ही घरे बाबा धियवा कुँवारी से कइसे सोवे निरभेद ए' इन पक्तियो म उस भोजपुरी पिता के हृदय की वास्तविक अवस्था का चित्रण किया है।

एक गीत में पुत्री के विवाह की उपमा 'ग्रहण' लगने से दी गई है। पुत्री के पूछे पर पिता कहता है कि [2]

"चान गरहनवा बेटी साझ ही लागेला,
सुरुज गरहनवा भिनुसार ए।
धियवा गरहनवा बेटी मडवनि लागेला,
कब लौ उगरह होई ए।"

अर्थात् ऐ पुत्री ! चन्द्र ग्रहण सन्ध्या (रात्रि) में लगता है और सूर्य ग्रहण प्रात काल (दिन) मे लगता है। परन्तु पुत्री रूपी ग्रहण विवाह के मडप में लगता है जिससे कब मोक्ष मिलेगा इसका मुझे पता नही है। एक दूसरे गीत में पुत्री 'परायी वस्तु' कही गई है। गवना के समय पुत्री पिता को सान्त्वना देती हुई कहती है कि आप तो जानते ही थे कि पुत्री दूसरे की चीज है अत अब मैं सुन्दर वर के साथ जा रही हूँ।[3]

"काहे के दुधवा पियवल ए बाबा।
काहे के कइल दुलार ए।
जानते तु रहल बाबा धियवा परायी,
लगलो सुनर बर साथ ए।"

लडकी का विवाह हो जाने पर ही पिता सुख की नीद सोता है। एक गीत में कोई माता कहती है कि ऐ बेटी ! जिस दिन तुम्हारा विवाह हो जायगा उसी दिन तुम्हारे पिता का (चिन्ता के कारण उद्विग्न) हृदय शान्त तथा सन्तुष्ट होगा।

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३४। २ वही भाग १ पृ० १५६।
३. वही भाग १ पृ० १५५।

इन उपर्युक्त उल्लेखों से यह स्पष्ट पता चलता है कि विवाह के पहिले घर में कन्या की स्थिति माता पिता को भारभूत मालूम होती है। पुत्री एक धरोहर के रूप में समझी जाती है जिसे विवाह में पिता दूसरे को देकर अपने को निश्चिन्त समझता है।

सभवत कन्याओं की यह अवस्था चिरकाल से भारतीय समाज में चली आ रही है। महाकवि कालीदास ने शकुन्तला की विदाई के अवसर पर कण्व के मुख से ऐसे ही शब्द कहलवाये हैं। वे कहते हैं कि [१]

"अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतु
जातो ममाय विशद प्रकाय,
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।"

विवाह के पश्चात् स्त्री गृहस्थ जीवन में प्रवेश करती है। वह पति की सहधर्मिणी होती है। अत उसके भी वही कर्त्तव्य, धर्म और अधिकार होने चाहिए जो पति के हैं। उसको पुरुष के समान ही आदर और सम्मान प्राप्त होना चाहिए। परन्तु व्यवहारिक जीवन में ऐसी बात नही पायी जाती। 'लोक गीतों में प्रेम पद्धति' के प्रकरण में यह दिखलाने का प्रयत्न किया जायगा कि किस प्रकार लोक गीतों में वर्णित प्रेम एक पक्षीय है। जहाँ स्त्री के हृदय में पुरुष के प्रति अगाध प्रेम है वहाँ पुरुष के मानस में प्रेम का एक बिन्दु भी नही दिखाई पडता। इस प्रकार के व्यवहार के चित्रण समाज में स्त्री के गिरे हुए स्थान के द्योतक हैं।

विवाह के पश्चात्
गृहस्थ जीवन में

इन गीतों में बहुधा पुरुष का अधिकार स्त्री के ऊपर पूर्ण रूप से दिखाई पडता है। वह जब चाहे उसे दूसरे किसी को दे सकता है अथवा बेच सकता है। एक गीत में स्त्री अपने पति से नम्रता पूर्वक निवेदन करती है कि भैंस को बेच कर चारपाई बनाकर हम दोनों सुख की नींद सोयें। इस पर पति उत्तर देता है कि भैंस के स्थान पर मैं तुम्हीं को बेच दूँगा और उस दाम से बछडा खरीद कर उसे रात भर चराऊँगा।[२]

"आरे भइसी बेचि ए प्रभु चुरवा गढ़ईनी
हम रउरा सोहतीं निरभेद ए।
आरे तोहरा के बेचिए धनि भइसि लेअइबी,
बछरु चरहवा सारी राति ए।"

कही-कही स्त्रियों को पीटने का भी वर्णन इन गीतों में मिलता है। कोई कन्या अपनी माता से ससुराल के दुखों का वर्णन करती हुई कहती है कि अब मैं ससुराल नही जाऊँगी क्योंकि वहाँ लात, मूका, थप्पड खाने को मिलता है, मार पडती है परन्तु मायके में मीठी-मीठी बात सुनती हूँ।[३]

१ अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक ४ श्लोक २२। २ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भा। २ पृ० १२६। ३ वही पृ० २६३।

"ससुरा में मिलेला लात अवरु मूका,
नइहरवा में मीठी सी बात।
ससुरवा मैं ना जाऊँ हो।"

एक अन्य गीत में स्त्री की हाथ की अँगूठी खो जाने के कारण सास और ननद के द्वारा उसके पीटे जाने का वर्णन पाया जाता है। इतना ही नहीं उसका प्यारा पति भी उसे बबूल के डडे से जो बडा सख्त होता है मार रहा है।[1]

"सासु मोरा मारे ननद मोरा मारे,
सइया मारे रे।
बबर डडा तानि तानि,
सइया मारे रे।"

किसी स्त्री की नाक की झुलनी तालाब में गिर गई। बहुत खोजने पर भी वह नहीं मिली। इससे क्रोधित होकर सास उसे तग करती है, ननद पीटती है और उसका पति मूगरी (काठ का बना मोटा कुन्दा) से उसे मारता है। स्त्री कहती है कि

"सासु मारे हुदुका, ननद मारे पटुका
सइयाँ मारे मुगरी के मारि हो।
तिनपतिया झुलनिया।"

इन उल्लेखों से भोजपुरी समाज में स्त्रियों का जो स्थान है उस पर प्रचुर प्रकाश पडता है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि भोजपुरी स्त्री सदा ताडन की ही अधिकारिणी है। यह तो भोजपुरी सामाजिक जीवन का एक विकृत पक्ष हुआ। इसका एक दूसरा पक्ष भी है जो नितान्त उज्ज्वल, दिव्य एव स्वर्गीय है।

शास्त्रकारों ने स्त्री को 'धर्मपत्नी' की सज्ञा दी है क्योंकि वह सभी धार्मिक कार्यों में सहयोग देती है। भोजपुरी समाज मे धार्मिक कृत्यों में स्त्री पुरुष के समान आदर तथा आसन प्राप्त करती है। यज्ञोपवीत, विवाह और गवना आदि सभी मगलमय अवसर पर स्त्री पुरुष के बायी ओर बैठती है और विविध कृत्यों का सम्पादन करती है। किम्बहुना विवाह के समय पत्नी के बिना पुरुष 'कन्यादान' भी नहीं कर सकता। सत्यनारायण एव एकादशी की कथा सुनने के लिए पुरुष के साथ स्त्री का बैठना नितान्त आवश्यक है। अग्निहोत्र का कार्य तो स्त्री के बिना करना असभव ही है। इस प्रकार स्त्री का धार्मिक कार्यों में पूर्ण अधिकार है।

पारिवारिक जीवन में भी स्त्री का स्थान प्रधान है। वह घर की मालकिन है। अपने पति के प्रेम की पूर्ण अधिकारिणी है। स्त्री और पति का प्रेम आदर्श दिखाई पडता है। दाम्पत्य प्रेम का जो रमणीय चित्र इन गीतों में दिखाई पडता है वह स्तुत्य है। एक गीत में परदेश से लौटा हुआ पति घर में अपनी स्त्री को न पाकर फूट-फूट कर रोता है। इससे उसके हार्दिक प्रेम का पता लगता है।

---

१ डा० उपाध्याय, भो० ग्रा० गी० भाग १, पृ० २०६।

हाँ, इतना अवश्य है कि स्त्री के हृदय में अपने पति के लिये जो स्थान है वह पति के हृदय में पत्नी के लिये सभवत उतना नही है।

भोजपुरी स्त्री आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया पराधीन है। वह पढी लिखी भी नही है। जब उसका पति परदेस चला जाता है तब वह गाव के मुन्शी (कायस्थ) को अपना सन्देश उससे लिखवा कर उससे भिजवाती है। अत विशेष पढी लिखी न होने के कारण वह अपनी जीविकोपार्जन के लिये पति के ऊपर पूर्णतया आश्रित है। जब पति परदेस चला जाता है और अपनी लापरवाही से उसके लिये खर्चा नही भेजता तो उसे खाने पीने का भी कष्ट होने लगता है। घर की स्त्रियाँ (सास और ननद) उसे ताना मार कर कहती हैं कि अब तुम किसकी कमाई खाओगी। एक गीत में कोई लम्पट पुरुष किसी स्त्री से पूछता है कि तुम कहा जा रही हो। वह उत्तर देती है कि घर में खाने के लिये रुपया नहीं है। तब वह कहता है कि खाने का खर्चा तो मैं दूँगा परन्तु तुम अपने यौवन में मुझे साझी रखो।[1]

आर्थिक पराधीनता

"बाट में भेंटे रसिया कवन राम हो,
काहा रे जालु मोर रनिया।
आजु के खरचिया ओराइल बाटे हो,
जोबन बेचे ओड गलिया।
आजु के खरचिया में चलाइबि हो,
जोबनवा में हम सझिया।"

इससे स्त्री की आर्थिक पराधीनता का स्पष्ट पता चलता है।

बन्ध्या का कष्ट

भोजपुरी समाज में किसी स्त्री का महत्व उसके पुत्रों की सख्या से ही आका जाता है। जिस स्त्री को जितनी अधिक पुत्र सन्तान होगी उसका आदर घर में उतना ही अधिक होगा। इसीलिये वन्ध्या स्त्री का सम्मान घर में विशेष नहीं होता।

अत वन्ध्या स्त्री पुत्र प्राप्ति के लिये तरह-तरह का उपाय करती है। वह षष्ठी का व्रत रख कर सूर्य से पुत्र देने की प्रार्थना करती है। शीतला को प्रसन्न कर पुत्र प्राप्ति की भिक्षा माँगती है। अनेक व्रत एव विधि विधानों को सम्पादित करती है जिससे उसकी सूनी गोद भर जाय।

इन लोक गीतों में वन्ध्या स्त्री का बडा ही सजीव चित्रण मिलता है। पुत्र के बिना उसकी अधीरता, व्याकुलता, आतुरता एव दीनता जो इन गीतों में चित्रित है सचमुच करुणाजनक है।

स्त्रियों में पुत्र कामना का होना स्वाभाविक है क्योंकि वे जानती हैं कि इसके बिना जीवन निरर्थक है। इसीलिये व्रत, तप एव पूजा पाठ करती हैं। एक सोहर में किसी स्त्री का पुत्र प्राप्ति के लिये गगा स्नान का उल्लेख पाया

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १।

जाता है। गगा जी जब उनसे पूछती हैं कि तुम क्यों स्नान कर रही हो तब वह उत्तर देती है कि मुझे सन्तति (पुत्र) चाहिए।[1]

"सोनवा ए गगाजी ढेर बाटे रुपवा के पूछेला हो।
मोरा रे सनततिया के साध, सनतति हम चाहिले हो।"

इसी प्रकार एक दूसरे गीत में कोई स्त्री पुत्र के अभाव में अपने भाग्य को कोस रही है।[2]

"ए रानी नाही विधि लिखले लिलार,
सतति नाहि मिलेला हो।"

सोहर के ही एक अन्य गीत में सतानहीनता के लिए भाग्य को कोसा गया है।[3] कोई स्त्री सन्तान प्राप्ति के लिये अनेक तीर्थ स्थानों में यात्रा करती है परन्तु पुत्र न होने पर उसका 'बाझिन' नाम नहीं छूटता। इसी मनोवेदना की अभिव्यजना नीचे की पक्ति में बडी सुन्दर रीति से हुई है।[4]

"आताना तोरिथि हम कइली,
बाझिनी हम रहि गइली रे।"

कोई स्त्री पुत्र के अभाव में अपने जीवन को निरर्थक बतलाती हुई पश्चाताप कर रही है। वह कहती है।[5]

"लाल पियर ना पहिरली, चउक ना बइठली हो।
ललना, गोदिया ना खेलवली बालकवा, मोरे जनम अकारथ हो।"

वन्ध्या स्त्री से उसका पति भी प्रसन्न नही रहता और वह स्त्री को अपने व्यग्य वाणो से मारता रहता है। कोई स्त्री अपने देवर से कहती है कि तुम्हारा भाई केवल एक पुत्र के विना मुझे कटु वचन कहता रहता है।"[6]

"ए बबुआ राउर भइया बोलेले कुबोलिया,
न एक रे बालक बिनु ए राम।"

वह पुत्र प्राप्ति के लिए सूर्य की पूजा करने के लिए घर से चल पडती है और अपने प्रयत्न में सफल होती है। छठी माता के एक गीत में कोई पुत्रहीन स्त्री अपनी सास से पुत्र प्राप्ति का उपाय पूछ रही है।[7] कोई स्त्री सूर्य से पाँच पुत्र देने की प्रार्थना कर रही है।[8] पार्वती जी भी पुत्र कामना से षष्ठी व्रत करती हुई पाई जाती हैं।[9] साथ ही एक अन्य स्त्री भी छठी माता से पुत्र माँग रही है।[10] कोई वन्ध्या स्त्री सूर्य से प्रार्थना करती है कि हे भगवान्! मेरी पूजा का आप निरादर क्यों करते हैं। इसीलिये न, कि मैं बाझ हूँ। इस गीत में बन्ध्या की मनोवेदना स्फुट (प्रकट) हो रही है। स्त्रियाँ पुत्र प्राप्ति के लिए शीतला माता की भी पूजा करती हैं परन्तु वे बन्ध्या की पूजा को स्वीकार नही करती क्योंकि उनका जीवन पुत्र के बिना अपवित्र है।[11] सीता जी भी पुत्र प्राप्ति के लिये रोती

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ५८। २ वही पृ० ६२। ३ वही पृ० ६२। ४ भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ७२। ५ वही पृ० ८२। ६ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २३६। ७ वही पृ० २४९। ८ वही पृ० २५३। ९ वही पृ० २५३। १० वही पृ० २५६। ११. भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २५७।

हुई पाई जाती हैं। वह कहती है कि मुझे पुत्र नहीं हुआ अतः मेरे जीवन की मनोकामना कैसे पूर्ण होगी।[1]

"राजा मोरा ोदिया ना जनमल बलकवा,
यहक कइसे पुजिहई हो।"

कोई बन्ध्या स्त्री अपनी पुत्रेच्छा की पूर्ति के लिये किसी दूसरी स्त्री से उसका पुत्र मांगती है। परन्तु वह अपना बालक एक बाझ को देने से स्पष्ट इन्कार कर जाती है।

"ए रानी अपन बालक नाहिं देबो
तोर नइयाँ बझिनिया के हो।"

इस पर वह बाझ स्त्री लकड़ी का निर्जीव बालक बढ़ई से बनवा कर अपनी गोदी में लेकर पुत्र खेलाने की अपनी आन्तरिक इच्छा को सन्तुष्ट करती है।[2]

"ए बढ़इया, काठे के होरिलवा गढ़ि देहु
त जियरा जुड़ाइबि हो।"

इस एक पंक्ति में बन्ध्या की पुत्र कामना अपनी चरम सीमा को पहुँची हुई दिखाई पड़ती है।

सोहर के एक गीत में स्त्री की यह पुत्रेच्छा अप ी सीमा को पार करती हुई दिखाई पड़ती है। बाँझ स्त्री बढ़ई से काठ का बालक बनवाती है और वह काष्ठमयी पुत्र की प्रतिमा से निवेदन करती है तुम ेकर मुझे सुनाओ जिससे बांझ होने का मेरा कलंक मिट जाय। इस पर काठ का बालक कहता है कि यदि मैं भगवा् का बनाया हुआ होता तो रोकर सुनाता भी। हे रानी! बढ़ई का गढ़ा हुआ बालक रोना नहीं जानता।[3]

"काठे के बालक गढ़ि दिहले, अँगने धरी दिहलई हो।
बाबुल मोरे आँगन रोई ना सुनावहु,मैं बाँझिनी कहावहुँ हो।
रानी बढ़ई के गढ़ल होरिलवा, रोवन नाहीं जानइ हो।
दैव गढल जो मैं होइतों, तो ेद के सुनउतेउँ हो।"

जात के एक गीत में बालक के बिना स्त्री के गोद के सूनो होने का उल्लेख पाया जाता है।[4] पुत्र जन्म के एक दूसरे गीत में कोई स्त्री कहती है कि एक गोदी में तो मैंने भाई को लिया और दूसरी में भतीजे को। फिर भी केवल एक बालक के बिना मेरी गोद सूनी मालूम पड़ती है।[5]

"क कोरा लिहलों मैं भैया, दूसरे कोरा भतीजा नु हो।
अहो रामा तबहू ना गोदिया सोहावन, अपना बालक बि ु हो।"

स्त्री की यह उक्ति सर्वथा सत्य है।

कभी-कभी बन्ध्या को पुत्र के अभाव के कारण सास और ननद के व्यंग्य बाणों के साथ ही मार भी सहनी पड़ती है। गाँव की सभी स्त्रियाँ उसे 'बाझिन' के नाम से पुकारती है। इस व्यवहार से ऊबकर कोई स्त्री कहती है कि मेरे मन

---

१. वही. पृ० २७२। २. भो० लो० गी० पृ० १७। ३. त्रिपाठीः ग्रा० गी० पृ० ७।
४. भो० लो० गी० पृ० १७६। ५. त्रिपाठीः ग्रा० गी० पृ० ९९।

में ऐसा विचार आता है कि मैं विष खाकर मर जाऊँ अथवा आग में जल मरूँ जिससे बांझ होने का कलक सदा के लिए मिट जाय।[1]

"अस मन करे मइया जहरवा खाइ मरितो हो।
दुइ मन करे मइया अगिनिया जरि हो जाऊँ।'

पुनाभाव म स्त्री का रोना तो एक साधारण घटना है। कोई स्त्री देवी से कहती है कि मैं बांझ होने से रो रही हूँ, आप दया कीजिए।[2]

"कोखिया विरोगे हम रोइला मइया होई ना देवाल।'

पुत्र के बिना स्त्री का पद-पद पर अनादर होता है। कोई वन्ध्या स्त्री अपने पति को गले का हार बनाने के लिये कहती है। तब वह उत्तर देता है कि तुम काली कलूटी एव गन्दी हो, हार लेकर क्या करोगी ? परन्तु जब एक वर्ष के बाद उस स्त्री को पुत्र रत्न उत्पन्न होता है तब वही पति स्वय हार बनवाकर पत्नी के लिए लाता है।[3] इसी अपमान की असह्यता के कारण एक स्त्री वन में चले जाने का निश्चय करती है और जोगिनी बनकर जीवन व्यतीत करती है।[4] किम्बहुना, वन्ध्या स्त्री को भक्षण करने से बाघिन भी इन्कार करती है क्योंकि वह समझती है कि बांझ स्त्री को खाने से मैं भी बाझिन हो जाऊँगी। सर्पिणी भी वन्ध्या को डँसने से डरती है कि उसके डँसने से मुझे वन्ध्यत्व की छूत न लग जाय। जगत्धात्री पृथ्वी भी उसे शरण देने से मना करती है। अधिक तो क्या, अपनी प्रेम वत्सला मा भी प्यारी पुत्री को बांझ होने के कारण आश्रय देने से स्पष्ट अस्वीकार कर देती है[5]

"बाघिन, हम का जो तू खाइ लेतिउ, बिपतिया से छूटित हो।
बाझिन, तुमका जो हम खाई लेबि, हमहू बाझिन होइब हो।
नागिनि, हमका जो तुम डसि लेतिउ, विपति से हम छूटित हो।
बाझिन, तुमका जो हम डसि लेबि, हमहू बाझिनी होइब हो।
मइया, हम का जो तुम राखि लेतिउ, विपति से हम छूटित हो।
बिटिया, तुमका जो हम राखि लेबि, हमहू बाझिनी होइब हो।
धरती, तुमही सरन अब देहु, बाझिनि नाम छुटई हो।
बाझिनि तोहका जो हम राखि लेवि, हमहू होइबि ऊसर हो।"

इन उल्लेखो से समाज मे वन्ध्या का स्थान और उसके भीषण कष्टो का सहज ही में अनुमान किया जा सकता है।

विधवा की दुर्दशा

भारतीय जन समाज में विधवा का स्थान बडा ही दयनीय है। पुरुष अनेक विवाह कर सकता है। परन्तु बाल विधवा भी दूसरा विवाह नहीं कर सकती। पुरुष के स्त्री धर्म पालन के लिए कोई विशेष नियन्त्रण नही है परन्तु विधवा की दिनचर्या के लिये बडे कडे नियम बनाये गये हैं। विधवा की आर्थिक दशा भी बडी दुखद है। उसे उत्तराधिकार का कोई अधिकार नही है। अत पति की

१. भो० लो० गी० भाग पृ० ३५४। २ वही पृ० ३५७। ३ त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ८१।
४ भो० लो० गी० ५६। ५. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ११।

मृत्यु के बाद वह पुत्र तथा घर के अन्य कुटुम्बियों की दया पर आश्रित रह ी है। यदि विधवा कहीं साथ ही बन्ध्या भी हुई तो फिर उसकी अकथ कहानी है। उसे भरपेट भोजन और वस्त्र के भी लाले पड़ने लगते हैं। कुटुम्बी लोग उसके खाने के लिये भोजन मात्र बड़ी कठिनाई से देते हैं जिसे भोजपुरी में 'खोरिस' कहते हैं। कभी-कभी इस 'खोरिस' को भी ले के लिए विधवा को कचहरी की शरण लेनी पड़ती है। उसका मुख देखना भी पाप समझा जाता है, वह किसी मंगल कार्य में भाग नहीं ले सकती और न किसी शुभ उत्सव में अगुणी हो सकती है। इस प्रकार विधवा का जीवन आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से बड़ा ही शोचनीय है जिसका वास्तविक चित्रण हम लोकगीतों में मिलता है।

कोई बाल विधवा पुत्री अपने पिता से कहती है कि ऐ पिताजी! मेरी माग सिन्दूर के अभाव में रो रही है, नयन काजल के बिना ो रहे हैं, क्योंकि विधवा होने से मैं श्रृंगार नहीं कर सकती, मेरी गोदी बालक के बिना रो रही है, और मेरी सेज पति के बिना सूनी मालूम पड़ती है।[१]

"बाबा सिर मोरा रोवेला सेंदुर बिनु,
नयना काजलवा बिनु ए राम।
बाबा गोद मोरा रोवेला बालक बिनु
सेजिया कन्हैया बिनु ए राम।"

इस गीत में विधवा का हृदय फूट-फूट कर रोता दिखाई पड़ रहा है। अन्तिम ंक्ति के प्रत्येक अक्षर से करुणा चुई पड़ती है।

किसी भाई ने बहन को दु:ख देने वाले अपने बहनोई की हत्या कर दी है। इस पर बहन अत्यन्त दुखी होकर भाई से कहती है कि ऐ भइया! अब मेरी राड़ विधवा की मड़ई छप्पर को कौन छावेगा। क्योंकि तुमने मेरे पति को मार डाला है और कौन मेरी रात और दिन को बितायेगा। अब मेरी कौन सुध लेगा।[२]

"के मोरा छइहें राड के मडैया,
के मोर बितइहें दिनवा रतिया हो राम।"

भोजपुरी में एक कहावत प्रचलित है कि 'सबके दिन ओराला लेकिन राड़ के दिन ना ओराला' अर्थात् सबका दिन किसी प्रकार व्यतीत हो जाता है परन्तु विधवा का दिन किसी प्रकार नहीं कटता। उपर्युक्त गीत में इसी कहावत की पुष्टि की गई है।

कोई स्त्री अपने पति से बंगाल न जाने की प्रार्थना करती हुई कहती है कि वहाँ का पानी खराब होता है। पीने से वह लग जाता है। यदि वहाँ के पानी के लगने से तुम्हारी मृत्यु हो जायगी तो मैं अनाथ हो जाऊँगी।[३]

"पुरुब के पनिया जहर बिख महुरा, लागे करेजवा में घाव।
पनिया पियत सामी जो मरि जइब, हम धनि होइबो अनाथ।"

वास्तव में पति के बिना स्त्री अनाथ समझी जाती है। तुलसी दास जी ने भी

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग० १ पृ० २११। २. भो० लो० गी० पृ० १०३।
३. भो० लो० गीत पृ० ४५६।

"जिय बिनु देह, नदी बिनु वारी।
तैसहि नाथ पुरुख बिनु नारी।"

लिखकर इसी उपर्युक्त तथ्य का समर्थन किया है।

कोई विधवा विलाप करती हुई कहती है कि ऐ पति! तुम्हारे बिना मेरा जीवन नष्ट हो गया। मायके में यदि मेरा भाई होता और ससुराल में यदि देवर होता तो मैं उसकी भी आशा करती परन्तु अब मैं किसका अवलम्ब ग्रहण करूँ।[1]

"बिगडी प्रभु नाथ तोहे बिनु हमरी।
नइहर में जो बीरन होइते उनहू के करितो आस।
ससुरा मे जो देवर होइते, उनहू के करिता आस।
दुसरा पर एको लो होखिते तो हम होइती ठाढ़।"

रूपा देवी अटारी पर चढ़कर अपने लम्बे-लम्बे केशों को सँवार रही है। इतने में ही उसकी माता आकर खबर देती है कि ऐ बेटी! अब क्या बाल सँवारती हो तुम्हारा पति गाय की रक्षा करते समय मार डाला गया। इतना सुनते ही हाथ की कंघी हाथ में रह गई और उसके सिर का सिन्दूर नष्ट हो गया।[2]

"का तुहू रूपा बेटी झारेलू लामी केसिया,
तोरा सामी जूझेले गइया के रे गोहारि।
हाथ के ी ककही हाथहि रहि गइली,
माथा के सेनुरवा वा हरले रे जाइ।"

सचमुच विधवा की दशा बडी दयनीय होती है। वह अपने शरीर का शृंगार नही कर सकती, इसी सत्य की ओर उक्त गीत का सकेत है। इसी प्रकार अन्य गीतों मे भी वैधव्य का बडा करुणाजनक चित्र खींचा गया है।

भोजपुरी समाज में ैधव्य का अभिशाप सबसे बडा समझा जाता है। यही कारण है कि स्त्रियाँ जब आपस में झगडा करती है तो गाली के रूप में विधवा होने का शाप देती हैं। उदाहरण के लिये 'तोहरा माग में खरी दरा, कोइला द े, तोहारा घरे दूध लागो' आदि गालियाँ इसी वैधव्य की सूचक है। स्त्री का सुहाग उसकी सबसे बडी अमूल्य निधि है और विधवापन सर्वश्रेष्ठ अभिशाप। इसी कारण से सामाजिक, आर्थिक एव धार्मिक दृष्टि से विधवा को स्त्री समाज में अत्यन्त नीचा स्थान प्राप्त होता है।[3]

आदर्श सतीत्व

लोक गीतो में स्त्रियों का चरित्र बडा निर्मल, विशुद्ध एव पवित्र दिखलाया गया है। विषम परिस्थितियों में पडकर, आपत्तियों के समूहों का सामना कर, ए बलशाली कामुकों को चकमा देकर किस प्रकार स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षा की है इसकी कथा भारतीय इतिहास की अज्ञात किन्तु अमर कहानी है।

---

१ भो० लोक गीत पृ० ४६६। २ वही पृ० ४७०। ३ विधवा के शास्त्रीय विवेचन के लिये देखिए डा० कृष्णदेव उपाध्याय 'हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।'

सतीत्व की रक्षा के लिये स्त्रियों ने कौन सा कष्ट नहीं झेला एवं कौन सा कठोर त्याग नहीं किया। कुसुमादेवी ने प्रत्यक्ष जल समाधि लेकर आततायी एवं दुराचारी मुगलों के पंजे से अपना पिंड छुड़ाकर अपना सतीत्व बचाया है। इसी प्रकार भगवती देवी ने भी बड़ी चतुराई से दुराचारी कामुकों से अपने सतीत्व की रक्षा की है। धन की अपार राशि उनके सतीत्व को खरीदने में असमर्थ रही है। 'डाल भर सोना' और 'मोती के हार' को ग्रहण न कर इन स्त्रियों ने कामुकों का जो तिरस्कार किया है वह आदर्श स्वरूप है। सच तो यह है कि सतीत्व का यह दिव्य आदर्श जो इन गीतों में चित्रित है संसार के किसी भी देश में ढूँढ़े पर नहीं मिल सकता।

कोई स्त्री नदी पार करने के लिये मल्लाह से नाव माँगती है परन्तु कामुक मल्लाह कहता है कि मैं तुम्हें दूध पिलाऊँगा, मछली खिलाऊँगा। अतः आज तुम यहीं रहो। इस पर सती स्त्री उत्तर देती है कि तुम्हारी मछली में आग लग जाय और दूध में वज्र पड़े। मैं पार नहीं जाऊँगी।[1]

"आगि लगइबो नाल्हावा मछरिया, बजर परसु तोरा दूध ए।
आरे दुनु कौ कुल्ह तोरा जात के करीयरा, नउजी उतारि दना पार ए।"

प्रोषितपतिका किसी सुन्दरी स्त्री को देखकर कोई बटोही उस पर मोहित हो जाता है और उसे बहुमूल्य सोना, मोती आदि देकर उसके सतीत्व को खरीदना चाहता है परन्तु वह सती स्त्री क्या ही सुन्दर उत्तर देती है कि तुम्हारे सोने में आग लग जाय और मोतिया में वज्र पड़े। दुनिया में सत छोड़ने से 'पत' नहीं रहती।[2]

"डाल भरि सोना लेहू मोतिया से माँग भरु,
जात छाडि मोरे सग लागहु रे की।
आगि लागो सोनवा बजर परो मोतिया रे,
सत छोड़ि कइसे पत रहिहें तु रे की।"

इसी प्रकार एक जाँत के गीत में एक अश्वारोही कामुक के द्वारा किसी स्त्री को सोना और मोती देने का उल्लेख मिलता है जिसे वह पति परायणा स्त्री दृढ़तापूर्वक तिरस्कार कर अस्वीकार कर देती है।[3]

पुत्र जन्म के एक और गीत में स्त्री की सतीत्व रक्षा के साथ ही साथ उसका अदम्य साहस एवं अलौकिक पराक्रम भी दिखाया गया है। नदी के पार जाने के लिये नाव माँगने पर कामुक मल्लाह उससे हार और अँगूठी देने का लालच देकर व्यभिचार का प्रस्ताव करता है। वह सती स्त्री उसके इस प्रस्ताव को पैरों से ठुकराती हुई नदी को तैर कर पार कर जाती है। लौटती बार वह अपने भाई को इस दुष्ट मल्लाह की खाल खींचकर उसमें भूसा भरा देने का आदेश देती है।[4]

"अगिया लगावऊँ तोरी मुदरी बजर परे तिलरी।

० ० ० ०

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १३५। २ भो० लो० गी० पृ० १६५-६६। ३ भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २३४। ४ त्रिपाठी ग्राम गी० पृ० ७५-७६।

जाते ही दइया अकेलिन लौटत बिरन मग।
केवटा सलवा कढ़ाय भूसा भरतेऊँ, जवन मुख भाखेऊँ।"

मैना नामक स्त्री पर गोपी नाम का कोई कामुक आसक्त है। वह उसे अनेक प्रकार का प्रलोभन देता है। वह मैना के ससुराल में जोगी का रूप बनाकर पहुँचता है। परन्तु मैना उससे कहती है कि तुम प्रेम की आशा छोड़ कर चुल्लू भर पानी में डूब मरो। तुम तो मेरे धर्म के भाई हो।[1]

"तोहरे करमवा के कहा गोपी आमिक,
चुल्लू भरि पनिया मे डुबहू रे जी,
आसिक के आस छाडि देहू गोपी भइया
तुहूँ त धरम केरा भइया हू रे जी।"

स्त्री ने प्रेमी को अपना धर्म का भाई बनाकर वाक्चातुरी से अपने धर्म का निभाया है।

मुगिया ने सती होकर किस प्रकार दुराचारी मजधियों से अपने आदर्श सतीत्व की रक्षा की है इसका उल्लेख 'सती प्रथा' के प्रकरण में अन्यत्र विस्तार से हुआ है।[2]

लचिया नामक किसी सुन्दरी स्त्री पर कोई राजा का लड़का मोहित हो गया है। वह अनेक प्रकार का प्रलोभन उसे देता है परन्तु लचिया का, अपने पति में निश्चल प्रेम टस से मस नहीं होता। वह कहती है कि राजकुमार! तुम मुझे क्या प्रलोभन दे रहे हो। मेरा पति तुमसे कहीं अधिक सुन्दर है। उसका नया जूता 'मरर मरर' शब्द करता है और उसके पैर की एड़ी दर्पण के समान स्वच्छ है।[3]

"जो हम चली राजा तोहरे गोइनवा रे ना।
राजा तोरे ले सुन्दर मोर बिअहुवा रे ना।
जे के मरर मरर करे जुतवा रे ना।
जे के एड़िया बरन दरपनिया रे ना।"

इसी गीत में राजकुमार का सम्पूर्ण वैभव गरीबनी लचिया के धनी प्रेम को नहीं खरीद सका है।

निरवाही के एक गीत में जयसिंह नामक राजा लचिया नामक किसी स्त्री से व्यभिचार का प्रस्ताव करता है। इस पर सती स्त्री लचिया, अपनी कमर से कटार निकाल कर राजा का वध कर देती है[4] और इस प्रकार अपनी सतीत्व की रक्षा करती है। रेशमी नाम की किसी सुन्दरी स्त्री पर कोई कोतवाल आसक्त है और वह उससे पूछता है कि यह अलौकिक रूप सौंदर्य तुम्हें कैसे मिला। क्या तुम साँचे में ढाली गई हो अथवा चतुर सोनार ने तुम्हें बनाया है। इस पर शुद्ध आचरण करनेवाली रेशमी उत्तर देती है कि ऐ कोतवाल! मैं तुम्हारी दाढ़ी में आग लगा दूँगी। कहीं आदमी को सोनार बनाता है।[5]

---

१. डा० उपाध्याय भो० लो० गी० पृ० १३५। २ वही पृ० २५३। ३. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ३४३, ३४७, ३६१। ४ वही पृ० ३८७। ५ त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ३६१। ६ वही पृ० ४५६।

"दहिया में जारौं भैया तोर कोतवलवा,
मनवउवा गईला सोनार बहुअरि रेसमी।"

कोई स्त्री पानी भरने गई है। वहाँ कोई राजपूत उसे देखकर मोहित हो जाता है और उससे प्रेम की बातें करके अपने जाल में फँसाना चाहता है। वह कहता है कि यदि तुम्हारी जैसी स्त्री मुझे मिले तो मैं उसे आँख और हृदय में छिपा कर रखूँ। इस पर वह सती स्त्री उत्तर देती है कि तुम्हारे ऐसे राजपूत को मैं पानी तो उसे नौकर रखती और अपने पति के पाँव की जूती उससे ढोवाती।[1]

"अस राजपुतवा जो पाइत चाकर हम राखित हो।
अपने प्रभुजी के पाय के पनहिया तो ताँसे ढोवाइत हो।"

कुसुमा देवी ने किस प्रकार आततायी मुगलों के हाथों से, छल पूर्वक निकल कर, अपने पिता के तालाब में डूबकर, अपने सम्मान एवं सतीत्व की रक्षा की, इसकी कहानी लोकगीतों के इतिहास में सदा अमर रहेगी। कुसुमा देवी का गीत एक लोक गाथा (बैलेड) है जो स्त्री के सतीत्व का दिव्य आदर्श हमारे सामने उपस्थित करता है।[2] अपनी आत्महत्या कर के भी सतीत्व की रक्षा करना भारतीय ललनाओं का ही काम है।

कोई देवर प्रोषितपतिका अपनी भावज से अनुचित प्रस्ताव करता हुआ पूछता है कि तुम किसके लिये अपने यौवन (स्तन) को सुरक्षित रख रही हो। इस पर भावज उत्तर देती है कि मैं अपने पति के लिये यौवन को सुरक्षित रख रही हूँ। ऐ देवर! जैसा तुमने अनुचित प्रस्ताव किया है यदि वैसा फिर किया तो तुम्हारी लम्बी-लम्बी बाहों को मैं अपने पति के द्वारा कटवा डालूँगी।[3]

"देवर मचिलें जोबनावा हो बलमुआ लागिना।
० ० ० ०
अइसन बोली जनि बोलु देवरवा हो, काटाइरे देबों ना।
तोरी अलफी रे बहियाँ, काटाइरे देबा ना।"

प्रेम परायणा पत्नी का यह उत्तर कितना साहसपूर्ण है।

किसी स्त्री का पति बारह वर्ष के बाद परदेस से लौटता है। उसकी बहन अपने भावज के दुश्चरित्र की कथा कहकर उसकी अग्नि परीक्षा कराती है। दुखिया स्त्री इसके लिये भी तैयार हो जाती है और अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अपने सतीत्व को प्रमाणित करती है।[4]

इन लोकगीतों में सतीत्व की भावना इतनी सूक्ष्मता को प्राप्त हो गई है कि विवाह के पहले अपने पति से भी स्पृष्ट होना स्त्री पातक समझती है। वह अपने वर से कहती है कि ऐ दुल्हा! अभी तुम मुझे मत छुओ क्योंकि मैं अभी कुँवारी हूँ। जब मेरे पिता जी कन्यादान कर देंगे तभी मैं तुम्हारी स्त्री होऊँगी।[5]

---

१ डा० उपाध्याय भो० लो० गी० पृ० ५६। २ वही पृ० ४२६-४३३। ३. वही भो० लो० गी० भाग १ पृ० २१७। ४ भो० लो० गी० पृ० १४१-४२। ५ भो० लो० गी० पृ० ३६२।

"जनि छुग्र ए दुलहा, जनि छुग्र, ग्रबही कुँवारी।
जब मोर बाबा संकलपिहें, तब होइबों तोहारी।"

भोजपुरी समाज में आज भी स्त्रियाँ अपने भावी पति से बात तक नही कर सक्ती। उसको छूने अथवा छुये जाने की चर्चा तो बहुत दूर रही। आदर्श सतीत्व की यह कल्पना पशु जगत् में भी आरोपित की गई है। कोई हरिणी अपने हिरन (पति) की खाल कौशिल्या से मागती हुई कहती है कि मेरे पति को मार कर उसका मांस तो आपके रसोईघर में पकाया जा रहा है परन्तु उसकी खाल हमें दे दीजिये। मृत पति की उस खाल को पेड़ पर टाँग कर मैं अपने मन को सान्त्वना दूँगी:[1]

"पेड़वा से टाँगवि खररिया त मनवा समुझाइबि हो।
रानी हिरि फिरि देखबि खलरिया, जनुक हरिना जीवतहि हो।"

इसी प्रकार एक दूसरे गीत में हिरन की हड्डियों को लेकर हरिणी के सती होने का उल्लेख हुआ है।

जात के गीत में सतीत्व का स्वर्गीय आदर्श चित्रित हुआ है। कोई परदेसी पति, वेश बदलकर, घर लौट कर, अपनी स्त्री को लालच दिखाकर फुसलाना चाहता है। वह उसे प्रचुर धन देता है। परन्तु वह उस धन को अस्वीकार कर जो उत्तर देती है वह भारतीय ललना के सतीत्व की आधार शिला है।[2]

"अगिया लागे गलहार, बजर परे मोती लरी।
तोहरो ले पिया मोर सुन्दर, गुलाब के फूल छड़ी।
कटवों चननवा के गाछि पलंगिया उसाहबि हो।
ताही पर पिया के सुताइबि, बेनिया डोलाइबि हो।
धनि सतवन्ती नारि घर के ज्योति खरी।
भेस बदलि पिय ठाढ़ देखि धनि मुरुछि परी।"

सतीत्व का ऐसा भव्य आदर्श भारतीय ललना की निजी विशेषता है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

सती प्रथा:[3]

प्राचीन भारत में सती प्रथा प्रचलित थी जिसका चरम उत्कर्ष भारतीय इतिहास के राजपूत काल में पाया जाता है। प्राचीनकाल में पति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम से अभिभूत होकर स्त्रियाँ प्रियतम के शव के साथ सती हो जाती थीं। सती होते समय वे सौभाग्यवती वधू के समान अपना शृंगार कर अग्नि में प्रवेश करती थीं। राजपूती समय में हँसते-हँसते सैकड़ों स्त्रियों का धधकती हुई ज्वाला में 'जौहर' करना इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित है। कालक्रम से इस प्रथा में कुछ बुराइयाँ आ गईं और स्त्री की इच्छा न रहते हुए भी लोग उसे बलपूर्वक मृत पति के साथ आग में जला देते थे। इसके विरोध में राजा राममोहन राय ने अपनी आवाज उठाकर सती एक्ट पास कराया था।

---

१. भो० लो० गी० पृ० २६। २. वही पृ० १४७। ३. इस प्रथा के विशेष विवरण के लिये देखिये। [क] डाक्टर अलतेकर: दि पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू कल्चर।
[ख] डाक्टर कृष्णदेव उपाध्याय: हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।

इसी प्राचीन, सती प्रथा का भी लोक गीतो में वर्णन मिलता है। इन गीतो में सती का जो स्वरूप चित्रित है वह नितान्त भव्य और दिव्य है। पति की मृत्यु का समाचार सुनते ही स्त्री उसकी चिता सजवाती है और अपना शृगार कर, अग्नि में प्रवेश कर धधकती हुई आग की लपटो के साथ स्वय भी स्वर्ग को चली जाती है।

जात के एक गीत में वस्ती सिंह की स्त्री के सती होने का बडा सुन्दर उल्लेख मिलता है। वस्ती सिंह को उसके भाई ने मार डाला। इसका समाचार जब उसकी स्त्री सुनती है तब वह उसकी पति की लाश मँगा कर चिता सजाती है। इतने ही में उसकी साडी में आग की लपटें निकलने लगती है और वह पति के साथ जलकर सती हो जाती है।[१]

"जब लक भसुर आगि आने गइले,
फुफुनी से निकले अँगरवा हू रे जी।
सगहि भइली जरि छरवा हू रे जी।"

इसी प्रकार 'टिकुली' नामक स्त्री भी अपने पति के शव के साथ जलकर सती हो जाती है।[२]

"राम फुफुतनि अगिया धधक्नी हो राम।
राम दुनो बेकति जरि छारवा भइले हो ना।"

भगवती नामक पति परायणास्त्री के सती होने का बडा ही मार्मिक वर्णन जात के एक गीत में हुआ है। दुष्ट पिता ने उसके पति को मार डाला है। बेटी पिता से अपने पति की लाश मँगवाती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि हे भगवन्! यदि मैं वास्तव में पति की विवाहित स्त्री होऊँ तो मेरी फुफुनी (साडी) से आग प्रकट हो जाय। इतना सुनते ही सती के प्रभाव एव प्रताप से उसके वस्त्र से आग की लपटे निकलने लगती और वह सती अपने प्राणप्रिय पति के साथ जलकर अमर हो जाती है।[३]

"जऊँ रउरा हई रे बारे के बियहुआ रे ना।
ए रामा फुफुनी से अगिया धधकावहु रे की।
ए रामा फुफुतिनि अगिया धधकवली नु रे की।
ए रामा दुनो रे बेकति जरि गइलनि रे की।"

जात के एक और गीत में देवर के द्वारा बडे भाई के मार दिये जाने पर उसकी स्त्री वन-वन में घूम कर के चन्दन की लकडी इकट्ठा करती है और चिता तैयार कर मृत पति से कहती है कि यदि आप सत्य ही मेरे 'विवाहित पति हैं तो मेरे आचर से आग उत्पन्न हो जाय।' पतिव्रता स्त्री के प्रताप से तत्काल ही आग उत्पन्न हो जाती है और दोनो प्राणी चिता में जलकर अमरलोक को प्राप्त हो जाते हैं।[४]

---

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २४५। २ भो० लो० गी० पृ० ८५। ३. वही. पृ० ६४। ४ वही पृ० १३३।

"जो रउरा होई सामी सत के निग्रहुता।
अँचरा अगिनिया उपजाई मोरे राम।
अँचरा भभकि उठल सतिया भसम भइली।"

इसी प्रकार तिलगिया की स्त्री ने भी अपने पति के साथ सती होकर अपने सतीत्व की रक्षा की है।[1] रूपा नामक स्त्री जब अपना शृंगार कर रही है उसी समय उसके पति की मृत्यु की सूचना उसे मिलती है। वह तत्काल ही सती होने के लिये तैयार हो जाती है। वह अपनी माता से रेशमी वस्त्र माँगती है, भाई से पति की चिता के लिये चन्दन की लकडी मागती है और अपनी भावज से सिन्दूर से भरा 'सिंधौरा' मागती है। प्रेमवत्सला माँ पुत्री से कहती है कि तुम सुकुमार हो अत अग्नि की ज्वाला कैसे सहोगी। तुम सती मत होवो। तब पुत्री उत्तर देती है कि ऐ माँ! अग्नि की ज्वाला तुम्हारे लिये भयंकर है परन्तु मेरे लिये यह आग तो वायु के समान शीतल है।[2]

"मचियहि बइठलि अमा तू मइया हो हमारी।
लहुरा पटोरवा देहु हमरा के दान।
पासावा खेलत तुहु भइया हो हमार।
चनन चइलिया देहु हमरा के दान।
अब द सिन्दोरवा भऊजी हमरा के दान।
एक त पातरि बेटि दूसर सुकुवारि।
कइसे कइसे सहबू बेटी अगिनी के आचि।
तोहरा लेखे अम्मा हो अगिनि के आँचि।
हमरा लेखे अँचिया बा सितली बतास।"

सती होने के लिए उद्यत स्त्री अपना पूर्ण शृंगार करके चिता में प्रवेश करती है और अपने सिन्होरे, जो उसके सुहाग का सूचक है, को भी जला देती है। इसी पुरातन प्रथा का उल्लेख उक्त गीत में हुआ है। साथ ही सती स्त्री की दृढता प्रशसनीय है। इसी प्रकार एक जतसार में उदयी सिंह की स्त्री के सती होने का उल्लेख पाया जाता है।[3] सुगिया नामक स्त्री अपने पति के लम्पट बडे भाई से अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिये पति के साथ अग्नि में प्रवेश कर सती हो हो जाती है।[4]

सती होने की इस भावना का आरोप पशुओं में भी किया गया है। कोई शिकारी से निवेदन करती है तुम हिरन का खाल भले ही ले लो परन्तु उसके हाड (हड्डी) को मुझे दे देना जिसे लेकर मैं सती हो जाऊँ।

"हाड लेइ सती होइबो, ओहि जमुना के तीर।"

दिव्य:

प्राचीन भारत में दिव्य की प्रथा अत्यन्त अधिक प्रचलित थी। चोरी, कर्ज (ऋण), सीमा निर्णय, भूमि दान, और पशुहरण आदि मामलो में अपराधी का

---

१. भो० लो० गी० पृ० ४२६। २ वही पृ० ४७१। ३ त्रिपाठी ग्राम गीत पृ० ३१०-३१३। ४. वही पृ० ३४१-४५।

निर्णय करने के लिये 'दिव्य' का प्रयोग किया जाता था। जब अपराधी के निर्णय में साक्ष्य, लिखित प्रमाण आदि साधारण साधन असफल हो जाते थे तो असाधारण या अलौकिक साधना से काम लिया जाता था। इन्हीं अलौकिक साधनों के होने के कारण ही इसे 'दिव्य' कहते हैं। नारद ने लिखा है कि जब किसी मुकदमे में साक्षी (गवाह) न मिलें तो भिन्न भिन्न प्रकार के दिव्य और शपथ के द्वारा इसका निर्णय करना चाहिये।[1] कुछ आचार्यों ने दिव्य और शपथ को दो भिन्न वस्तुयें माना है। उनका मत है कि दिव्य के द्वारा तत्काल निर्णय किया जाता है परन्तु शपथ के द्वारा अधिक समय लगता है। परन्तु व्यास ने दोनों को एक ही माना है और दिव्य के लिये 'शपथ' शब्द का प्रयोग किया है।[2]

इन लोकगीतों में दिव्य के लिये 'किरिया लेना' शब्द का प्रयोग किया गया है।[3] विष्णु धर्म सूत्र[4] में अलौकिक प्रमाण को 'दैविकी क्रिया' कहा गया है। अतः 'किरिया लेना' शब्द इसी संस्कृत दैविकी क्रिया का अपभ्रंश रूप है। धीरे-धीरे दैवी की शब्द का लोप हो गया और 'क्रिया' शब्द 'किरिया' रूप में परिवर्तित हो गया। भोजपुरी में शपथ खाने को 'किरिया लेना' या 'किरिया खाना' कहते हैं। अतः 'किरिया लेना' शपथ अथवा दिव्य के लिये प्रयुक्त होता है। कहीं-कहीं 'किरिया' के लिये 'किचरवा लेना' का प्रयोग भी पाया जाता है।[5] अन्यत्र 'सपथ लेना' का भी उल्लेख उपलब्ध होता है।

शपथ अथवा दिव्य का प्रयोग न्याय संबंधी मामलों में ही नहीं किया जाता था बल्कि साधारण परिस्थितियों में अपनी बात को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिये अथवा अपने आचरण की शुद्धता प्रमाणित करने के लिये भी किया जाता था। नारद ने लिखा है कि दिव्य का प्रयोग उस समय भी किया जा सकता है जब किसी स्त्री के सतीत्व में सन्देह हो जाय।[6] नारद के इस कथन से सीता की अग्नि परीक्षा प्रत्यक्ष सामने आ जाती है। नारद ने साधारणतया स्त्रियों के द्वारा 'दिव्य' का प्रयोग निषिद्ध बतलाया है।[7] परन्तु उपर्युक्त विधान केवल विशेष अवस्था में ही है। लोकगीतों में 'दिव्य' का जो उल्लेख पाया जाता है वह केवल स्त्रियों के लिये ही है और वह भी केवल उनके सतीत्व की शुद्धता की परीक्षा के लिये। यद्यपि पुरुषों ने भी वैसा ही अपराध किया है परन्तु उनके द्वारा दिव्य प्रयोग का उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता। किसी स्त्री का पति परदेस चला गया है वह पत्र भी नहीं भेजता। वह दूसरा विवाह कर वहीं आनन्द लेता है। परन्तु बारह वर्षों के उपरान्त जब वह लौटकर आता है तब वह अपनी स्त्री के आचरण पर सन्देह प्रकट करता है। स्त्री दिव्य प्रयोगों के द्वारा जब अपने को सती प्रमाणित करती है तभी वह उसे ग्रहण करता है। लोक गीतों में दिव्य का जो विधान पाया जाता है वह केवल इसी एक अवसर पर अन्यत्र नहीं।

दिव्य का प्रयोग

---

१ यदा साक्षी न विद्येत, विवादे वदतां नृणाम्, तदा दीव्यै परीक्षेत शपथैश्च पृथग्विधैः नारद ४ २४७। २ स्मृति चन्द्रिका २ पृष्ठ ९६ में व्यास का उद्धरण। ३ त्रिपाठी ग्राम गीत पृ० २४३। ४ वि० ध० सू० ९ १। ५ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १६७। ६ नारद स्मृति ४ २४२। ७ वही ४ २५६।

शास्त्रकारों ने लिखा है कि दिव्य का प्रयोग अभियुक्त के द्वारा ही होना चाहिये।[1] परन्तु यदि किसी कारणवश उसके द्वारा नही किया जा सकता तो उसके सबधिया द्वारा होना चाहिए।[2]

याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि तुला दिव्य को स्त्री, नाबालिग, बूढ़ा पुरुष, अन्धा, लँगडा, ब्राह्मण और रोगी को देना चाहिये। अग्नि दिव्य क्षत्रिय को, जल दिव्य वैश्य का और विष दिव्य शूद्र को देना चाहिए। नारद ने भी इसी प्रकार विभिन्न वर्गों के लिये भिन्न-भिन्न दिव्य देने का विधान किया है। नारद ने लिखा है कि व्रती, दुखिया, तपस्वी आदि को दिव्य नही देना चाहिए।[4] मिताक्षरा के अनुसार तुला और कोश दिव्य को स्त्रिया और नाबालिगों को न देना चाहिये। स्त्री के लिये दिव्य का विधान नही है और विष दिव्य के लिये तो बिल्कुल ही नही।[3] सभवत इसीलिये लोकगीतों में विष दिव्य का उल्लेख नही पाया जाता।

विभिन्न व्यक्तियो द्वारा दिव्य प्रयोग

पितामह का मत है कि दिव्य का विधान राजा स्वय करे अथवा उसके द्वारा नियुक्त न्यायाधीश के द्वारा हो। यह क्रिया विद्वान् ब्राह्मणो एव जनता के समक्ष होनी चाहिए।[5] कात्यायन ने लिखा है महापातको के अपराधियो को किसी सुप्रसिद्ध मन्दिर में और धोखे या जालसाजी के अपराधियों को राजद्वार के निकट दिव्य देना चाहिए।[6] अपराधी वर्णसकर को चौराहे पर और इनसे अतिरिक्त लोगों को न्यायालय मे देना चाहिये। अनुचित स्थान में दिया गया दिव्य सफल नही होता। लोकगीतों में समस्त जनता के सामने विशेषकर स्त्री के सबधी भाई एव पिता के समक्ष दिव्य देने का वर्णन पाया जाता है। एक गीत में चन्दा नामक स्त्री के सतीत्व पर उसके सास, ससुर एव पति सन्देह करते हैं। तब वह भाई और पिता को बुलाती है एव ससुराल के सभी लोगो के सामने अग्नि दिव्य को लेती है। वह कहती है कि ऊँचे ऊँचे स्थान पर मेरी ससुराल के लोग बैठे हुए हैं और मेरा भाई एव पिता लज्जा के मारे जमीन पर नीचे बैठे हैं[7]

दिव्य लेने का स्थान

"ऊँचे ऊँचे बैठे मोरे ससुर के लोगवा रे ना।
रामा खालावा बैठे भैया बाबा रे ना।
बडी बडी पागा बान्हे ससुरे के लोगवा रे ना।
रामा भइया बाबा बान्हे अँगउछवा रे ना।
रामा तेही बिच चढी है करहिया रे ना।
रामा तेही ढिग ठाढी सती चन्दा रे ना।"

---

१ न कश्चिदभियोक्तारं दिव्येषु विनियोजयेत्। अभियुक्ताय दातव्य दिव्य दिव्यविशारदैः कात्यायन स्मृति। २ असाक्षिप्रत्ययिहिते दिव्यैः। अथवा मित्रैः सज्जनैरात्मन ना शोधयेत्। अपरार्क पृ० ६४२। ३ या० स्मृ० २ ६८। ४ नारद ४ २५६। ५ पराशरमाधव २ १६४ में पितामह का उद्धरण। ६ या० स्मृ० २ ६६ की मिताक्षरा में कात्यायन का उद्धरण। ७ त्रिपाठी ग्रा० गीत पृ० ३३४।

इस वर्णन से स्पष्ट ही पता चलता है कि गीता के समय समस्त जनता के सामने किसी सार्वजनिक स्थान पर स्त्री का दिव्य दिया जाता था जिससे उसके सतीत्व की शुद्धता सबको विदित हो जाय। सीता जी की जो अग्नि परीक्षा राम ने ली थी वह भी सब लोगों के सामने ही हुई थी। एक दूसरे गीत में स्त्री की अग्नि परीक्षा के समय बढ़ई, लोहार, तेली, कहार, नाई आदि के उपस्थित रहने का उल्लेख पाया जाता है।[1]

याज्ञवल्क्य[2] और नारद[3] का मत है सब प्रकार का दिव्य प्रधान न्यायाधीश के द्वारा प्रातःकाल सूर्य निकलने के समय अथवा पूर्वाह्न में देना चाहिए। मिताक्षरा के अनुसार रविवार का दिन इसके लिये शुभ एवं उचित दिन है। पितामह का मत है कि जल दिव्य दोपहर को देना चाहिए और विष दिव्य रात्रि के अन्तिम प्रहर में।[4] विभिन्न दिव्यों के लिए भिन्न-भिन्न ऋतुओं एवं मासों को उचित बतलाया गया है। जैसे अग्नि दिव्य वर्षा ऋतु में, तुला दिव्य शिशिर में, जल दिव्य ग्रीष्म में एवं विष दिव्य को शीत ऋतु में देने का विधान है। लोकगीतों में दिव्य देने के लिये अथवा 'किरिया देने के लिये' किसी विशेष ऋतु, मास या दिन का उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, एक गीत में त्रयोदशी तिथि का वर्णन अवश्य पाया जाता है। कोई स्त्री कहती है कि आज एकादशी है, कल द्वादशी होगी। अतः मैं परसों त्रयोदशी के दिन 'किरिया' लूँगी।[5]

दिव्य लेने का समय

"आज एकादसिया बिहान दुवादसिया।
तेरसि के लेइहैं किरियवा हो राम।"

शास्त्रकारों ने लिखा है कि दिव्य लेने वाले को व्रती होना चाहिए। सम्भवतः इसीलिये एकादशी और द्वादशी का व्रत रखकर त्रयोदशी को दिव्य लेने का उल्लेख ऊपर के गीत में किया गया है।

स्मृतिकारों ने दिव्य लेने की विधि का बड़ा ही विस्तृत विधान बतलाया है।[6] शास्त्रकारों का मत है कि राजा की आज्ञा लेकर प्रधान न्यायाधीश को समस्त कार्य करना चाहिए। वह स्वयं उपवास रखे और जो दिव्य लेने वाला है उसे भी उपवास रखने का आदेश दे। दोनों को प्रातःकाल स्नान करना चाहिये और शोध्य को अपना गीला कपड़ा ही पहनना चाहिए। तब न्यायाधीश गन्ध, चन्दन एवं पुष्प से पूजा कर देवताओं की स्तुति करे। पुरोहित लोग अग्नि में १०८ बार हवन करें। इसके पश्चात् जिस कार्य के लिए दिव्य किया जा रहा है उसे किसी पत्ते पर लिखकर शोध्य के सिर पर रखकर मन्त्र का उच्चारण करें।[7] लोकगीता में दिव्य लेते समय किसी विशेष विधि विधान का वर्णन हमें उपलब्ध नहीं होता। एक गीत में दिव्य लेने के पहिले कोई स्त्री सूर्य की

दिव्य लेने की विधि

---

१ त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० २८७। २ या० स्मृ० २ ९७। ३ ना० स्मृ० ४ २६८, ३२०।
४ या० स्मृ० २ ९७ की टीका में मिताक्षरा का उल्लेख। ५ त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० २८९।
६ या० स्मृ० २ ९७ की टीका मिताक्षरा देखिये। ७ म० भा० आदि पर्व ७४ ३०।

प्रार्थना करती हुई कहती है कि हे सूर्य ! यदि मैं सती होऊँ तो तुम मेरी प्रतिष्ठा रखो।[1]

"हे मोर सुरुज हमार पति राखेउ।
जो हम होई सतवन्ती हो राम।"

कहीं-कहीं तेल दिव्य में कड़ाही, तेल लकड़ी आग आदि लाने का उल्लेख मिलता है।[2] किरिया लेने के पहिले प्रारम्भिक पूजा अवश्य की जाती होगी परन्तु उसका वर्णन गीतों में उपलब्ध नहीं होता।

दिव्य के भेद

स्मृतियों में अनेक प्रकार के दिव्य पाये जाते हैं जिनमें तुला दिव्य, अग्नि दिव्य, जल दिव्य, विष दिव्य कोश दिव्य, तंडुल दिव्य तप्त माष दिव्य, फाल-दिव्य और धर्म दिव्य प्रसिद्ध हैं।[3] तुला दिव्य में अपराधी पुरुष को तराजू में बैठाकर मिट्टी आदि से तौलते थे। यदि किसी अज्ञात कारण से तराजू टूट गई तब वह पुरुष अपराधी समझा जाता था अन्यथा नहीं। अग्नि दिव्य में शोध्य के हाथ में पीपल की पत्तियाँ रख दी जाती थीं और उन पत्तियों के ऊपर एक बड़ा लोहे का लाल जलता हुआ लोहा रख दिया जाता था। यदि शोध्य का हाथ उससे जल गया तो वह अपराधी होता था अन्यथा नहीं। जलदिव्य में कुछ निश्चित काल के लिये शोध्य को जल में डूबना पड़ता था। यदि उस अवधि के भीतर ही वह जल के ऊपर आ गया तो अपराधी प्रमाणित होता था। विष दिव्य शोध्य को विष पिलाया जाता था यदि उसके शरीर पर विष का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा तब तो वह निर्दोष समझा जाता था अन्यथा अपराधी। कोश दिव्य में भयंकर देवताओं रुद्र, दुर्गा और आदित्य की प्रतिमाओं को जल में स्नान कराकर उसका जल शोध्य को पिलाया जाता था यदि कुछ बुरा असर न हुआ तो वह निर्दोष प्रमाणित होता था। तंडुल दिव्य में चावल शोध्य को खाने के लिये दिया जाता था। उस चावल को चबाने के पश्चात् वह उगलता था। यदि उसमें रुधिर दिखाई पड़ा तो अपराधी सिद्ध होता था। तप्त माष में लोहे, ताँबा अथवा मिट्टी के घड़े में घी को खौलाकर डाल दिया जाता था। पश्चात् उस घड़े में अँगूठी डाल कर उस खौलते हुए घी में से शोध्य को अगूठी निकालने को कहा जाता था। यदि निकालने पर हाथ न जले तो दोषरहित समझा जाता था। फालदिव्य में हलके फाल को गर्म करके अपराधी से चटवाया जाता था। यदि उसकी जीभ न जले तो निरपराधी अन्यथा अपराधी समझा जाता था।

लोक गीतों में छः प्रकार के दिव्य का उल्लेख पाया जाता है (१) अग्नि। (२) आदित्य। (३) गंगा जल। (४) तुलसी। (५) तेल। (६) सर्प।

गीतों में दिव्य भेद

इनमें से आदित्य, तुलसी और सर्प दिव्य बिल्कुल नये और मौलिक हैं। गंगा दिव्य जिसे गीतों में 'गंगाविचार' कहा गया है जलदिव्य का ही दूसरा नाम है। गीतों का तेल दिव्य धर्मशास्त्रों के तप्तमाष दिव्य में अन्तर्भुक्त

---

१. त्रिपाठी ग्राम गीत पृ० २८७। २. वही ३ देखिये• डा० काने• हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र भाग ३ पृ० ३६१-३७५।

किया जा सकता है जिसकी विधि का उल्लेख अभी हो चुका है। सर्प दिव्य को स्मृतिकारों ने घटसर्प दिव्य कहा है।[1] परन्तु इसका विशेष उल्लेख नही मिलता। तुलसी दिव्य और आदित्य दिव्य का विधान स्मृतियों में कहीं भी उपलब्ध नही होता। ये लोक गीतों के रचयिताओं के नवीन आविष्कार हैं।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, गीतों में दिव्य का अवसर केवल एक ही बार आता है और वह समय है परदेसी पति के घर लौटने का। प्राचीन समय में जब आवागमन के साधन नहीं थे उस समय लोग व्यापार करने के लिये दूर देशों को जाते थे, तब बहुत दिनों के बाद घर लौटते थे। गीतों में बारह वर्षों के सुदीर्घ काल के पश्चात् पुरुषों के घर लौटने का वर्णन मिलता है। इतने दिनों तक उनकी स्त्रियाँ अपने पातिव्रत धर्म का पालन कर सकीं या नहीं इसकी परीक्षा वे करते थे। एक गीत में बारह वर्ष पर पति लौटकर घर आया है।[2] उसकी चुगलखोर बहिन अपनी भावज के आचरण की निन्दा उससे करती है। अत. वह उसके चंगुल में फँस कर उसके सतीत्व की परीक्षा करना चाहता है।

"गोड़वा धोवावत बहिनी लागेले चुगुलिया
भैया भौजी से लेहु किरियवा हो राम।"

स्त्री बढ़ई से प्रार्थना कर लकडी, लोहार से कड़ाई, तेली से तेल, और कोंहार से घड़ा मँगाती है। वह आग जलाकर खौलते हुये तेल में, कड़ाही में खड़ी होकर सूर्य से प्रार्थना करती है कि हे भगवान्! यदि मैं पतिव्रता हूँ तो मेरी प्रतिष्ठा की रक्षा करो। देहाती कवि ने इस दृश्य का बडा ही सुन्दर वर्णन किया है।[3]

"बरि गई अगिया और भभकी करहिया रे।
बहिनी खडी किरिया देई हो राम।
हे मोर सुरुज हमार पत राखेऊ।
जौ हम होई सतवन्ती हो राम।
जब बहिनी चलली गंगा किरियवा हो।
तब गगरी गइली सुराई हो राम।
जब बहिनी चलली सुरुज किरियवा हो,
उगल सुरुज गइले छिपाइ हो राम।
जब बहिनी गइली अगिनि किरियवा हो,
खौलत तेल जुड पनिया हो राम।
एक दाईं डारे दुसर दाईं डारे,
तिमरे उतरि गइ परवा हो राम।"

इस गीत में तेल दिव्य का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है।[4] स्त्री खौलते हुये तेल में हाथ डालती है परन्तु उसके सतीत्व के प्रताप से वह पानी की भांति शीतल हो जाता है और वह जलती नहीं। स्मृतियों में जलदिव्य के वर्णन में

---

१. व्यवहारतत्त्व पृ० ५७६। २. त्रिपाठीः ग्राम गीत २८६। ३. दुर्गाशंकर सिंह भो० लो० गी० पृ० १४२-४३। त्रिपाठीः ग्राम गीत पृ० २८७-८८। ४. इसके विशेष वर्णन के लिये देखिये: रिपोर्ट आफ साउथ इण्डियन एपीग्रफी फार १९६२ पैरा ६६।

जल की भीतर कुछ देर तक डूबने का विधान बतलाया गया है : परन्तु इस गीत में गंगा जी के शपथ खाने से घड़े के जल के सूखने का उल्लेख है। सूर्य दिव्य में सूर्य की शपथ खाने से सती के प्रताप से उनके डूबने का उल्लेख यहाँ किया गया है।

राम ने जिस प्रकार सीता की अग्नि परीक्षा ली थी उसी प्रकार से कोई राजा अपनी रानी के सतीत्व पर सन्देह करता हुआ उसकी अग्नि परीक्षा ले रहा है। रानी धधकती हुई आग में खड़ी होकर कहती है कि ऐ आग ! यदि तुम में 'सत' हो तो मेरी देह न जले[1]

"जहुँ तुहुँ अगिया सत के होइबू न रे।
आग तिल नाही जरे मोर देहिया न रे।
लहकल अगिया जुड़ाइलीं हो न रे।
अरे ताहि बिच खड़ी सती रनिया न रे।

लोकगीतों में अग्नि दिव्य की प्रथा ही सबसे प्रधान दीख पड़ती है। इन गीतों में कहीं कहीं सर्प दिव्य का भी उल्लेख पाया जाता है। इसे स्मृतिकारों ने 'सर्पघटदिव्य' कहा है।[2] इस दिव्य के अनुसार सर्प को घड़े में रख देते थे और उसमें कोई अँगूठी या मुद्रा डाल देते थे। उस मुद्रा को शोध्य निकालता था यदि सर्प उसे न काटे तो वह निरपराधी प्रमाणित होता था। कहीं-कहीं घट स्थित सर्प को शोध्य के द्वारा लाठी से मारने का उल्लेख है। सर्प दिव्य की यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होती है। महामण्डलेश्वर कार्तवीर्य चतुर्थ के सन् १२०८ ई० के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि राजा लक्ष्मीधर की रानी चन्द्रिका सती स्त्री थी और उसने घटसर्प दिव्य के द्वारा अपनी निर्दोषिता को सिद्ध किया था।[3]

एक लोक गीत में शिवजी के द्वारा पार्वती के सतीत्व की परीक्षा का वर्णन मिलता है। पार्वती जी गंगा, अग्नि तथा सर्प दिव्य के द्वारा अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करती हैं। जब वह अग्नि में हाथ डालती हैं तब आग ठंडी पड़ जाती है। जब वह गंगा में कूदने जाती हैं तब गंगा जी सूख जाती हैं। जब वे सर्प को हाथ से छूती हैं तो वह काटने के स्थान पर 'गेंडुरी' मारकर शान्त बैठ जाता है।[4]

"जब रे गऊरा अगिनि हाथ लवली, अगिन गइली निझाई।
जब रे गऊरा गंगा बिचे पइठली, गंगा गइली सुखाई।
जब रे गंगा देई सरप हाथ लवली, सरप बइठले फेटा मारि।"

एक दूसरे गीत में सर्प को हाथ में लेने का उल्लेख मिलता है।[5] इसी गीत में तुलसी की दिव्य का भी वर्णन है। पार्वती ने अपने को निर्दोष सिद्ध करते हुये जब तुलसी को हाथ में उठाया तो तुलसी जी सूख गईं और इस प्रकार उनका सतीत्व प्रमाणित हो गया।

---

१. त्रिपाठी: ग्रा० गी० पृ० २५६। २. सत्प्रसिद्धानि सर्पघटादीनि इति स्मृतीतत्वे। व्य० प्र० १८०। ३. भाति श्लाघ्यगुणा पतिव्रततया देवी चिरं चन्द्रिका। सम्प्राप्ता घटसर्पजातविजयं लक्ष्मीधर प्रेयसी। ए. ई. भा० १६ पृ० २४६। ४ दुर्गाशंकर सिंह भो० लो गी० पृ० २७८। ५. वही पृ० ३११।

इन्हीं विभिन्न दिव्यों की आवृत्ति भिन्न भिन्न गीतों में भी की गई है। इन दिव्यों के उल्लेख से हमें भारतीय नारी के अलौकिक सतीत्व का परिचय मिलता है। अपने पातिव्रत धर्म को प्रमाणित करने के लिये हँसते हुये आग में कूद पड़ना भारतीय ललना का ही काम है।[१]

पारिवारिक जीवन के चित्र

लोक गीतों में पारिवारिक संबंध का बड़ा ही सच्चा चित्रण पाया जाता है। कहीं भाई और बहन का स्वाभाविक एवं शुद्ध प्रेम दिखाई पड़ता है तो कहीं माता और पुत्री का सहज स्नेह। कहीं पति और पत्नी की शाश्वतिक प्रीति का वर्णन है तो कहीं पिता पुत्र के अकृत्रिम स्नेह का। इसके साथ ही कुछ अन्य संबंध भी दिखलाये गये हैं जो अपने शाश्वतिक विरोध एवं अनिश्चित लगाव के कारण सुन्दर प्रतीत नहीं होते। इन समस्त संबंधों का विश्लेषण कर हम इन्हें दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं (क) रुचिकर संबंध और (ख) अरुचिकर संबंध। रुचिकर संबंध वह है जिसका परिणाम सुन्दर और शोभन है। अरुचिकर संबंधों का फल अन्त में अच्छा नहीं दिखाई पड़ता है। वर्णन की सुविधा के लिये इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है।

(क) रुचिकर सम्बन्ध	(ख) अरुचिकर सम्बन्ध
१ माता और पुत्र।	५ सास और पतोहू।
२ माता और पुत्री।	६ ननद और भावज।
३ भाई और बहन।	७ देवर और भावज।
४ पति और पत्नी।	८ ससुर और भवहि।
	९ ससुर और पतोहू।
	१० सौत और सौत।

क रुचिकर सम्बन्ध

१ माता और पुत्र

पुत्र के जन्म के अवसर पर माता को कितनी प्रसन्नता हुआ करती है इसका विस्तृत विवेचन 'सोहर' के प्रसंग में पहले किया जा चुका है। पुत्र घर का प्रकाश माना जाता है। ऐसी दशा में पुत्र के ऊपर माता का प्रगाढ़ प्रेम होना स्वाभाविक है। यह ध्यान देने की बात है कि लोकगीतों में पिता पुत्र की चर्चा बहुत ही कम पाई जाती है। परन्तु पुत्र के प्रति मातृ स्नेह के प्रसंग भरे पड़े हैं। शीतला माता के गीतों में पुत्र के प्रति माता का प्रेम उमड़ता हुआ दिखलाई पड़ता है।

पुत्र के चेचक से पीड़ित होने पर उसकी माता व्याकुल होकर शीतला देवी का आवाहन करती है और उनसे भिक्षा के रूप में पुत्र का जीवन माँगती है।

"आँचरा पसारि भीखि मागेलें बालकवा के माई, हमरा के बालकवा भीखी दी।
मोरी दुलारी हो मइया हमरा के बालकवा भीखी दी।"

---

१ 'दिव्य' के विशेष वर्णन के लिये देखिये डा० काने 'हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र भाग ३ पृ० ३६१-३७८। डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २६०।

परन्तु जब शीतला माता के आने में विलम्ब होता है तब आतुरता के साथ वह राही से पूछती है कि क्या तुमने शीतला माता को आते हुये देखा है।[१] शीतला के प्रकोप से पीडित बालक के कष्ट को देखकर माता का हृदय पिघल उठता है और वह दुखी होकर शीतला माता से निवेदन करती है कि

"मइया दाया ना करो।"

कौशिल्या का राम के प्रति अनन्य प्रेम तो प्रसिद्ध ही है जिसे आदि कवि ने आदर्श रूप में चित्रित किया है। उस अलौकिक मातृ प्रेम की झांकी इन गीतों में भी मिलती है। राम वन जाने के लिये तैयार हैं। वह माता के पास आज्ञा माँगने आते हैं। परन्तु पुत्रवत्सला कौशिल्या कहती है कि राम तो मेरे हृदय में एवं लक्ष्मण आँख की पुतली हैं। अतः वन जाने के लिये मैं कैसे कहूँ।[२]

"राम त मोर करेजवा, लखन मोरी पुतरिअ हो।
अरे रामा, सीता रानी केरा चुरिया मैं कइसे बन भाख हो।"

माता की ममता ने इस सोहर में मूर्तिमान रूप प्राप्त किया है। वनवासी राम को भोजन कराने के लिये माता कौशिल्या घी कि पूड़ी और दूध की बना हुआ खीर लेकर वन को निकल पड़ती है। वह लता एवं वृक्षों से राम का पता पूछती है। कितना मार्मिक दृश्य है।[३]

"धियवा के काढ़ेली लाहरिया,
त दूधवा के जाउरि कइली हो।
लिहेली आचर तर ढाकि,
रमइया हेरइ निकसेली हो।"

राम के वन जाते समय कौशिल्या को जो हार्दिक दुःख हुआ उसकी अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में बड़ी सुन्दर हुई है।[४]

"आछा काम ना कइलू ए कैकेयी
आछा काम ना कइलू।
हमार बसल भवनवा उजरलू ए कैकेयी
आछा काम ना कइलू।"

देहात में एक कहावत प्रसिद्ध है कि

"माता निहारे कि जइपा निहारे पोटरी।"

अर्थात् माता तो पुत्र का मुख देखती है कि कहीं दुःख के कारण वह मलीन तो नहीं हुआ है परन्तु स्त्री पोटरी अर्थात् रुपये की गठरी खोजती है। इससे भी माता की ममता स्पष्ट झलकती है।

पिता पुत्र

लोक गीतों में पिता पुत्र का उल्लेख बहुत कम मिलता है। एक स्थान पर विवाह के लिये जाने वाला पुत्र अपनी माता से कहता है कि मैं तो पिता जी का आज्ञाकारी सेवक बनूँगा और मेरी स्त्री तुम्हारी दासी बनेगी।[५]

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २६२। २ वही पृ० २७४। ३ दु० शं० सिं० भो० लोक गीत पृ० २१। ४ वही पृ० ७१। ५ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३७२। ६ वही पृ० १४०।

"हम त होइबो ए आमा बाप के सेवइत,
धनि होइहैं दासी तोहार ए।"

आदर्श पुत्र की चर्चा करते हुये एक गीत में कहा गया है कि पुत्र तो वही है जो पिता की सेवा करे।[1] नहीं तो दुष्ट पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ।

"पूत त वो है जो पिताजी का सेवै,
नाहीं तो पाजी के जनमें से का भा।"

उपनिषदों में भी 'मातृ देवो भव", 'पितृदेवो भव' का उपदेश दिया गया है। सच्चे पुत्र की उपर्युक्त कल्पना उपनिषद् की इस आज्ञा से पूर्णतया सामंजस्य प्राप्त करती है।

२. माता और पुत्री

यद्यपि माता का स्नेह पुत्र के प्रति अगाध होता है परन्तु पुत्री के प्रति भी उसका प्रेम कुछ कम नहीं होता। लोकगीतों में माता का पुत्री प्रेम पुत्र प्रेम से बहुत आगे बढ़ा हुआ है। पुत्री के पैदा होने में, उसके विवाह में कितना ही कष्ट क्यों न हो, मा का प्रेम से परिपूर्ण हृदय इसकी परवाह नहीं करता और वह पुत्री को उसी ममता की दृष्टि से देखती है जिससे अपने पुत्र को।

गवना के गीतों में पुत्री के विदा होते समय माता का पुत्री के प्रति प्रगाढ़ प्रेम स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उस समय उसके स्नेह का फौवारा फूटता हुआ दृष्टिगोचर होता है। विदाई के समय पुत्री के लिए माता की व्याकुलता और उसके वियोग में अनवरत रोदन करने की चर्चा 'गवना' के गीतों के प्रसंग में की जा चुकी है। पुत्री जब ससुराल चली जाती है तब माता सदा इसका ध्यान रखती है कि वह सुखपूर्वक वहाँ रहे और उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो। वह दासी से अपनी समधिन के पास सन्देश भिजवाती है कि मेरी प्यारी पुत्री को मारना मत और इसे गाली भी न देना। जब मेरी बच्ची कच्ची नींद में सो रही हो तब उसे मत जगाना।[2] इस सन्देश में माता की कितनी गहरी ममता छिपी पड़ी है।

बहन को ससुराल भेजकर जब भाई लौटकर घर आता है तब माता उससे पूछती है कि तुम मेरी पुत्री को कहाँ छोड़ आये। इस पर पुत्र कहता है कि माँ! जिसकी वह थी वही उसे लिये जा रहा है।[3]

"आरे काहा छोड़ल काहा ए बबुआ, बाचावा रे हमारो।
आरे जेकर बाचावा ए आमा, से ही लेले जाई"

पुत्री को जब ससुराल में कष्ट होता है, उसका वहाँ जी नहीं लगता तब वह माता के अतिरिक्त किसी से भी अपना दुःख नहीं कहती और उससे मायके बुलाने के लिये बारम्बार प्रार्थना करती है। एक गीत में कोई लड़की सावन मास होने के कारण मायके बुलाने के लिये अपनी माता से आग्रह करती है। तब वह अपनी विवशता प्रकट करती हुई अगले वर्ष उसे बुलाने का आश्वासन देती है।[4]

१. त्रिपाठी: ग्राम गीत पृ० ४८२। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १६०।
३. वही पृ० १६६। ४ त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ४२३।

"ववली तो जोगिया हो गये, बावुल है निरमोही।
भैया तोहारे वेटी चकरी गये, पर को मैं लेबि बुलाय।"

भाई बहन के पास ससुराल गया है। माता को आशा है कि मेरा बेटा मेरी पुत्री को लेकर लौटेगा। अत वह कोठे के सबसे ऊँचे भाग पर चढ कर अपनी पुत्री के आने की राह देख रही है। भाई लौट आया परन्तु बहन के बिना ही। इस पर क्रुद्ध होकर माता कहती है कि ऐ पुत्र! तुम तो बडे कपूत निकले जो रोती हुई बहन को छोड कर चले आये। जो मेरे पति होते तो उसे हँसते खेलते घर लाते।[1]

"ऊँचवा चढि-चढि माता निरेखै,
मोरी धिया धौं केती दूरि रे।"
० ० ०
पूत हो तुम भयउ कपूते, रोग्रत बहिनि आये छाडि रे।
जो मेरी वेरिया के बावुल होते, हुसत खेलत लेइ अवते रे।"

पार्वती अपने ससुराल के कष्टो का निवेदन माता से करती हुई कहती है कि ए माता! भाँग पीसते-पीसते मेरा हाथ घिस गया और धतूर मलते मलते हृदय व्याकुल हो गया।[2]

"भँगिया पीसत ए आमा, हाथवा खिअइले,
धतूरा मलत ए आमा जियरा अकुलइलें।"

भाई बहन के पास गया है। वह अपने दुखो की लम्बी कहानी भाई को सुनाती है और कहती है कि ऐ भाई! इस दुख को मेरी माता से मत कहना। नही तो मेरे दुखो को सुनकर मेरे प्रेम के कारण उसकी छाती फट जायगी।[3]

"इ दुख जनि कहिय भइया माई के अगवा हो ना।
माई छतिया विहरि मरि जइहे हो ना।"

इस प्रकार इन गीतो में माता और पुत्री का प्रगाढ प्रेम भरा पडा है। माता पुत्री के लिए जितनी व्याकुल है, पुत्री भी माता को उतना ही प्यार करती है। माता पुत्री के इसी अविचल प्रेम में भारतीय सस्कृति का सच्चा रूप हमें दिखाई पडता है।

३. भाई और बहन

भाई और बहन के प्रेम का भी दिव्य रूप हमें इन गीतो में देखने को मिलता है। सच तो यह है कि माता और पुत्री के विशुद्ध प्रेम के अनन्तर भाई और बहन का ही प्रेम आदर्श स्वरूप कहा जा सकता है। बहन के हृदय में अपने भाई के प्रति अगाध प्रेम भरा पडा है और भाई भी बहन को प्राणो से अधिक प्यार करता है।

'गवना' के गीतो में बहन की विदाई के अवसर पर भाई के करुण क्रन्दन से पैर तक की धोती भीगने का उल्लेख किया जा चुका है।[4] एक सोहर में बहन अपनी भावज के द्वारा दिये गये कष्टो का उल्लेख अपने भाई से करती है।

१. त्रिपाठी, ग्रा० गी० पृ० ४१५। २ डु० शं० सिं० भो० लो० गी० पृ० ३०७। ३ वही पृ० ४४५। ४ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १६६।

बहन के इन दुखो को सुनकर भाई इतना रोता है कि उसका सारा वस्त्र भीग जाता है। वह बहन की बिदाई के समय उसकी पालकी को रोक कर उसके पहिनने के लिये रेशमी वस्त्र और 'खोइछा' में सोने की मुहर देता है[१]

"त भइया के रोयले पटुक भीजे, बहिनी जमुन दहे हो।
ए बहिनी तनि एक डडिया बेलमाव, जलदि चलि आईबि हो।
o o o o
ए बहिनी खोलि द तू फटही लुगरिया, बनउर केरा 'खोइछ' हो।
ए बहिनी पहरहु लहगा पटोरवा, मोहर भरि 'खोइछ' हो।"

इस गीत में जहाँ भावज की दुष्टता दिखाई पड़ती है वहाँ भाई का स्वाभाविक प्रेम का पारावार हिलोरें मारता दृष्टिगोचर होता है। रोपनी के एक गीत मे भाई के द्वारा बहन के ससुराल के कष्टो को सुनकर दुख प्रकट करने का उल्लेख हुआ है। भाई कहता है कि मैने चन्द्रमा और सूर्य के समान सुन्दरी अपनी बहन को विवाह में दिया है परन्तु वह ससुराल के कष्टों के कारण जलकर कोयला हो गई है[२]

"चाँद सुरुज अस बहिनी सकल्पो हो ना।
बहिनी जरि जरि भुइली कोइलिया हो ना।"

इस गीत के नीचे की पंक्ति में भाई के बहन के प्रति प्रेम की गहरी अभिव्यजना हुई है। भाई बहन का सन्देशवाहक है। वह उसके दुखो को जाकर माता से कहता है और माता अपनी पुत्री को ससुराल से बुला लेती है। भाई बहन के दुखो को प्रकट करने का माध्यम है। वह उसका बल और सम्बल है। बहन का जहाँ सहायता की आवश्यकता होती है, किसी वस्तु की जरूरत होती है, ऐसी स्थिति में भाई ही काम आता है। बहन के दुखिया जीवन में माता और भाई ही उसके अवलम्ब हैं। ये ऐसे ध्रुव तारा हैं जिनकी ओर बहन निश्चिन्तता के साथ देखा करती है।

यद्यपि बहन और भाई का प्रेम अत्यन्त विशुद्ध है परन्तु दोनों की तुलना में बहन के प्रेम का पलरा नीचे झुक जाता है। बहन के प्रखर प्रेम की धारा में भाई का प्रेम बहता हुआ दिखाई पड़ता है। भाई के ऊपर जब विपत्ति पड़ती है तब उसकी स्त्री भी ससुराल मे उसे आश्रय नही देती। ऐसी दशा में वह बहन का ही अवलम्ब प्राप्त करता है। जीवन की विपन्न परिस्थितियो में, गाढ़े दिनो मे बहन ही काम आती है। बहन के घर भाई के आने पर हृदय में आनन्द की जो सरिता उमड पड़ती है उसका वर्णन कठिन है। उस दिन बहन के ससुराल के नीरस जीवन में सरसता एव आनन्द का प्रादुर्भाव हो जाता है। वह फूले नही समाती। उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते। वह भाई के लिये सुन्दर सुन्दर पकवान बनाती है और बड़े प्रेम से भोजन कराती है। रोपनी के नीचे लिखे गीत में भाई के प्रति बहन के अलौकिक प्रेम को देखिये।

भाई बहन के यहाँ आया है। इस समय वह अपनी सास से पूछती है कि मैं अपने भाई के लिये क्या भोजन तैयार करूँ। दुष्टा सास कोदा का भात और मसउढा का साग बनाने को कहती है। इस पर बहन क्रोधित होकर सास से

---

१ भो० लो० गी० पृ० ५१६०। २ भो० लो० गी० पृ० ४४५।

कहती है कि तुम्हारे सडे हुए कोदो में आग लग जाय और मसउढ के साग में बज्र पडे। मैं तो अपने भाई के लिए महीन आटे की पूडी बनाऊँगी, पालक का साग खेत में से ले आऊँगी और मूँग की दाल बनाकर सोने की थाल में परोसकर भाई को खिलाऊँगी' तथा उसमें घी की धारा छोड़ूँगी।

'आटावा जे चालि चालि लुचई पकवली हो ना।
बहुअरि खोटि लिहली पलकी के सगवा हो ना।
बहुअरि रीन्ही लिहली मुगिया के दलिया हो ना।
बहुअरि राम सुन्दर चउरा के भतवा हो ना।
सोने के थरियवा मे जेवना परोसली हो ना।
रामा ऊपर से तातल घीव धारवा हो ना।"

भाई का आगमन बहन के लिये उत्सव का अवसर होता है। विवाह के इस गीत में बहन का आनन्द सागर लहराता दिखाई पडता है। वह गाने का पेशा करने वाली भाटिन और जोगन से कहती है कि आज तुम लोग गीत गाओ, आज मेरा भाई आया है। अत मेरे हृदय में बहुत आनन्द हुआ है। ऐ सास! तुम भाई के भोजन के लिये कढाई चढाओ। भाई के आने से मेरा हृदय आनन्दित हो उठा है[२]

"आरे आरे जोगिन भाटिन सब कोई गावहु हो।
मोरा जियरा भइल वा हुलास, बीरन मोर आवेले हो।"
आरे आरे सासु गोसाईं, करहिया चढावहु हो।
आजु मोरा जियरा हिलोरे, बीरन मोर आवेले हो।"

इस गीत में 'मोरा जियरा भइल वा हुलास' और 'आजु मोर जियरा हिलोरे' आदि पंक्तियों मे बहन के हृदय का आनन्द हिलोरें मार रहा है। एक दूसरे गीत में भाई का आगमन बडी सुन्दर रीति से वर्णित है। गाँव की कोई स्त्री पूछती है आज कौन आया है। इस पर बहन अत्यन्त प्रसन्न होकर उत्तर देती है कि आज मेरा हवलदार आया है, मेरा सूबेदार आया है, आज मेरा भाई आया है।

"कहेली कवन बहिनी हुलसी के ना।
आजु मोर भइया अइले हा
आजु मोर हवलदार अइले हा।
आजु मोर सुबिदार अइले हा।
आजु मोर भइया अइले हा।"

इस गीत में 'मोर भइया अइले हा' इस पद की पुनरावृत्ति से ही पता चलता है कि बहन के हृदय में प्रेम का कितना आधिक्य है।

सास और ननद बहू को ताना मारती हैं कि तुम्हारे मायके वाले तुम्हें नहीं पूछते नहीं तो तुम्हारा भाई क्या नही आता। पतोहू उत्तर देती है कि मेरा भाई अवश्य आयेगा। इतने ही में भाई बँहगी पर सामान लिये और घडे में घी लिये आता दिखाई पडता है। भाई से मिलने के लिये आतुर बहन इस प्रकार उसके पास दौडती है जिस प्रकार गाय अपने बछडे के लिये दौडती है[३]

१ भो० लो० गी० पृ० ४४४। २. वही पृ० ४०६। ३ भो० लोक गीत पृ० ५२।

"आगे आगे आवे बहँगिया, पाछू घीव गागर हो।
ओहि पाछे भइया असवरवा, बहिनी के देस जाले हो।
जइसे दउरे गइया त अपना बछरुआ खातिर हो।
ओइसे दउरली बहिनियाँ त अपना भइयवा खातिर हो।"

यहाँ भाई और बहन के प्रेम की तुलना माता और पुत्र के प्रेम से की गई है। सचमुच माता पुत्र का स्नेह जितना अकृत्रिम और विशुद्ध होता है उससे कम भाई बहन का प्रेम नहीं होता। उपर्युक्त गीत की अन्तिम पंक्ति में बहन का प्रेम उमड़ा पड़ता है।

स्त्री के कटु वाक्य कहने के कारण कोई पति संसार से उदासीन होकर जोगी बन जाता है। वह घूमता फिरता अनजान में अपनी बहन की ससुराल में पहुँच जाता है और दासी से भिक्षा मांगता है। संयोग से भिक्षा देने के लिये उसकी बहन ही चली आती है और जोगी के रूप में अपने भाई को देखकर आश्चर्यचकित हो जाती है। वह भाई की दशा को देखकर रोने लगती है और कहती है कि ऐ भाई! अब सारंगी और गुदड़ी को छोड़ दो और मेरे घर रहकर यहीं धूनी रमाओ। कहीं अन्यत्र मत जाओ:[1]

"रोवेंली बहिनी पटोरवे पोंछि लोरवा,
आरे ई त हउएँ बीरना हमार, ए यदुवंसी।"
आरे ई त हउएँ बीरना हमार, ए यदुवंसी।"

o: .o. .o: :o:

छाडि देहु भइया हो सरंगी गुदड़िया,
आरे हमरी दुअरिया धुनिया रमाव ए यदुवंसी।"

बहन का भातृ स्नेह सक्रिय वस्तु है। दासी के द्वारा जब उसे समाचार मिलता है कि मेरा भाई आ रहा है तब वह अत्यन्त उत्कंठित हो उठती है। वह कोठे पर चढ़कर खिड़की से भाई को बेला के फूल के नीचे खड़ा देखती है। वह सास से चादर मांग कर भाई से मिलने के लिये चल पड़ती है[2]

"खिरकी से बहिनी जे चितवै, बीरन बेइलि नीचे ठाढ़।
देहु न सासु मोरी अपनी चदरिया, बीरन मिलन हम जाइबि।"

राजा गोपीचन्द जब संसार को छोड़ कर जोगी हो जाते हैं तब उनकी माता कहती हैं कि बेटा! अपनी बहन के पास मत जाना। परन्तु वे उत्तर देते हैं कि और कहीं भले न जाऊँ परन्तु बहन के यहाँ अवश्य जाऊँगा। गोपीचन्द जोगी के भेष में बहन के घर जाकर जब उसकी दासी से भिक्षा माँगते हैं तब वह उनका तिरस्कार करती है। परन्तु जब वे अपने माता पिता का नाम बतलाते हैं और बहन उसे सुन लेती है तब वह दौड़ते हुए भाई के सत्कार के लिये आती है। सोने की थाली में उनका पैर धोती है और आरावा चावल एवं अरहर की दाल बनाकर स्वादिष्ट भोजन कराती है।[3]

"आताना वचन बहिना सुनही ना पवली,
सोने के थरियवा गोड़वा धोवेली हो राम।

---

१ भो० लो० गीत प० १३६ ४०। त्रिपाठी: ग्रा० गीत पृ० २८४। २. त्रिपाठी: ग्राम गीत पृ० ४२६। ३. डा० उपाध्याय भो० ग्राम गीत भाग १ पृ० २४०।

आरावा चउरवा अरु रहरी के दलिया,
अमृत भोजन करवली हो राम।"

सभी भाइयों में बराबर प्रेम होने पर छोटे भाई में बहन का समपत विशेष प्रेम होता है। एक गीत में बहन अपने बडे भाई की अपेक्षा छोटे भाई का अपने घर आना अधिक पसन्द करती है।[१]

"माई लहुरा भइयवा माहि पठयेऊ सावन नियर।"

भोजपुरी में एक कहावत है कि 'भाई अवरु केहुनी के घाव ना सहाला' अर्थात् भाई का दुख और केहुनी (हाथ का जोड वाला मध्य भाग) की चोट मार्मिक होता है। केहुनी में चोट पहुँचने पर जितनी हृदय भेदी पीडा होती है वैसे ही भाई का कष्ट बहन के लिये परम असह्य होता है। इसी एक कहावत में बहन की भातृप्रेम की सारी फिलासफी' छिपी पडी है। सचमुच इन गीतों में वर्णित भाई बहन का प्रेम दिव्य एवं स्वर्गीय है।

८. पति और पत्नी

पति और पत्नी का सम्बन्ध भारतीय विश्वास में अटूट माना जाता है। भारत में विवाह सबध सामाजिक ठेका (सोशल कान्ट्रैक्ट) नही बल्कि धार्मिक कृत्य है। अत पति पत्नी का सबध अविच्छेद्य है। लोक गीतों में पति और पत्नी के सबध का चित्रण बडा ही सुन्दर हुआ है। इन गीतों में आदर्श गृहस्थी का चित्रण हमें देखने को मिलता है। पति पत्नी सुख से घर में निर्वाह करते हैं। आधुनिक जीवन की विषमता का वहाँ प्रवेश नही है।

दाम्पत्य जीवन की मधुमय झाँकी झूमर के एक गीत में हमें देखने को मिलती है।[२] पति पत्नी का प्रेम वर्णन भी कई गीतों में सुन्दर रीति से किया गया है।[३] पति के वियोग को न सह सकने वाली स्त्री, परदेस जाने के लिये उद्यत अपने पति को रोकने के लिये इन्द्रदेव से प्रार्थना करती है कि हे देव! बरसो। एक प्रहर रात से ही बरसो जिससे पति के प्रस्थान करने का समय टल जाय और वह परदेस न जाय।[४]

"बरिसहु ए दव! आरे घरी रे पहर राती।
आरे पिया के पयेतवा घरे बेलमावहु रे की।'

इस गीत में स्त्री का पति प्रेम स्पष्ट झलक रहा है। किसी स्त्री का किसान पति खेती के कामों में इतना व्यस्त रहता है कि खेत में छोडकर घर में सोने का कोई अवसर ही नही आता। स्त्री कोल्हू के बैल से प्रार्थना करती है कि तुम जुआठ (काष्ठ दड) को तोडकर घर चले आवो। इससे मेरे पति के सिर में चोट लगेगी। तब वह अपने चोट की दवा कराने के लिये अवश्य घर आवेगा और तब उससे भेंट होगी।[५]

'गोड तोरा लागीले सोरही के बछवा,
जुअठिया तुरि घरवा आव हो राम।

---

१ लेखक का निजी सग्रह पृ० ५०। २ डा० उपाध्याय भो० ग्राम गीत भाग १ पृ० ३०९। ३ वही पृ० ३११। ४ वही पृ० ३२१। ५ भो० लोक गीत पृ० १६४।

जुअठिया नु टुटले कपरो नु फूटले,
घइया लठावे घरवा अइले हो रा र।"

हिन्दी के एक कवि ने भी इसी भाव की एक बड़ी ही सुन्दर कविता कही है।

"आगि लागि घर जरिगा, बड सुख कीन।
पियके बाँह धरिलवा भरि भरि दीन।"

पति पत्नी के अनन्य साहचर्य एव प्रेम का वर्णन भजन के एक गीत में पाया जाता है।[1]

कोई पति व्यापार के लिये परदेस जाने के लिये तैयार है। इस पर उसकी स्त्री भी साथ चलने का आग्रह करती है। पति मार्ग के कष्टो का वर्णन करता है परन्तु वह कहती है कि मैं सभी कष्टो को सह लूँगी। ऐ प्रिय, मैं तुम्हारे साथ जोगिन बन जाऊँगी।[2]

"भूख मैं सहबो पियास मैं सहबो,
पान डारबि बिसराई ।
तोहरे साथ पिया जोगिन होइबे,
ना सग बाप ना भाई।"

सीता जी को राम के बिना सारी अयोध्या ही सूनी दिखाई पड़ती है। वे राम की सेवा के लिये सदा तत्पर हैं और कहती हैं कि जहाँ राम जायेंगे वहाँ मैं उनकी सेवा के लिये तैयार रहूँगी।[3]

पुरुष का स्त्री प्रेम

जहाँ इन गीतो में पत्नी अपने पति के लिये सर्वस्व त्याग कर सभी दु खो को झेलने के लिये तैयार दिखाई पड़ती है वहाँ पति के हृदय में भी स्त्री के लिये कुछ कम प्रेम नही है। पति के मरने पर तो अनेक स्त्रियो के विलाप करने का वर्णन मिलता है, परन्तु स्त्री की मृत्यु पर पति का विलाप करना बहुत कम पाया जाता है। किसी परदेसी पति की स्त्री डूब कर मर गई है। जब उसे घर जाने पर इसका हाल मालूम होता है तब वह रोता है और पश्चाताप करता है।[4]

"कहाँ गइलू सत के तिरियवा,
बिहरे मोर छतिया नु रे की।"

पत्नी की अँगूठी खो जाने पर पहले तो पति उसे मारता है परन्तु बाद में पश्चाताप कर रोने लगता है।[5] सीता के बिना राम को सारा जग सूनी दिखाई पड़ता है। क्योंकि उनके राजसूय यज्ञ को अब कौन देखेगा।[6] एक सोहर में राम को सीता के बिना जीवन भी व्यर्थ ज्ञात होता है।[7]

"सीता! तोरे बिनु जग अँधियार, त जीवन अकारथ हो।"

झूमर के एक गीत में पत्नी के प्रति पति का अगाढ प्रेम दिखलाया गया है।[8] एक दूसरे गीत में पत्नी के प्रेम के कारण पति माता, पिता की आज्ञा की अव-

---

१. भो० लोक गीत पृ० २६४। २. वही पृ० ४०२। ३. वही पृ० २६२। ४ वही पृ० ६७। ५ वही भाग १ पृ० ३१०। ६. वही ६६। ७. वही पृ० ३४। ८. डा० उपाध्याय भो० ग्राम गीत भाग १ पृ० ३१३।

हेलना करके भी, नौकरी छोड़कर घर चला आता है।[1] कोई अज्ञात यौवना स्त्री अपने पति से माता पिता की सुधि आने की बात कहती है। इस पर प्रेमी पति कहता है कि भूख लगने पर मैं तुम्हें भोजन कराऊँगा और प्यास लगने पर पानी पिलाऊँगा। ऐ स्त्री! मैं तुम्हें अपने हृदय मे लगाकर रखूँगा अत अपने माता पिता को भूल जावो।[2]

"भुखिया में भोजन खिअइवो,
पिअसिया में पानी देइवो हो।
धनिया रखवा में हियरा लगाई,
बवैया के सिरावहु हो।"

पत्नी के बिछोह को न सह सकने वाला पति अपनी स्त्री के मायके जाते समय कहता है कि तुम अपने विभिन्न आभूषणो को छोड जावो जिन्हें देखकर मैं अपने हृदय को शान्त करता रहूँगा।[3] इसी प्रकार से अनेक गीतो में पति द्वारा स्त्री के आदर, सम्मान, दु खहरण, प्यार करने आदि का उल्लेख हुआ है।[4]

(ख) अरुचिकर सम्बन्ध

५. सास और पतोहू

लोक गीतों में सास और पतोहू का सबध रुचिकर नही दिखाई पडता। इन दोनो के शाश्वतिक विरोध का बडा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। यद्यपि धर्मशास्त्रों और काव्य ग्रथो में पुत्रवधू को सास की आज्ञाकारिणी होना और उसकी सेवा में तत्पर होना लिखा है परन्तु इन गीतों में इसके ठीक विपरीत स्थिति पाई जाती है।

माता अपने पुत्र को प्राणो से भी अधिक प्यार करती है। उसके जन्म में वह प्रसव पीडा के विषम एव असहनीय दु ख को सहती है। जब छोटा बालक रात को बिछौने को गीला कर देता है तब प्यारी माँ अपनी आधी साडी को बिछाकर उसे सुलाती है और सर्दी के कष्टो से बचाती है। वह स्वय भूखे रहकर भी समय पर उसे भोजन देती है। पुत्र के बडे होने पर भी उसकी ममता कम नहीं होती। वह उस समय भी अपने प्यारे लाडले को अपनी आँखों से ओझल होने देना नही चाहती। विचित्र सेवाओ से उसका शरीर सवर्धन करती है। इस प्रकार माता का स्नेह पुत्र के ऊपर यावज्जीवन बना रहता है। वह इतनी तो अवश्य ही आशा रखती है कि पुत्र भी उससे इसी प्रकार प्रेम करेगा। परन्तु पतोहू के आने से यह स्थिति बदल जाती है। पुत्र का जो प्रेम पूर्ण रूप से माता के चरणो में लगा रहता है अब उसमें अन्तर आ जाता है। वह माता और स्त्री में आधा-आधा बँट जाता है। कही कही पर स्त्री के घर में आते ही पुत्र माता का अनादर एव तिरस्कार करने लगता है। वह उसे खाने को भी कष्टपूर्वक देता है। उसकी स्त्री पतोहू सास के विरुद्ध पति के कानो में उल्टी सीधी बातें कहती रहती है जिससे वह माता के प्रति उदासीन हो जाता है। पुत्र की माता के प्रति इस उदासीनता और निरादर का मुख्य कारण पतोहू ही होती है। यही कारण है कि सास और पतोहू में झगडा हुआ करता है।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० पृ० ३०७। २. भो० लोक गीत पृ० ४०१। ३. भो० ग्रा० गीत पृ० ४३५। ४. भो० लोक गीत १६३, १६६।

एक गीत में सास अपनी पतोहू से रुष्ट होने पर उसके साथ सहयोग प्रदान नहीं करती है। पतोहू को पुत्र होने वाला है परन्तु सास उसकी सहायता को नहीं जाना चाहती। इस पर पतोहू कहती है कि यदि सास नहीं आवेगी तो मेरा क्या बिगाड लेगी। मैं अपनी माता को बुलाकर अपने पुत्र की सेवा कराऊँगी। पतोहू की उक्ति में सास का अनादर स्पष्ट झलक रहा है।[1]

"सासु अइहें ना हमार, आरे का मरिहें।
अवटन आपन आमा बोलइवो, हमें गोली के का वेहु करिहें।"

ससुराल के कष्टों से ऊबकर कोई स्त्री मायके जाना चाहती है। वह कहती है कि सास की व्यग्य वाणी मुझसे नहीं सही जाती।[2]

"ए राम ससुरा में रोवें विटइया,
त हमरे नइहरवा जइवो ए राम।
ए राम मचिया वइठल तुहु सासुजी,
सासु जी बिरहिया बोले ए राम।"

इतना ही नहीं पति के परदेस चले जाने पर सास पतोहू से कहती है कि अब तुम किसकी कमाई खावोगी क्योंकि तुम्हारा कमानेवाला पति तो है नहीं।[3]

"सासु मोर बोलेली बिरहिया, त केकर कमइया खइबू ए राम।"

परदेश से लौटा हुआ पति स्त्री को उदास देख कर पूछता है कि तुम्हें क्या मेरी माता ने गाली दी है अथवा बहन ने व्यग्योक्ति कही है।[4]

"किया हो जिरवा माई गरिअवलिन,
किया हो बहिनियाँ बिरहा बोलेहु रे जी।"

सास पतोहू को केवल व्यग्य वचन ही नहीं बोलती बल्कि उसे शारीरिक कष्ट भी देती है। वह वधू को इतना अधिक घर का काम करने को सौंप देती है जिसे वह करने में असमर्थ है। कोई स्त्री मायके में ससुराल के दुखों का वर्णन करती हुई कहती है कि उत्तर देश के लोग बडे निर्दयी होते हैं, वे बहुत कष्ट देते हैं।

ऐ पिताजी! रात में तो जौ और गेहूँ जात में पीसना पडता है और दिन में चर्खा चलाकर बारीक सूत कातना पडता है। जब मैं सोई रहती हूँ तभी मुझे कच्ची नींद में ही जगा दिया जाता है। चाहे आगन घर में कोई काम करने को भले ही न रहे।[5]

"उत्तर के लोग निरमोहिया ए बावा, उलटी पुलटी दुख देई।
रतिया पिसावे जव गेहुँआ ए बावा, दिनवा कतावे झीन सूत।
सूतलि सेजिया उठावे ए बावा, आगाना घरेले सव छूँछ।"

सास के द्वारा दिये गये वधू के कष्टों का एक दूसरा दृश्य देखिये जिसका चित्रण कवि ने बडी मार्मिक रीति से किया है। ससुराल में आये हुये भाई बहन अपने कष्टों को बतलाती हुई कहती है कि ऐ भाई! मुझे कई मन अनाज कूटना पडता है, और कई मन पीसना पडता है। कई मन अन्न का भोजन

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २००। २ वही भाग १ पृ० २२१। ३ दुर्गाशंकर सिंह भो० लो० गी० पृ० १३३। ४ त्रिपाठी ग्राम गी० पृ० ७५-७६। ५ भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१४।

बनाना पडता है। सास मुझसे बहुत सा बर्तन मँजवाती है, और बहुत गहरे कुँये से पानी भरवाती है[1]

"कई मन कूटीं मैया, कई मन पीसीला हो ना,
भइया कइरे मन बीन्हीला, रसोइयाँ हो ना।
सासू खाँची भर बसना मँजावेली हो ना।
सासू पनिया पताल से भरावेली हो ना।"

सास छोटी-छोटी बातों पर भी बहू के सतीत्व पर सन्देह करने लगती है और अपने पुत्र से इस बात की शिकायत कर उसे दड दिलवाती है। परदेसी पति ने स्त्री के लिये पखा भेजा है। सास उस पखे को देखकर वधू के सतीत्व पर आक्रमण करती है और उसके बाप और भाई को खा डालने की गाली देती है[2]

'बेनिया डोलावत अइले सुख करे निंदिया,
आरे परि गइले सासु के नजरिया हो राम।
बाबा खाऊँ भइया खाऊँ तोहरी बहुअवा।
आरे कवना रसिकवा बेनिया भेजेले हा राम।"

पखे जैसे छोटी सी बात को लेकर सती वधू के चरित्र पर इतना गभीर दोषारोपण करना भोजपुरी सास का स्वाभाविक धर्म है। एक दूसरे गीत में इसी पखे के कारण सास वधू से 'किरिया' लेती है उसकी अग्नि परीक्षा करती है।[3] सास कहती है कि मैं तो किरिया अवश्य लूँगी

"ना हम मनवै ना हम पतियइवै, हम लेबि तोइसे किरियवा हो राम।"

सास के अत्याचारों के कारण वधू अपने शरीर का शृगार भी नही कर सकती। कोई स्त्री बडे करुण स्वर में कहती है कि जिस घर में हीग की महक तक नही है, वहाँ जीरे की 'बघार' कब मिलेगा। जिस घर में कर्कशा सास बैठी है, *उस घर में बहू का शृगार कहाँ सभव है*[4]

"जे रे घरे हिंगुआ न महके,
जिरवा के कवन बघार।
जे रे घरे सासु दहनियाँ,
बहुआ के कवन सिंगार।"

वधू की उपर्युक्त उक्ति नितान्त सत्य है। बहुत से घरो मे स्त्री को नियमित रूप से सरसों का भी तेल बालो में लगाने को नही मिलता, शीशा और कघी की चर्चा तो बहुत दूर रही।

सास बहू को केवल व्यग्य बाणा से ही नही मारती वल्कि डडे से भी पीटती है। छोटे-छोटे अपराधो पर भी वधू को सास की ताडना का पात्र बनना पडता है। सास से बिना पूछे किसी वधू ने चना भुना लिया था। ननद ने उसकी शिकायत अपनी माता से कर दी। इसका फल क्या हुआ वह वधू के ही मुँह से सुनिये[5]

---

[1] दु० श० सिं० भो० लो० गी० पृ० ४४५। [2] वही पृ० १६६। [3] त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० २४३। [4] दु० श० सिं० भो० लो० गी० पृ० २१६। [5] डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१६।

"सासु मारे हुदुका, ननदिया मारे गारी हो।
ए चदरिया के ऊलोतवा हो, देवरवा हमरो ना।"

पुत्री की बिदाई के समय उसकी माता अपने पुत्र से कहती है कि मेरी समधिन से जाकर यह देना कि वे मेरी पुत्री को पैर न मारेंगी, गाली न देंगी और प्रातःकाल न जगायेंगी। जब इस बात को पुत्र ने समधिन सास के आगे कहा तब वह तड़प कर कहती है कि मैं अवश्य ही पैर से अपनी पतोहू को मारूँगी, प्रातःकाल में गाली दूँगी और कच्ची नींद में ही उसे जगा दूँगी।[1]

"लाते हम मरबो पारातें देबो गारी।
काच ही निनियें हम जगइबो पूत बहुआ री।"

सास की यह गर्वोक्ति उसके स्वभाव की परिचायिका है। कोई परदेसी पति घर आकर अपनी स्त्री को उदासीन देखकर उससे पूछता है कि तुम क्यों दुःखी हो। इस पर वह उत्तर देती है कि तुम्हारी माता मुझे मारती है और गाली देती है।[2]

"माई तोहार प्रभु मारे गरिआवे,
बहिनी बोलेली बिरह बोल हो।
लहुरा देवरा मारे लाली छरिया,
ओही गुने बदन मलीन हो।"

एक बिरहे में सास और पतोहू की कलह का बड़ा स्वाभाविक वर्णन पाया जाता है। सास और पतोहू में वाग्युद्ध होते होते मूसल से मार पीट होने लगती है। सम्भवतः सास घायल होकर कहती है कि यदि मेरा बूढ़ा पति जीवित होता तो आज मैं इस पतोहू को 'बनवास' दिये बिना नहीं छोड़ती :[3]

"सासु पतोहिया में लागल बा झगड़वा।
कइली मूसरवा के मार।
आजु पतोहिया के हम बन दिहिती,
जो जियत रहिते बुढ़ऊ हमार।"

इस बिरहे में सास पतोहू के विरोध ने मूर्तिमान रूप धारण कर लिया है। वह अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है।

इन गीतों में सर्वत्र 'दरुनियाँ सास' का ही चित्रण किया गया है जो सत्य है। जहाँ सास और पतोहू के भयानक झगड़े का वर्णन इन गीतों में पाया जाता है वहाँ कहीं-कहीं इनके पारस्परिक व्यवहार की सुन्दर झाँकी भी हमें देखने को मिल जाती है। पुत्र जन्म के एक गीत में पुत्र प्राप्ति का कारण बतलाती हुई कोई स्त्री कहती है कि मैंने सास के वचन को कभी नहीं टाला और न कभी ननद का तिरस्कार ही किया। इससे पुत्र रूपी फल मिला है।[4]

"सासु क वचन न टारेऊँ, न ननद तुकारेऊँ हो।
ससुर कबहू न लाई लूकी लायऊँ, नाही रे जानो वोही गुन हो।"

कोई पति परदेस जाते समय अपने स्त्री को मायके चले जाने का आदेश

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १६०। दुर्गा शंकर सिंह: भो० लोक गीत पृ० ४११। ३. भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३२६। ४. त्रिपाठी: ग्रा० गी० पृ० ६५।

देता है। इस पर यह कहती है कि मैं सास की सेवा करके अपना जीवन यहीं बिताऊँगी।[1]

"राजा सासु की करिबे टहलिया,
उमिरि हम बिताइब हो।"

इस प्रकार जहाँ सास और वधू में विरोध दिखाई पडता है वहाँ प्रेम का दर्शन भी पाया जाता है। इन गीतो में भोजपुरी समाज का जो चित्र खींचा गया है वह अक्षरशः सत्य है जिसकी पुष्टि प्रस्तुत उदाहरणो से की जा सकती है।

६ ननद और भावज

सास और वधू में जिस प्रकार शाश्वतिक विरोध पाया जाता है उसी प्रकार ननद और भावज के बीच हम निरन्तर बढते हुए वैमनस्य को पाते हैं। भाई और बहन एक ही माता पिता की सगी सन्तान हैं अत उनमें प्रगाढ प्रेम होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार माता पुत्र के प्रेम और आदर की अधिकारिणी अपने को समझती है उसी प्रकार बहन भी उसके अकृत्रिम प्रेम का पात्र अपने को मानती है। परन्तु भावज के आने ही यह स्थिति बदल जाती है। पुत्र का प्रेम बहन, स्त्री और माता में त्रिधा विभक्त हो जाता है। भावज घर में आते ही पति पर अधिकार जताने लगती है, उसके तन, मन और धन की मालकिन बन बैठती है। यह बात बहन को (साथ ही उसकी माता को) असह्य हो जाती है। यह देखकर कि पराये घर की एक स्त्री ने मेरे भाई पर अधिकार कर लिया है, भावज से चिढने लगती है। भावज ननद को दो चार दिन का पाहुना समझकर, परिवार में उसके महत्व को न समझकर उसका तिरस्कार करती है। यही दोनो के झगडे का मूल मनोवैज्ञानिक कारण है।

ननद और भावज का यह झगडा कुछ नया नहीं है। यह चिरकाल से चला आ रहा है। संस्कृत के किसी कवि ने ननद और भावज की अनबन की ओर बडे सुन्दर शब्दो से संकेत किया है। भावज कहती है कि

"श्वश्रू पश्यति नैव पश्यति यदि भ्रभगवक्रेक्षणा,
मर्मच्छेदपटु प्रतिक्षणमसो ब्रूते ननान्दा वच
अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरित स्मृत्वा मनोवेपते,
कान्त स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतापदाग सखि।"

इस श्लोक में ननद को मर्म भेदने वाली वाणी बोलने में निपुण कहा गया है।

एक चैता, में कुम्भकर्णी निद्रा में सोये हुये आलसी पति का बडा सुन्दर वर्णन हुआ है। वह शाम को ही सो जाता है और सूर्योदय होने पर भी आलस्यवश नहीं उठता। इस पर उसकी स्त्री अपनी ननद से उसे जगाने को कहती है। परन्तु ननद उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं करती

"रामा कइसे के भऊजी भइया के जगाई हो रामा।
मोर भइया, निंदिया के मातल हो रामा।
मोर भइया।"

सास और ननद का एक साथ मिलकर भावज को कष्ट देने का वर्णन अनेक

---

१ त्रिपाठी, ग्राम गीत पृ० ५६।

गीतों में आता है। सास अपनी वधू के विरुद्ध जो कुछ करना चाहती है, ननद उसमें सहायता पहुँचाती है। एक जात के गीत में वधू को गेहूँ पीसने के लिये भेजा जाता है। सास तो उसे गेहूँ देती है और ननद उसे बड़ी 'चँगेरी' प्रदान करती है जिसमें अधिक गेहूँ समा सके। परन्तु भावज से जात चलता ही नहीं है और वह रोने लगती है[1]

"सासु देली गोहुँआ हो रामा, ननदी चँगेरिया।
गोतिनि बहरिनिया हो रामा, भेजेली जतसरिया।
जँतवो न चलइ हो रामा, मकरी न डोलई।
जँतवा के धइले हो रामा, रोइला जतसरिया।"

बड़ी चँगेरी मे वधू को गेहूँ देने में ननद की गहरी दुष्टता छिपी पड़ी है।

किसी स्त्री ने पुत्र होने पर अपनी ननद को आभूषण देने का वादा किया था। परन्तु जब उसे पुत्र हुआ तो वह आभूषण देने से इन्कार करने लगती है। इस पर ननद कहती है कि मैं तुम्हें सात लात और गाल मे दो थप्पड मारूँगी तथा तुम्हारा कगन और पछेला दोनों छीन लूँगी।[2]

"भौजी जवन बोली बोललू ओसरवा, उहे बोल राखौ।
मारब सात गडहरी गले दुइ थप्पड रे।
भौजी कँगना के जोट पछेलवा दुनौ हम लेबो।"

जब वधू ससुराल जाती है तब ननद भावज के प्रति अपनी माँ से कहती है कि यह हल जोतने वाले किसान की लडकी है। अत इसे रहने के लिए ए माता! वह घर दो जिसमें भूसा रखा जाता है।[3]

"मैया तो न बोले पावे कि ननद उठि बोलैं,
अम्मा एहि हरजोतवा की बिटिया दिहौ घर भुसहुल।"

ननद और भावज पानी भरने के लिये जाती हैं। भावज जोगी का मन्दिर देखने के लिये जाती है और कुछ विलम्ब से आती है। इतने ही में दूसरे के कहने पर ननद उसके चरित्र पर आशंका करती है। भावज प्रार्थना करती है फिर भी ननद अपने भाई से यह कहती है कि ए भाई! तुम्हारी ठकुराई में आग लग जाय। तुम्हारी स्त्री तो जोगी के मन्दिर में जाती है।[4]

"आगि लागै भइया तोहरी ठकुरइया,
भौजी जाली जोगी के मिढुलिया हो ना।"

इसी से ननद की दुष्टता का अनुमान किया जा सकता है।

लोक गीतो मे भावज का जो चित्रण किया गया है वह ननद की अपेक्षा अधिक निर्मम एवं कठोर है। ननद तो भावज की भाई से केवल शिकायत करती है परन्तु भावज ननद को विष खाने का सन्देह ही नही भेजती बल्कि उसकी छाती में खजर घुसेड कर उसकी ऐहिक लीला भी समाप्त कर देती है। भावज की कठोरता का यह दृश्य देखिये। ननद पिता के घर से विदा होकर ससुराल जा रही है। पुत्री वियोग के दुःख से रोने के कारण पिता के आँसुओ से गगा में

---

१ डु० रा० सि० भो० लो० गी० पृ० १६३। २ त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ६०। ३ वही पृ० ६४। ४ वही पृ० ३४८।

बाढ आ गई है, माता के रोने से अँधेरा छा गया है, भाई के रोने से पैर तक की धोती भींग गई है परन्तु भावज की आँखों मे आँसू के बूँद भी नही दिखाई पड़ते :

"भऊजी नयनवो ना लोर ।"

ननद भावज के लिये भारस्वरूप होती है । भावज समझती है कि यह व्यर्थ मे बैठकर घर का आटा गीला कर रही है । एक गीत में इसी भावना मे प्रेरित होकर भावज ननद के विवाह के लिये सास, ससुर और अपने पति से वर खोजने की विनती करती है ।[1] विवाह होने पर पुत्री के विदा होते समय माता, पिता वस्त्र और गाय आदि देते हैं परन्तु भावज अफीम का टुकडा उपहार स्वरूप उसे देती है ।[2]

"आमा जे देली राम लहर पटोरवा, बाबा दीहें धेनु गाइ ।
भइया जे देले राम चढन के घोडवा, भऊजी महुरवा के गाठि ।"

भावज की बोली विष के समान लगती है ।[3] वह जब कभी भी बोलती है तो उसकी वाणी में व्यंग्य भरा रहता है ।[4] जिस प्रकार ननद भावज के चरित्र पर सन्देह करती है उसी प्रकार भावज भी ननद के चरित्र पर व्यर्थ का कलक लगाती है । पानी के लिये गई ननद से भावज पूछती है कि ए ननद ! तुम्हारा आँचल (कपड़ा) मैला क्यों है । तुम कहाँ गई थी ।[5]

"मैं तोसे पूछों मैना ननदिया,
अँचरा कवन गुन धूमिल हो राम ।"

घर में भावज ननद को खाने, पीने, पहिनने का कितना कष्ट देती है इसका सुन्दर वर्णन नीचे के सोहर में हुआ है ।[6]

"कोठिला कढलो खुखुडिया, त घमवा सुखावेलो हो ।
ए ननदी ! खुखुडी के रोटिया पकवलो, बथुइया केरा सगिया नु हो ।"

ननद ससुराल के कष्टों से ऊब गई है । फिर सावन का महीना है । अतः वह मायके आने के लिये अपनी भावज के पास सन्देश भेजती है । परन्तु भावज ने इसके उत्तर में विष (अफीम) की गाठ भेज दी और कहा कि इसे खाकर सो जाना ।[7]

"भौजी जे पठवा सनेसवा, महुरवा के गाठि ।
खाई न रहेऊ मोरी ननदी तो सावन मास ।"

भावज की इसी दुष्टता को जानकर कोई बहन अपने भाई से ससुराल के दुःखो को निवेदन करने के पश्चात् कहती है कि ए भाई ! मेरा यह दुःख भावज से मत कहना, नही तो वह इस बात को दो चार और लोगो से बढा चढा कर कहती फिरेगी ।[8]

"ई दुःख जनि कहो भइया भऊजी के अगवा हो ना ।
भउजी दुइ चारि घरे कहि अइहें हो ना ।"

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३१७ । २. वही पृ० १६६ । ३ त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ६७ । ४ वही पृ० २५७ । ५. वही पृ० २८६ । ६. भो० लो० गी० पृ० ५६ । ७. त्रिपाठी ग्राम गीत पृ० ४३३ । ८ भो० लो० गी० पृ० ४४५ ।

खेलवना के गीत में, पुत्र जन्म के अवसर पर सहायता न पहुँचाने के कारण भावज ननद को धमकी देती है कि यदि मैं प्रसव कार्य से सकुशल निवृत होगई तो ननद की छाती में छुरी भोंक कर उसे मार डालूँगी।[1]

"गोतिनी के झोंटा धइ लसार देबो ललना।
अबकी बरहिया के ऊपर होइबों,
ननदी के छुरी लेके सीना फरबो ललना।"

ज्ञात नहीं कि इस प्रस्ताव को भावज ने कार्य रूप में परिणत किया या नहीं परन्तु इसकी कल्पना भी बड़ी भयंकर और वीभत्स है। इन उल्लेखों से ननद और भावज के संबंध का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है।

देवर और भावज

प्राचीन भारत में देवर और भावज का सबंध आदर्श रूप में दिखलाया गया है। सीताहरण के पश्चात् उनके गहनों को जब रामचन्द्र लक्ष्मण से पहचानने को कहते हैं तो उस समय वे जो उत्तर देते हैं वह स्मरणीय है :[2]

"केयूर नैव जानामि, नैव जानामि कुडले।
नूपरावेव जानामि, नित्य पादाभिवन्दनात्।"

अर्थात् मैं केयूर और कुडल को नहीं पहचानता क्योंकि सीताजी के शरीर के ऊपर मैंने कभी दृष्टिपात नहीं किया था। मैं तो उनके पैर के नूपुरों को ही पहिचानता हूँ क्योंकि मैं नित्यश उन्हें प्रणाम किया करता था। आदिकवि वाल्मीकि ने देवर और भावज के सबंध की कितनी ऊँची कल्पना इस श्लोक में की है।

राम जंगल में जाने को तैयार हैं। लक्ष्मण भी उनके साथ जाना चाहते हैं। जब वह सुमित्रा से अनुमति मागने के लिये आते हैं तब वे कहती हैं :[3]

"रामं दशरथं विद्धि, मा विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवी विद्धि, गच्छ तात, यथासुखम्।"

इस श्लोक में भावज की तुलना माता से की गई है। यही हमारा भारतीय आदर्श रहा है।

परन्तु लोकगीतों मे देवर और भावज के सबध को हम भारतीय आदर्श के अनुरूप नहीं पाते। इन गीतों में भावज और देवर के अनुचित प्रेम का वर्णन प्राप्त होता है। इसका क्या कारण है? यह कहना कठिन है। हमारी ऐसी धारणा है कि पीछे के धर्मशास्त्रकारों ने जो नियोग की व्यवस्था दी वही इसका मूल कारण है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में जैसे पुत्रहीन होने पर भावज नियोग की प्रथा से देवर से पुत्रोत्पत्ति करा सकती थी।[4] इसके अनेक उदाहरण इतिहास ग्रंथों में विद्यमान हैं। यही प्रथा काल क्रम से दूषित हो गई और शास्त्रीय आज्ञा का उल्लंघन कर विशेष परिस्थिति के अभाव में भी देवर और भावज का अनुचित संबंध होने लगा। इसी अनुचित प्रेम की झलक हमें इन गीतों में देखने को मिलती है।

---

१. वही पृ० ३४७। २. वाल्मीकि रामायण। ३. वही ४. नियोग प्रथा के विशेष विवरण लिये देखिये : डाक्टर कृष्णदेव उपाध्याय: हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।

कोई देवर अपनी भावज (जिसका पति परदेस गया है) से यह कह रहा है कि जब तक मेरा भाई बाहर से नहीं आता है तब तक तुम मुझसे प्रेम करो[१]

"जब लग भउजी भइया हमार अइहें हो।
कि तब लागि ना, भउजी जोर ना सनेहिया।
कि तब लागि ना।"

एक दूसरे गीत में लछुमन नामक देवर अपनी भावज से कहता है कि मेरा भाई तो परदेस गया है अत तुम मेरे लिये सेज सजाओ। उस सेज पर फूलों को बिखेरो और मेरी सेवा कर पतिप्रवास के दुखों को भूल जाओ।[२]

'हमरहि सेजिया बिछावहु फूल छितरावहु हो।
भऊजी! हमरेहि लागहू टहलिया, त दुख बिसरावहु हो।"

भावज पानी लाने के लिये पनघट पर गई है। हंसराज नामक उसका देवर घोड़े पर चढ़ा आ रहा है। भावज ने घड़ा सिर पर उठाने के लिये कहा। हंसराज एक हाथ से तो उसके घड़े को उठाता है और दूसरे हाथ से उसके आँचल को पकड़कर उसे रोक लेता है।[३]

"एक हाथे देवरू घइला अलगावें,
कि दूसर हाथे ना, धई अँचरा बिलमावे।
कि दूसर हाथ ना।"

एक दूसरे गीत में कोई मल्लाहिन अपने देवर से विवाह कर लेती है परन्तु जब उसे अपने पूर्व पति से उत्पन्न बालक की सुधि आती है तो रोने लगती है। देवर भावज को उदासीन देखकर जब इसका कारण पूछता है तो वह उत्तर देती है कि[४]

"नाही मन परे देवर, माई बाप सुखवा हो,
नाही मन परे देवर, पहिला बिअहुवा।
एक त जे मन परे गोदी के बलकवा हो।
रोवत होइहैं घरवा गोदी के बलकवा हो।"

आजकल की नीची जातियों (मल्लाह, गोंड, अहीर, चमार, और कोईरी आदि) में पति के मर जाने पर प्राय स्त्रियाँ अपने देवर से विवाह कर लेती हैं। इस गीत में मल्लाहिन ने जो देवर से विवाह कर लिया है वह इसी प्रथा के अन्तर्गत है। ऊँची जातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) में तो नियोग की प्राचीन प्रथा जाती रही परन्तु नीची जातियों में यह अब तक भी बनी हुई है।

कई गीतों में देवर भावज का सहायक और पत्रवाहक भी दिखलाया गया है। किसी स्त्री का पति परदेस चला गया है। वह अपने देवर को बुलाती है और उससे पत्र लिखवा कर पति के पास भिजवाती है।[५]

'देवरा के बदिहे कयियवा नु ए राम।
चिठिया जे लिखी हे समुझाइ के नु ए राम।"

देवर भावज की विरह वेदना को उसके प्राण प्यारे पति के पास पहुँचाता

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१७। २ दु० श० सिं० भो० लो० गी० पृ० ४१। ३ वही पृ० २५१। ४ दु० श० सिं० भो० लो० गी० पृ० १७४। ५ वही पृ० ८८।

है और अपने भाई से घर लौट चलने का आग्रह करता है। पति पत्र को पढ़कर घर लौट जाता है और अपनी स्त्री के दुःख को दूर करता है[1]

"मोरी रानी लहुरा देवरवा के हाथे जो पाती लिखी भेजेउ हो।
देवरा हो मोरे देवरा, अरे तु मेरे देवरा हो।
मोरा देवरा जो हरि होय अकेले, तो बाँचि सुनायउ हो।"

इस गीत में देवर ने भावज की जो सहायता की है वह अभिनन्दनीय है।

८ भसुर और भवहि

पति के बड़े भाई को भोजपुरी में 'भसुर' कहते हैं और छोटे भाई की स्त्री 'भवहि' कही जाती है। हिन्दी में इन शब्दों का पर्यायवाची कोई दूसरा शब्द नहीं है। अतः इन्हीं शब्दों का प्रयोग यहाँ किया गया है। भोजपुरी समाज में भसुर अपनी भवही को देखना तो दूर रहा स्पर्श तक नहीं कर सकता। पति के बड़े भाई होने के कारण वह पूज्य माना जाता है। अतः उसके सामने आना, बातें करना या उसे छूना भवहि के लिये सर्वथा निषिद्ध है। इस नियम का भोजपुरी समाज में बड़ी कड़ाई के साथ पालन किया जाता है। फिर भी कुछ ऐसे गीत उपलब्ध हैं जिनमें इन नियमों का उल्लंघन कर भवहि और ससुर में अनुचित प्रेम वर्णित है।

इन्द्रसिंह नामक कोई पुरुष टिकुली नाम की अपनी भवहि के रूप सौंदर्य पर मोहित हो जाता है। वह उसके पति (अपने छोटे भाई) को जंगल में ले जाकर मार डालता है और अपनी भवहि टिकुली से अनुचित प्रस्ताव करता है। टिकुली अपने पति की लाश उससे मँगवाती है और उसे झूठा आश्वासन देती रहती है। लाश को जलाने के लिये जब इन्द्रसिंह आग लाने जाता है इतने में वह पति के साथ जलकर सती हो जाती है। इन्द्रसिंह यह देखकर हाथ मलकर पछताता है।[2]

'जब लगि भसुर अगिया आने गइलनि रे ना।
रामा फुफुतिनि अगिया धधकवली हो रामा।
राम दुनो रे बेकति जरि छरवा भइलें हो ना।
जहूँ हम जनिती 'टिकुली' मोरि बुधि छोरबू रे ना।
ए राम डड़िया रे पइसि सतवा नसती हो राम।"

उक्त गीत की अंतिम पंक्ति में भसुर की नीचता की पराकाष्ठा दिखलाई गई है। साथ ही 'टिकुली' का दिव्य सतीत्व आदर्श रूप में हमारे सामने आता है।

एक दूसरे गीत में कोई भसुर अपनी भवहि से छेड़खानी करता है। भवहि पानी भरने के लिये गई है। भसुर उसका रास्ता रोक लेता है। जब वह कहती है कि मुझे मार्ग दो क्योंकि मेरी चुनरी भीग रही है तब वह अपनी चादर देता है। सती उसकी चादर में आग लगा देने की बात कह कर उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर देती है[3]

"पानी के पियासल जिरवा गइली पनिघटवा रे।
घर के भसुर बटिया रोकेले नु रे जी।
छोड़ु छोड़ु भसुरा रे मोर पनिघटवा रे।

---

१ । नेपाली आ० गा० पृ० ३२। २ दु० श० सिं० भो० लो० गी० पृ० ८५। ३ दु० श० सिं० भो० लो० गी० पृ० १००।

बरसेला पनिया भीजेला मोर चुनरिया नु रे जी।
जउँ तोरा 'जिरवा' रे भीजे ले चुनरिया रे,
हमरो दुपटवा ओढि लेवहु रे जी।
तोहरे दुपटवा भसुर, आगि धधका हवि,
हमरी चुनरिया सीतल बयरिया नु रे जी।"

रोपनी का यह गीत लीजिये जिसमें भसुर का कामुक प्रयत्न चरमकोटि तक पहुँच जाने पर भी सफलता को नही प्राप्त कर सका है। भवहि द्वारा चित्रकारी को देखकर भसुर उसके प्रेम में फँस जाता है और अपनी अभिलाषा को माता से यह सुनाता है, परन्तु माता इस प्रस्ताव को अनुचित ठहराती है।[1]

"मैया लहुरी पतोहिया मनवा बसली हो ना।
लहुरी पतोहिया पूता भवहि हो तोहार।
रामा ऊ त तिलगवा के जोइया हो ना।"

बडा भाई अपने छोटे भाई (तिलगवा) को जगल में ले जाता है और विश्वासघात कर उसका वध कर देता है। दुखी स्त्री भसुर से झूठा वादा करती है और अपने पति की लाश लेकर सती हो जाती है। इस प्रकार भसुर हाथ मल कर पछताता रह जाता है:[1]

"रामा जो हम होई सतवन्ती हो ना।
मोरे अँचरा भभकि उठे अगिया हो ना।
बरे लगली लकडी भसम भइली छोटका हो ना।
रामा जेठवा मले दूनो हथवा हो ना।"

इन गीतो में भसुर की दुष्टता देखने को मिलती है। दोनो उद्धरणों में भवहि भसुर को चकमा देकर अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई पाई जाती है।

६. ससुर और पतोहू

लोकगीतो में ससुर और पतोहू का जो आदर्श सबध होना चाहिये वैसा हमें देखने को नही मिलता। 'पतोहू' पुत्रवधू का अपभ्रश रूप है, जिसका अर्थ पुत्र की स्त्री होता है। अत पिता का पुत्र के प्रति जो स्नेह होता है वह उसकी स्त्री के साथ भी होना चाहिये। परन्तु ऐसी बात नहीं पाई जाती। एक गीत में ससुर और पतोहू में अनुचित सबध दिखलाया गया है। पतोहू लोक लज्जा को त्याग कर ससुर को झलने के लिये पखा माँग रही है। एक दूसरे गीत मे ससुर के द्वारा पुत्रवधू की बाहों पर गोदे गये 'गोदना' को कामुकता भरी दृष्टि से देखने का उल्लेख पाया जाता है। ससुर जब भोजन करने आता है तब वह वधू के गोदना को ही देखता रहता है। वधू कहती है कि यदि मैं जानती कि ससुर जी ऐसा करेंगे तो मैं गोदना ही न गोदाती।[1]

"सासु दात रे बतीसी, बहू का बाही गोदना।
ससुर जेवना ना जेवेंले, नीहारे मोरे गोदना।
जाहु हम जनिती ससुर, नीहरब तू गोदना।
ससुर नाही रे गोदइता, आपन बाही गोदना।"

---

१. वही पृ० ३४६। २ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३०५।

इसी प्रकार से एक झूमर में वधू की भूली हुई झुलनी को ससुर पानी में खोज रहा है। यह कार्य वधू के साथ अनुचित संबंध क। व्यंजना कर रहा है।

१० सौत-सौत

सौत शब्द 'सपत्नी' का अपभ्रंश रूप है। भोजपुरी में इसके लिये 'सवति' शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसकी निरुक्ति सौत के ही समान है। एक पुरुष की दो या दो से अधिक स्त्रियाँ आपस में 'सौत' कहलाती हैं। इन सपत्नियों में आपस में बड़ा द्वेष पाया जाता है। यहाँ तक कि 'सौतिया डाह' ईर्ष्या का उपमान बन गया है।

भोजपुरी में एक कहावत है कि 'चूनो के सौत ना भावेले' अर्थात् आटे की निर्जीव सौत की प्रकृति भी अच्छी नहीं लगती। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि सापत्नी द्वेष कितना भयंकर होता है। लोकगीतों में सौतिया डाह का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। सौतों के झगड़ों का सजीव चित्रण इन गीतों में हुआ है।

पति अपनी स्त्री को 'मधुपीपरि' पीने के लिये कहता है। पत्नी के मना करने पर वह दूसरा विवाह करने की धमकी देता है। इस पर उसकी स्त्री कहती है कि मैं मधुपीपरि भले ही पी लूँगी परन्तु सौत का 'जार' दुःख मुझसे नहीं सहा जायगा।[1]

"सवति के जार हम ना सहबि,
पियब मधु पीपरि हो।"

बारह वर्ष के बाद सौत लेकर लौटे हुये परदेसी पति से स्त्री की यह व्यंग्योक्ति कितनी मार्मिक है। वह कहती है कि तुम बारह वर्ष पर परदेस से लौट रहे हो। इस बीच में मुझे क्या कष्ट हुआ इसकी तुम्हें क्या चिन्ता। साथ ही सौत भी लेते आये हो। तुम्हें मेरे दिल का दर्द क्या मालूम।[2]

"आरो बारहो बरिस पर आना,
सवतिन लिये साथ।
दिल का दरद ना जाना।"

एक झूमर में सौत की वाणी की तीक्ष्णता का वर्णन हुआ है। स्त्री अपने पति से पूछती है कि तुम्हारी आँखें मेरे ऊपर लाल क्या हो रही हैं। एक तो सौत लाने की बात मेरे कलेजे को बेध रही है और दूसरा यह तुम्हारा क्रोध। इससे मेरा हृदय काँप रहा है।[3]

'कवन गुनहिए चुकला ए बालम, तोर नयना रतनार।
सवती के बतिया करेजवा में साले, कांपेला जियरा हमार।"

कोई पति दूसरा विवाह करके सौत लाया है। इस पर उसकी पहिली स्त्री कहती है कि यदि मैं वन्ध्या होती, लँगड़ी, लूली होती, कोयल के समान काली होती तब तुम्हारा सपत्नी लाना ठीक था। परन्तु मैं तो पुत्रवती हूँ एवं सर्वांग

---

१ भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ७०। २ वही पृ० २४६। ३ भो० लोक गीत पृ० २२८।

सुन्दरी हूँ फिर तुम सौत क्यों लाये। मैं तो तुम्हारे गले का हार थी फिर ऐसा अनाचरण तुमने क्यो किया ?[१]

"मैं तो तोरे गले का हार रजवा,
काहे को लायो सवतिया।
जाहु हम रहिती बाँझ बझिनिया,
तब आइति सवतिनिया।
जब हम रहिती काली कोइलिया,
तब आइति सवतिनिया।
रजवा हमरो सोटा अइसन देह,
काहे को लायो सवतिया।"

उपर्युक्त झूमर में पत्नी द्वारा पति का उपालम्भ बड़ा ही मार्मिक है। सौत के द्वेष के कारण एक स्त्री अपनी दूसरी सौत को विधवा हो जाने की गाली देती है और उसके प्रेम को क्षणिक बतलाकर सौत का उपहास करती है।[२]

"आरे इ त तिरिया सेजिया पर मीठ रे
सैंया भूले ओहि राड।"

सौत की कल्पना से ही स्त्रियों को इतनी चिढ हो जाती है कि पति का मनोरंजन करने वाली परन्तु उसके अधर को चूसने वाली वंशी भी सौत का प्रतीक समझी जाती है। कोई पुरुष पलग पर बैठ कर वशी बजा रहा है तब उसकी स्त्री उससे कहती है कि मैं सौत बनकर (क्योंकि वंशी रूपी सौत पहिले से ही सेज पर विराजमान है) आपका गाना सुनूँगी[३]

राजा के वसी सेजरिया पर बाजे,
सवतिया हो के सुनबि राउर वसी।"

इस गीत में पति का अधर पान करने वाली (वंशी) भी सौत के रूप में दिखाई पड़ती है। एक दूसरे गीत में सौत की कुबरी से तुलना की गई है।[४]

एक झूमर में सपत्नी की चिन्ता के कारण नीद न लगने का करुणाजनक वर्णन पाया जाता है। पति के साथ सौत सो रही है इसे देख कर उसकी दूसरी स्त्री को डाह उत्पन्न होता है और यही उसकी नीद न लगने का मुख्य कारण है।[५]

"लागति नाही निनिया ए राजाजी।
बायें सूतलि बा सवतिया ए राजाजी।
लागति नाही निनिया ए राजाजी।"

सौत के कारण नीद न लगने का एक दूसरा कारण पहिली स्त्री का निरादर भी है। पति नई विवाहित पत्नी के आगे पहिली स्त्री का पूर्ण तिरस्कार करता है जैसा कि नीचे की इस झूमर में स्पष्टतया वर्णित है।[६]

"अस सौतिन के माने माई,
हमरा बदर बनवरा वा।"

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३०३। २ भो० लो० गीत पृ० १६७। ३ भो० लो० गी० पृ० २०३। ४ वही. पृ० २१०। ५. वही पृ० २१६। ६. वही पृ० २२६।

सौतिया डाह कभी-कभी उग्र रूप भी धारण कर लेता है। जब वाणी का व्यापार समाप्त हो जाता है तब हाथा-पायी की नौबत आ जाती है। तिरवाही के इस गीत में दो सौतों का 'झोटा' (बालो का समुदाय) पकडकर लडने का वर्णन पाया जाता है :[1]

"उढरी बियही दोनो करे झोटी क झोटा हो ना।
रामा राजा बैठि डेहरी झखे हो ना।"

एक सौत दूसरी सौत को अपने भाई के साथ पानी में डूब जाने का आशीर्वाद देती है जिससे उसका रास्ता आगे के लिये निष्कटक बन जाय।[2]

"देहिन रावतिया आपन असीसिया,
भैया बहिन बूडौ मझधार।"

सौत का 'जार' इतना असह्य हो उठता है कि कभी-कभी स्त्रियाँ आत्महत्या तक कर डालती हैं। सौत को पति के साथ सोया देखकर कोई स्त्री अपनी सास से आत्महत्या करने के लिये छूरी और कटार मागती है, क्योंकि सपत्नी का द्वेष उसके लिये असह्य हो रहा है।[3] एक झूमर में पति के द्वारा सोनारिन को सौत बनाने का वर्णन मिलता है। उसकी पहिली स्त्री सास से छूरी कटारी माग कर अपनी सौत का वध करने का निश्चय कर रही है।[4]

"देहु ना सासु हो छुरिया कटरिया,
कतल कई घलवों सोनारिन हो।"

यह कितना भयकर सकल्प है। इसी प्रकार 'सौतिया डाह' के अनेक वर्णन लोक गीतो में उपलब्ध हैं।

बाल विवाह

कभी भोजपुरी समाज में बाल विवाह का बहुत अधिक प्रचार था। यह प्रथा आज भी प्रचलित है परन्तु धीरे धीरे कम हो रही है। जैसे-जैसे नयी सभ्यता का प्रकाश गाँवो मे फैल रहा है वैसे-वैसे लोग इसकी बुराइयो को समझने लगे हैं। आज भी धनी एव प्रतिष्ठित घरा मे पुत्र एव पुत्री का विवाह बाल्यावस्था में ही कर दिया जाता है। अभी भी विवाह में वर के साथ दासी या नौकरानी के जाने की प्रथा है। जिसका काम पहिले बाल वर की सेवा सुश्रूषा करना होता था। 'अष्ट वर्षा भवेद् गौरी' के सिद्धान्त के मानने वाले पुराण पन्थी लोग पुत्री का विवाह बालकपन मे तो कर ही देते हैं परन्तु लडके के विवाह को भी यथाशीघ्र कर देने की चेष्टा करते हैं। भोजपुरी प्रदेश में बालको का अधिक दिनो तक अविवाहित रहना लोगा की दृष्टि मे निर्धनता का सूचक माना जाता है।

इन गीतों में कहीं स्त्री अपने बाल पति के लिये दुखी दिखाई पडती है तो कहीं पति छोटी स्त्री को देखकर रूठ जाता है।

आजकल उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिला मे 'बनजारी का गीत' बडा प्रसिद्ध एव लोकप्रिय है। इस गीत में किसी स्त्री के बाल पति के दुखा का बडा दर्दनाक वर्णन है। वह स्त्री कहती है कि ए शिव ! तुमने सबको तो अन्न और धन दिया परन्तु मुझे छोटा पति (लडिका

---

१ त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ४०३ दु० श० सि० भो० लो० गी० पृ० १७७। २ त्रिपाठी ग्रा० गीत पृ० ४२०। ३ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३०२। भो० लो० गीत पृ० २०६।

भतार) दे दिया। उसे लेकर मैं एक दिन सोई। इतने में खेत म गीदड बोलने लगा। उसकी आवाज सुनकर मेरा पति डर कर रोने लगा। मेरी चोली का बन्द खोलने के स्थान पर वह घर का किवाड खोलता है। उसकी इस नादानी को देखकर मेरा शरीर सिर से पैर तक जल जाता है।

'सबकें त देल भोला, अन, धन, सोनवा,
बनवारी हो, हमारा के लरिका भतार।
लरिका भतार लेके सुतली ओसरवा,
बनवारी हो रहरी में बोलेला सियार।
खोले के ते चोली बन्द खोलेले केवार।
बनवारी हो जरि गइले एँडी से कपार।"

यह गीत और लम्बा है जिसमे बालक पति वाली इस तरुणी स्त्री की मनोवेदना का वर्णन सुन्दर रीति से हुआ है। 'जरि गइले एडी से कपार' इसी एक पवित में कितना क्षोम, कितना क्रोध, कितनी आत्म-वेदना और कितनी व्यजना भरी पडी है।

पति विवाह करने के लिये जाता है। उसकी माता अटारी पर चढ कर देख कर कहती है कि मेरा बेटा विवाह करने जाने के लिये प्रस्तुत है परन्तु दूध पीने के बिना उसके हाठ सूख रहे है।[1]

"ऊँच रे मन्दिर चढि हेरेली कवन देई,
कवन गाव नियरा कि दूर।
हमरा कवन दुलहा बियहन चलेलें,
दूध बिनु ओठ सुखाई ए।"

इस वर्णन से सहज ही में अनुमान किया जा सकता है कि विवाह के लिये जाने वाला वर दुधमुहा बच्चा था।

झूमर के नीचे के गीत में बालक पति के मिलने के कारण स्त्री की मानसिक वेदना बडे करुण शब्दो में व्यक्त हुई है। कोई स्त्री अपने भाग्य को कोसती हुई कहती है कि मैंने शिव की पूजा बडी भक्ति से की। परन्तु मुझे फल रूप मे बाल पति मिला है। मेरे साथ की सब स्त्रियाँ लरकोरी (पुत्रवती) हो गई परन्तु मेरा भाग्य छोटा है। ए सखी! मैं अपने मन को कैसे धीरज धराऊँ। पति की इस छोटी उम्र पर बज्र पड जाय।[2]

"फूलवा मैं लोढ़ीं लोढ़ीं भरली चँगेरिया
सिउ पर चढवली, ए चार गोइयाँ।
सिउ पर चढवली कवन फल पवली,
बलमुआ मिलल मोर छोट, ए चार गोइयाँ।
हमरा ले छोटी छोटी भइली लरकोरिया,
करमवा भइले खोट, ए चार गोइयाँ।
कइसे हम धीरज धरी मन समुझाई,
बजर परे बारी उमिरिया नु, ए चार गोइयाँ।"

इस गीत में कितनी कसक भरी है। बालक एव नादान पति को देखकर उस स्त्री के हृदय में क्या बीतता होगा इसका वर्णन शब्दा द्वारा नही किया जा सकता।

---

१ डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १२१। २ वही पृ० १५३। ३ भो० लो० गी० पृ० २३५।

एक दूसरे गीत में कोई स्त्री व्यंग्य रूप से अपने बाल पति की सेवा करने का वर्णन करती है।[1]

"हमरा बलमु जी के छोटे छोटे गोडवा,
पनही पर पनही पेन्हायबि।'

कहारा के गीत में भी बाल विवाह की प्रथा पाई जाती है। स्त्री कहती है कि मैं अपने पति को दिन में दूध पिलाऊँगी और रात में तेल और उबटन लगाऊँगी। इस प्रकार बाल पति की सेवाकर मैं उसे युवा बना दूंगी।[2]

शिव और पार्वती के विवाह मे अनमेल विवाह संबंध देखने को मिलता है।[3]

बाल पति को पाकर जैसे स्त्री को कष्ट होता है वैसे छोटी स्त्री को पाकर पति को भी। सीता को उम्र में छोटी पाने से राम का यह रोना कितना अर्थपूर्ण है। वह माता से कहते हैं—[4]

"नाहीं कोसिला आमा माई बाप निरधन,
ना पवनी थार वहेज हों।
आमा कोसिला मोर सीता छोट बाडी,
ए हीं नयन ढरे लोर हो।"

वृद्ध विवाह

लोक गीतों में वृद्ध विवाह का भी वर्णन पाया जाता है। यद्यपि भोजपुरी समाज में वृद्ध विवाह की प्रथा नहीं के बराबर है फिर भी एक दो विवाह ऐसे देखने को अवश्य मिलते हैं [illegible]

लालच में पड़कर भी वे ऐसा कर बैठते हैं। लड़की को बेच कर बूढे वर से विवाह करने का नीचे लिखा यह वर्णन कितना मार्मिक है। पुत्री कहती है कि पिताजी ने बूढे वर से मेरा विवाह कर मेरी 'सादी' नहीं की बल्कि बरबादी कर दी। सभी लोग मेरी खिल्ली उडाते हैं और कहते हैं कि यह बूढे की स्त्री है। उस बूढे पति के पास जाते मुझे बडी लज्जा लगती है—[5]

'पइसा के लालच पडि के बुढऊ से सादी रे।
सादी ना कइले ई त मोर बरबादी रे।
कोठा ऊपर कोठरी बुढऊ बोलाउसु रे।
जात सरमवा लागे राम बुढऊ के जोरू रे।
झीनी चदरिया ओढि के बगिया में गइली रे।
मलिया हरामी ठट्ठा मरलसि, बुढऊ के जोरू रे।"

इस गीत में पुत्री की मनोव्यथा का बडा ही मार्मिक वर्णन हुआ है। वृद्ध विवाह का एक दूसरा सजीव चित्रण इस गीत में हुआ है। कोई स्त्री कहती है कि मैं सेज पर सोने के

---

१ भो० लो० गी० पृ० २४५। २ भो० लो० गी० पृ० २४७। ३ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भा १ पृ० १६६। ४ वही पृ० १६७। ५ भो० लो० गी० पृ० १८७।

लिये गई तो देखा कि बूढ़ा पति विराजमान है। उसकी सफेद दाढ़ी को देखकर मेरा हृदय जल गया। लेकिन बूढ़े ने मेरा सत्कार किया। मुझे मिठाइयाँ खिलाई, सुन्दर गहना बनवा दिया और बहुमूल्य कपड़ा भी लाया। ऐसा मेरा बूढ़ा पति चिरजीवी हो। गीत यह है—[1]

"सोवे मैं गइलो रे रंग महलिया,
सेज पर बुढऊ रे बलमुआ।
पाकलि दढ़िया नजरिया जे परले,
जिउवा जरल हमार।
अतना दुलार चेल्हिकवो ना कइले,
जेतना बुढऊ दुलार।"

सत्य है, बूढ़ा पति नवेली वधू का बहुत अधिक आदर करता है। किसी कवि ने कितना सटीक लिखा है कि—

"वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।"

झूमर के एक गीत में कोई स्त्री कहती है कि जब बूढ़ा पति मेरे पलग पर आता है तो मेरा हृदय गन-गन कापने लगता है। मेरे लालची माता पिता ने बूढ़े से मेरा विवाह कर दिया। मैं थर-थर काप रही हूँ।

"बाबा मतरिया मोर पइसा के राजी,
करेले बुढ़वा से सादी॥
आरे मोर राजा मैं थर-थर कापों।
जब रे बुढ़वा पलगिया पर अइले,
हमरा से मागें गलचूमा।
आरे मोर राजा मैं गनगन कापों।"

इस गीत मे वृद्ध विवाह की प्रथा के साथ ही साथ कन्या विक्रय की प्रथा की ओर सकेत किया गया है। वृद्ध पुरुष से विवाह होने के कारण उस स्त्री की क्या मानसिक दशा है इसकी झलक भी हमें देखने को मिलती है। एक बूढ़े वर की हुलिया कितनी सजीव है—[2]

"दाँत जो टूटि गइले चाम जे झूलतारे
मथवा वे बरवा चवर भइले।"

सिर के बालो की चवर से उपमा देकर बुढ़ापा की अतिशयता को प्रकट किया गया है। एक दूसरे गीत में बूढ़े वर की उपमा पके आम से दी गई है।[3] कोई पुत्री बूढ़े वर से विवाह कर देने के कारण अपने पिता से यह व्यग्योक्ति कह रही है कि पिताजी! आपने मेरे हृदय को लालायित कर दिया। बाला और वृद्ध को आपने एक साथ विवाह करके कर दिया आप कितने कठोर हैं।[4]

"बाल वृद्ध एक सग कइ दीहल,
पथल के छाती वा तोर।"

एक अन्य गीत में पुत्री कहती है कि बूढ़े पति की दशा को देखकर मैं पागल हो गई हूँ और रो रो कर दिन बिताती हूँ।

---

१. भो० लो० गी० पृ० १८६। २. वही पृ० २०८। ३ भो० लो० गी० पृ० ४७६।
४. वही पृ० ४७८। ५ वही. ०४८०।

"पति कर देखि गति पागल भइल मति,
रोइ रोइ करीला बिहान मोर बाबूजी ।"

गीत की अन्तिम पंक्ति में पुत्री की व्यथा सिमटी पड़ी है।

बहु विवाह

भोजपुरी समाज न बहुविवाह की प्रथा आज भी प्रचलित है। यद्यपि यह धीरे-धीरे कम होती जा रही है और पढे लिखे लोग इसकी बुराइयों को समझ कर इसे छोड़ने लगे हैं फिर भी इसकी सत्ता विद्यमान है। एक स्त्री के मर जाने के बाद दूसरा और दूसरी के बाद तीसरा विवाह करना तो एक साधारण सी बात है। यह संख्या चार, पांच, छ तक बढती जाती है। कुछ लोग तो एक स्त्री के जीवित रहते ही दूसरी स्त्री से विवाह कर लेते हैं। ऐसे विवाह बहुधा सन्तानहीन अथवा पुत्रहीन लोग ही किया करते हैं। परन्तु समाज ऐसे विवाहों को सम्मानित नहीं समझता यद्यपि इसका निषेध भी नहीं करता। एक स्त्री के जीवित रहते ही दूसरा विवाह करने का परिणाम बड़ा विषम होता है जिसका कुछ दिग्दर्शन 'सौत' वाले प्रकरण में कराया जा चुका है। स्त्रियां आपस में लड़ती हैं, झगड़े होते हैं, कचहरी की शरण लेनी पड़ती है। इस प्रकार बिचारे दो जोरू वाले का जीवन सकटमय बन जाता है। जहाँ एक स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह होता है वहाँ सौतेली मा के कटु व्यवहार के कारण लड़कों में भी आपस में वैमनस्य हो जाता है।

कोई पति जीविकोपार्जन के लिये बंगाल जा रहा है। उसकी स्त्री उससे पूछती है कि तुम मेरे लिये वहाँ से क्या लावोगे। तब वह उत्तर देता है कि —

'जो तुहु जइब रावल पुरुब बनिजिया से,
हमरा के का तू ले अइब राव न मुनियां।
तोहरा के लाइबि धनिया कसमल चोलिया से,
अपना के पुरबी बंगालिन रावल मुनिया।"

इससे पता चलता है बंगाल में जाकर वहाँ की स्त्री से विवाह करना 'रावल' के लिये साधारण बात थी।

कोई पुरुष माली की लड़की के साथ काम पाश मे फस गया है। जब उसकी स्त्री उस बिटिया से अपने पति का साथ छोड़ने के लिये कहती है तो वह स्पष्ट मना कर देता है।[1] कोई परदेसी पति घर आने पर अपनी स्त्री से रुष्ट होकर कहता है कि यदि मैं जानता कि तू ऐसा करोगी तो मैं पूर्व देश बंगाल में किसी बंगालिन से विवाह कर लेता।[2]

"जाहु हम जनितीं की धनिया बाड़ी अइसन,
राम कि कइरे धलितों ना।
उजे पुरुबी बंगलिनिया
राम कि कइरे धलितो ना।"

एक अन्य गीत में स्त्री को मुगलों के हाथ में बेच कर दूसरा विवाह करने का वर्णन मिलता है।[3]

कोई स्त्री अपने पति से कहती है कि मेरे लिये अपने भाई की हत्या आप मत कीजिये।

---

१. डा० उपाध्याय, भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१३। २ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१६। ३ वही पृ० ३१६।

भाई के मर जाने से आप अकेले पड जायेंगे परन्तु स्त्री के मर जाने पर आप दूसरा विवाह कर सकते हैं ।[1]

"भइया मरले जयसिह अवसर होइव,
धनिया मरले दोसर धनिया नूरे जी ।"

एक स्त्री के मरने के वाद दूसरा विवाह करना तो भोजपुरी समाज में एक साधारण-सी घटना है । अपनी पहली स्त्री के मर जाने पर कोई पति दु खी है । तब उसकी माता कह रही है कि बेटा ! तुम क्या दु खी हो । तुम्हें मैं दूध भात खाने को दूगी और तुम्हारा दूसरा विवाह कर दूगी ।[2] किसी मनचले राजा ने डामिन से विवाह कर लिया है । जब उसे अपनी विवाहिता पहिली स्त्री की याद आती है तो वह बहुत दु खी होता है ।[3]

'एक त याद परे बिअही तिरियवा,
जे छोड़िरे अइलो डोमिन ! घरवा में तिरियवा ।"

अन्य दो गीतो मे विवाहिता पत्नी के रहते भी पति के द्वारा 'रखेली' रखने को उल्लेख पाया जाता है ।[4] एक अलचारी के गीत में यह वर्णन मिलता है कि कोई स्त्री अपने पति को इसलिये बगाल की ओर जाने से मना कर रही है कि वहाँ बगालिन स्त्रियाँ उसके पति को फँसा लेंगी ।[5] गीत का भाव बडा सुन्दर है ।

"उतरी बनिजिया के उतरी बगालिन ।
से रखिहैं करेजवा लगाई मोर सामी ॥'

कोई पति सुन्दरी स्त्री से विवाह न होने के कारण दु खी है । तब उसकी माता उसे समझाती हुई कहती है कि बेटा ! दु ख मत करो । मैं तुम्हारा दूसरा विवाह सुन्दरी स्त्री से कर दूगी —[6]

"जनि बाबू हहरहु जनि बाबू झहरहु हो ।
बाबू कई देवा दोसर बिआह,
त ओही घरे बेनी पहब हो ।"

सुन्दरी स्त्री न होने के कारण भी कुछ लोग दूसरा विवाह कर लेते हैं ।

शिवजी भी परदेस में जाकर दूसरा विवाह करके लौटते हैं । जब पार्वती पूछती हैं कि मुझमें क्या दोष था जो आपने विवाह किया तब वे उत्तर देते हैं कि तुम निर्दोष हो परन्तु मेरे भाग्य में ही दूसरा विवाह लिखा था ।[7]

"नाहि गउरा आन्हर नाहि गउरा लगर,
नाहि गउरा कोखिया विहून रे ।
विधि के लिखल गउरा नाही मेटे रे ।
भावी वइल दूसर बियाह रे ।"

इस प्रकार मनुष्यों में ही नही देवताओ में भी बहु विवाह की प्रथा का वर्णन किया गया है ।

पर्दे की प्रथा

भोजपुरी समाज में पर्दे की प्रथा अत्यधिक है । कोई भी कुलीन परिवार की स्त्री

---

१ भो० लो० गी० पृ० १०१ । २ वही पृ० १४३ । ३. वही पृ० १७३ । ४ वही पृ० १७७, १८८ । ५ भो० लो० गी० पृ० ३४५ । ६ वही पृ० ३६८ । ७. डा० उपाध्याय · भो० लो० गी० पृ० १७७ । भो० लो० गी० पृ० ३१० ।

अपने घर से बाहर नहीं निकल सकती। मंगल एवं उत्सव आदि अवसरों पर बूढ़ी स्त्रियाँ तो एक दूसरे के घर आती जाती हैं परन्तु घर की वधू कहीं भी नहीं जा सकती। वे अपने पति से भी दिन में सास, ननद के सामने बातें करने में असमर्थ होती हैं। पति के बड़े भाई भसुर और ससुर से बोलना अथवा उनके सामने आना नितान्त निषिद्ध है। जो बहू जितनी अधिक लज्जा करती है वह उतनी ही सुशीला समझी जाती है।

भोजपुरी समाज में पर्दे की प्रथा के कारण पति अपनी स्त्री के पास सब लोगों के समक्ष नहीं जा सकता। वह चुपके से आता है और फिर चुपके से ही जाता है।

कोल्हू के एक गीत में कोई स्त्री कहती है कि मैं चुनरी पहिन कर ओसारे में सो रही थी। उस समय मेरा पति चोर की भांति लुकता छिपता जिसमे कोई उसे देख न ले मेरे पास आया। जिनकी मैं विवाहिता स्त्री हूँ वे भी पास दीवाल फोड़ कर घुसने वाले चोर की भांति मेरे पास आते हैं।[१]

प्राचीन है । संस्कृत के ग्रन्थों में इसका उल्लेख अनेक स्थानों पर पाया जाता है । महाकवि कालिदास का वियोगी यक्ष अपनी प्रियतमा के पास मेघ को दूत बनाकर भेजता है । महाकवि बाणभट्ट ने एक दासी के द्वारा कादम्बरी और महाश्वेता के बीच प्रेम का सन्देश भिजवाया है । कहीं-कहीं पक्षियों के द्वारा भी सन्देश वाहक का काम लिया गया है । श्रीहर्ष ने नैषधीय चरित में वचन चातुरी में प्रवीण हंस को नल दमयन्ती के प्रेम का माध्यम बनाया है । लोक गीतों के अध्ययन से पता चलता है कि उनमें भी मनुष्य के अतिरिक्त पशु पक्षी भी संदेशवाहक का काय करते हैं । कौवे तथा तोते के द्वारा सन्देश भिजवाने का वर्णन अनेक स्थलों पर लोक गीतों में आता है । कोई स्त्री एक तोते से कहती है कि तुम यहाँ से उडकर चले जाओ और परदेश में जहाँ मेरे पति हों उनकी पगडी पर बैठ जाना और उनसे यह सन्देश कह सुनाना । तोता जाता है और उस निष्ठुर पति की पगडी पर बैठ कर उस स्त्री की दुःखद कहानी सुनाता है । पति स्त्री के कष्ट को सुनकर घर लौट आता है । इसी प्रकार से कौवे के द्वारा भी यह समाचार भिजवाने का काम लिया गया है ।

इन गीतों में पत्र लिखकर विरह सन्देश भेजने का भी वर्णन उपलब्ध होता है । नीचे के गीत में किसी स्त्री के द्वारा अपने पति के पास पत्र लिखने का वर्णन किया गया है । पति के पत्र को पाकर स्त्री उसका उत्तर स्वयं लिख भेजती है —[1]

"चिठिया जे लिखि लिखि भेजेला दुलहवा,
देहुगे दुलहिन के हाथ ए ।
आरे आपन ए दुलहिन सेनुरा सहेजिह,
बूंद परत भींहिलाइ ए ।
चिठिया जे लिखि भेजली दुलहिनिया,
देहुगे दुलहा के हाथ ए ।
आरे आपन ए दुलहा चनन राहेजिह,
घाम परत कुम्हीलाइ ए ।"

परन्तु जिन स्त्रियों का साक्षरता से सम्बन्ध नहीं है उन्हें तो अपनी हृदय की व्यथा दूसरों को सुनाकर लिखवानी पडती है । यह काम कहीं तो देवर से लिया गया है, कहीं पर घर के पास में रहने वाले पडोसी मित्र से और कहीं लिखने का पेशा करने वाले गाँव के मुन्शी कायस्थ जी से । सीता से उनकी कोई सखी कहती है कि तुम अपने देवर को कायस्थ पत्र लेखक बनाना । अर्थात् देवर से पत्र लिखवाना ।[2]

"देवरा के बदिहै कययवा नू ए राम ।"

यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि प्राचीन भारत में लिखने का काम जो लोग किया करते थे उन्हें 'कायस्थ' के नाम से पुकारते थे । शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' में लेखक को 'कायस्थ' नाम से अभिहित किया है । सम्भवतः बाद में इसी से लिखने का काम करने वाले लोगों की एक पृथक् जाति बन गई जो कायस्थ नाम से पुकारी जाने लगी । नीचे के एक गीत में एक कायस्थ का उल्लेख है ।

"मोरा पिछुअरवा कायथवा भइया हितवा ।
मोर चिठिया लिखु रामुझाई के रे ना ।"

---

१. डा० उपाध्याय - भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १२५ । २. दुर्गा शंकर सिंह भो० लो० गी० पृ० ४२ ।

प्राचीन भारत में लिखने के साधन बहुत कम थे। ताड पत्रा पर लोहे की कलम से छेद कर और भूर्जपत्रों पर स्याही से लिखने की प्रथा प्रचलित थी। लोक गीत की एक स्त्री अपनी साडी के आचर का फाड कर कागज बनाती है और मृगी की आँखों को मात करने वाले अपने नयना में लगे काजल जो विरह में अश्रुपात के कारण नीले पड गये हैं उससे स्याही का काम लेती हैं। वह लेखनी के स्थान पर अगुली का प्रयोग करती है। क्या न हो। अलौकिक एव लोकोत्तर प्रेम सन्देश को लिखने के साधन भी यदि अलौकिक हों तो इसमें सन्देह ही क्या। लेखन सामग्री का यह वर्णन कितना सुन्दर है—[1]

> 'कथी के करबा रे कारावा कागादवा निरवामोहिया,
> कथी के करबो मसीइनवा, निरवामोहिया।
> आचर फारि चीरि कारावा रे कागादवा निरवामोहिया।
> नयन कजरवा मसीइनिया, करबा निरवामोहिया।"

आचर रूपी कागज पर सन्देश लिखने की विधि बतलाती हुई विरहिणी लेखक से कहती है कि मेरे आचर के कोने में इधर उधर साधारण समाचार लिखना परन्तु उसके बीच में मेरी असीम विरह की व्यथा को अकित करना।[2]

> "आसपास लिखिहै रे सनेसवा निरवामोहिया।
> बीचे ठइया बरहो वियोगवा, निरवामोहिया।"

जिस प्रकार किसी पत्र में आवश्यक वस्तु को बीच में लिखा जाता है उसी प्रकार इस गीत में वियोग के दुःख को आचर के बीच में लिखने का आदेश दिया गया है। प्रिया की प्रिय एव चिरसहचरी साडी के ऊपर नयन के काजल से लिखे गये इस विरह सन्देश का प्रेमी पति के हृदय पर क्या असर पडा होगा यह सहृदय ही समझ सकते हैं।

भोजन

लोक साहित्य में विशेषकर लोक गीता में विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों का उल्लेख पाया जाता है। इन गीता के अध्ययन करने से पता चलता है कि हमारा देशी भोजन क्या था। किस वस्तु को खाने की ओर लोगों की अधिक अभिरुचि थी। हमारे जनपद के निवासियों की प्रवृत्ति सात्विक भोजन की ओर थी अथवा राजसिक की ओर। उपनिषद् में लिखा है कि 'अन्नमय हि सौम्य मन' अर्थात् मनुष्य जो अन्न खाता है उसी के अनुसार उसका मन होता है। तामसिक पदार्थों का भोजन करने वाला पुरुष कभी सात्विक बातो का नहीं सोच सकता। भगवान् श्री कृष्ण ने गीता म भोजन के तीन विभिन्न भेद सात्विक, राजसिक एव तामसिक बतलाते हुए इनके गुण दोष की सुन्दर मीमासा की है तथा भोज्य पदार्थ से मनुष्य के आचरण पर क्या प्रभाव पडता है इसका मार्मिक विवेचन किया है।[3] भोजपुरी लोगो के भोज्य पदार्थों के अध्ययन से उनके स्वभाव एव आचरण पर भी प्रकाश पडता है।

भोजपुरी प्रदेश में सत्तू खाने की बहुत अधिक प्रथा है। सच तो यह है कि जिस प्रकार लाठी भोजपुरियों का देशी हथियार है, उसी प्रकार से सत्तू उनका निजी भोजन है।

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २२६ २७। २. वही पृ० २२७।
३. गीता सर्ग १७ श्लो ८ १०।

सत्तू जेठ और वैसाख की साय-साय कर चलने वाली लू मे काम करने वाला किसान सत्तू खाता है, पथ में चलने वाला पान्थ अपनी प्रिया के द्वारा प्रदत्त पाथेय के रूप में सत्तू लेकर जाता है और मेले ठेले में जहा कच्ची, पक्की रसोई का कोई प्रबन्ध नही हो सकता वहाँ भोजपुरी जवान सत्तू से ही अपनी उदर दरी की पूर्ति करता है।

लोकगीतो में सत्तू खाने का उल्लेख बार-बार आता है। कोई भानजा अपने परदेसी मामा को बुलाने के लिये जाता हुआ अपनी मामी से पाथेय रूप मे सत्तू पीसकर देने की प्रार्थना कर रहा है[1]—

"पीसहु आवहु ए मामी। जीरवा रे सतुइया।
हम जइबो मामा के लियावनु रे की।"

कोई सन्तोष वृत्ति वाला मनुष्य कह रहा है कि पूडी और मिठाई की चिन्ता नही करनी चाहिये, सत्तू खाकर ही सन्तोष धारण करना चाहिये —[2]

"पूडी मिठाई के गम मत करना,
सुखनी सतुइया गुजर करना।"

ससुराल के कष्टो का वर्णन करती हुई कोई स्त्री कहती है कि ससुराल में साग और सत्तू खाने को मिलता है परन्तु मायके मे भात। अत अब मै वहाँ नही जाऊँगी।[3]

"ससुरा में मिलेला साग सतुइया,
नइहरवा में खाने के भात।"

भोजपुरी कहावतो में भी सत्तू का उल्लेख पाया जाता है तथा उसमें पितरो (पितृगण) पूर्वज को सत्तू देने की चर्चा की गई है। एक कहावत है —"अंधिआइल सातू पितरन के" अर्थात् जो सत्तू हवा से उड जाय उसे पितरो को समर्पित कर देना चाहिये। बारम्बार सत्तू के उल्लेख से पता चलता है कि यह भोजपुरियो का प्रिय भोजन है।

सत्तू भोजपुरियों का राष्ट्रीय भोजन होने पर भी समृद्ध प्रदेश होने के कारण यहाँ दाल, भात, पूडी आदि अन्य भोज्य पदार्थो का अभाव नही है। बारात में आये हुए बारातियो

दाल, भात, पूडी आदि के लिये पुत्री के पिता द्वारा घी, दाल, भात, फुलवडा, कचौरी और पूडी खिलाने का उल्लेख पाया जाता है।[4] पिता कहता है कि बेटी! मैं दीवाल के समान ऊँची भात की 'ढेर' लगाऊँगा और दाल की तो धारा बहा दूगा। हयहर डोटीदार बडा लोटा से बारातियों के भोजन के लिये दाल में घी दूगा —[5]

"पाख बरोबरी बेटी भात निर्हाइबि,
दलिया चलइबो पवनार ए।
हयहर के डोटी ए बेटी घीव ढरकाइबि,
बारावा के नेवता देजि ए।"

चावल भात खाने के प्रसग में दो प्रकार के चावलो का उल्लेख मिलता है १. साठी का चावल। २ जडहन। साठी शब्द सस्कृत षष्टि का अपभ्रश है जिसका अर्थ साठ (६०) होता है। यह चावल बरसात के मौसम में साठ (६०) दिन में ही पककर

---

१. भो० ग्रा० गी० भाग १। पृ० २४२। २. वही पृ० २५४। ३. वही पृ० २६३। ४ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १३७। ५. वही पृ० १३७।

तैयार हो जाता है अत इसे 'साठी' कहते हैं। यह चावल खाने में मीठा लगता है परन्तु इसका भात गीला होता है। दूसरा चावल जड्हन है जो जाड़े के दिनो पूस, माघ में पैदा होता है। यह जड्हन चावल भी दो प्रकार का होता है, अरवा और भुजिया। साधारण लोग तो भुजिया चावल खाते हैं परन्तु अतिथि और सबंधियो को अरवा चावल खिलाया जाता है। दालों में अरहर और मूग की दाल के खाने का उल्लेख पाया जाता है। एक गीत में राजा गोपीचन्द की बहिन के द्वारा उनको अरवा चावल और अरहर की दाल भोजन कराने का उल्लेख किया गया है।[1]

"आरावा चउरवा अवरू रहरी के दलिया,
अामृत भोजन करवली हो राम।"

भोजपुरी प्रदेश मे अरवा चावल और अरहर की दाल उत्तम भोजन माना जाता है इसीलिए इसे 'अामृत भोजन' कहा गया है।

कोई स्त्री कहती है कि यदि मेरा पति भोजन के लिये आयेगा तो साठी का धान कूटकर मैं उसके लिये भात बनाऊँगी और मूग की दाल कर दाल परोसूगी और उसे भोजन करते समय लालसा भरे आँखो से उसे देखूगी —[2]

"सठिया कुटिय भात रिन्हितो
मुगिय दरी दलिया हो राम।
अहो रामा, मोरे प्रभु अइते जेवनवा,
नयन भरी देखितो हो राम।"

नीचे के गीत में भुजिया चावल का उल्लेख देखिये —[3]

ससुरा में मिलेला जउवा के रोटिया,
नइहरवा में पूडी हजार।
ससुरा में मिलेला साग सतुइया,
नइहरवा में धाने के भात।"

विभिन्न अवसरो पर पूडी खीर और पूरी जाऊर खाने का भी उल्लेख पाया जाता है[4] खीर और जाऊर में अन्तर केवल इतना ही है कि खीर को दूध में पकाकर चीनी डाल कर बनाते हैं परन्तु जाऊर के सिद्ध होने में जल और गुड की ही आवश्यकता होती है। किसानो के भोजन में दूध और दही का विशेष स्थान होता है। अत. दही भात और दूध भात खाने का अनेक गीतो में वर्णन पाया जाता है।[5] कही कही घी के लड्डू खाने का भी उल्लेख हुआ है।[6]

आटा अथवा जौ की मोटी रोटी को 'लिट्टी' कहते हैं। टूटा हुआ चावल 'खुदी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कोदो और सांवा[7] मोटे अन्न है। इन सभी वस्तुओं का उल्लेख इन गीतों में पाया जाता है। गोरखपुर और शाहाबाद जिले में चिउडा खाया जाता है।

देहात में जो फल पैदा होते है उन्ही की प्रधानता भोजन में पायी जाती है। नीबू, केला,[8] नारियल, आम, जामुन,[9] अमरूद,[10] मूली, शरीफा,[11] अनार, और ककडी आदि फलों

१. वही पृ० २४०। २ दुर्गाशंकर सिंह - भो० लो० गी० पृ० १२१। ३. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २६३। ४. दु० शं० सिंह भो० लो० गीत पृ० ७१। ५. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २५४। ६ वही पृ० २३२। ७ दु० शं० सिंह भो० लो० गीत पृ० ५३। ८. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ५२। ९. वही पृ० १२८। १०. वही पृ० २५०। ११. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २५६।

का उल्लेख अनेक स्थान पर इन गीतो में हुआ है। मिठाइयो में टिकरी,[1] जलेबी, बरफी, लड्डू,[2] और पेडा की प्रधानता उपलब्ध होती है। मथुरा[3] के पेडे और काशी के लड्डू[4] का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। मथुरा के पेडे तो आज भी प्रसिद्ध हैं परन्तु काशी के लड्डू के विषय में यह बात नही कही जा सकती।

रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक[5] में एक विवाह गीत दिया है जिसमें बारातियो के सामने सभी प्रकार के भोजन पक्वान्न,फल और मिष्ठान्न परोसने का उल्लेख है। मिठाइयो में पेडा, बरफी, अमिरती, खुरमा, घेवर, गुपचुप, सोहन हलुआ, जलेवी, अन्दरसा, बूदी, बतासा, बालूसाही, और लड्डू का, पक्वान्न मे पूडी, कचौडी, मालपुआ, पकौडी, पापड और हलुआ का,शाकों में सोया, मेथी, चौराई, पालक, मसीडा, मूली, कटहर, लौकी, कद्दू, करेला, भाटा, भिंडी, तुरैया, आलू, चचेंडा और बथुआका, फलो में नारगी, सेव, शहतूत, चिरौजी, चिलगोजा, अखरोट, किसमिस, मूगफली, जामुन और खरबूजा का उल्लेख पाया जाता है। इस गीत मे कुछ ऐसी मिठाइयाँ एव फलो के नाम भी हैं जिन्हें देहात के लोगो ने कभी सुना भी नही होगा। बारात में खाने की कथा ही दूर रही। हमारे यहाँ भोजन के छप्पन प्रकार बतलाये गये हैं परन्तु इस गीत में इससे भी अधिक भोज्य पदार्थों की सूची दी गई है। इस गीत के रचयिता का नाम 'तुलसीदास गवार' बतलाया गया है। समवत यह गीत आधुनिक काल का है।

इन गीतो में कही-कही मास खाने का भी उल्लेख पाया जाता है। गर्भावस्था में स्त्री को विभिन वस्तुओ के खाने की इच्छा होती है। ऐसे ही अवसर पर कोई स्त्री अपने पति से कहती है कि मुझे तो रेहु मछली और तीतर का मास खाने में अच्छा लगता है।[6]

मास-भोजन

"ए प्रामु! रेहुआ त भावेला मछरिया,
मासु तीतिलें कैरा हो।"

रेहु एक विशेष प्रकार की मछली होती है जिसका रग लाल होता है। यह खाने में बडी स्वादिष्ट होती है। समवत तीतर का मास भी स्वादिष्ट होता है। इसलिये इन दोनो जीवों के मास भक्षण का वर्णन हुआ है। कोई कामुक मल्लाह किसी स्त्री से कह रहा है कि तुम्हें दिन में खाने के लिये 'चाल्हवा' मछली दूगा और रात में गाय का दूध पिलाऊँगा।[7]

"दिनवा खिअइबो बहिना चाल्हावा मछरिया,
रतिया सुरहिया गाइ के दूध ए।"

चल्हवा मछली बडी चमकदार होती है।[8] हरिन के मास खाने का भी उल्लेख कुछ गीतों में पाया जाता है। समवत यह मास भक्षण किसी विशेष अवसर पुत्र जन्म, विवाह, अतिथि का आगमन आदि पर किया जाता था। राम जन्म के अवसर पर 'छठियार' के दिन हिरन के मास खाने की चर्चा एक गीत में पायी जाती है। कोई हरिणी अपने पति से कहती है कि आज राजा दशरथ के घर 'छठी' है। अत तुम्हें मार कर तुम्हारे मास का भक्षण किया जायगा।[9]

---

१ वही पृ० ३५८। २ वही पृ० २६४। ३. वही पृ० २८७। ४, वही पृ० १८७। ५ ग्रा० गी० पृ० १६६ १७१। ६. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ५२। ७ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १५३। ८ डु० शं० सिं० भो० लो० गी० पृ० १८३। ९ वही प० २६।

"हरिजा आजु राजा के छठिआर,
तुम्हें मारि डरिहें हो।"

आगे वह हरिणी रानी कौशिल्या से प्रार्थना करती हुई कहती है कि —[1]

"रानी मसुआ त सीझेला रसोइया,
खलरिया हमें दीतू तु हो।"

अर्थात् ऐ रानी ! हिरन का मास तो रसोई घर में पक रहा है परन्तु उसकी खाल हमें दे देना।

इससे स्पष्ट पता चलता है कि हिरन का मास पकाकर खाया जाता था। दोहद में भी हिरन के मास खाने का उल्लेख पाया जाता है। हिरन अपनी स्त्री से पूछता है कि आज किसकी स्त्री गर्भवती है जो हिरन को खाने के लिये मरवा रही है—[2]

"हिरनी ! केकर धनिया गरभ से,
हरिनवा मरवावेली हो।"

एक दूसरे गीत में भी हिरन के मास खाने का उल्लेख हुआ है।[3] कहीं-कहीं मोर का मास खाने का भी वर्णन लोक गीतों में पाया जाता है। हिरन और मोर के मास खाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है क्योंकि अशोक तृतीय शतक ईसवी पूर्व के शिलालेखों में इसका उल्लेख उपलब्ध होता है। अशोक के प्रथम शिलालेख में उसके महान रसोई घर में प्रतिदिन दो मोर और एक मृग के मास खाने का वर्णन पाया जाता है —[4]

"दुवे मजुला एके मिगे, से पि च मिगे नो ध्रुवे।

पुले महानससि देवान पियसा पियदसिसा लजिने अनुदिवस बहूनि पान सहसानि आल भियिसु सुपठाये।" मनु ने भी 'पच पचनखा भक्ष्या' लिखकर हिरन के मास खाने की व्यवस्था दी है। अत गीतों के वर्णित मास भक्षण शास्त्रानुमोदित एव प्राचीन परम्परागत हैं।

उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भोजपुरी लोग बहुधा शाकाहारी हैं। मास भक्षण का उल्लेख केवल आकस्मिक है।

वस्त्र एवं आभूषण

लोक गीतों में विभिन्न वस्त्रों एव आभूषणों के पहिनने का उल्लेख पाया जाता है: पीछे कहा गया है कि भोजपुरी प्रदेश में पर्दे की प्रथा प्रचलित है। कोई भी स्त्री बिना ओढनी (चादर) ओढे घर से बाहर नहीं निकल सकती। नयी बधू जब पालकी के भीतर बैठती है तब उस पालकी को भी चादर से जिसे ओहार कहते हैं ढक देते हैं। इसीलिये इन गीतों में ओढनी और ओहार का बारम्बार उल्लेख आता है। विभिन्न अवसरों पर किस प्रकार के वस्त्र पहने जाते हैं इसका भी पता इन गीतों से चलता है। मागलिक उत्सव पुत्र जन्म, विवाह आदि के समय पर पीत वस्त्र जिसे पियरी कहते हैं पहिना जाता है तथा अशुभ कार्यों, दाह, श्राद्ध आदि के अवसर पर सफेद कोरा वस्त्र। बालक को यज्ञोपवीत सस्कार के समय मृग चर्म, पलाशदड और मूज की करधनी धारण करनी पडती है। स्त्रियों की विभिन्न प्रकार की वेशभूषा का उल्लेख गीतों के अनेक स्थलों में पाया जाता है जिससे उनके घर

---

१. डु० श० सिं० : लो० गी० पृ० २६। २. वही पृ० २५। ३. वही पृ० २७३।
४. प्रियदर्शि प्रशस्तय, पृ० १।

की आर्थिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। धनी स्त्री साटन का लहंगा, रेशमी साड़ी और कुसुम्भी रंग की चोली पहनती है परन्तु गरीब स्त्री फटही 'लुगरी' पहिनकर ही अपना गुजर करती है एवं 'चिरकुट' धारण कर अपना दिन काटती है।

आभूषण स्त्रियों का परम प्रिय पदार्थ है। विवाह में वर पक्ष की समृद्धि का अनुमान उनके द्वारा लाये गये गहनों से ही किया जाता है। कितनी बारातों में गहना न लाने के कारण झगड़ा हो जाता है। स्त्रिया वस्त्र से भी अधिक गहनों को चाहती हैं। कितने घरों में तो पति पत्नी की शान्ति इसी गहने के पीछे भग हो जाती है। इन गीतों में भी इस विषय की सुन्दर झाकी हमें देखने को मिलती है। परदेश में जाने वाले पति से स्त्री अपने लिये गहना मागती है, अपने भतीजे के जन्मोत्सव पर ननद भावज से गहने की याचना करती है और सूतिकागृह (सऊरि) लीपने के लिये लालायित बहन अपने भाई से कगहना गढाने के लिये आग्रह करती है। आशय यह कि स्त्री की अलकारप्रियता का पता हमें प्रत्येक गीत से चलता है।

विभिन्न अगो में पहिने जाने वाले विभिन्न गहनों का वर्णन भी हमें इन गीतों में प्राप्त होता है।

यहाँ सुविधा के लिये आभूषण का नाम और उसके पहिनने का स्थान (अग) पृथक्-पृथक् लिखा जाता है।

आभूषण का नाम	अंग का नाम
१. मंगटीका[1]	माग
२. नथिया[2]	नाक
३. झुलनी	नाक
४. हार	गला
५. हसुली	गला
६. कठा[3]	गला
७. हुलका	गला
८. तिलरी[4]	गला
९. बाजूबन्द	बाहु का मध्य भाग
१०. बाजू	बाहु का मध्य भाग
११. झबिया[5]	बाहु का मध्य भाग
१२. कागाना	हाथ
१३. कड़ा	पैर
१४. छड़ा	पैर
१५. नूपुर	पैर
१६. अगूठी	हाथ और पैर की अगुली
१७. करधनी	कमर
१८ पायजेब	पैर

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३१५। २. वही पृ० ६८। ३ डा० उपाध्याय : वही पृ० १०४। ४. वही पृ० २७६। ५. वही पृ० ३२०।

इन आभूषणों में झुलनी, हसुली एवं कडा परम प्रसिद्ध हैं। झूमर के गीतो मे झुलनी का उल्लेख अनेक बार हुआ है। कही परदेश को प्रयाण करने वाले पति को झुलनी लाने के लिये स्त्री आदेश देती है तो कही तालाब में खोई हुई झुलनी को खोजती हु ई वह दिखाई पड़ती है।

"ना जानो यार झुलनी मोर कहाँ गिरा।
पनिया भरन जाऊँ राजा ना जानो
यहाँ गिरा ना जानो, वहाँ गिरा ना जानो
ना जानो यार डोरिये में लिपट गया।"

इन गहनो में से बाजूबन्द, झबिया, करधनी, पायजेब, कड़ा, छडा, कंठा, हलका और नथिया पह ने की प्रथा उठती जा रही है और इनका स्थान वेशकीमती सोने के गहने ले रहे हैं। इनमे मगटीका, नथिया, कठा, झुलनी और हार सोने के बनते है, शेष सब चादी के होते हैं।

लोक गीतो में साड़ी, लहगा, चोली और ओढनी के प्रयोग का उल्लेख अनेक बार हुआ है। कोई पुरुष अपनी स्त्री से पूछता है कि तुम्हें कौन कौन सा कपड़ा पसन्द है, तब वह उत्तर देती है कि मुझे मलमल की साड़ी, साटन का लहगा और कुसुम्भी रग की चोली सुन्दर लगती है।[1]

वस्त्र

"ए प्रभु! सड़िया त भावेला मलमलवा,
लहगा साटन केरा हो।
ए प्रभु! चोलिया त भावेला कुसुम केरा,
अवरू ना भावेला हो।"

साटन लाल या हरे रंग का मखमलीदार कपड़ा होता है जो बडा महंगा विकता है। एक दूसरे में भी स्त्री इन्ही वस्त्रों को पहनने की इच्छा प्रकट करती है।[2] सोहर के गीत में कोई धाय रानी से प्रार्थना करती है कि पुत्र जन्म के उपलक्ष में मै तो ओढनी (चादर) लूगी।[3]

"ओबरीनी झगड़ेलें धगड़िनिया,
दुअरिया पर नाउनि ए।
ए रानि! हम लेबों राम ओढनिया,
तबहि नोह टुगबि ए।"

लज्जाशीला स्त्रियों के लिये ओढ़नी आवश्यक वस्त्र है। इसीलिये धाय इसे लेने के लिये झगड रही है।

पुत्र जन्म के उछाह भरे अवसर पर कही कही 'पाचो टूक' कपड़ा दान में देने का वर्णन पाया जाता है। पुरुष के सबंध में यह पाच टुकडा या वस्त्र धोती, कुरता, अंगरक्षा, गमछी तौलिया दुपट्टा और पगडी है और स्त्रियों के लिये ये कपडे साया, साड़ी, चोली, झूला और ओढनी हैं। एक गीत में कोई माता धाय को यही 'पांचो टूक' कपड़ा देने की इच्छा प्रकट करती है—[4]

"रानी पांचो टुक कपड़ा धगड़िनिया,
कन्हैया के जमन नु रे।"

---

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १ पृ० ५२। २. वही पृ० ७७। ३. वही पृ० ६३। ४. वही पृ० ७५।

मगलमय अवसरो पर रगीन वस्त्र विशेषकर पीला वस्त्र (पियरी) पहिनने की प्रथा है। जिस स्त्री को लडका पैदा होता है उसे 'छठियार' या 'बरही' के दिन पीला वस्त्र ही पहिनाया जाता है। एक गीत में सासु को चुनरी जिसमें लाल, हरे, पीले रग का समावेश रहता है ननदी को पियरी और दायादिन का लाल रेशमी वस्त्री देने का वर्णन है।[1]

"सासु के दिहली चुनरिया, त ननदि पियरिया हू रे।
गोतिनी के लहरा पटोरवा, गोतिनिया फेरिहैं पाइच रे।"

भोजपुरी समाज में सधवा स्त्रिया ही रगीन लाल, पीला वस्त्र पहनती हैं। विधवा सदा श्वेत वस्त्र धारण करती हैं। उपर्युक्त वणन से यह भी ज्ञात होता है कि जिन्हें वस्त्र प्रदान किया गया वे सभी सधवा थी। पति के वियाग में दु ख काटने वाली विरहिणी स्त्री भी रगीन वस्त्र नही पहिनती। कोई वियोगिनी कहती है कि अब मैं लाल चूनरी नही रगाऊगी क्योकि पति के बिना सारा ससार अन्धकारमय प्रतीत होता है।[2]

"हम ना रगइबो चुनरिया'
पिया बिनु सगरो अन्हार।"

कही-कही पर 'दखिन चीरा' अर्थात् दक्षिण देश का वस्त्र पहनने का भी उल्लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि जिस प्रकार आजकल 'मद्रासी साडिया' प्रसिद्ध है उसी प्रकार सभवत प्राचीन काल में भी इनकी प्रसिद्धि रही हो —

"किया फुआ पहिरबि रातुल,
किया रे दखिन चीरा रे।"

इस पर फूआ जवाब देती है कि —[3]

'पियर वहतर हम पहिरबि, लापर परीछबि रे।
नाहि रातुल पहिरबि, नाहि रे दखिन चीरा रे।"

कोई कुलटा स्त्री अतरस का लहगा, नीली रग की साडी और लाल किनारीदार चोली पहिनकर रास्ते मे जाती दिखाई पडती है —[4]

"अतरस लहगा, सबुज रग साडी,
चोलिया जरद किनारी।
चोलिया पेन्हैली कुलटा कवन देई
बटिया चलेली अकेली।
हाइ अलबेला ना।"

गरीब स्त्रियाँ प्राय झूला (देहाती जम्पर) पहिना करती है तथा साडी के स्थान पर 'लूगा' धारण करती हैं। साधारण मध्यम वर्ग की स्त्रियो का भी यही पहिनावा है। झूले में लाल, पीले या हरे रग की 'तोई' भी चढाई जाती है। नीचे का गीत देखिये[5]

"आरे जाजिम झुलवा रे सियइ है,
रेसम चढइहै सानाचाप।
ताहि बीचे जोबना रे छिपइहै,
झुलवा रखिहै हमार।'

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ६५। २ वही पृ० ६४। ३ वही पृ० ११४। ४ वही पृ० १९०। ५ वही पृ० २०६।

इसमें जाजिम मोटा कपडा के झूले में रेशम की 'तोई' चढ़ाने की चर्चा है। अगिया या चोली मे 'बन्द' लगने का भी वर्णन उपलब्ध होता है। 'बन्द' का स्थान आजकल बटन न ले लिया है।[1]

"जब सोनरवा के लगली नोकरिया,
उठावे लगले कोठा बगलवा रे।
सियावे लगले चोली बन्द अगिया,
गढ़ावे लगले बाजुबन अंगिया रे।",

स्त्रियो को चुनरी और चोली पहिनने का बडा शौक जान पडता है क्योंकि इनका उल्लेख बारम्बार गीतो में पाया जाता है।[2] रेशम की चोली उन्हे अधिक प्रिय है। कपडो पर बेल बूटे, बनाने, विभिन्न प्रकार की चिडियो को सूई से निकालने या काढने का उल्लेख भी इन गीतो में है। एक गीत में साडी के आचल पर दो मोर पक्षी और चोली पर चार चिडिया काढने बनाने की बात पाई जाती है।[3] जैसे —

"कहवाँ बनावों गुजरि, चारि चिरइया,
कहवाँ बनावों दुई मोर जी।
अगिया बनावहु चारि चिरइया,
अँचरे बनावहु दुइ मोर जी ।।"

साडी के ऊपर शोभा के लिये पक्षियो को बनाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन जान पडती है। महाकवि कालिदास ने भी पार्वती की साडी के किनारे को कलहस से सुशोभित होने का वर्णन किया है। आज भी सुन्दर साडियो की कन्नी पर मोर, हस, आदि पक्षी 'काढे' गये पाये जाते हैं।

जब स्त्रियाँ अपनी ससुराल या मायके जाती है तब वे पालकी में बैठा दी जाती है। उस पर चादर डाल दी जाती थी। नीचे लिखे गीत मे लाल पालकी के ऊपर नीले रग का ओहार चादर डालने की चर्चा है।[4]

"लाली लाली डोलिया रे, सबुजी ओहरवा
हो बाला जोरी से।
सइया ले आवे अगनवा हो,
बाला जोरी से ।।"

पुरुषो के पहनावे के विषय में कहा जा सकता है कि धोती उनका परम प्रिय वस्त्र है। इसीलिये मगल अथवा विदाई आदि के अवसर पर धोती ही उन्हें भेंट की जाती है। देहाती किसान धोती पहिनता है और कम्बल ओढता है।[5] मध्यम वर्ग के लोग ओढनी के लिये रजाई (लिहाफ) और दुलाई का प्रयोग करते हैं। इन गीतों में भगवान् कृष्ण के पीताम्बर पहिनने का उल्लेख पाया जाता है।[6] परदेसी पति के पगडी बांधने की चर्चा भी मिलती है।[7] विवाह के लिये जाने

---

१. डा० उपाध्याय · भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २७६। २. वही पृ० ३१२, ३१६, ३४६, ३६८। भो० लो० गी० पृ० ११६, २१६। ३ वधूदुकूलं कलहसलक्षणं, गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च। कु० सं० ५।६७। ४. भो० लो० गी० पृ० ४२५। ५. भो० लो० गी० पृ० २०६। ६ वही २६८। ७. वही १८३।

वाला दूल्हा सिर पर पगडी बांध कर चलता है। वह सेहरा भी पहनता है।[1] अँगरखा (अगरखा) भी पहिना जाता है। इस प्रकार धोती, अगरखा, चादर और पगडी पुरुष की पूरी पोशाक समझी जाती है।

बिछौना के प्रसग में गद्दा, दरी, गलइचा (कालीन), जाजिम का उल्लेख मिलता है।[2] चन्दन के बने पलग का वर्णन तो कितनी ही बार हुआ है। उस पलग पर बिछौना के रूप में तोसक, चादर, कालीन और तकिया पाया जाता है।[3] चन्दन के पलग मे रेशम का ओरचना (अदवाहन) लगा हुआ है।[4]

प्रसाधन

देहाती दुनिया मे सादगी का साम्राज्य विराजता है। वहाँ की स्त्रियाँ न तो 'लिपस्टिक' का प्रयोग जानती है और न 'नेल पालिश' से परिचित होती हैं। गाँव के वातावरण में जो सामग्री उपलब्ध होती है उसी से अपने शरीर का वे अलकरण करती है। ये लम्बे-लम्बे केश रखती हैं जिनका प्रसाधन वे सरसो या नारियल का तेल लगा कर करती है।[5] एक गीत में एक स्त्री जिस कघी से अपने बालो को सँवारती है वह सोने की बनी हुई है। हाथी दांत और चन्दन की कघी तो सुनने और देखने में आती है परन्तु सोने की कघी लोक गीतो की दुनिया में ही पाई जाती है। माता पुत्री से पूछती है कि तुम कौन-सा तेल लगाकर किस कघी से, किस मचिया पर बैठकर अपने केशो को सँवारती हो। पुत्री उत्तर देती है कि मैं नारियल का तेल लगाती हूँ, सोने की कघी से, सोने की मचिया पर बैठकर बाल सवारती हूँ[6]

"आरे कथि केरा ककही, कथीय केरा तेल,
आरे कथिका मचियवा हो बेटी, झारेलू लामी केस।
आरे सोने केरी ककही नरियर केर तेल,
आरे सोने का मचियवा हो आमा, झारीले लामी केस।"

एक गीत में भगवती नामक स्त्री तीसी (अलसी) का तेल बालो में लगाती है:[7]

"तिसिया के तेलवा से भगवती माथावा रे बन्हवलो,
आरे तेलवे कचोरवे ए भगवत, पटिया रे बन्हवलो।"

एक अन्य गीत में कोई स्त्री तीसी का तेल बालो में लगाने से उसके 'लटियाने' की चर्चा दुखभरे शब्दो में करती है।

"आरे तिसिया के तेलवा से माथावा रे बन्हवलो,
से बारवा गइले रे लटिआई।"

इसी प्रकार सरसो का तेल लगाने का भी उल्लेख पाया जाता है।

शरीर को सुन्दर बनाने के लिये आजकल अनेक प्रकार के साबुन देह में लगाये जाते है। परन्तु देहातो में इसका अभाव है अत. स्त्रियाँ शरीर के प्रसा-

---

१. डा० उपाध्याय: भो ग्रा० गी० भाग १ पृ० १४३, १४७। २. वही पृ० १५७। ३. वही पृ० ३५८। ४. वही पृ० २०४। ५. वही पृ० १६५। ६. वही पृ० १६५। ७, वही पृ० २३५।

धन के लिये उबटन का प्रयोग करती है। उबटन बनाने के कई तरीके हैं। १. सरसो को तेल में भूनकर उसे सिल पर पीसकर देह में लगाते हैं। २ आटे में हलदी तथा अन्य सुगंधित पदार्थ मिलाकर उसे शरीर में मलते हैं। पहले का नाम उबटन है और दूसरे का बुकवा। स्त्रियाँ इन्ही दोनो प्रसाधनो को शरीर में लगाकर उसे कोमल और कान्तिमान् बनाये रखती हैं। इनके लगाने से देह चिकनी हो जाती है। उबटन लगाकर सास को जगाने का यह वर्णन सुनिये :[1]

"अबटन लाई लाई सासु के जगवलो हो राम।
राउर बेटा होई गइले फकीरवा हो राम।"

आँखो में आजकल सुरमा लगाया जाता है परन्तु देहातो में आज भी रात में सोने के समय काजल लगाने की प्रथा है।[2] इससे नेत्र की ज्योति बढती है। कभी-कभी आँखो में आँजन भी लगाया जाता है। सिन्दूर और टिकुली (बिन्दी) भारतीय स्त्रियों के सौभाग्य का सूचक है। इसके उनके शरीर की शोभा शत-गुनी हो जाती है। कोई पुत्री अपने पिता से बिन्दी और सिन्दूर मँगाती है।[3]

"हमरी कन्त ना बाबा हो निठुरी,
बिंदुली, सेन्दुर मँगाव हो।"

कोई स्त्री अपने मायके में अपने पति से बहन का परिचय देती हुई कहती है कि जिसके ललाट पर टिकुली चमक रही है यही मेरी बहन है :[4]

"आरे जेकरा लिलारे झमाझमि बिजुली,
उहे प्रभु बहिना हमार ए।"

कही पर पैर में महावर और हाथ में मेंहदी लगाने का भी वर्णन पाया जाता है।

मनोरंजन

लोकगीतो में मनोरजन के साधनो का उल्लेख बहुत कम मिलता है। केवल पासा खेलने और शिकार करने का वर्णन अवश्य पाया जाता है। पासा खेलने की प्रथा हमारे देश में बहुत प्राचीन है। वेदो में 'अक्ष' खेलने का उल्लेख हुआ है। मृच्छकटिक में भी द्यूत का बड़ा सुन्दर वर्णन उपलब्ध है। यही परम्परा लोकगीतो में भी पाई जाती है। कोई पुरुष अपनी भावी पत्नी की खोज में जाता है। वहाँ उसका भावी साला पासा खेल रहा है। वह उसके आगमन का कारण पूछता है :[5]

"आरे पासवा खेलतारे सारवा पूछे एक बात।
आरे कइसे कइसे अइले ए दुलहा, एहि देसवा की ओर।"

इसी प्रकार पुत्र जन्म के एक गीत में लक्ष्मण जी के पासा खेलने का वर्णन पाया जाता है।[6]

"पासावा खेलत तुहु लखनजी, अवध लखन देवरु हो।
आरे रउरी भउजी बाटी गजओबरि, रउरा के बोलावहि हो।"

---

१. डा० उपाध्याय : भा० गी० भाग १ पृ० २३५। २. वही पृ० २२७। ३. वही पृ० १५९
४. वही पृ० १५०। ५. वही पृ० १६३। ६. लो० गी० पृ० ६२।

शिकार खेलने का उल्लेख भी गोधन के अनेक गीतों में मिलता है। बहन कहती है कि मेरा भाई शिकार खेलने के लिये गया है और मैं उसे असीस देती हूँ।[1]

"कवन भइया चलले अहेरिया, कवन बहिनी देली असीस हो ना।"

एक दूसरे गीत में नदी किनारे भाई के शिकार खेलने का वर्णन पाया जाता है।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ८४।

भोजपुरी लोगों का स्वभाव

भोजपुरी लोगों की कुछ निजी विशेषतायें हैं। उनका रहन-सहन, खान-पान, बोल चाल सभी में अपनी वैयक्तिकता है। इसलिये भोजपुरिया के विषय में बलिया के प्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता तथा कवि श्री प्रसिद्ध नारायण सिंह ने ठीक ही कहा है कि [1]

'निरबल, निरगुन, निरधन, गँवार'
अलगा आपन बोली विचार।
बन कन में जेकरा क्रान्ति बीज,
अइसन भोजपुर टप्पा हमार।"

भोजपुरिया के स्वभाव की सबसे पहली विशेषता उनकी वीरता, शौर्य और शक्ति है। भोजपुरी 'वीरभोग्या वसुन्धरा' का उपासक है। यह शक्ति में विश्वास रखता है। लाठी उसका अनन्य मित्र सहायक एवं सहचर है।

भोजपुरी में एक कहावत है "सौ पुराचरन ना एक हुराचरन" अर्थात् सौ पुरश्चरण (पूजा, पाठ के द्वारा दूसरे का नाश कराना) के द्वारा जो काम नहीं होता वह एक हुराचरन (लाठी की उपासना), हुरा लाठी के निचले मोटे भाग को कहते हैं, से सम्पन्न हो जाता है। इसी एक कहावत में भोजपुरिया के जीवन की फिलासफी छिपी हुई है।

भोजपुर की भूमि सदा से वीर प्रसू रही है। भोजपुरी सिपाही सदा से रणबाकुरे रहे हैं। मुगलो की सेनाओं में भोजपुरी जवान विशेष आदर से भरती किये जाते थे और अंग्रेजो के समय में भी भोजपुर उनकी सेनाओं के सिपाहियों के भरती का केन्द्र था। भोजपुरियों के कण-कण में क्रान्ति का बीज वर्तमान है यह देश के प्रेम में जूझ कर मरने वालो की वह जमात है जिसने पीठ दिखाना कभी नहीं जाना है। सन् १८५७ की क्रान्ति की चिनगारी पैदा करने वाला मंगल पाण्डे इसी भोजपुरी का निवासी था और उस समय में शाहाबाद जिले के जगदीशपुर ग्राम के निवासी कुँवर सिंह ने जो वीरता, साहस और त्याग दिखलाया वह इतिहास की उल्लेखनीय घटना है—अमर कहानी है।

"सन् सत्तावन के बाति याद,
सुनि कुँवर सिंह के सिंहनाद।
सब भागि चलल वैरी समूह,
छा गइल उहां घर घर विसाद।"[2]

राष्ट्रीय आन्दोलन के अवसरों पर भी भोजपुरिया ने अपनी वीरता एवं शौर्य का परिचय दिया है। सन् १९४२ ई० के अगस्त आन्दोलन में भोजपुरी प्रदेश विशेषकर बलिया जिला ने जो लोकोत्तर कार्य किया है उसका महत्व अगले इतिहासकार

---

१. लेखक का निजी संग्रह पृ० १०। २ लेखक का निजी संग्रह।

स्वर्णाक्षरो में अंकित करेंगे। जब जब गाधी जी ने स्वतन्त्रता सग्राम के लिये अपना बिगल बजाया, उस समय भोजपुरी लोगों की कतार पहली रही है

"जब जब बापू कइलन पुकार।
रन में बाजल बिगुल तोहार।
सिर बाधि बाधि कफनी आपन
हम छोडि दउरली घर दुआर।"
रन में हमार अगली कतार।[1]

इसीलिये डाक्टर ग्रियर्सन ने भोजपुरियो की सच्ची प्रशसा करते लिखा है कि "शाहाबाद का जिला (जहाँ भोजपुरी लोग रहते हैं) अपने वीरगीतो एव गाथाओ के कारण द्वितीय राजपूताना कहा जा सकता है। यह वीराग्रगण्या, वीरक्षत्राणी भगवती के रुधिर से सिंचित पवित्र भूमि है जिसने दुराचारी मुगलो से अपनी इज्जत को बचाने के लिए प्रत्यक्ष जल समाधि ले ली। इसे महोबा के परम प्रसिद्ध आल्हा और ऊदल की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। बाल के काल में बहादुर परन्तु वृढे कुँवरसिंह ने अंग्रेजो के विरुद्ध बगावत का झडा ऊँचा किया था। यह युद्ध प्रिय वीरो की भूमि है अत मथुरा के कृष्ण नही प्रत्युत अयोध्या के राम यहाँ के उपास्यदेव हैं।"[2]

भोजपुरियो की दूसरी विशेषता उनका साहसी स्वभाव है। ये विषम परिस्थितियो का विचार न करते हुये अपने अलौकिक साहस के कारण सुदूर देशो की यात्रा करते है। भोजपुरी लोग कलकत्ता, रगून, हागकाग, फीजी, मारिशस और दक्षिण अफ्रिका आदि अनेक देशा मे जीविकोपार्जन के लिये गये हैं और कितने लोग वही पीढियों से बस गये हैं। पूरब देश की ओर, अर्थात् कलकत्ता, रगून की ओर, व्यापार अथवा जीविका के लिये जाने का वर्णन ग्राम गीतो में अनेक बार आता है। एक गीत में एक स्त्री अपने पति से पूछती है कि यदि तुम 'पूरबी बनिजिया' को जावोगे तो मेरे लिये क्या लावोगे।

"आरे जो तुहु जइब रावल पुरुबि बनिजिया से,
हमरा के का तू ले अइब रावल मुनिया।"

और तो क्या, भोले बावा महादेव जी भी 'पूरबी बनिजिया' को जाते दिखाई पड़ते हैं और बारह वर्ष पर परदेश से लौट कर आते हैं

"महादेव चलले हा पुरुबि बनिजिया,
बितेला महिनवा चारि रे।
बारह बरिस पर लौटे महादेवा,
भइले दुअरवा पर ठाढ रे।"

इनके साहसिक स्वभाव के कारण मारिशस और फीजी भी इनका घर बन गया है और वहाँ हजारो नही, लाखो की सख्या में भोजपुरी पाये जाते है।

भोजपुरियो की तीसरी विशेषता उनकी स्पष्टवादिता है। भोजपुरियो का स्वभाव सीधा सादा होता है। वे छल कपट से कोसो दूर रहते हैं। उनकी वेश-

---

१ लेखक का निजी सग्रह। २. ज० रा० ए० सो० भाग १८, १८८६ पृ० २११।

भूषा सादी परन्तु स्वच्छ होती है। बात और व्यवहार में ये कृत्रिमता से अलग रहते हैं। इसीलिये वे स्पष्टवादी होते हैं।

डा० ग्रियर्सन ने भोजपुरियों की प्रधान विशेषताओं का वर्णन करते हुए बड़े पते की बात लिखी है —

"भोजपुरी भाषा भाषी प्रदेश उस जाति का प्रदेश है जो अपने अन्य बिहारी भाषा भाषी भाइयों से एक विलक्षण अलग स्वभाव की है। यह जाति भारतवर्ष की लड़ाकू जाति है। इनमें स्वभाव से ही सहज रूप में सदा चैतन्य रहनेवाली जातीयता—जिसमें दोष बहुत ही नगण्य और गुण एवं योग्यता अत्यधिक मात्रा में विद्यमान रहती है—पायी जाती है। ये युद्ध का केवल युद्ध करने मात्र के लिये प्यार करते हैं। ये समग्र भारत में फैले हुए हैं। प्रत्येक मनुष्य किसी भी सयोग अथवा कुयोग पूर्ण घटना से जो उसके सामने स्वतः आ उपस्थित होता है अपनी किस्मत आजमाने और अपनी जीविकोपार्जन करने के लिये सदा प्रस्तुत रहता है। इस जाति का प्रदेश हिन्दुस्तान की सेना में भर्ती के लिये अच्छा स्थान है। पर साथ ही इसके ठीक विपरीत सन् १८५७ ई० की क्रांति में इस जाति ने प्रमुख भाग लिया था। भोजपुरी अपनी लाठी से उतना ही प्रेम करता है जितना आयरिश अपने डंडे से। बड़ी, मोटी और लम्बी हड्डियों वाला, लम्बा कदवाला भोजपुरी जवान अपनी मोटी लाठी के साथ सुदूर खेतों में लम्बे कदमों से टहलता हुआ सदा देखा जाता है। हजारों भोजपुरी ब्रिटिश उपनिवेश में बस कर वहाँ से धनी होकर लौटे हैं। हर वर्ष बहुत बड़ी संख्या में ये उत्तरी बंगाल में घूमते हैं और वहाँ अपनी जीविका ईमानदारी के साथ नौकरी करके उपार्जन करते हैं। कलकत्ता में इनसे कम वीर बंगाली इनसे सदा डरते रहते हैं। कलकत्ता इन जाति से भरा पड़ा है। बंगाल के सभी जमींदार अपनी प्रजा (रियाया) में शान्ति स्थापना के लिए इन भोजपुरियों को अपने यहाँ सम्मान पूर्वक रखते हैं।"

ख. धार्मिक जीवन की झलक और धार्मिक विश्वास

भोजपुरी लोकगीतों में धार्मिक जीवन का भी चित्रण हुआ है। हिन्दुओं का जीवन ही धर्ममय है। तथापि आजकल की नयी शिक्षा ने तथा समय के प्रवाह ने पुरानी भावनाओं में बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया है फिर भी यह प्रभाव अभी स्त्री समाज में नहीं पहुँचा है। आज भी स्त्रियाँ व्रत रखती हैं, पुत्रोत्पत्ति एवं कल्याण के लिए विभिन्न देवताओं की पूजा करती हैं एवं भगवान् का भजन कर अपनी परलोक यात्रा का मार्ग प्रशस्त बनाती हैं। इन लोकगीतों में ऐसा ही चित्र उपलब्ध होता है।

गीतों में जिन प्रधान देवताओं की पूजा का उल्लेख मिलता है उनमें शिवजी सबसे अधिक प्रचलित हैं। शिवजी देवता के रूप में ही चित्रित नहीं किये गये हैं बल्कि वे एक साधारण भोजपुरी पति के रूप में भी चित्रित

शिव

हैं। भोजपुरी में शिवजी के विवाह के गीतों की संख्या बहुत है। वे एक बूढ़े के रूप में विवाह करने के लिए जाते हैं। परिछावन के समय इनकी बीभत्स आकृति का देखकर पार्वती की

दुखी माँ कहती है कि मैं ऐसे गरीब एव कुरूप वर से पार्वती का विवाह नही करूँगी चाहे वह अविवाहित ही रह जाय

"अइसन तपसिया मे गउरा ना बिहविं,
चाहे गउरा रहिहैं कुँआर।"

इतना ही नही शिवजी व्यापार के लिये 'पुरुबी बनिजिया' को भी जाते हैं और किसी बगालिन तिरिया में ब्याह कर घर लौ ते है। शिव जी के गीतो से आशय केवल इतना ही है कि ये भोजपुरी समाज मे इतने प्रसिद्ध एव जनप्रिय हो गये हैं कि धर्म के उच्च क्षेत्र से (देवता कोटि से) उतर कर समाज में एक साधारण व्यक्ति के रूप मे आ गए हैं।

जहाँ धर्म के क्षेत्र में शिवजी की चर्चा है वहाँ वे उसी भाव भक्ति से पूजित हैं। आज भी भोजपुरी प्रदेश के प्रत्येक गाव में एक न एक शिव मन्दिर अवश्य मिलेगा। हिन्दू धम में ब्रह्मा, विष्णु और महेश को त्रयी प्रसिद्ध है। आजकल के प्रचलित एव जनप्रिय धर्म में इन्ही तीना देवताओ की प्रधानता है। परन्तु इनमें से भी शिव का ही वर्णन इन गीता में अधिक पाया जाता है। किसी भक्त स्त्री के शिवमदिर में जाने का नीचे लिखा वर्णन कितना सुन्दर है[१]

"चल देखि आई के लाल गली। टेक।
केहू चढावेला अच्छत, चन्दन।
केहू चढावेला सुन्दर चुनरी। टेक।
राजा चढावेला अच्छत चन्दन,
रानी चढावेली सुन्दर चुनरी। टेक।
चल देखि आई भोला के लाल गली।"

गगा स्नान कर जब स्त्रियाँ घर लौटने लगती हैं तब समीप के शिव मन्दिर में अवश्य ही जल चढाती हैं। समवत वे समझती हैं कि भगवान् शिव 'आशु तोष' हैं। न मालूम कब प्रसन्न हो जायँगे और हमारी अभिलाषाओ की पूर्ति कर देंगे।

सूर्य

शिव के बाद सूर्य पूजा का उल्लेख पाया जाता है। स्त्रियाँ घर में अथवा किसी तालाब में जब स्नान करती है तब स्नान के पश्चात

"एहि सूर्य ! सहस्राशो ! तेजोराशे ! जगत्पते ! ।
अनुकम्पय मा भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर ! ॥

इस श्लोक का उच्चारण कर सूर्य को अर्घ देती हैं। जो स्त्रियाँ अनपढ है वे इस श्लोक के भ्रष्ट रूप का उच्चारण कर जल देती हैं।

जैसे—"एक सुरुज सहस्सर नाम तेजोराज जगलपत्याग आदि।

जैसा कि पीछे कहा गया है कि स्त्रियाँ पुत्र की उत्पत्ति के लिये जो षष्ठी माता का व्रत रखती हैं वह वास्तव में सूर्यपूजा का व्रत है। इसीलिये यह व्रत 'सूर्य षष्ठी व्रत' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस दिन स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और

---

१ डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गीत भाग १ पृ० ३६८। २ गौरीशंकर उपाध्याय व्रत चन्द्रिका पृ० १२३।

दूसरे दिन सबेरे उठकर गंगा अथवा किसी नदी के किनारे सूर्योदय के पूर्व पानी में जाकर खड़ी हो जाती हैं। जब सूर्य भगवान् उदय होते हैं तब वे दूध से उनको अर्घ प्रदान करती हैं। फल और पकवान चढ़ाती हैं। छठी माता के गीतों में सूर्य से कोई भक्तिन प्रार्थना कर रही है कि हे भगवन्! आप को अर्घ देने के लिये मैं कब से खड़ी हूँ। खड़े रहने से मेरा पैर थक गया है और कमर में पीड़ा हो रही है। अत हे सूर्य भगवन्! शीघ्र उदय लीजिये जिससे आपको अर्घ दूँ।[1]

'गोड़वा दुखइले रे डाड़व पिरइले,
कबके जे यानि हम ठाढ़।
आरे हाली हाली उगए अदितमल,
अरघ दिआऊ।"

उस समय सूर्य की पूजा के समय विविध वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, जैसे फूल, फल, पकवान्न। ग्रामीण कवि कहता है[2]

"फलवा फूलवा लेले मालिनि बिटिया ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दिआउ।
दूधवा, घिउवा लेले गवालिनि बिटिया ठाढ़।
धूपवा, जलवा रे लैरे बभना बा रे ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल अरघ दिआऊ।"

एक गीत में सूर्य के स्वरूप की कल्पना बड़ी सुंदर की गई है। भगवान् सूर्य खड़ाऊँ पर चलते हैं, उनके माथे में तिलक है और उनके हाथ में सोने की छड़ी है। वे धीरे धीरे उदय ले रहे हैं। यहां रूपकालंकार के द्वारा उनके रूप का उल्लेख अच्छा हुआ है। सूर्य के उदय के पहिले आकाश में दिखने वाला अरुण ही खड़ाऊँ है और सोने के समान चमकने वाली किरणें ही सोने की छड़ी हैं[3]

"आरे गोड़े खड़उँवा ए अदितमल, तिलका लिलार।
आरे हथवा में सोवरन साटी ए अदितमल, अरघ दिआऊ।
एक आमाके थोरा गुतले अदितमल, थोरे होगइली बिहान।"

पुत्र प्राप्ति की कामना करने वाली कोई स्त्री सूर्य को अर्घ्य देने के लिये जाती हुई कहती है कि मैं अधिक पुत्र नहीं चाहती, केवल पाँच पुत्र को पाकर ही मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगी। वह अर्घ्य के लिये अक्षत और ठंडा जल लिये है[4]

खादछा अछतवा गड़ुवा जुड़ पानी।
चलली बवन देई अदित मनाये।
थोरा नाही लया आदित बहुत ना मांगिले।
पाँच पुतर आदित हमरा के दिहलीं।'

भगवान् कृष्ण का वर्णन इन गीतों में बहुत आया है। जिस प्रकार से सूरदास जी ने श्रीकृष्ण के केवल बाल्य रूप का वर्णन किया है उसी प्रकार से इन

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गीत० भाग १ पृ० २/२। २. वही पृ० २/२। ३. वही पृ० २५२। ४. वही पृ० २४६।

कृष्ण

गीतों में भी हम श्रीकृष्ण को यशोदा के पुत्र के रूप में चित्रित पाते हैं। कभी तो ये किसी गोपी का रास्ता रोक लेते हैं, कभी दूसरी से छेड़खानी करते हैं और तीसरी से 'गोरस' मांगते हैं। किसी गोपी के दही बेचने जाते समय कृष्ण के उत्पात का निम्नलिखित वर्णन देखिये :[1]

"आरे ले लिहली सिर मटुका हो सँवार लिहली केस।
दहिया बेचन राधे चलली हो ओही जमुना के देस।
आरे दही मोरा खइलें हो कान्हा, मटुका दिहले हा फोर।
बहियाँ मोर मुरुकवले हो, मनवा बसेला हो मोर।"

कृष्ण के 'उत्पात' का एक दूसरा दृश्य देखिये। कोई गोपी कहती है कि ऐ कृष्ण! तुम्हारे दुष्ट वचनो को सुनकर मैं कहाँ जाऊँ? तुम रास्ता रोक लेते हो और चलने नही देते।[2]

"कहाँ चलि जाईं हो कन्हैया बोलि तोरी।
राह बाट मोहि रोकेलें हो, बोली बोलेलें अन्हियारी।

गोपियाँ कृष्ण के साथ क्रीड़ा करती हुई भी उनके ईश्वरत्व को नही भूलतीं। इस भाव की व्यंजना 'मनवा बसेला हो मोर' के द्वारा गोपियो ने की है। लोकगीतो में वर्णित कृष्ण महाभारत के कृष्ण नही बल्कि भागवत के ब्रज के कृष्ण हैं। वे द्वारका के राजमहल में निवास करने वाले नही प्रत्युत गोकुल के गाव में विचरने वाले कृष्ण हैं।

स्त्रियो की भक्ति और श्रद्धा जितनी देवियो के प्रति है उतनी सभवतः देवताओं के प्रति नही। यह स्वाभाविक भी है। जब घर में कोई लड़का बीमार हुआ, कोई अपशकुन हुआ, कोई आपत्ति आई, उस समय भगवती, काली माई, देवी जी तथा कितनी ही अन्य देवियों की मनौती प्रारम्भ हो जाती है। देवी की कृपा से संकट टल जाने पर उनकी पूजा बड़े धूमधाम से होती है। शीतला माता या शीतला देवी इन देवियो मे प्रधान हैं। जब घर में किसी बालक के चेचक निकल आती है, वह पीडा के मारे छटपटाने लगता है, कष्ट से चिल्लाने लगता है, उस समय पुत्रवत्सला माँ अपनी प्राणप्यारी सतति के कष्ट को दूर करने के लिये शीतला माता की प्रार्थना करती है। चेचक के निकलने पर उसकी शान्ति के लिये कोई दवा नही की जाती। ऐसा विश्वास किया जाता है कि शीतला माता की प्रसन्नता से बालक निरोग हो जायेगा।

शीतला माता

पीछे उल्लेख किया जा चुका है कि शीतला माता का वाहन गधा है, परन्तु इन गीतो में घोड़ा का वाहन होना लिखा है।[3] शीतला का मन्दिर जल के बीच में बतलाया गया है और उसका दरवाजा अत्यन्त छोटा है जिसमें मोती जड़े हुए हैं।

---

१. डा० उपाध्याय: भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ४१९, २०। २. वही: पृ० ४२०, २१। ३. वही: भाग १ पृ० २६५।

चारु ओरिया जल थल, बीचवा गभीरवा ए देवी हो।
ताहि बीच मन्दिलवा तोहार, दुखवा हर देवी हो।
ऊँच रे मन्दिलवा के नीची रे दुअरिया हो।
मइया मोती जड़ल वा केवार।"[1]

शीतला माता का नीम की डाल पर झूला लगाकर झूलने का वर्णन भी पाया जाता है। नीम का वृक्ष ही उनका प्रिय निवास स्थान है। इसीलिये सभवत चेचक के पीडित व्यक्ति को नीम की पत्तियां को झल कर हवा करते हैं। चेचक में प्रचण्ड आक्रमण से पीडित बालक की रक्षा के लिये कोई माता शीतला देवी का आवाहन कर रही है[2]

"केकरा आगनवा ए मइया, दानावा मड़ुववा हो।
केकरा आगनवा नीमी गाछि, जोगिया मइया विलमलि हो।"

वह देवी की प्रार्थना करती हुई आचल फैलाकर कहती है कि ए माता! मेरे बालक को भिक्षा दीजिये अर्थात् उसके कष्ट का निवारण कीजिये।[3]

"पटुका पसारि भीखी मागेली बलकवा के माई।
हमरा के वलकवा भीखी दी।
मोरी दुलारी हा मैया, हमरा के बलकवा भीख दीं।"

शीतला माता से सभी लोग बहुत डरते हैं। यह भयकर देवी समझी जाती है। अत इनके नियमो का पालन अत्यन्त कड़ाई के साथ किया जाता है। जब बालक का रोग शान्त हो जाता है तब शीतला की चाँदी या सोने की प्रतिमा बनाकर उनकी पूजा की जाती है।

गाली शीतला देवी का परम भक्त समझा जाता है। अत देवी की कृपा अथवा अनुग्रह प्राप्त करने के लिये उसकी सहायता लेनी आवश्यक है। शीतला हिन्दू धर्म की एक विशिष्ट देवी है, जिनका प्रभाव स्त्रियो के क्षेत्र में बहुत अधिक है।

तुलसी के पौधे से सभी परिचित हैं। अपनी उपयोगिता एव पवित्रता के कारण इस पौधे ने भी देवी के महान् पद को प्राप्त कर लिया है। घर घर में तुलसी देवी की पूजा होती है। सकट पड़ने पर इनकी मनौती मनाई जाती है और इनकी दया से विपत्ति टल जाने पर इन पर प्रसाद चढ़ाया जाता है। कार्तिक मास में तुलसी पूजन का विशेष महत्व है। इस मास में स्त्रियां तुलसी जी को जल चढ़ाती हैं और सन्ध्या को दीपक जलाकर इनकी आरती करती हैं। तुलसी का पत्ता आरोग्यवर्द्धक है, ज्वर-नाशक है। सभवत इसीलिये भगवान् के चरणामृत में इसका उपयोग होता है।

तुलसी

गगा जी की पवित्रता एव आरोग्यवर्द्धकता हिन्दू समाज में निसदिग्ध है। इसीलिये इसमें स्नान करना लाभदायक ही नही पुण्यदायक भी माना जाता है। स्त्रियाँ प्रात काल में झुण्ड की झुण्ड गगा स्नान के लिये जाती हैं और गगा की महिमा में गीत गाती हुई घर लौटती हैं। उनका विश्वास है कि गगा में नहाने से

गगाजी

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २६१। २ वही पृ० २६२। ३ वही पृ० २७०।

पाप जाता रहता है और पुण्य की प्राप्ति होती है। कोई स्त्री अपनी सखी से गगा स्नान करने के लिये कहती हुई उसे बतलाती है कि

"मीलहु सखिया रे मीलहु सहेलिया, आरे सुनु सखिया चलु देखे गगाजी के लहरिया।
गगा नहहला से पाप कटित होइहैं निरमल होइहैं देहिया।
आरे सुनु सखिया चलु देख गगाजी के लहरिया।"

कार्तिक मास में गगा जी में दीपक जलाने का माहात्म्य है। अत बहुत सी स्त्रियाँ ऐसा करती हैं। गगाजी को पिंडदान भी दिया जाता है जो हमारे यहाँ की एक खास प्रथा है।

देवीजी दुर्गा

नीच जातियो में देवी का बडा प्रभुत्व है। चमार और दुसाध जाति के लोगो में जब कोई बीमार पडता है तब उसकी दवा नही की जाती। बल्कि उस जाति का बूढा पुरुष, जो तन्त्रमन्त्र जानता है बुलाया जाता है। वह कुछ प्रारम्भिक पूजा पाठ करके देवी जी का आवाहन करता है और उनकी स्तुति में गीत गाता है जिसे 'पचरा' कहते है। इस 'पचरा' को गा-गा करके ही वह रोगी को नीरोग कर देता है। यह ध्यान रखना चहिये कि ये देवी जी शीतला माता से नितान्त भिन्न है। एक गीत में इन्हें 'दुर्गा' के नाम से स्मरण किया गया है।[1] जैसे —

"जागु जागु देविया जागु 'दुरुगवा', जागु दिनवानाथ हो।
जागु जागु इहवा के डिहऊ, तोहरे कइली बानी आस हो।"

भगवती का निवास स्थान 'कवरू देस' कामरूप, आसाम प्रान्त का एक जिला बतलाया गया है। भक्त के स्मरण करने पर देवीजी कामरूप से चलती हैं। कलकत्ते में वहाँ की काली जी से भेंट करती हैं और तब भक्त के घर आती है।[2] प्राचीनकाल में कामरूप 'शाक्त सम्प्रदाय' का प्रधान स्थान था। इसी तथ्य का उल्लेख इस पचरे मे है। भगवती का वाहन सिंह है परन्तु एक गीत में उनके पालकी पर चढने का वर्णन किया गया है।[3] उनकी पालकी लाल है जिसपर हरे रग का परदा लगा है और उसे बत्तीस कहार ढोते है।[4] देवी को आवाहन करने के लिए हवन किया जाता है। इस कार्य में आम के पल्लव, गाय का घी और पलाश की लकडी का उपयोग होता है। हवन करने वाला भक्त देवी से कहता है कि :[5]

"आरे आम के पलउआ ए देवी, गइया केरा घीव हो।
आरे पारास के लकडिया ए देवी, करीलें आहुतिया हो।"

देवी को अडहुल (एक प्रकार का लाल फूल), दवना और महुआ के फूल बहुत पसन्द है। अत उनकी पूजा में इन फूलों का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। जिस घर में उनकी पूजा की जाती है उसे शुद्ध मिट्टी से (यदि गगा की मिट्टी हो तो अधिक उत्तम) लीप दिया जाता है और पूजा में गगा जल का ही प्रयोग करते है। एक भक्त देवी से प्रार्थना करता है, कहता है कि पूजा के

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३६० । २ वही : पृ० २५६, ३४१ । ३. वही ० । ४ वही पृ० ३६२ । ५. वही पृ० ५५६ ।

निमित्त आपका घर लीपते-लीपते मेरा हाथ घिस गया, फिर भी आप प्रसन्न नहीं होती ।[1]

"अरे गंगा जी गगिवदि माटी त अवरु गंगा जल हो।
ए मइया हाथ खिअइलें घर लिपइत, त रउरा चिते छाया नहीं हो।"

देवी जी के जलपान (नाश्ता-कलेवा) के लिये चीनी का लड्डू और गर्म दूध रखा हुआ है। भक्त देवी से आकर उन्हें ग्रहण करने की प्रार्थना करता है। भक्त का आर्तनाद सुनकर देवी जी आती हैं और उसे नीरोग कर देती हैं।[2]

इस प्रकार 'पचरा' गाकर और दुर्गाजी को प्रसन्न कर रोगी को नीरोग करने की प्रथा अब भी विद्यमान है।

भगवान के रूप में राम

लोक गीतों में जहाँ कृष्ण का चित्रण बाल गोपाल के रूप में किया गया है वहाँ रामचन्द्र का वर्णन भगवान् या ईश्वर के रूप में उपलब्ध होता है। राम का नाम विस्मरण न होने की प्रार्थना करता हुआ भक्त कहता है कि[3]

"रउरा राम जी हरी, रउरा राम जी हरी।
रउरा नाही बिसरी, घटा धरी।"

एक दूसरे गीत में भगवान् का नाम लेने का उपदेश लोगों को दिया गया है।[4] राम नाम लेने से स्वर्ग की शीघ्र ही प्राप्ति होती है। कलियुग में हरि के नाम-कीर्तन की बड़ी महिमा है।

"कलौ तत् हरिकीर्तनात्।"

नीचे लिखे गीत में संसार की मोह-माया में फँसने वाले मन को लताड़ बतलाई गई है तथा भगवान् का कीर्तन न कर व्यर्थ में ही जीवन गँवाने पर पश्चात्ताप प्रकट किया गया है।

"ए मनवा पापी भजन कब करबे।
जिनगी बितानी भजन कब करबे।"

राम नाम का भजन न करने पर क्या दुर्दशा होगी उसे भी सुनिये।[5]

"धोबी का घरे गदहा होइबे छीलल घास नाही पइबे।
देस देस के नरक बटोरबे ले घटिया पहुँचइबे।"
बालापन में खेलि गँवइबे, तरुना में जोरू रमइबें।
बिरिधा में तन काँपन लागी समुझि समुझि पछतइबें।"

इस प्रकार राम नाम की महिमा का वर्णन इन भजनों में पाया जाता है। साधारणतया रामरूप में ही भगवान् का स्मरण किया गया है।

स्त्रियों का जीवन व्रतमय है, यदि यह कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। कभी भाई की मंगल कामना के लिये, कभी पुत्रोत्पत्ति और कभी पति के स्वास्थ्य-

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २५७। २ वही : पृ० २६४
३. वही : भाग १ पृ० ३६६। ४. वही : पृ० ३६८। ५. वही : पृ० ३७०।

व्रतों का विधान

लाभ के लिये व्रत एव उपवास स्त्रियाँ किया करती हैं। जब लडकियाँ कुँवारी रहती है तो भाई की शुभ कामना के लिये 'पिडिया' का व्रत करती हैं। व कार्तिक मास में पूरे मास भर 'पिडिया' लगाती हैं और रात्रि में कथा को बिना सुने हुए भोजन नही करती। अन्त में मास की समाप्ति पर 'पिडिया' का पूजन कर उसे जल में प्रवाह कर देती है। कोई बहन अपने भाई से इसकी पिडिया की पूजा के लिये मोरग से लड्डू और चिउडा लाने की प्रार्थना करती हुई कहती है कि यह तुम्हारी बधाई के लिये कर रही हूँ।[1]

"मोरग देसे तुहु जइह ए कवन भइया,
ले अइह ए भइया मोरगी लड्इया हो।
लडुआ चिउरवा से हम पूजबि पिडियवा हो।
तोहरी वधइया भइया पिडिया बरतिया हो।"

इसी प्रकार से पष्ठी माता का व्रत पुत्र की प्राप्ति एव उसके मगल के लिये स्त्रियाँ करती हैं। इस व्रत में स्त्रियाँ पचमी एव षष्ठी इन दोनो दिनो उपवास रखती हैं और सप्तमी के प्रात काल सूर्य भगवान् को अर्घ्य देने के पश्चात् ही अन्न ग्रहण करती है। स्त्रियो में यह व्रत प्रचलित है और सभी सन्तानहीन युवती स्त्रियाँ इसे नियमपूर्वक करती हैं। इन व्रतो के अतिरिक्त एकादशी, रविवार आदि व्रतों का उल्लेख इन गीतों में अनेक बार हुआ है।

लोक गीतों में धार्मिक विश्वास

लोक गीतो में जनता के धार्मिक विश्वास का चित्रण पाया जाता है। ग्रामीण जनता कर्मवाद अथवा भाग्यवाद में पूर्ण विश्वास रखती हैं और जगत् में जो विषमता दीख पडती है इसका मूल कारण भाग्य को ही समझती है। गीतो में जनता के इस धार्मिक विश्वास का बार-बार उल्लेख किया गया है।

लोक गीतो में विविध देवताओ की पूजा का वर्णन पाया जाता है। कही पर सूर्य की स्तुति की गई है तो कही तुलसी माता की। शीतला देवी और गगा माता का वर्णन अनेक बार हुआ है। इन गीतो में जिस देवता की भी स्तुति की गई है उसे ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

रविवार व्रत का पूजन करती हुई स्त्रियाँ 'अवतार देवता' को सबसे बडा देवता मानती हैं और उनकी पूजा में त्रुटि होने पर बहुत डरती हैं। राम नाम की महिमा का वर्णन करता हुआ एक भक्त कहता है कि

"मोरा तो राम नाम धन खेती।"

अर्थात् राम का नाम ही मेरा सब धन है। काली माता को स्त्रियाँ बड आदर की दृष्टि से देखती हैं और उन्हे सर्वश्रेष्ठ देवता मानती हैं। कोई भक्तिन कहती है कि ए माता! प्रसन्न होवो क्योकि तुम्ही सबसे बडी देवता हो।[2]

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ६५। २ लेखक का निजी सग्रह।

"खुस होख ए मइया खुस होख हो।
तुही बाड़ू सबसे बड़की देवता नु हो।"

इस गीत में देवी (काली माता) को सबसे बड़ा देवता कहा गया है।

लोक गीतों में बहु देवोपासना का धार्मिक विश्वास मिलता है। इन गीतों में वर्णित देवता बहुधा शिव, सूर्य, राम, गंगा, कृष्ण, शीतला और काली हैं।

लोकगीतों में कहीं-कहीं रहस्यवाद की बड़ी सुन्दर झलक दिखाई पड़ती है। भक्ति भाव से अपनापन भूल कर जब भक्त अपने हृदय के भावों को प्रकट करता है तब जिस कविता का उद्गम होता है वह काव्यकला और दार्शनिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण होती है। रहस्यवाद में प्रयुक्त प्रतीक सांसारिक होते हैं परन्तु उनमें अभिव्यक्त भाव पारलौकिक होता है। इन गीतों में रहस्यवाद की छटा भी देखने को मिलती है।

इस गीत में एक साधिका कह रही है कि मैं अपने ओसारे (बरामदे) में बेखबर सो रही थी कि 'गुरु जी' ने मुझे जगाया और गवन के नजदीक होने की सूचना दी। यह गवना सांसारिक गवना न होकर भगवान् रूपी प्रियतम के पास जाने की सूचना है। जीव संसार के रमणीय पदार्थों या विषयों में इतना लगा हुआ है कि उसे गन्तव्य स्थान भी भूल गया है। वह यह नहीं जानता कि यह जन्म केवल आगे बढ़ने के लिये एक सोपान मात्र है, यह दिन भर आनन्द मनाने की जगह नहीं है। ऐसी गाढ़ी अज्ञान निद्रा से गुरु के अतिरिक्त और कौन जगा सकता है। गुरु की शरण में जाने से ही साधक का निस्तार है।[1]

"सूतल रहलों ओसरवा हो, गुरु जी दिहल जगाई।
गवना के दिन नियरा गइले हो, मन गइल घबराई।
गुरु जी हो गुरु जी पुकारीलें हो, गुरु जी सरन तोहार।
रचि एक दीहितीं गुरु हुकुमवा हो, चउरल करि अइता दान।
कोठिला भरल बाटे चउरा हो, गुरुजी कइ अइता दान।
रचि एक दिहितीं हुकुमवा हो, गुरजी कइ अइता दान।"

एक दूसरे भजन में कोई गुरु संसार में दिन रात मस्त रहने वाले किसी सांसारिक पुरुष से पूछ रहा है कि तुम अपना तम्बू गिराकर कहाँ जावोगे? अपना ठिकाना तो बतलाओ? यहाँ आकर तुमने सांसारिक प्रपंच का फैलाव तो कर दिया, परन्तु तुम्हें अपने गन्तव्य स्थान का कुछ भी पता नहीं है कि तुम्हें कहाँ जाना होगा। तुमने बबूर का पेड़ क्या लगाया, आम का पेड़ लगाना चाहिये था। हरि का भजन करना चाहिये था तभी तो तुम्हें अमृत फल प्राप्त होता। क्या तुम नहीं जानते कि इस लोक में भगवद्भक्ति के बिना अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रेम ही जीवन का सार है। यह प्रेम न तो बाग के वृक्ष में बौरता है और न हाट में बिकता है। प्रेम के बिना मानव हृदय उसी प्रकार सूना है जिस प्रकार घनघोर अँधियारी रात। प्रेम नगर के हाट में हीरा और रत्न बिकता है। चतुर लोग तो सौदा करके अपना जीवन सफल बनाते हैं परन्तु मूर्ख लोग खड़े-खड़े पछताते हैं।[2]

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४४ [भूमिका-पाठ भाग] २. भो० ग्रा० गीत भाग १ पृ० ४५ भूमिका।

"तमुवाँ गिराइ कहाँ जइब हो कह आपन ठेकान।
काहे के लगवल बबुरिया हो लगवत तू आम।
अमिरित करत भोजनिया हो भजन हरिनाम।
प्रेम बाग नहि बौरे हो प्रेम न हाट बिकाय।
बिना प्रेम के मनुजवो हो, जस अँधियरिया राति।
प्रेम नगर की हटिया हो हीरा रतन बिकाय।
चतुर-चतुर सौदा करि गये हो, मूरख ठाढ पछिताय।"

इस गीत में तम्बू गिराने से सासारिक जीवन की जो उपमा दी गई है वह बडी मार्मिक और उपयुक्त है। सासारिक जीवन की समाप्ति कर यह जीव कहाँ जायगा इसका कुछ भी पता नही क्योंकि कर्मों के अनुसार जीवो की गति भिन्न हुआ करती है। पूरा भजन रहस्यवाद के गहरे रग में रगा हुआ है।

एक अन्य गीत में नैहर (मायके) से नाता तोडकर पति के पास जाने का जो वर्णन दिया गया है वह भी रहस्यवाद की परम्परा म ही अन्तर्भुक्त है। यहाँ आत्मा की कल्पना स्त्री रूप में की गई है और परमात्मा को पति माना गया है। यह ससार ही नैहर है और गुरु की कृपा से ईश्वरोन्मुख होने का ही नाम गवना है। गुरु जी की कृपा ही वह डोली (पालकी) है जिस पर चढकर यह जीवन अपने प्रियतम से मिलने जाता है। इस कमनीय कल्पना को हिन्दी भाषा में कबीर और जायसी इत्यादि रहस्यवादी कवियों ने खूब अपनाया है। नीचे लिखे गीत में भी रहस्यवाद का उद्घाटन है।[1]

"मोरे नइहरवा से नातवा छोडवले जाला पियवा।
काचे-काचे बँसवा के डोलिया बनवले,
ताहि पर काया के मुतवले जाला पियवा।
चारि कहारि मिलि डोलिया उठवले,
आगे आगे रहिया देखवले जाला पियवा।"

इस भजन में आत्मा रूपी प्रिया का परमात्मा रूपी प्रियतम से मिलने का जो रूपक खीचा गया है वह बडा ही मार्मिक और सुन्दर है।

आत्मा को नारी मानकर परम प्रियतम परमात्मा के वियोग में उसके तडपने का वर्णन कितना भावपूर्ण हुआ है।[2]

"मूल सब्द सुधि सुनइत जाग री आतम नारी।
नैहर नेह बिसारि गैला गुरु सुरती ससुरारी।
पूरन प्रेम प्रगट भइ डर उपजेला अनुराग।
भूखन भवन न भावै नैनन्हि नीद न लाग।
सग सहेलरि सकुचति सगति सवति सोहाय।
विरहिन विरह बीआकुल निसि बासर अकुलाय।
बिलपति, कलपति, रोअति, झखति, झूखति सोइ।
औषध दरस-दरस बिनु, व्याधि बिनास न होई।"

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४५ [भूमिका-पृष्ठ भाग] २. दुर्गाप्रसाद सिंह भो० लो० गी० पृ० ३।

यहां मूल शब्द के सुनने ही आत्मा रूपी स्त्री के जागने, ससार रूपी मायके को भूलकर ससुरास (परलोक) के स्मरण होने का वर्णन किया है। उस प्रियतम के वियोग में यह आत्मा रोती, कलपती और विलपति दिखलाई गई है। जायसी ने भी उस प्रियतम के विरह मे सारी सृष्टि के दुखो होने का वर्णन किया है।

लोक गीतो में भाग्यवाद की अमिट रेखा खिची दीख पडती है। भाग्य की प्रबलता और कर्म की दुर्निवारता की अभिव्यक्ति इन गीतो में बडी मार्मिक रीति से हुई है। इनमें कर्म और भाग्य शब्द एक ही अर्थ के द्योतक है। कोई बाल विधवा स्त्री अपने दुखो का वर्णन अपने पिता से करती है। वह उत्तर देता है कि सोनपुर के मेले में मैं तुम्हारे भाग्य को (अन्य वस्तुओ की भाँति) बदल दूँगा। इसपर वह उत्तर देती है कि ए पिता जी! कासा और पीतल तो बदला जा सकता है परन्तु मेरा कर्म (भाग्य) कैसे बदला जा सकता है?

कर्मवाद

"बेटी लागे देहु हाजीपूर के हटिया, करम तोर बदलि देबो ए राम।
बाबा कांसावा पीतर सब बदली, करम कइसे बदली ए राम।"

हिन्दू समाज में कर्मवाद का सिद्धान्त अपना प्रबल प्रभुत्व जमाये हुये है। साधारण जनता मे यह विश्वास प्रबल रूप से फैला हुआ है कि जो जैसा करता है वैसा ही उसे फल मिलता है। किसी मनुष्य को अपनी करतूत पर पछताते हुए देखकर लोग प्राय यह कहा करते हैं कि

"जस करनी तस भोगहु ताता।
नरक जात अब का पछिताता।"

तुलसीदास जी ने लिखा है कि ससार कर्म प्रधान है जो जैसा करता है उसका फल उसे अवश्य ही मिलता है।

"कर्म प्रधान विस्व रचि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा।"

तुलसीदास जी की चौपाई लोगो के जीवन का महामन्त्र है। इसी की प्रतिध्वनि हमें उनके गीतों में भी मिलती है। एक गीत में, जिसका उल्लेख हमने पीछे भी किया है, कोई बहन अपने भाई से ससुराल के कष्टो का निवेदन करती हुई कहती है कि ए भइया! दुख की इस गाथा को तुम अपने मन में रखना, किसी से भी मत कहना। मेरे कर्म में जैसा लिखा होगा वैसा फल तो मुझे भोगना ही पडेगा।[1]

ई दुख तुम भैया मनही में राखेउ रे ना।
भैया करम लिखा तस भोगब रे ना।

शास्त्रकारो नें भी लिखा है कि

अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम्।

"कर्म की रेखा अमिट है, उसको मिटाने की सामर्थ्य किसी में नही है।"[2] इस भाव का वर्णन एक गीत में बडा सुन्दर हुआ है। गोपीचन्द के जन्म के अव०

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २११। २. त्रिपाठी ग्राम गीत पृ० ३५७।
३. त्रिपाठी। ग्राम गीत पृ० ३५७।

सर पर जब ज्योतिषी आता है और वह फल बतलाता है कि यह जोगी हो जायगा तब उसकी माता क्रोधित होकर कहती है कि तुम्हारे पोथी-पत्रे में आग लग जाय। तब ज्योतिषी उत्तर देता है कि कागज को भी फाडकर फेंका जा सकता है परन्तु कर्म को कौन मेटने वाला है। वह तो पत्थर की लकीर के समान है जो कभी नष्ट नही की जा सकती।[1]

"कागज होइ राजा फारि के फेकौं,
कर्म न मेटो जाय हो राम।"

फिर ज्योतिषी कहता है कि ब्रह्मा ने जो कुछ लिख दिया है भला उसे कौन मिटा सकता है[2]

"लिखने वाले लिखि गये साइँ,
को है मेटन हार हो राम।"

शिव जी भी भावी (भाग्य) के चक्कर मे पड जाते हैं, परदेस जाते हैं और दूसरा विवाह करके घर लौटते हैं। जब पार्वती जी उनसे पूछती है कि मुझमें कौन-सा दोष था कि आपने दूसरा विवाह किया तब वे उत्तर देते हैं कि ए पार्वती! भाग्य के लिये हुए को कौन मिटा सकता है। भावी के कारण ही मेरा दूसरा विवाह हुआ है।[3]

'विधि के लिखल गउरा आरे नाँहि मेटे रे,
भावी कइल दोसर वियाह रे।"

एक सोहर में कोई बन्ध्या स्त्री दुःख करती हुई किसी पडित से पुत्र योग पूछ रही है। तब वह उत्तर देता है कि ए रानी! तुम्हारे ललाट में पुत्र जन्म नही लिखा है, अत तुम्हें पुत्र नही मिल सकता।[4]

"ए रानी नाँहि विधि लिखले लिलार,
सतति नाहि मिलेला हो।"

लोक कथाओ में भी भाग्यवाद का प्रभाव पाया जाता है। जो कर्म मे लिखा है वही होगा दूसरा नही।

"लिखितमपि ललाट प्रोज्झितु क समर्थ"

— ० —

(ग) १. जीवन के आर्थिक तथा राजनैतिक पक्ष की झांकी

लोक गीतो मे जनता की आर्थिक तथा राजनैतिक अवस्था का जहाँ-तहाँ उल्लेख पाया जाता है। इन गीतो में लोगो की आर्थिक अवस्था का जो चित्रण पाया जाता है उससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज समृद्ध था तथा किसी को भोजन का कष्ट नही था। गीतो में सोने की थाली मे भोजन करने और सोने के लोटे (गडुवा) से जल पीने का बारम्बार उल्लेख हुआ है।[5] राम के जन्म होने के उत्सव पर ब्राह्मणो को सेर भर सोना और पांच सेर चांदी दान देने का उल्लेख

---

१. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ३२० । २ वही. पृ० ३२१ । ३. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १७७ । ४ वही पृ० ६२ । ५. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३०५, ३०६ ।

पाया जाता है।[1] प्रियतम के घर में लगा हुआ दरवाजा सोने का बना हुआ है जिसे खोलने के लिये उनकी स्त्री बार-बार आग्रह करती है। न गीतों में भोज्य अन्न का प्रचुर वर्णन पाया जाता है। बारात के आने पर अनेक स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों को खिलाने का वर्णन हुआ है।[2] भोजपुरी प्रदेश के लोगों के व्यापार करने का वर्णन भी कहीं-कहीं उपलब्ध होता है। वे लोग 'पूरबी बनिजियाँ' (बंगाल) को जाते हैं और वहाँ व्यापार करने के पश्चात् बारह वर्ष के बाद घर लौटते हैं।[3] व्यापार के लिये भोजपुरी लोग 'मोरंग' देस भी जाते हैं।

आर्थिक दशा के उल्लेखों के अतिरिक्त राजनैतिक अवस्था का दिग्दर्शन इन गीतों में हुआ है।

लोक गीतों के अनुशीलन से यह पता लगता है मुगल काल के शासन में बड़ी ढिलाई थी। किसी की इज्जत नहीं बच सकती थी। राह में अकेली जाने वाली स्त्रियों पर मुगलों के सिपाही आक्रमण करते थे और उन्हें छीन कर या जबरदस्ती भगाकर विवाह कर लेते थे। भगवती की लोक-प्रसिद्ध गाथा इस विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण है। मुगलों के सिपाही भगवती को बलपूर्वक पकड़ कर लिये जाते हैं। उस सती देवी ने अपने प्राणों की बाजी खेलकर किस प्रकार अपने सम्मान की रक्षा की इस का उल्लेख पीछे हो चुका है। मुगल काल में देश में शान्ति नहीं थी। मारकाट मची रहती थी। मुगल लोग जाति द्वेष के कारण हिन्दुओं को बहुत सताते थे। यह तो प्रसिद्ध ही है कि औरंगजेब ने जजिया कर हिन्दुओं पर लगाया था और मुहम्मद तुगलक ने जंगल में जानवरों के शिकार की तरह आदमियों का भी शिकार किया था।

एक गीत में कोई ब्राह्मण कन्या किसी पुरुष से अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करती हुई कहती है कि मुगलों ने मेरे भाई और बाप को मार डाला है, मैं उनके डर से इस जंगल में छिपी हूँ। तुम मेरी रक्षा करो[4]

> "जतिया तो हमरी पंडित के यहि रन बन में,
> दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन बन में,
> मारि डारेन भाई औ बाप त यहि रन बन में,
> दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन बन में,"

वह वीर पुरुष उस स्त्री को अपने घोड़े पर बिठा लेता है परन्तु मुगलों के उत्पात के मारे वहीं जाना सुरक्षित नहीं है। रास्ते में उसे पचास मुगल घेर लेते हैं। परन्तु वह उन सबको तलवार के घाट उतारता है और उस अबला का उद्धार करता है।[5]

> "दुलहा खींचि लिहलन तरवरिया त यहि रन बन में,
> ठाढ़ एक ओर मुगुल पचास त यहि रन बन में।
> दुलहा एक ओर ठाढ़े अकेल त यहि रन बन में,
> रामा जूझे हैं मुगुल पचास त यहि रन बन में।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ६२। २. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० १६६-७०।
३. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २५ [भूमिका] ४. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० २६।
५. वही. पृ० १६-१७।

एक दूसरे गीत में मुगलो के द्वारा किसी व्यक्ति का घर घेर कर उससे लडने का वर्णन प्राप्त होता है। बहिन कहती है कि ए भाई, जल्दी-जल्दी भोजन कर लो क्योंकि मुगल लडने के लिये बाहर खडे हैं।[१]

"बिरना हाली हाली जेंवउ बिरन मोरा, बलैया लेउँ बीरन
बिरना तुरुक लडइया के ठाढ बलैया लेउँ बीरन
बिरना तुरुक लडइया के ठाढ बलैया लेउँ बीरन
बिरना मुगल की ग्रोरियाँ सब साठि जने, बलैया लेउँ बीरन
मोरा भइया ग्रकेलवइ ठाढ बलैया लेउँ बीरन

एक दूसरे गीत में रजलो नामक स्त्री से किसी मुगल के द्वारा बलात्कार विवाह करने का उल्लेख पाया जाता है।[२] रजलो मुगल को नही चाहती परन्तु वह लाचार है। वह उसकी सूप जैसी दाढी ग्रौर बैल के समान ग्राँखों देखती है तो उसे उल्टी, कै होने लगती है।

"सूप ग्रइसन दाढी मोगलवा के, बरध ग्रइसन ग्राखि।
ग्रोहि मुहें लिहलन मुगल चुमवा, रजलो के छुटि उकिलाई।"

इन गीतो से स्पष्ट पता चलता है कि मुगलो के समय में कोई दृढ शासन व्यवस्था नही थी। हिन्दू स्त्री समाज की इज्जत खतरे से खाली नही थी। उन्हें भगा ले जाना, चुरा लेना ग्रौर उनसे जबरदस्ती ब्याह कर लेना एक साधारण घटना हो गई थी।

ग्रग्रेजी काल में सिपाही विद्रोह के समय जो लूटमार मची थी, जो भगदड हुई, शासन-व्यवस्था में जो गडबडी मची थी, उसका बडा सजीव चित्रण गीतो में मिलता है। कोई स्त्री कहती है सिपाही विद्रोह के समय मेरठ के बाजार मे लोगों ने बहुमूल्य सामान लूटा परन्तु मेरे *प्रिय ने कुछ भी नहीं लूटा क्योंकि वह मूर्ख है, लूटना नहीं जानता।*[३]

"लोगो ने लूटे शाल दुशाले, मेरे प्यारे ने लूटा रुमाल।
मेरठ का सदर बाजार है, मेरे सइयाँ लूटे न जानें।
लोगों ने लूटे थाली कटोरे, मेरे प्यारे ने लूटे गिलास।
लोगो ने लूटे गोले छुहारे, मेरे प्यारे ने लूटे बदाम।
लोगो ने लूटे मोहर, ग्रशरफी मेरे प्यारे लूटे छदाम।
मेरठ का सदर बाजार है, मेरा सइयाँ लूटे न जानें।"

झासी की लडाई का यह वर्णन कितना सटीक है। उसने किस विकट परिस्थिति में ग्रग्रेजो से लोहा लिया था उसका उल्लेख यहाँ मिलता है।[४]

"बुर्जन बुर्जन तोप लगे दिन, गोला चलै ग्रासमानी।
सगरे सिपाहिन को पेंडा जलेबी, ग्रपने चबाम गुडधानी।
छोड मोर्चा लस्कर को भागी, ढूँढे मिलै न पानी।
खूब लडी मरदानी ग्रारे, झासी वाली रानी।"

दिल्ली से बहादुरशाह के निर्वासन के पश्चात् उसकी बेगमों के विलाप से पता चलता है कि ग्रग्रेजो ने उनकी क्या दुर्दशा की थी। रैयत मारी-मारी फिर रही थी ग्रौर लोग डर के मारे ग्रत्यन्त भयभीत थे।

---

१. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० १६ [ग्राम गीतों का परिचय]। २. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० २२।
३. इ. ए. भाग ४० (१६११) पृ० १२३। ४. वही पृ० १६६।

"गलियन गलियन रैयत रोवै, हटियन बनिया बजाज रे।
महल में बैठी बेगम रोवै, डेहरी पर रोवै खवास रे।
मोती महल की बैठी छूटी, छूटी है मीना बजार रे।
बाग जमनिया की सैरे छूटी, छूटे मुलुक हमारे रे।"

कुअर सिंह के पराक्रम का वर्णन भी कुछ गीतो में पाया जाता है। सिपाही विद्रोह का प्रारम्भ क्यों हुआ इसका यथार्थ ऐतिहासिक कारण दिया गया है।

इस प्रकार इन गीतो मे समय-समय के राजनैतिक जीवन की झाकी हमें देखने को मिलती हैं।

२. भौगोलिक वर्णन

लोक गीतों में, किसी वस्तु अथवा स्थान का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नही होता। हां, प्रसगवश किसी स्थान का उल्लेख अवश्य मिल जाता है। जैसे किसी स्त्री का पति परदेश जा रहा है और वह विभिन्न स्थानो की सुन्दर वस्तुओं को उससे लाने के लिये कह रही है अथवा अमुक-अमुक स्थानो में न जाने के लिये उसे मना कर रही है। पिता अपनी पुत्री का वर खोजने के लिये विभिन्न नगरो या स्थानो में जाता है परन्तु तिरहुत में ही उसे उपयुक्त पति मिलता है। आल्हा की गाथा में लडाई के सबंध मे अनेक स्थानों का उल्लेख पाया जाता है। इसी प्रकार बिहुला के गीत में बिहुला और बाला लखन्दर के जन्म स्थान का वर्णन है।

लोकगीतो में जो भौगोलिक वर्णन हैं वे प्रधान कथा के अगभूत हैं। लोक गीतों में प्राप्त भौगोलिक वर्णन को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। १ स्थान का उल्लेख, २ किसी स्थान की द्योतक वस्तु का उल्लेख। इनमें विभिन्न स्थानो का उल्लेख ही अधिक पाया जाता है वस्तुओं का वर्णन बहुत कम मिलता है।

वस्तु वर्णन

इन गीतो को पढने से ज्ञात होता है कि भिन्न-भिन्न नगर विशेष प्रकार की वस्तुओं के लिये प्रसिद्ध थे। मगह अपने पान के लिये सुप्रसिद्ध था तो मोरग देश अपनी सुपारी के वास्ते मशहूर समझा जाता था। इन स्थानों में उपर्युक्त वस्तुओं का व्यापार होता था। एक लोक गीत में कोई पुत्र अपनी माता से कह रहा है कि मैं पान लाने के लिये मगह जाऊँगा और सुपारी के लिये मोरग देश।[१] आजकल का पटना और गया जिला मगह के नाम से प्रसिद्ध

हैं ।[1] प० रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी का मत भी यही है ।[2] अत यह सिद्ध है कि हिमालय की तराई के पूर्वीय प्रदेश को जो विहार से सबद्ध है मोरग कहते थे । नेपाल की तराई में होने के कारण मोरग देश की जलवायु अच्छी नहीं थी । अत कोई स्त्री अपने पति को वहाँ जाने से मना करती हुई कहती है कि मोरग देश का पानी पतला अस्वास्थ्यकर होता है और पीने से कलेजे में लगता है अर्थात् नुकसान करता है ।[1]

'बेरी ही बेरी तोहि बरजा ए लोभिया जनि जाहु तुहु मोरगवा ।
मोरग पातर पनिया, लगी है रे करेजवा' ।

आज भी तराई प्रदेश का पानी स्वास्थ्य के लिये हानिकर है तथा बस्ती गाडा और वहराइच जिला की जलवायु अच्छी नहीं समझी जाती है ।

इन गीतों में कहीं बगाल के पान का भी उल्लेख मिलता है ।[3] जिसे अग्निन देवी शीतला वडे शौक से खाती है । वर के परीछने के लिये जिस लोढे का उपयोग किया जाता है वह मिर्जापुर से मगाया जाता है ।[4] आज भी मिर्जापुर अपने पत्थर के सामान के लिये प्रसिद्ध है । चुनार, विन्ध्याचल और मिर्जापुर में पत्थर के सिलवट और लोढे वडे सुन्दर और मजबूत बनते है । लोक गीतों में वर के चढने के लिये हाथी गोरखपुर से मगाया जाता है और वह पटना शहर के बने हुए जरी के फूल से अलकृत किया जाता है । गोरखपुर और वस्तीके तराई जिला में हाथी अधिकता से पाये जाते है अत वहाँ से हाथी का मगाना स्वाभाविक ही है । बनारसी साडी के पहिनने और बनारसी लड्डू खिलाने के वर्णन भी उपलब्ध होते हैं ।[5] ज्ञात होता है कि बनारसी साडी का व्यापार बहुत काल से चलता आ रहा है ।

लोक गीत की कैकयी राम के परीछने के लिये जो साडी पहिन कर निकलती है वह दक्षिण देश से मगायी जाती है ।[6] आज भी महाराष्ट्र देश की साडियाँ प्रसिद्ध हैं और मद्रासी तथा बगलौर की साडियों के पहनने का तो आजकल फैशन ही हो गया है । एक विवाह के गीत में दूल्हे के शृगार का वर्णन है । उसके पहनने के लिये जो वस्त्र और अलकार है वे भिन्न भिन्न स्थानो से मगाये गये हैं । उसने जो पगडी बाधी है वह गुजरात से मँगाई गई है । उसके कान का कुडल सूरत के मोती का बना हुआ है एव पैर का जूता 'सकलाती' कपडे से निर्मित है । उसके ललाट में मलयगिरि का चन्दन सुशोभित है ।[8]

कानें सोहे सूरत की मोती चुनी में छबि आई ।
माथे सोहे गुजराती फेटा लरिया में छबि आई ।
पाय सोहे सकलाती जूता मोजे म छबि आई ।

सूरत गुजरात प्रात एक प्रसिद्ध जिला के जौहरी तो आज भी प्रसिद्ध हैं । सकलात शब्द अग्रजी के स्कारलेट कनाथ का अपभ्रश जान पडता है । यह विलायती लाल रग का मखमल ज्ञात होता है । पृथ्वीराज रासो में भी सुकलात के रूप मे यह शब्द पाया जाता है ।

लिन पक्खर पीठ हय जीत साल ।
फिरगी कती पास सुक्लात लाल ।

---

१ डा० ग्रियर्सन नेड डी एम जी भाग ४३ पृ० ४.६ । २ बेनीपुरी विद्यापति पदावली (भूमिका भाग) । ३ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २२३ । ४ वही पृ० २७४ । ५ वही पृ० १२२ । ६ वही पृ० १८६ । ७ वही. पृ० १६५ । ५ त्रिपाठी ग्राम गीत पृ० २२४ २२५ ।

उपर्युक्त गीत की रचना अंग्रेजों के आगमन पर हुई होगी जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत से व्यापार स्थापित किया था और लाल रंग के मखमल स्कारलेट क्लाथ का आयात यहाँ होता था।

अनेक गीतों में हाजीपुर की हाट का वर्णन किया गया है।[1] पिता कहता है कि "ए पुत्री हाजीपुर का हाट लगने दो तो मैं तुम्हारे भाग्य को बदल दूंगा।"

"बेटी लागे देहु हाजीपुर के हटिया,
करम तार बदलि देबा ए राम।"

यह हाजीपुर क[illegible] [illegible] स्थान बिहार प्रान्त के छपरा जिले में [illegible] का प्रमुख स्टेशन एवं जंक्शन है। यहाँ [illegible]। अतः इसे हरिहर क्षेत्र का मेला भी कहते हैं।

तिरहुत में बेंत की छाजन बनने का उल्लेख है। कोई पिता वर खोजने के लिये उत्तर और दक्षिण देश में जाता है, उसे वहाँ वर नहीं मिलता है। तिरहुत देश में प्राप्त होता है। तिरहुत का प्राचीन नाम 'तीरभुक्ति' था। आजकल बिहार प्रान्त में तिरहुत एक कमिश्नरी है जिसमें मुजफ्फरपुर, दरभंगा और चम्पारन आदि जिले हैं।

प्राचीन काल से काशी के वैद्य और दिल्ली के हकीम प्रसिद्ध रहे हैं। एक स्त्री अपनी दवा के लिये इन दोनों स्थानों से वैद्य और हकीमों को बुलाती है।[2] काशी जिस प्रकार अपने वैद्य और पण्डितों के लिये प्रसिद्ध है उसी प्रकार गुंडा के लिये भी सुप्रसिद्ध है। 'बनारसी गुंडे' बनारसी साड़ी की ही भांति विख्यात हैं। किसी राजा के दरबार पर बनारसी गुंडों के रहने का भी उल्लेख कुछ गीतों में है।[3] यह बड़ी मनोरंजक बात है कि बनारसी गुंडों का वर्णन प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है।[4]

इन गीतों में कलकत्ता शहर का उल्लेख अनेक बार आता है। कहीं तो इस नगर को इसी नाम से स्मरण किया गया है, कहीं कालीपुर काली जी नगर के नाम से और कहीं 'बंगाला देस' से। कोई भावज अपनी ननद से कह रही है कि मैं सोई हुई थी, इतने में मैंने सपना देखा कि मेरा पति कलकत्ते से आ गया। इस पर ननद पूछती है कि ए भावज! तुम कैसे जानती हो कि मेरा भाई कलकत्ते से आने वाला है।[5] तब वह उत्तर देती है कि शकुन और स्वप्न से मैंने यह जाना है।

"सूतल मैं रहली ननदी देखली सपनवा,
कलकतवा से मोर बलमू अइलन हो राम।
तू कइसे जानत बाडू लहुरी भउजिया,
कलकतवा से मोर भइया अइलें हो राम।
पैर पिरइले ननदी उठता बा दरदिया,
से काया भइया आगम जनवले हो राम।"

एक दूसरे गीत में भगवती देवी का कालीपुर कलकत्ता से आने का उल्लेख पाया जाता है।[6] लोक गीतों में व्यापार अथवा जीविकोपार्जन के लिये जो 'पूरबी बनिजिया' जाने का

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २११। २ वही पृ० २६१। ३ वही पृ० ३१२। ४ गुलेरी 'गुलेरी ग्रन्थ'। ५ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३८६। ६ वही पृ० ३६१।

वर्णन है वह यही कलकत्ता है ।[1] देहाती अनपढ लोग इसे 'बगाला' अथवा 'बगाला देस' भी कहते हैं । यहाँ पर 'बगालिन बिटिया' के अत्यन्त सुन्दरी होने का उल्लेख पाया जाता है जो अपने लम्बे-लम्बे काले केशो और मोहनी आकृति से भोजपुरी जवानो का मन मोह लेती है ।[2] कोई स्त्री अपने पति से कहती है कि जब तुम 'पुरबि बनिजिया' को जावोगे तो मेरे लिये क्या लावोगे ? वह उत्तर देता है कि तुम्हारे लिये तो चोली लाऊँगा और अपने लिये सुन्दर बगालिन लाऊँगा ।[3] आसाम के कामरूप जिले का भी उल्लेख एक स्थान पर हुआ है । कोई भक्त कहता है कि मेरी देवी कवरू कामरूप देश से चल पडी है और मालिन के घर पहुँच गई हैं ।[4] कामरूप की कामाख्या देवी का स्थान शाक्त सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र रहा है और यहा तान्त्रिक पूजा की प्रधानता थी । तन्त्र-मन्त्र सीखने के लिये आज भी लोग 'कवरू' 'कमच्छा' कामरूप और कामाख्या जाने की बात कहते है ।

एक गीत में वाल्मीकि के आश्रम में जब लव और कुश का जन्म होता है तब इसकी सूचना राम को देने के लिये नाई अयोध्या जाता है ।[5] सोहर के गीतो में कृष्ण की बाल लीला के प्रसग में मथुरा, वृन्दावन और गोकुल का अनेक बार उल्लेख हुआ है । 'गोकुल' को गीतो में 'गोखुला' कहा गया है । कोई ग्वालिन कहती है कि मैं मथुरा की निवासिनी हूँ और गोकुल गोखुल में दही बेचने जा रही हूँ ।[6] कोई पिता अपनी पुत्री के वर खोजने के लिये काशी, प्रयाग और अयोध्या जाता है । पुत्री का पिता वर खोजने के लिये उडीसा और जगन्नाथपुरी में भी जाता है । परन्तु वहाँ भी कोई सुन्दर वर उसे प्राप्त नही होता ।[7] परशुराम जब राम के विवाह के अवसर पर राम पर क्रुद्ध होते है तब उनका पहिला बाण यमुना में और दूसरा कुरुक्षेत्र में गिरता है ।[8] यह कुरुखेत सुप्रसिद्ध कुरुक्षेत्र है जहाँ कौरवो और पाडवो की प्रसिद्ध लडाई हुई थी । एक गीत में मुहावरे के रूप में लका का नाम आता है ।[9] एक दूसरे गीत में छपरा, आरा और बक्सर इन तीन स्थानो का उल्लेख पाया जाता है ।[10] बक्सर आरा जिले का सब-डिवीजन है । यहाँ पर अग्रेजो और मुसलमानो में बडा घमासान युद्ध हुआ था जो बक्सर की लडाई के नाम से प्रसिद्ध है । अन्यत्र एक गीत में बक्सर, आरा और पटना में मुकदमा करने का उल्लेख पाया जाता है ।[11] भागलपुर के कायरो-लडाई में भाग जाने वाले अर्थात् भगेडू कहलगाँव के ठगो और पटना के दिवालियों का उल्लेख कुछ कम मनोरजक नही है ।[12] भागलपुर बिहार प्रान्त का एक प्रसिद्ध जिला है । कहलगाँव इसी जिले का एक बडा कस्बा है जहाँ प्राचीनकाल में ठग मशहूर थे । नैपाल देश का भी उल्लेख अनेक गीतो में हुआ है । गगा स्नान करने के लिये दूर-दूर देशो से देशो से लोगो के नैपाल के राजा के भी आने का वर्णन किया गया है ।[13] इसी प्रकार से अन्य छोटे-छोटे स्थानो का भी यथावसर उल्लेख मिलता है । बलिया जिले का 'हरदी' और प्रयाग की अरैल स्थान का उल्लेख ऐसा ही है ।

लोक गीतो में गगा, यमुना और सरयू तीन नदियो का उल्लेख प्रधानतया पाया जाता है । इसका पहिला कारण तो यह है कि ये भारत की परम पवित्र नदियाँ हैं और हिन्दू

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भग १ पृ० १७६ । २ वही. भाग १ पृ० २०४-२०६ । ३. पृ० २५ । ४ वही भाग २ पृ० २५६ । ५. वही भाग १ पृ० ६०, १२१, १२२ । ६. आर्चर भो० ग्रा० गी० पृ० १७३ । "मथुरा के हई हम ग्वालिन गोखुला में दही बेचे हो ।" ७ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १२४ । ८ वही पृ० १६० । ९. वही पृ० ८६ । १० वही पृ० २६६ । ११. वही पृ० २६७ । १२. वही भाग १ पृ० ११ भूमिका । १३. वही पृ० ३६२ ।

नदी में — सभ्यता और संस्कृति इन्हीं के किनारे फूली फली है। इसका दूसरा कारण यह है कि भोजपुरी प्रदेश में यमुना को छोड़कर ये दोनों नदियां प्रवाहित होती है। अतः इनसे विशेष रूप से परिचित होने के कारण गीतों के लेखकों ने इनका ही वर्णन किया है। जनेऊ तथा विशेषकर मुंडन के गीतों में गंगा और यमुना के 'ओहारने' का वर्णन पाया जाता है।[1] एक दूसरे गीत में गंगा और यमुना के बीच संभवतः प्रयाग में किसी पुरुष के निवारा करने का उल्लेख है।[2] वर खोजते-खोजते जब पिता थक जाता है तो उसकी पुत्री कहती है कि आप जाइये सरयू के किनारे राम के रूप में आपको वर अवश्य मिलेगा।[3] समुद्र का उल्लेख भी गीतों में हुआ है। कोई स्त्री आत्म-हत्या के लिये समुद्र का रास्ता पूछ रही है। परन्तु किसी विशिष्ट समुद्र का वर्णन नही मिलता।[4]

गीतों में विभिन्न जातियों का भी उल्लेख है। जैसे गूजरी, मल्लाहिन और राजपूतिनी।[5] राजपूत और मल्लाह तो प्रसिद्ध है। यू० पी० के पश्चिमी जिलो में गूजर लोगों की बहुत सी बस्तियां है।[6] ये गुर्जर प्रतिहार नामक क्षत्रियों के वंशज हैं। परन्तु आजकल इनकी गणना निम्न जातियों अहीर आदि में की जाती है।

जाति

आल्हा की जो गाथा उपलब्ध है उसमें अनेक भौगोलिक स्थानों का उल्लेख हुआ है। ये उल्लेख बहुत अधिक हैं।

आल्ह खंड में भूगोल

आल्हा में जिन स्थानों का वर्णन आया है वे प्रधानतया आल्हा और उसके भाई ऊदल के पराक्रमों से सबद्ध हैं। कुछ स्थान ऐसे भी हैं जो इनके विपक्षियों से संबंध रखते है।

कन्नौज.—यहाँ सुप्रसिद्ध राजा जयचन्द राज्य करता था। परमाल से रुष्ट होकर आल्हा-ऊदल कुछ दिनों तक यहीं रहे थे। आजकल यह फर्रुखाबाद जिले में एक कस्बा है।

महोबा:—आल्हा और ऊदल की यही कर्मभूमि थी। यह स्थान आजकल यू० पी० के हमीरपुर जिले में स्थित है। यहाँ चन्देलवंशी सुप्रसिद्ध राजा परमर्दिदेव राज्य करता था जो इन दोनों वीरों का आश्रयदाता था।

ऊरई —यहां माहिल परिवार रहता था जो चुगलखोरी के लिये प्रसिद्ध था। इसने अपनी दुष्टता के कारण आल्हा को परमाल के यहाँ से निकलवा दिया था।

माडोगढ —यह स्थान आजकल धार रियासत में धार से २१ मील दूर माडू के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ कलिंगराज नाम का राजा राज्य करता था जिसने महोबे पर चढाई करके आल्हा-ऊदल के पिता दस्सराज को पकड़ कर मरवा डाला था।

बनरस —यह स्थान गोरखपुर जिले में एक गाँव है। यहाँ का निवासी मीरा ताल्हन दस्सराज का बडा मित्र था और आल्हा-ऊदल को पुत्र की तरह मानता था।

नरवरगढ —यह स्थान ग्वालियर राज्य में आज भी विद्यमान है। यहाँ पुराने खंडहर भी पाये जाते हैं। यहाँ के राजा नरपति की कन्या फुलवा से ऊदल का विवाह हुआ था।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ११४। २. वही. पृ० २१३। ३. वही. पृ० १५६। ४. वही. पृ० २१४। ५ पृ० २६६। ६. त्रिपाठी: ग्रा० गी० पृ० २७५ नोट २८०।

नैनागढ़.—यह स्थान मिर्जापुर जिले में चुनार के नाम से विख्यात है। आल्हा का विवाह यहाँ की लड़की सोनवा या सोनाकुंवरि के साथ हुआ था जिसके लिये बड़ी लड़ाई लड़नी पड़ी थी। चुनार के किले में आल्हा, ऊदल और सोनवा का निवास स्थान अभी भी दिखलाया जाता है।

बिदूर—कानपुर जिले में यह ऐतिहासिक स्थान है। आल्हा-ऊदल की मा का चन्द्रहार करिगा राय ने यहीं के मेले में छीन लिया था।

खजुआगढ.—यह बुन्देलखड के छतरपुर राज्य में आजकल खजुराहो के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ चन्देलवशी राजाओं की पुरानी राजधानी थी।

बौरीगढ—यह स्थान बुन्देलखड में है। यहाँ के राजकुमार से परमाल की कन्या चन्द्रावली का विवाह हुआ था। इन स्थानों के अतिरिक्त दिल्ली, हरद्वार, हिंगलाज, बुखारा, गया, बगाल, गोरखपुर, पटना, बूदी और राजगृह आदि स्थानों के नाम पाये जाते हैं जो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

लोकगीतों में पाये जाने वाले इन भौगोलिक स्थानों के उल्लेखों से भारत की एकता ज्ञात होती है। इनमें नैपाल से लेकर लका तक और दिल्ली से लेकर आसाम तक के नगरों का उल्लेख प्राप्त है।

अध्याय ६

भोजपुरी लोक गीतों की साहित्यिक समीक्षा

(क) वर्णन की स्वाभाविकता

लोक गीतो में स्वाभाविकता कूटकूटकर भरी हुई है। उनमें वह अस्वाभाविक कविता नहीं है जो पाठको के हृदय में सहानुभूति न उत्पन्न कर केवल आश्चर्य ही पैदा करे। लोक-गीतो में जो कुछ वर्णन किया गया है वह अत्यन्त स्वाभाविक है। किसी विरहिणी स्त्री का बादल के द्वारा प्रियतम के पास सन्देश भिजवाना विलक्षणता से पूर्ण होने पर भी स्वाभाविक है —[1]

'अरे अरे कारी बदरिया, तुहइ मोर बादरि।
बदरी, जाइ बरसहु वहि देस जहाँ पिय छाये।"

अर्थात् ए बादल! तुम जाकर उस देश में बरसो जहाँ मेरे प्रिय गये हैं। सभवत इससे उन्हें मेरी सुधि आ जाय। इन पक्तियो को पढकर रसिक शिरोमणि घनानन्द का निम्नाकित सवैया बरबस याद आ जाता है

"घन आनन्द जीवन दायक हो, तुम मेरी हू पीर हिये परसो।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आगन, मो असुवान को लै बरसो।"

सावन-का महीना आ गया। आकाश में घिरे मेघो को देखकर पति को अपनी विरहिणी स्त्री की याद आ गई। वह घर आया। स्त्री द्वार बन्द किये हुये सो रही थी। पति ने द्वार खटखटाया। स्त्री ने पूछा कौन दरवाजा खटखटा रहा है, तुम कुत्ते हो या बिल्ली या मेरे ससुर के पहरेदार हो?[2] इस पर पति उत्तर देता है कि —

"ना हम कुकुरा बिलरिया, न ससुरु पहरुआ।
धन! हम अही तोहरा नयकवा, बदरिया बुलायसि।"

"बदरिया बुलायसि" इस पद में कितना माधुर्य है। कैसी स्वाभाविकता है। कालिदास ने मेघदूत में इसी का वर्णन करते हुए लिखा है कि —[3]

मो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यता प्रोषितानां।
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि।

अर्थात् बादल परदेशी लोगो को जो अपनी स्त्रियो की वेणी खोलने के लिये उत्सुक है जल्दी घर जाने की प्रेरणा देता है।

कालिदास ने जो बात एक वैज्ञानिक की तरह कही है वही बात उपर्युक्त गीत में बडे सीधे सादे ढग स्वाभाविक रूप से कही गयी है।

एक गीत में रुक्मिणी और चकई का कथनोपकथन बहुत सुन्दर बन पडा है। रुक्मिणी का हार टूट कर जमुना में गिर पडा है। वह चकई से उसे निकालने की प्रार्थना करती है।

---

१. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ७८ (ग्रामगीतों का परिचय)। २ वही, पृ० ७४। ३ मेघदूत पूर्व भाग।

तब वह उत्तर देती है कि तुम्हारे हार में आग लगे, मोती पर वज्र गिरे। सांझ ही से मेरा चकवा खो गया है। मैं उसी को ढूढ रही हूँ परन्तु वह अभी तक नही मिला।[1]

"धावउ बहिनि चकैया तू हाली बेगि आवउ हो।
चकई, चुनि लेव मोतिन के हार जमुना जल भीतर हो।"
अगिया लगावो तोरा हरवा बजर परे मोतिन हो।
बहिनी, सझवें से चकवा हेरान ढूढत नाहि पावऊँ हो।"

प्रियतम की खोज से बढकर चकई को और जरूरी काम क्या हो सकता है।

एक गीत में कन्या ससुराल जा रही है। घर के सामने नीम का एक पेड है जो उसी के द्वारा लगाया गया है। बिदाई के समय वह अपने पिता से कहती है कि पिताजी इस नीम के पेड को मत काटियेगा क्योंकि इस पर चिडियो का बसेरा है। जब चिड़िया यहां से उड़ जायँगी तब यह नीम अकेला रह जायगा। इसी तरह लड्की के बिदा हो जाने पर माता भी अकेली रह जायगी।

"बाबा निमिया क पेड जिनि काटेउ,
निमिया चिरैया बसेर, बलैया लेऊँ बीरन।
बाबा बिटियउ जिनि केउ दुख देउ
बिटिया चिरैया की नाई, बलैया०
सब रे चिरैया उडि जइहैं
रहि जइहैं निमिया अकेलि, बलैया०
सबरे बिटियवा जइहैं सासुर
रहि जइहैं माई अकेलि, बलैया०

अपने हाथ से लगाये गये नीम के वृक्ष को न काटने की प्रार्थना कितनी स्वाभाविक है। नीम के साथ माता की और पक्षियों के साथ कन्याओं की तुलना भी मार्मिक है।

शृगार रस के गीतो में भी स्वाभाविकता की सुन्दर मुग्धता देखने को मिलती है। पुत्र जन्म के गीतो में गर्भिणी की शरीर-यष्टि का वर्णन भी अत्यन्त स्वाभाविक हुआ है।[2]

"लीपी पोती अइलो ओबरिया, अंगनवा में ठाढ भइलो रे।
ललना राजा के दुलरिया मितिआ ओठवें,
हरदी मुहवा पीयर रे।"
दुअरा से अइले नन्दलाला, नाजो के मुँहवा देखेले हो।
आमावा दुलहिन के ओठवा झुरइलें,
हरदी मुँहवा पीयर हो।
सासु मोरी मुँहवा निरखे, ननद मुँहवा चूमे ले हो,
बहुआ धीरे धीरे अगव बेदनिया,
होरिल तोहरा होइहैं हो।"

गर्भवती होने के कारण स्त्री की शरीर-यष्टि भारी हो गई है। वह भीत का सहारा लेकर चलती है, उसका मुँह हलदी के समान पीला पड गया है और तन प्रतिदिन पतला होता जा रहा है। गर्भिणी का कमनीय चित्र यहाँ उपस्थित किया गया है। उसकी प्रसव

१. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ७६ (ग्रामगीतो का परिचय) । २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३० (पृष्ठ भाग) ।

वेदना का उल्लेख भी सुन्दर हुआ है। कालिदास ने भी गर्भिणी की शरीर-यष्टि का वर्णन किया है परन्तु उसमें शृंगार की मात्रा अधिक है और स्वाभाविकता कम।[1]

पुत्र के बिना स्त्री की जो दुर्दशा है, उसे जिस मानसिक वेदना का अनुभव करना पड़ता है उसका बड़ा ही सुन्दर वर्णन इन गीतों में पाया जाता है। वन्ध्या स्त्री कहती है कि जिस प्रकार वन में कोयल कुहकती है उसी प्रकार से मेरा हृदय बालक के अभाव में कष्ट पाता है। जिस प्रकार अगीठी (बोरसी) की आग धीरे-धीरे सुलगती है उसी प्रकार मेरा मन पुत्र के बिना अनवरत जलता रहता है।

"जइसन वन में के कोइलरि बने बने कुहुकेले हो।
ए राम ओइसन जियरा हमरा कुहुकेला
एक रे बालक बिनु हो।
जइसन बोरसी के आग हुवे धीरे-धीरे सुनुगेला हो।
ओइसे जियरा हमरा सुनुगेला, एकरे बालक बिनु हो।"

पुत्रहीन स्त्री के दिल पर जो बीतती है उसे वह स्वयं जानती है। दूसरा उसके कष्ट का अनुभव नहीं कर सकता। उपर्युक्त गीत में वन्ध्या के मनोभावों का बड़ा स्वाभाविक वर्णन हुआ है।

सौतिया डाह बहुत बुरी मनोवृत्ति है परन्तु यह अत्यन्त स्वाभाविक है। जिस प्रियतम के ऊपर स्त्री अपना सर्वस्व निछावर करने के लिये तैयार हो यदि उसके मन को कोई दूसरी स्त्री चुरा ले तो दुःख लगना अवश्यभावी है। सौतिया डाह का वर्णन संस्कृत एवं हिन्दी के कवियों ने बहुत सुन्दर किया है। उधर लोक गीतों में भी इसका सजीव चित्र मिलता है।

एक गीत में ससुराल के कष्टों का बहिन के द्वारा भाई से निवेदन हृदय-स्पर्शी है। वह कहती है मुझे एक मन रोज अन्न कूटना और पीसना पड़ता है,। पूरे एक मन आटे की रोटी बनानी पड़ती है। बर्तन भी मलने पड़ते हैं। परन्तु खाने के लिये एक छोटी लिट्टी मिलती है। उसमें से भी कुत्ता और बिल्ली एवं दासी को देना पड़ता है।[2]

यह वर्णन कितना स्वाभाविक है और इसमें सत्य की मात्रा कितनी अधिक है।

(ख) अलंकार विधान

भोजपुरी लोकगीतों में अलंकार का विशेष विधान नहीं पाया जाता। परन्तु कहीं-कहीं पर भाव को अधिक स्पष्ट करने के लिये उपमा, रूपक, अत्युक्ति तथा श्लेष आदि स्वतः आ गये हैं। इन गीतों में उपमालंकार अन्य अलंकारों से अधिक मात्रा में उपलब्ध है। परन्तु लोकगीतों में प्रयुक्त उपमा की विशेषता यह है कि इसमें एक विचित्र प्रकार की सादगी है, नवीनता है और मौलिकता है, जो काव्य की कृत्रिम कविताओं में देखने को नहीं मिलती। काव्य जगत की अधिकांश उपमायें कवि परंपरा युक्त होने के कारण बासी तथा फीकी सी प्रतीत होती हैं, परन्तु इन गीतों की उपमायें वैसी ही ताजी हैं जैसे ऊँचे वृक्षों से अठखेलियाँ करने वाली वन की वायु। उपमा का एक उदाहरण लीजिये —

"गहरी नदिया अगम बहे राम पनिया।
पिया चलेले मोरंग देसवा, बिहरे ला राम छतिया।।

---

१. कालिदास : रघुवंश ३ २, ८। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गीत भाग २ पृ० १६।

जा हम जनिती ए लोभिया, जइव रे विदेसवा ।
पिया के पयतवा ए लोभिया, छिपइती रे अचरवा ।।
इह रोवे चकवा चकइया, विछोहवा कइले रे लोभिया ।
मुह तोरे हवे ए लोभिया, सूरज से जोतिया ।।
आखि तोरे हवे ए लोभिया, अमवा से फरिया ।
नाक तोर हवे ए लोभिया सुगवा से ठोरवा ।।
भहु तोर हवे ए लोभिया चढले कमनिया ।
ओठ तोर हवे ए लोभिया कतरल पनवा ।।
अवए तोर हवे ए लोभिया कडी-कडी मोछिया ।
वाहि तोर हवे ए लोभिया सोवरन सोटवा ।।
पेट तोर हवे ए लोभिया पुरइन पतवा ।
पीठि तोर हवे ए लोभिया धोबिया के पटवा ।।
गोड तोर हवे ए लोभिया केरवा के थुन्हवा ।।"

स्त्री कहती है कि आज मेरा पति परदेस मोरगदेश को जा रहा है, अत उस के भावी वियोग की आशका से मेरी छाती फट रही है । यदि मैं जानती कि मेरा पति सचमुच परदेश चला जायेगा तो मैं उसके 'पायत' प्रस्थान की वस्तु को अपने आचल में छिपा लेती । जिससे न पायत मिलता और न मेरा प्रियतम परदेश जाता । ऐ मेरे प्रेम के लोभी ! तुम्हारे वियोग में मैं ही नही बल्कि तालाव के किनारे रहने वाले चकवा और चकवी भी रो रहे हैं । ऐ लोभी ! तुम्हारा मुख सूर्य की ज्योति के समान प्रकाशमान है, तुम्हारी आख आम की फली के समान बडी है, तुम्हारी नाक तोता के नाक के अग्रभाग के समान नुकीली है और भौं चढी कमान के समान तिरछी है । ऐ लोभी ! तुम्हारा होठ काटे गए पान के समान पतला, तुम्हारी वाहु सोने की लाठी के समान सुन्दर और सुवर्ण, तुम्हारा पेट पुरइन के पत्ते के समान वडा, पीठ धोबी के कपडा धोने के तख्ते की तरह चौडी और तुम्हारे पैर केले के खभे के समान सुन्दर है ।

उपर्युक्त गीत में ध्यान देने की बात यह है कि इसमें जो उपमान लिये गये है वे देहात की दुनिया से सबध रखनेवाले हैं तथा वे देहाती सौंदर्य के परिणाम प्रस्तुत करते है । काव्य जगत् में मुख की उपमा चद्रमा या कमल से, आखो की उपमा मीन नैन या मृग नैन से, होठ की उपमा विद्रुम या बिब से दी जाती है । परन्तु इन ग्रामीण कवियो ने इन परपरा-मुक्त उपमानो को नही अपनाया है । इस स्थान पर उन्होंने इन अगो की उपमा देहाती जीवन से सपर्क रखने वाली वस्तुओ से दी है ।

पेट की उपमा पुरइन के पत्ते से तथा पीठ की उपमा धोबी के पाट से देना कितना स्वाभाविक है । पैर की उपमा केले के खभे से देना कितना उचित और अनुकूल है । दूसरी विशेषता इन उपमानो की यह है कि ये भोजपुरी समाज की सौंदर्य की कल्पना के प्रतीक हैं । देहात में नाक के अग्रभाग का चोख नाकीला होना सौंदर्य का सूचक माना जाता है । इसीलिये नाक की उपमा तोता के ठोर से दी गई है । इसी प्रकार होठ का पतला होना सुन्दर समझा जाता है । अत कवि ने होठ की उपमा बिंब या विद्रुम से न देकर तराशे गये पान से दी है । विद्वानो से यह बतलाने की आवश्यकता नही कि काव्य जगत् में ये उपमायें बिल्कुल अपूर्व, अनूठी और मौलिक है ।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये —

हूरवा नियर तोर जुरवा ए गोरिया
पुअवा नियर तोर गाल।
पनवा नियर तू त पातर बाड़ गोरिया,
लोटवा नियर तोर भाल।।"

कोई अहीर विरहा गाकर यह कह रहा है कि ऐ सुन्दरी स्त्री ! तुम्हारा जूडा (वालो को एकत्र कर समेट कर बाधी गई ग्रंथि) लाठी के हूरा, निचले मोटे भाग की तरह बडा है और तुम्हारे कपोल मालपुआ की भाति सरस, मधुर और कोमल है। तुम्हारा शरीर पान के समान पतला है और तुम्हारा ललाट ल टे के निचले भाग की भाति उन्नत है। देहाती अहीर सदा लाठी लेकर चलता है, लोटे से रात दिन काम लेता है तथा घर में दूध घी की कमी न होने कारण सर्वदा नही तो पर्वो पर ही सही मालपुआ भी खाता है। अत यदि वह किसी स्त्री के अगो की उपमा अपनी दैनिक प्रयोग में आनेवाली वस्तुओ से न दे तो और किससे दे। कवियो ने "कनक छडी सी नायिका" का वर्णन किया है परतु जो कोमलता और सुदरता पान के पत्ते में है वह सोने की बनी छडी में कहाँ। ऊपर के विरहे में निपट देहाती उपमाना का प्रयोग किया गया है काव्य में जूरा की हूरा से उपमा कितनी मौलिक है।

इन लोकगीतो में श्ले ा अलकार भी अनायास आये हैं। सस्कृत तथा हिन्दी के कवियो ने अ भग और स ाग श्ले ा के द्वारा काव्यरचना में बडी चातुरी दिखलाई है, परतु इन गीतो में यह बात नही है। नीचे के इस विरह में श्लेष अलकार का बडा ही सुदर विधान मिलता है।

रसवा के भेजली भवरवा के सगिया,
रसवा ले अइले हा थोर।
अतना ही रसवा में केकरा के बटवा,
सगरी नगरी हित मोर।

स्वाधीन पतिका कोई स्त्री कहती है कि, ऐ मित्र। मैंने भवरा को रस लेने क भेजा। लेकिन वह थोडा सा ही रस ले आया। मेरे पास रस इतना थोडा है कि मैं किसे इस रसमें से ब टूं, क्योकि गाँव के जितने रहने वाले हैं सब मेरे हितू हैं। यहाँ पर भवरा (भ्रमर और पति) तथा रसमधु और प्रेम शब्द मे श्ले ा है जो सहृदयो के अतस्तल का स्पर्श करता है।
[illegible] रिक्त
[illegible] दी
[illegible]

इन गीतो में कहीं-कहीं रूपक अलकार भी मिल जाता है। इन रूपको की विशेषता यह है कि ये कभी दीर्घ तथा साग नही हैं। आरोप का क्रम प्रारम्भ करके उस का साग तथा सम्पूर्ण निर्वाह कही नही किया गया है। वस्तु में आरोप की प्रक्रिया थोडी दूर चल कर ही समाप्त हो जाती है। इसका कारण सभवत यह जान पडता है कि भाव के भूखे तथा रस के प्यासे भोजपुरी कवि को रूपकालकार के रूप के आराप का अवकाश कहाँ। उसने तो स्थान विशेष पर पर जोर देने के लिए अलकार को पकडा और फिर उसे छोड वह आगे बढ गया। उदाहरण लीजिये

सत सुकीरित के घइलवा, परेम केरा लेजुर हो।
ललना, पनिया भरऊ झकझोरी माग भरि सेन्दुर हो।।

स्त्री कहती है कि सत्य और सुकीर्ति रूपी घडा है। इस घडे से प्रेम रूपी रस्सी के द्वारा माग में सिंदूर लगाकर अच्छी तरह से मैं पानी भरूँगी। अर्थात् प्रेम के द्वारा सुयश तथा सत्य का अवलबन कर मैं मोक्ष रूपी पवित्र जल को पीऊगी जिससे अमर हो जाऊ। यहा कुयें से पानी भरने का रूपक बाधा गया है। परन्तु कुयें के वर्णन के अभाव में यह रूपक पूर्ण नही है।

(ग) रस परिपाक

जैसा कि पहले कहा गया है, इन लोकगीतो में रस की धारा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती रहती है। ये गीत क्या हैं रस के वे फौवार हैं जिनका स्रोत कभी सूखता ही नही। लोकगीतो में रस परिपाक सुन्दर बन पडा है। नारी का जीवन ही दुख तथा रुदन का दूसरा पर्याय है, यह करुणा की लम्बी कहानी है। इसीलिए राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है।

"अबला जीवन ! हा तुम्हारी यही कहानी।
आचल में है दूध और आखो में पानी॥"

इन गीतो में स्त्री का समस्त जीवन चित्रित मिलता है। पुत्र या पुत्री के जन्म से लेकर गवना तक वही करुण कथा गुनने को मिलती है। चाहे पुत्रजन्म के गीत हो या जनेऊ के, चाहे विवाह के गाने हो या गवना के, चाहे विरहा, या झूमर इन सभी गाना में स्त्री के कारुणिक जीवन की गहरी छाप हमे देखने को मिलती है। इसलिये इनमें अन्य रसो की अपेक्षा करुण रस की मात्रा प्रचुर रूप में पायी जाती है। परतु इसके साथ ही श्रृगार, हास्य, शात तथा वीर रसो का भी अभाव नही है।

भोजपुरी लोकगीतो में श्रृगार रस के दोनो पक्ष, सयोग और वियोग का वर्णन मिलता है। वियोग का वर्णन करुण रस के प्रसग में आगे किया जायगा। इन गीतो में श्रृगार रस का जो स्वरूप पाया जाता है वह नितात पवित्र, सयत, शुद्ध और दिव्य है। हिन्दी के रीति कालीन कवियों ने सयोग श्रृगार का जो भद्दा, अश्लील तथा कुरुचिपूर्ण प्रदर्शन अपनी रचनाओ में किया है उसका यहा अभाव है। सभवत हिन्दी के कवियों ने अपनी कवितायें अपने अन्नदाता राजाओं को प्रसन्न करने के लिये रची थी परतु ये गीत स्वात सुखाय रचे गये हैं।

विवाह सबधी गीतो में श्रृगार रस का आनन्द अधिक मात्रा मे मिलता है। विवाह के बाद जब वर को कोहबर में ले जाते हैं उस समय के गीत श्रृगार रस से लबालब भरे होते हैं। इसके अतिरिक्त पुत्र जन्म के उत्सव के अवसर पर गाये जाने वाले सोहरो में भी श्रृगार रस के अनुकूल सामग्री की कमी नही है। गर्भिणी की शरीर-यष्टि का कितना सहानुभूतिपूर्ण वर्णन इस मनोहर गीत में किया गया है।

लीपि पोति अइलो ओबरिया, अगनवा में ठाढ भइली रे।
ललना राजा के दुअरिया भितिया ओठघे,हरदी मुँहवा पियर रे॥१॥

दुअरा से निकलेले ननलाल, नाजो के मुखवा देखेले हो।
आमा दुलहिन के ओठवा झुरइले, हरदी मुँहवा पिअर हो॥२॥

सासु मोरि मुँहवा निरेखे, ननद मुँहवा चूमेले हो।
बहुआ धीरे-धीरे अगवा बेदनिया होरिल तोहरा होइहे हो॥३॥

जनि केहु मुँहवा निरेखे, त जनि गलवा चूमहु रे।
ललना हुअरा सुतेला सझइतवा, बोलाईं घरवा ले आवहु रे ।।४।।
एहि अवसर पिया के भेटिती त लाते मूके मरिती हु रे।
ललना ! लपकि के डँडवा त धरीती, दु खवा त आधा बटिती हु रे ।।"५।।

प्रसव वेदना से व्याकुल कोई सुकुमार स्त्री अपनी दशा का वर्णन करती हुई कह रही है कि मने घर का भीतरी भाग लीप लिया है। अपने प्रियतम की दुलारी मैं, भीत का सहारा लेकर लेट रही हूँ। मेरा मुख पीला पड गया है। इतने मे उसका पति द्वार पर से घर आया और अपनी स्त्री का पीला मुख देख कर माता से पूछने लगा कि इसके होठ सूखे क्यों हैं। सास मेरा मुख देखती है, नद मुख चूमती है और कहती हैं कि धीरे-धीरे कष्ट को सह लो। इस पर स्त्री कहती है कि कोई मेरी सहायता भले न करे, मेरे पति को बुलावो। यदि आज वे मुझे मिल जाते तो उनकी अच्छी तरह से मरम्मत करती और लपक कर उनकी कमर को पकड कर कहती कि प्रियतम! मेरे दु ख का आधा ब ट लो क्योंकि इस दु ख को देने वाले तुम्ही हो।

इस गीत में "सझइतवा" साझी, साथी शब्द बडा ही व्यग्यपूर्ण है। वास्तव में पति ही स्त्री के दु ख और सुख का साथी है। यदि सुख में पति ने साथ दिया तो दु ख में भी यदि वह सगी नही तो कौन होगा। गर्भिणी की वेदना का यह कितना मार्मिक चित्रण है।

नीचे के गीत मे कृष्ण जी का गोपिया के साथ छेडखानी करने एव गोपियो का यशोदा के पास कृष्ण के प्रति उपालभ करने का कितना मर्मस्पर्शी वर्णन है।

"दही बेचे चलली गोआलिन, सिर पर मुकुट लिहले हो।
डारे गले गजमुकुता के हार त ओढेली पिताम्बर हो।
एक बने गइली दूसरे बने, अवरु तीसरे बने हो ।।
अरे बीचवा कन्हैया बटमरवा, डगरि हमरी रोकेले हो।
दही, दूध दिहली त नाहि लेले,
आरे मागेले कन्हैया जी गोरसवा, धरमवा छोडावेले हो।
मिलहु सखिया सलेहरि मिलि जुलि यशोदा घर चलहु हो ।।
ए मइया बरजी ना आपन कन्हैया, डगरिया मोर रोवले हो।
मेटि घालु सिर के सेन्दुरवा, नयन भरि काजर हो।
ए बहुआ मेटि घालहु दाँते के मिसिया, कन्हैया तोके नाहि रोकिहें हो।
धनि के बइठइबो दाँत मिसिया, नयन भरि काजर हो।
एक डाटि फारि करबो इगुरवा कन्हैया के ललचाइबि हो ।।"

दही बेचने के लिये ग्वालिन सिर पर मुकुट, गले में माला तथा पीताम्बर पहने चली जा रही है। रास्ते में कृष्ण ने उनका मार्ग रोक लिया। दूध, दही देने पर कृष्ण ने नही लिया और गोरस (इद्रिय) का रस भोग माँगने लगे। इस पर सब ग्वालिना ने जाकर यशोदा को उलाहना दिया। यशोदा ने कहा कि तुम अपने सिर का सिन्दूर, आ खो का काजल और दांतो मे मिस्सी का लगाना छोड दो। परन्तु गोपियो ने उत्तर दिया कि नहीं हम लोग माँग में सिन्दूर लगावेंगी, आँखों में काजल करेंगी और द तों में मिस्सी लगाकर कृष्ण को खूब ललचावेंगी। इस गीत में ग पियों का उत्तर बडा सरस और मर्मस्पर्शी है।

लोकगीतों में स्थान-स्थान पर हास्यरस का भी पुट पाया जाता है यह यही ही मनोरजक बात है कि इन गीतों का हास्य ग्रामीण होते हुये भी ग्राम्य नहीं है। विवाह होने के पश्चात्

कोहबर में वर से अनेक प्रकार की हास्यरस की बातें कही जाती हैं जो बड़ी ही चुटीली होती हैं। गीतों में आदर्श सती स्त्रियों का चित्रण तो बहुत मिलता है परन्तु कुलटा का बहुत कम। रसानुकूल कुरूपता का चित्रण भी एक कला है। इस दृष्टि से इस गीत में किसी कर्कशा कुलटा स्त्री का चित्रण कितना सुन्दर बन पड़ा है। सुनियेः—

"धनि धनि रे पुरुख तोर भागि, करकसा नारि मिली,
सात घरी दिन सोय के जागी, लिहली बढनिया उठाय,
निहुरलि निहुरलि अगना बहारे, घर भर को गरियाय।
करकसा नारि मिली ॥

बखरी पर से कौवा रोवे, पहुना अइले तीन।
आव पाहुन घर में बइठ, कंडा लाईं बीन।
करकसा नारि मिली ॥

हड़िया भरि के अदहन दिहली, चाउर मिलवली तीन।
कठवति भरि के माड पसवली, पिय हिलोर हिलोर।
करकसा नारि मिली ॥

सात सेर के लिट्ट पकवलीं, चौदह सेर के एक।
तू दहिजरऊ सातो खइल, हम कुलवन्ती एक।
करकसा नारि मिली ॥

डेहरी बइठे तेल लगावे, सेन्दुर भरावे माँग।
अंचर पसारि के मुरुज मनावे, कब होइबि हम राड़।
करकसा नारि मिली ॥"

हे पुरुष! तेरा भाग्य धन्य है जो तुझे ऐसी कर्क ा स्त्री मिली है। सात घड़ी तक वह दिन में सोती है और बाद में झाड़ू उठाकर घर वालों को गाली देती हुई आंगन बुहारती है। टूटे घर के ऊपर कौवा बोल रहा है, उसी समय घर में तीन अतिथि चले आए तब वह स्त्री उनसे कहती है कि तुम लोग बैठो मैं उपले बीन कर ले आऊं। उसने बड़ी हांडी में भरकर पानी डाल दिया और भोजन के लिये केवल तीन चावल ही डाले। उसने कठौता भर मांड निकाला और उनसे कहा कि तुम लोग इसे पीओ। उसने सात सेर की रोटी उनके लिए और चौदह सेर की एक ही लिट्टी अपने लिए बनायी। फिर उन्हें गाली देती हुई कहने लगी कि तुम दुष्टों ने सात सेर की रोटी खा डाली और मैंने केवल एक ही खाया। वह दरवाजे पर बैठकर, मांग में सिंदूर लगा कर सूर्य भगवान् से नित्य यही प्रार्थना करती है कि मैं कब रांड (विधवा) हो जाऊंगी।

लोक गीतों मे हास्यरस का आस्वादन तो केवल मुँह का मजा बदलने के लिये है। इन गीतों का असली रूप तो करुण रस के गीतो में ही दिखाई पड़ता है। करुण रस में इन गीतो की मनोरमता तथा मार्मिकता पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। सच तो यह है कि जैसा मधुर रस परिपाक करुण रस के गीतो मे हुआ है वैसा अन्यत्र नही। करुणरस के गीतों को हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—

१. विदाई के गीत।
२ वियोग के गीत।
३. वैधव्य के गीत।

जब कन्या विवाह के पश्चात् पिता के घर से पतिगृह को जाने लगती है उस समय जो गीत गाये जाते है उन्हें विदाई या गवना के गीत कहते हैं। ये गीत बडे मार्मिक तथा करुण रस में सने होते हैं। वास्तव मे भोजपुरी प्रदेश से पुत्री के विदाई का दृश्य बडा ही करुणाजनक होता है। कही पिता रोता है, कही माता सिर पटकती रहती है, कही भाई चिल्लाता है तो कही ग व की स्त्रियाँ आँसू बहाती हुई दिखाई पडती हैं। सचमुच ऐसे समय में जब तपस्वी महर्षि कण्व भी धैर्य्य नही धारण कर सके, तो साधारण लोगो की चर्चा ही क्या ! बिदाई की एक गीत सुनिये—

"दुअरा भूलिये भूलि बाबा ज। रोवेले,
कतही न देखीले बेटी नुपुरवा तो तोहार।
आंगना भूलिये भूलि आमा जे रोवेली,
कतही न देखीले बेटी ! रसोइया झाझाकाल ॥
घेरवा भूलिये भूलि भऊजी जे रोवेली,
कतही ना देखीले बेटी ! घरवा झाझाकाल ॥"

अर्थात् दरवाजे पर बैठा हुआ पिता रोता हुआ कह रहा है कि बेटी मैं तुम्हारी पायजेब को नही देख रहा हूँ। रोती हुई माता कहती है कि ए बेटी ! तुम्हारे बिना मेरा रसोई घर शून्य है और दु खी भावज का ननद के बिना सारा घर ही सूना दिखाई पडता है।

इतना ही नही पिता के लगातार अश्रुप्रवाह से गगा में बाढ आ जाती है और माता के रोने से आँखो के आगे अँधेरा छा जाता है। बहन की विदाई के कारण रोत रोते भाई की धोती पैर तक भीग जाती है —

"बाबा के रोवले गगा बढि अइली,
आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भीजेला,
भऊजी नयनवा ना लोर ॥"

पत्नी से पति के वियोग सबधी गीत बडे मर्मस्पर्शी हैं। इनको सुनकर पत्थर का दृदय भी पिघल उठता और वज्रहृदय भी टूक-टूक हो जाता है। विप्रलम्भशृङ्गार का वर्णन सस्कृत तथा हिन्दी के अनेक कवियो ने बडी सुन्दरता से किया है परन्तु इन गीतो की अपनी विशेषता है। इन गीतो में स्वानुभूति का वर्णन है अत ये स्वाभाविक, अकृत्रिम तथा मनोरम बन पडे हैं, परन्तु कवियो का वियोगवर्णन उनकी कल्पना की उडान मात्र है उसमें अनुभूति के दर्शन कहाँ। !

पति परदेश जाने के लिये तैयार है। स्त्री उसके भावी वियोग की आशका से दु खी होकर कहती है कि तुम्हारे वियोग में मैं कैसे रहूँगी, इसकी युक्ति मुझे बतलाते जाओ। यदि तुम परदेश में अधिक दिन तक रहोगे तो अपना चित्र मेरी बाहा पर बनाते जाना, जिसे मैं देखकर अपना दिन काटूँगी। नही तो मेरे भाई को बुलाकर मुझे मायके पहुँचा दो। हे स्वामी ! यदि तुम बहुत दिन परदेश में रहोगे तो तुम्हारा वियोग मुझे असह्य हो जायेगा। अत तुम मेरी बाह पकड कर मुझे गगा में डाल दो। न मैं जीती रहूँगी और न वियोग के कष्ट को सहूँगी। इस मार्मिक गीत को सुनिये —

"जुगुति बताये जाव। कवन विधि रहवा राम। टेक
जो तुम साम बहुत दिन बितिहैं
अपनी सुरतिया मोरे बहिया पर लिखाये जाव। जुगुति०

जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं ।
बिरना बोलाई मोके नइहर पहुँचाये जाय ।।२
जुगुति०
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं ।
बहिया पकरि मोके गगा भसिआये जाव ।।३
जुगुति बताये जाव, क्वन विधि रहवा राम ।"

यह गीत क्या है करुण रस का कलश है । वियोग की आशका से उत्पन्न दु ख का इतना सरस, सजीव तथा हृदय द्रावक वर्णन कहा सहज में उपलब्ध होगा । हिन्दी के तोष आदि कवियो ने वियोगिनियो के आसू से नदियो में बाढ आने की जो बात लिखी है वह अलकार की दृष्टि से भले ही चमत्कारपूर्ण हो परन्तु श्रोताओ के हृदय पर वह कुछ भी प्रभाव नही उत्पन्न करती । इस गीत के भसियाना शब्द में बडी मार्मिक व्यजना छिपी हुई है । इस की सरसता, मधुरता और करुणरसता के विषय में मतिराम का यह पद सर्वथा उपयुक्त जान पडता है कि —

"ज्यो ज्यो निहारिये नेरे ह्वै नैनन,
त्यो त्यो खरी निकरे सी निकाई ।"

किसी स्त्री का पति परदेश चला गया है वह वियोग से दु खी होकर कह रही है कि ए भौरा ! अब तुम कब लौटोगे । मैं तेरी बाट कब तक जोहती रहूँगी । हाय, तुम्हारे आने के दिनो को गिनते गिनते मेरी अँगुलिया घिस गई परन्तु तुम नही आए । तुम्हारी प्रतीक्षा में अश्रुओ की धारा बह रही है । मैं तुम्हें ढूँढने के लिए एक वन में गई, दूसरे में गई । तीसरे वन में एक गाय चराने वाला मिला । उससे मैंने पूछा कि ए भइया, गोरू के चराने वाले ! तुमने मेरे रसवाले भवरे अर्थात् पति को कही देखा है ?

"आजु के गइल भँवरा कहिया ले लवटब,
कतेक दिनवा ।
हम जोहबि तोरी बटिया, कतेक दिनवा ।
गनत-गनत मोर अँगुरी खियाइल, चितवते दिनवा ।।
ढुरे नैना से लोरवा, चितवते दिनवा ।
एक वने गइली, दूसर वन गइली, तीसर बनवा ।
मिलल गोरू चरवहवा, तीसर बनवा ।।
गोरू चरवहवा तुही मोर भइया कतहू देखल ना ।
मोर भवरवा परदेशिया कतहू देखल ना ।।'

इन गीतो में पशुहृदय का चित्रण भी अछूता नही बचा है । पशुओ के मानसिक भावो का अकन भी सहानुभूति से किया गया है । पानी के लिये प्यासे प्रियतम हरिन के पकडे जाने पर हरिनी का यह विलाप बडा करुणोत्पादक है । लय से गाये जाने पर यह गीत सचमुच हृदय को विह्वल कर देता है । गीत सुनिये —

"आरे पानी के पियासल हरिनवा, जमुनवा घाटे रे जाय ।
ओअली मैं चीनवा ए रामा हरिनवा चरि रे जाय ।।
बाट के बटोहिया सुनहु मोर बतिया, तुहूँ रे मोर भाय ।
एहि राहे देखल हरिनवा, बहेलिया ले ले रे जाय ।।

देखुईं मैं देखुईं ए पातरि, सोनपूरवा के रे हाट।
हाथ गोड़ बन्हले बहेलिया, अ हि हटिया ले ले रे जाय॥
आरे गोड़ तोर थाके बहेलिया, हथवा लागेरे घून।
कवने कसूरवा बहेलिया, मोर सेजरिया कइले सून॥
चाम, मासु बेचिहे बहेलिया, हाड़वा दीहे रे मोर॥
ओही हाड़ लेइ सती होइब, एहि जमुनवा के तीर॥
पानी के पियासल हरिनवा, जमुनवा घाटे रे जाय॥"

भाव यह है कि पानी के लिये प्यासा हिरन जमुना के घाट पर गया। चीन का खेत बोया गया था उसे वह चर गया। इस अपराध में बहेलिये ने उसे पकड़ लिया। हरिनी उस के वियोग से दुखी होकर राही से पूछती है कि तुमने इस रास्ते से जाते हुये मेरे हिरन को देखा है। उसने उत्तर दिया हां, हरिन के हाथ और पैर को बांध कर बहेलिया उसे सोनपुर के मेले में लिये जा रहा था। हरिनी कहती है ए बहेलिया! तेरे पैर चलते-चलते थक जायें और तेरे हाथों में घुन लग जायें। तुमने किस अपराध के कारण मेरी सेज को सूनी कर दिया है। अच्छा हिरन को मार कर उसके मांस को बेंच लेना परन्तु उसकी हड्डी को मुझे देना क्योंकि उसी हड्डी को लेकर मैं सती होऊँगी। हरिनी का यह पति-प्रेम कितना उत्तम तथा आदर्श-पूर्ण है।

एक विरहिणी वियोग-जन्य अपने दुखों को कितने मधुर शब्दों में व्यक्त कर रही है:—

"मोरी धानी चुनरिया इतर गमके।
धनि बारी उमरिया नइहर तरसे॥टेक

सोने की थाली में जेवना परोसलों।
मोर जेंवन वाला बिदेस तरसे॥मोरी धानी०

झझरे गगड़ुअवा गंगाजल पानी।
मोर पियन वाला बिदेस तरसे॥ मोर धानी०

लवंग इलाएची के बिरवा लगवली।
मोरा चाभन वाला बिदेस तरसे॥ मोरी धानी०

कलिया चुनि-चुनि सेजिया डसवली।
मोर सूतन वाला बिदेस तरसे॥ मोरी धानी०

कितना सुंदर भाव है। "मोरी धारी उमरिया नइहर तरसे" इस पद में कितनी कसक, कितनी वेदना छिपी हुई है, इसे तो सहृदय ही समझ सकते हैं।

वैधव्य के गीतों में विषाद की गहरी रेखा खिंची मिलती है, परन्तु अमिट रूप से नहीं। दिन ज्यों-ज्यों ढलते जाते हैं, विषाद की रेखा उतनी ही धीमी पड़ती जाती है। परन्तु बाल-विधवाओं की मनोवेदना का चित्रण किन शब्दों में किया जा सकता है। इनकी दर्दनाक आहें किसके दिल को नहीं दहला देंगी। एक भोली भाली बाल-विधवा की उक्ति सुनिये.—

"बाबा सिर मोर रोवेला सेन्दुर बिनु,
नयनवा कजरवा बिनु ए राम।

बाबा गोद मोर रोवेला बालक बिनु,
सेजरिया कन्हैया बिनु ए राम।"

अर्थात् हे पिता जी ! मेरा सिर सिंदूर के बिना, आँखें काजल के बिना, गोद बालक के बिना और मेरी सेज पति के बिना रो रही है। बाल विधवा का यह कितना कारुणिक दृश्य है। कितना हृदयद्रावी वर्णन है।

शान्त रस का एक उदाहरण लीजिये। ईश्वर को पति और अपने को स्त्री मानना रहस्यवादियों तथा भक्तों की प्राचीन परपरा रही है। यह ससार मायका है और शरीर का त्याग ही वह गवना है जब प्रियतम का सहवास मिलता है। इसी आशय का यह गीत सुनिये—

"मोर नइहरवा से नातवा छोड़वले जाला पियवा।
काचे काचे बसवा के डोलिया रे बनवले,
तेहि पर काया के सुतवले जाला पियवा।
चारि कहार मिलि डोलिया उठवले,
आगे-आगे रहिया देखवले जाला पियवा।"

घ. गीतों में कोमलता एवं सरसता

पीछे कहा गया है कि लोक गीतों में कृत्रिमता का नितान्त अभाव है। इनमे पद-विन्यास या शब्द रचना नितान्त स्वाभाविक हुई है। इन गीतों में सीधे-सादे शब्दों में मधुरता कूट-कूट कर भरी हुई है। साथ ही इन शब्दों में जो भावधारा बँधी पड़ी है उसमे जितनी डुबकी लगाइये उतना ही अधिक आनन्द आता है। चैता, निरगुन, जतसार और गवना के गीतों में कोमल पदावली का बड़ा सुन्दर व्यवहार हुआ है। कुछ फुटकर गीतों में भी रस का स्रोत बहता दीख पड़ता है। एक उदाहरण लीजिये —जिसमें कोई स्त्री अपने प्राण प्यारे पति से उसके वियोग में दिन काटने का उपाय पूछ रही है। इसमें भावी वियोग की वेदना का अनुभव मार्मिक शब्दों में चित्रित है।[1]

"जुगुति बताये जाव,
कवन विधि रहबो राम। टेक ॥
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं,
अपनी मुरतिया मोरे बहिया पर लिखाये जाव।
जुगुति बताये०
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं,
बिरना बोलाके मोके नइहर पहुँचाये जाव।
जुगुति बताये०
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं,
बहिया पकरि मोके गंगा भसियाये जाव।
जुगुति बताये जाव,
कवन बिधि रहबो राम।"

वियोग की आशका से उत्पन्न दुःख का सरस, सजीव, अकृत्रिम तथा हृदय-द्रावक वर्णन उक्त पंक्तियों में है। इस गीत में वर्णित भाव अपनी अकृत्रिमता के कारण

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ६६ ।

दिल पर सहज की ही में चोट करते हैं। 'बहिया पकरि मोके गगा भसिआये जाव' आदि पदों में गहरी वेदना छिपी हुई है।

पूरे गीत में कर्णकटु शब्दों का अत्यन्ताभाव है। टवर्ग का कहीं भी प्रयोग नहीं हुआ है। 'युक्ति' के स्थान पर 'जुगुति' का प्रयोग कितना मधुर बन पड़ा है। 'श्याम' शब्द स्वयं बड़ा सुन्दर है परन्तु संयुक्ताक्षर होने से कुछ उच्चारण की कठिनता एवं परुषता आ जाती है। इसके लिये गीत में 'साम' शब्द व्यवहृत है जो बड़ा कोमल है। भोजपुरी में 'या' प्रत्यय कोमलता का वाचक है, जैसे दही-दहिया, लड़की-लड़किया। इस प्रकार से यहाँ 'मूरत' और 'बाँह' में 'या' प्रत्यय जोड़कर इनमें अधिक कोमलता की व्यंजना की गई है। दूसरी बात यह है कि इस गीत की लय भी इतनी कोमल एवं मधुर है कि सुनते ही बनता है। इस गीत की कोमलता, सरसता एवं मधुरता के विषय में मतिराम का यह पद उपयुक्त जान पड़ता है कि —

"ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि,
त्यों त्यों खरी निकरे सी निकाई।"

जात के गीत बड़े सरस होते हैं। इनमें विरह-वेदना की जितनी मार्मिक व्यंजना होती है उतनी संभवतः अन्य गीतों में नहीं। इसीलिये जतसार रस से लबालब भरे रहते हैं। जब स्त्रियाँ राग लय से उन्हें गाने लगती हैं तो श्रोतागण की आँखों में बरबस आँसू झलक पड़ते हैं। नीचे की जँतसार सुनिये जिसमें विधवा की मनोवेदना का उल्लेख किया गया है —[1]

"बगिया में पाच पेड़ आमवा,
पचीस गो महुअवा बाटे हो राम।
राम तबहू ना बगिया गमक देले,
एकली बेइलिया बिनु हो राम।
राम पाच सात खइला में पानवा,
पचीस गो सोपरिया खइलों हो राम।
राम तबहू ना मुँह भइले लाल,
त एकली खजरिया बिनु हो राम।
राम सेर भरि सोनवा पहिरलों,
पसेरी भरि चनिया हो राम।
राम तबहू ना देहिया सुहावनि,
एकली सेनुरवा बिनु हो राम।
राम सासु घर पाच गो देवरवा,
पचीस गो भसुरवा बाटे हो राम।
राम तबहू ना ससुरा सोहावन,
एकली कन्हैया बिनु हो राम।"

इस गीत में करुण रस का स्रोत बह रहा है जिसमें पाठक भी थोड़ी देर के लिये बह जाते हैं। ससुराल में पाच देवर और पचीस भसुर के विद्यमान रहने पर भी केवल पति के बिना शरीर के सुन्दर न लगने की उक्ति कितनी मार्मिक है। सेर भर सोना का और पसेरी

---

१ डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ११५।

भर चाँदी का गहना पहनने पर भी केवल सिन्दूर (पति) के बिना शरीरयष्टि का शोभित न होना कितना मर्मस्पर्शी है ।

चैता के गीतो मे हृदय द्रावकता की अमोघ शक्ति विद्यमान है । उनका पद विन्यास इतना सुन्दर होता है कि कोई भी शब्द अपने स्थान से हटाया नही जा सकता । चैता के गाने की लय बडी मनोमोहक होती है जो अत्यन्त श्रुतिसुखद और मधुर है । यह चैता लीजिये —

> "आहो रामा मानिक हमरो हेरइले हो रामा
> ओहि जमुना में, केहू नाहि खोजेला हमरो पदारथ हो रामा
> ओहि जमुना मे ।
> आहो रामा ओहि रे जमुनवा के चीकटि मटिया
> चलत पाव चिछिलइले हो रामा ।
> ओहि जमुना में ।
> आहो रामा ओही रे जमुना के करिया पनिया,
> देखत मन घबरइले हो रामा ।
> ओहि जमुना में ।"

लय से गाये जाते हुए इस चैते को सुनकर हृदय द्रवीभूत हो जाता है । 'ओहि रे जमुनवा के चीकटि मटिया' इन शब्दो को सुनकर मन फिसलने की अपेक्षा वही चिपट जाता है । 'मटिया' में 'या' प्रत्यय कोमलता का सूचक है । इस चैते की पदावली जितनी सुन्दर है भाव भी उतना ही रमणीय है ।

निरगुन के गीतो मे श्रृगार और भक्ति का सगम पाया जाता है । जहाँ विरहिणी स्त्री के दुःसह वियोग का वर्णन उपलब्ध होता है वहाँ आत्मा की परमात्मा से मिलने की उत्सुकता भी दीख पडती है । भक्ति का पुट होने पर भी निरगुन का मुख्य रस श्रृगार ही है । निरगुन के गीतो में प्रेम का विशेषत विप्रलम्भ श्रृगार का वर्णन होने से बडी सरसता एव मधुरता आ गई है । घर से विरक्त भाई की खोज में जाने वाली बहन की अपनी भावज के प्रति यह उक्ति कितनी मार्मिक है ।[1]

> "पिसि देहु पिसि देहु भऊजी, जिरहुलि सतुइया हो,
> कि आहो मोरे रामा, हम जाइबि भइया के उदेसवा नु ए राम ।
> एक वने गइली रामा, दुई बने गइली हो,
> कि आहो मोरे रामा, तीसरे वने धुइया रमावेला ए राम ।
> छोड़ु छोड़ु जोगिया रे जगल के धुइया हो,
> कि आहो मोरे रामा भऊजी के रोवले छातिया फाटेला ए राम ।
> कइसे के छोडी बहिना जगल के धुइया हो,
> कि आहो मोरे रामा दुनिया से नेहिया अब त छूटल ए राम ।"

इस निरगुन में पति के वियोग में स्त्री की विह्वलता का वर्णन है । भाई के प्रति बहन का प्रेम छलका पडता है । वह उसकी तलाश में बन-बन घूमती है और अन्त में घर लौट चलने के लिये आग्रह करती है । इस गीत की भाषा सरस और भाव मधुर है ।

---

१. डा० उपाध्याय, भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३०६ ।

चैता, निरगुन, जतसार आदि के जो गीत उद्धत किये गये हैं उनमें सरसता, कोमलता और मधुरता प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। इनकी शब्दावली इतनी मधुर है कि जयदेव की 'कोमल कान्त पदावली' की याद आती है और गाथा एवं 'आर्या सप्तशती' की मधुरता ध्यान में आये बिना नहीं रहती।

ङ लोकगीत में छन्द विधान

किसी देश के लोकगीत उस देश की जनता की संस्कृति के प्रतिबिम्ब हैं। ये जंगली फूल की तरह स्वतन्त्र वातावरण में उत्पन्न होते हैं और उसी में विकास को प्राप्त होते हैं। इसीलिये इन गीतों में सर्वांगीण भाव, भाषा, अलंकार एवं पिंगल आदि की स्वतन्त्रता पाई जाती है। ग्रामीण कवि कविता करते समय छन्द शास्त्र के नियमों को याद करने नहीं बैठता और न वह 'जगण' और 'मगण' की भूलभुलैया में ही पड़ता है। उसके निष्कपट हृदय में जो भावधारा अनायास आ जाती है उसे वह 'स्वान्तः सुखाय' प्रकाश में लाता है। इसीलिये लोक गीतों में छन्दविधान का कोई निश्चित नियम नहीं दिखाई पड़ता। ऐसी दशा में लोक गीतों में छन्दविधान के अनुसन्धानकर्ता का कार्य बड़ा ही कठिन हो जाता है।

इन गीतों के विषय में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि "इनमें छन्द नहीं केवल लय है।"[1] सुप्रसिद्ध भाषाविद् डा० ग्रियर्सन ने 'बिरहा' का छन्दविधान बतलाते हुये लिखा है कि पढ़ते समय छन्द के नियम के अनुसार ये बिरहे शायद ही मिलें, जबतक हम यह याद न रखें कि बहुत से दीर्घ स्वर पढ़ने समय लघु कर लिये जायें। इनमें कभी-कभी कुछ ऐसे भी व्यर्थ के शब्द होते हैं जो छन्द के अंगभूत नहीं होते।"[2] इसी विद्वान् ने आगे चल कर अपना गंभीर मत प्रकट किया है कि "इन लोक गीतों की यह विशेषता है कि पिंगल शास्त्र के नियम इनमें बड़े शिथिल हैं।"[3] इन उल्लेखों से यह सहज ही में समझा जा सकता है कि लोक गीतों में छन्दों का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता है और जहाँ छन्द हैं वहाँ उनके नियमों के पालन में बड़ी शिथिलता होती है।

लोक गीतों में कुछ ऐसे छन्द मिलते हैं जो वर्णिक और मात्रिक दोनों में से किसी कोटि के भीतर नहीं आते। वे केवल लय के ऊपर आश्रित होकर चलते हैं। इन्हें पारिभाषिक शब्दावली में 'तोड़' कहते हैं।

१ बिरहा —अहीरों का राष्ट्रीय गान बिरहा है। यह एक छन्द है जिसमें चार चरण होते हैं। इसके प्रथम और तृतीय चरण में १६ अक्षर होते हैं और द्वितीय और चतुर्थ चरण में १० अक्षरों का विधान पाया जाता है। इसके साथ ही प्रथम एवं तृतीय चरण के अन्तिम दो अक्षर लघु और गुरु होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरण के अन्तिम दो अक्षरों में गुरु एवं लघु का क्रम पाया जाता है।

---

१ त्रिपाठी कविता कौमुदी भाग ५ पृ० ग्राम गीतों का परिचय। २ [इन रीडिंग देम बिरहाज, दे विल रेयर्ली बी फाउन्ड टु ऐग्री विथ दिस अनलेस वी रिमेम्बर दैट मेनी लौंग सिलेबिल्स मस्ट बी रेड ऐज शार्ट दैट इज वन इन्स्टैंस। समटाइम्स देयर आर सुपरफ्लुअस वर्ड्स व्हिच डु नौट फार्म पार्ट आफ दि मीटर]। ज० रा० ए० सो० (१८८५) ३ 'दि पेकुलियेरिटी आफ आल दीज साँग्स इज दैट दि फेटर्स आफ मीटर लाई अपान देम वेरी लूजली इन्डीड।' ज० रा० ए० सो० (१८८५)।

"पिया पिया कहत पियर भइली देहिया,
लोगवा कहेला पिंड रोग ।
गउवा के लोगवा त मरमियो ना जानेला,
भइले गवनवा ना मोर ।"

यह बिरहा उक्त नियम की कसौटी पर बडा खरा उतरता है । छन्द के नियमानुसार इसके प्रथम और तृतीय चरणो में १६ अक्षर और द्वितीय एव चतुर्थ चरणा में १० अक्षर पाये जाते हैं । इसके साथ ही इन दोना चरणा के अन्तिम दो शब्द क्रम से दीर्घ और ह्रस्व मात्रा वाले हैं । एक दूसरे बिरहे में, उपर्युक्त नियम का पूरा पालन किया गया है ।[1]

"रसवा के भेजली भवरवा के सगिया,
रसवा ले अइले हा थोर ।
अतना ही रसवा में केकरा के बटबो,
सगरी नगरी हित मोर ।।"

इस बिरहे के प्रथम, तृतीय चरणो के अन्त में लघु, गुरु और द्वितीय, चतुर्थ चरणो के अन्त में गुरु, लघु का सम्यक् विधान किया गया है । परन्तु यह नियम सर्वत्र लागू नही है । अनेक बिरहों में इसका उल्लघन किया गया है जैसे—

'पिसना के परिकल मुसरिया तुसरिया,
दूधवा के परिकल बिलार ।
आपन आपन जोबनवा सभरिहे ए बिटियवा,
रहरी में लागल बा हुँडार ।।"

इस बिरहे के तीसरे चरण में १८ अक्षर है जो नियम विरुद्ध है । ये गीत लय के अनुसार गाये जाने के कारण तोडे, मरोडे एव जोडे भी जाते है । इसीलिये नियमानुसार इनमें उचित मात्रा में एव अक्षर नही मिलते ।

डा० ग्रियर्सन ने बिरहा के प्रत्येक चरण के लिये यह नियम निर्धारित किया है—

प्रथम चरण ६+४+४+२ =१६ अक्षर ।
द्वितीय चरण ४+४+३ =११ अक्षर ।
तृतीय चरण ६+४+४+२ =१६ अक्षर ।
चतुर्थ चरण ४+४+४ =१२ अक्षर ।

यह नियम उपर्युक्त नियम से प्रथम, तृतीय चरणा में कुछ समानता और द्वितीय एव चतुर्थ चरणा में भिन्नता रखता है ।

च. लोकगीत में भाव व्यजना और छन्द विधान का सामञ्जस्य

सस्कृत साहित्य में भाव व्यजना और छन्द प्रयोग का अत्यन्त अधिक सामजस्य है । विभिन्न भावो के अनुसार विभिन्न छन्दो का प्रयोग दीख पडता है । आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्त तिलक' में इस विषय पर बडा गभीर विचार किया है और यह दिखलाया है कि विभिन्न विषयो के वर्णन के लिए भिन्न भिन्न छन्द उपयुक्त है । उन्होने लिखा है कि वर्षा और प्रवास के वर्णन के लिए मन्दाक्रान्ता अत्यन्त उपयुक्त छन्द है[1]

१. उ० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४६ । [पूर्व-भाग] २ वही पृ० ४७ ।
१. "प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विशिष्यते ।"

"मन्दाक्रान्ता" शब्द का अर्थ ही है धीरे-धीरे आक्रमण करने वाला। इसमें लय और भाव की वृद्धि उत्तरोत्तर होती जाती है जिस कारण इस छन्द में प्रवास का वर्णन अत्यन्त उत्तम होता है। सभवत इसीलिये महाकवि कालिदास ने अपने पूरे ग्रन्थ मेघदूत में केवल इसी एक ही छन्द का प्रयोग किया है। प्रवास वर्णन में करुण रस की प्रधानता होती है। अत मन्दाक्रान्ता में यह रस अन्य छन्दो की अपेक्षा अधिक तीव्र उतरता है।

क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि जहाँ केवल वस्तु वर्णन और नीति कथन हो वहाँ अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग प्रशसनीय है। इसी प्रकार जहाँ किसी भयकर वस्तु या प्रचड रूप का वर्णन हो वहाँ स्रग्धरा आदि लम्बे छन्दो का प्रयोग करना चाहिये क्योकि ऐसा करने से भाव और छन्द दोनो का प्रभाव एक साथ ही श्रोताओ के ऊपर पडता है।

हिन्दी साहित्य में यद्यपि इस विषय में कुछ विशेष विवेचना नही उपलब्ध होती फिर भी सवैया छन्द मे सभोग तथा विप्रलम्भ शृगार का वर्णन विशेष समुचित माना जाता है। यदि किसी वस्तु का लबा वर्णन हुआ जिसमें गाढ बध का प्रयोग अभिलषित है तो घनाक्षरी या कवित्त मे रचना की जाती है। हिन्दी मे घनानन्द और रसखान के सवैये और देव के कवित्त प्रसिद्ध है।

लोक गीतो के लेखको ने भाव व्यजना का विचार कर के ही समुचित छन्दो का प्रयोग किया है ऐसी बात नही जान पडती। फिर भी जो गीत उपलब्ध है उनके अध्ययन से पता चलता है कि इनमें भावव्यजना और छन्द विधान का सामजस्य अवश्य है।

इन गीतो में जहाँ जीवन की आनन्दात्मक वृत्ति का वर्णन है, जहाँ उछाह, उत्साह एव सभोग का उल्लेख है वहाँ प्राय झूमर का प्रयोग किया गया है। झूमर की प्रत्येक पक्ति छोटी-छोटी होती है। इस छन्द की लय ऐसी सुन्दर और सरस होती है कि उसके पढ़ने से ही आनन्द की अनुभूति होने लगती है। किसी स्त्री की यह उक्ति सुनिये —[1]

"ना जानो मोर झुलनी मोरा कहाँ गिरा। टेक ॥
पनिया भरन जाऊँ राजा ना जानो,
यहाँ गिरा ना जानो वहाँ गिरा ना जानो। टेक ॥
रोटिया पोवन जाऊँ राजा ना जानो,
यहाँ गिरा ना जानो वहाँ गिरा ना जानो।" टेक ॥

झूमर छन्द का लय बडा द्रुत होता है। यह शीघ्रता से गाया जाता है। स्त्रियाँ इसे झूम झूमकर जल्दी-जल्दी गाती है। इस छोटे से छन्द में जिसकी गति भी शीघ्र है आनन्द, हर्ष एव उल्लास का वर्णन समुचित रूप से किया जा सकता है। अत सभोग शृगार का वर्णन ही इसमें उपयुक्त हो सकता है। इसीलिये इस विषय के वर्णन के लिये झूमर छन्द का अधिकतर प्रयोग हुआ है।

जीवन के गभीर पक्ष की अभिव्यक्ति के लिये, हृदय के मार्मिक भावो की अभिव्यजना के लिये लम्बे-लम्बे छन्दो की आवश्यकता होती है जिससे रस का स्रोत शीघ्र ही सूख न जाय। इसीलिये विप्रलम्भ शृगार का वर्णन प्रधानतया जतसार और निरगुन के गीतो में हुआ है। जात के गीत प्राय लोकगीतो में सबसे लम्बे होते हैं। अत करुण रस की जो सरिता इसमे प्रवाहित होती है उसका स्रोत अविच्छिन्न रूप से बहता रहता है। एक उदाहरण लीजिये —[2]

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २८४-८५। २. वही. पृ० २२६।

"ए राम जेहि वन सिकियो ना डोलेला
वघवो ना गुरजेला ए राम।
ए राम ताहि बने हरि मोर गइले,
त केहु ना सनेसिया नु ए राम।
ए राम मचिया बइठल तुहु ग्रामा
त ग्रवरु से ग्रामा मोरी ए राम।
ए राम वियतलि धियवा रे सगेए,
त वियते गवने ग्रइलो ए राम।"

जात का यह गीत झूमर गीत से बहुत बडा है। इसकी प्रत्येक पक्ति झूमर से तिगुनी नही तो दुगुनी ग्रवश्य है। इसकी लय मन्दाक्रान्ता की भाति विलम्वित है ग्रौर धीरे-धीरे ग्रागे बढती जाती है। इसीलिये विरह के वर्णन में 'जतसार' छन्द बडा ग्रनुकूल माना जाता है।

जहाँ हृदय की उदात्त भावनाग्रो का ग्रकित करना है, वीरता ग्रौर साहस के कार्यों का वर्णन ग्रपेक्षित है वहाँ 'ग्राल्हा' छन्द का प्रयोग किया जाता है। इस छन्द में टवर्ग की प्रधानता रहती है। जितने भी श्रुति कटु शब्द होते हैं उनका विशेष रूप से इसमें प्रयोग किया जाता है जिससे शब्दों से ही वीरता के भाव प्रकट हो। ग्राल्हा छन्द की लय इतनी द्रुत होती है, गाने का स्वर इतना उच्च ग्रौर ग्रोजपूर्ण होता है कि वीर रस उससे चुग्रा पडता है। ग्राल्हा छन्द में ही ऐसी विशेषता है जिससे इसमें वीरता का वर्णन अधिक प्रशस्त हो जाता है। जैसे —[1]

"ग्रकिले लाखनि की उपटिन में
कोई कुवर न ग्राडो पाव।
भगे सिपाही दिल्ली वाले,
ग्रपने डारि-डारि हथियार।
हिया की वातें हियनै छाडो,
ग्रब ग्रागे का सुनो हवाल।
घोडा प्यावन रुपना वारी,
नदिया वितवै पहुचो जाय।।"

इस गीत में उपटिन, ग्राडो, डारि, छाडो, घोडा ग्रादि शब्दों में टवर्ग का प्रचुर प्रयोग हुग्रा है। साथ ही छन्द की लय भी ऐसी है जिससे वीरता के भाव की व्यजना होती है।

वीररस के वर्णन में 'ग्राल्हा' छन्द इतना मँज गया है कि यदि किसी साधारण वस्तु का भी इस छन्द में वर्णन किया जाय तो उससे भी वीरता का ग्राभास मिलता है।

सस्कृत साहित्य में हास्य रस की सृष्टि के लिये प्राय दोधक छन्द का प्रयोग किया जाता है। इस छन्द का लय ही ऐसा है जिसे पढकर स्वत हसी ग्राये बिना नही रहती।

भोजपुरी में इसी प्रकार जहाँ हास्यरस का वर्णन ग्रभीष्ट होता है वहाँ 'गोडऊ' छन्द का प्रयोग किया जाता है। गोड एक जाति है जो सेवा वृत्ति पानी भरने, लकडी चीरने ग्रादि का काम करती है। ये लोग विवाहादि उत्सवों पर एक विशेष प्रकार के गीत गाते हैं जिन्हें 'गोडऊ गीत' कहा जाता है। इन गीतो में हास्य रस की मात्रा ग्रधिक रहती है। यह

---

१. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य पृ० १५६।

छन्द हास्य रस के वर्णन के लिये नितान्त उपयुक्त है। इसकी शब्दावली चलती हुई और लय अत्यन्त द्रुत होता है। हास्य रस में गभीर लय की अवतारणा नही होनी चाहिये क्योकि यह उसकी प्रकृति के विरुद्ध है। एक गीत उदाहरणार्थ दिया जाता है जिससे इन गीतो की हास्य रसात्मक प्रकृति का पता चलता है —[१]

"हलवल हलवल धुनिया धूने,
सूत काते हलुआई
फुफ्ती तरके झुलनी झूले,
बुटवलि के कामाई।
आरे बुटवलि के कामाई।
खुर खुर टाटी बोलें, हम जानी पियवा मोर,
पियवा का मेंसे मेंसे अइले, कॉंगना ले गइले चोर।
आरे कॉंगना ले गइले चोर।"

इस विवेचना से स्पष्ट पता चलता है कि भोजपुरी लोकगीतों में भाव व्यजना और छन्द विधान में गहरा सामजस्य है।

(६) लोक गीतों में तुक और लय

तुक के प्रयोग से कविता को स्मरण रखने में सहायता मिलती है और वह श्रोत्र सुखद भी होती है। इसीलिये प्राचीन हिन्दी कवियो ने तुकान्त कविता लिखी है। सस्कृत भाषा में तुकान्त कविता नही होती तथा अग्रेजी में बहुत सी कविताएँ ऐसी पायी जाती हैं जिनमें तुक का अभाव पाया जाता है। यद्यपि तुक काव्य का आवश्यक अग नही है फिर भी इसके होने से कविता में सौन्दर्य आ जाता है। तुकान्त कविता पढने में मधुर मालूम होती हैं।

भोजपुरी लोक गीत तुकान्त होता है। परन्तु इसमें तुक का पालन कठोरता के साथ नही किया गया है। कही तो पद के अन्त के स्वर समान मिलते हैं और कही व्यजन। कही प्रत्येक पक्ति में तुक मिलता है तो कही एक दो पक्ति को छोड कर गाया जाता है। जैसे—[२]

"फागुन मास बहे फगुनी बयारि
पेड के पता सभे झरि जाइ।

इस गीत में अन्तिम 'आइ' स्वर दोनो पक्तियो में समान है। नीचे के गीत में सभी पक्तियों में 'के' पाया जाता है।[३]

'कब होइहें दरसनवा हो मोरा सामसुन्दर के।
सपना में देखली भवनवा हो, अपना सामसुन्दर के।
लिखियो ना भेजेला सनेसवा हो अपना सामसुन्दर के।
ना जानि कवने करनवा हो, हमरा के तजि के।
आधी राति बोलेला पपिहरा हो जियरा में बेधि के।

विरहा आदि गीतो मे कही-कही पर दूसरी और चौथी पक्तिया में तुक पाया जाता है। यह विरहा सुनिये—[४]

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३४९-५०। २. वही. भाग २
३. वही. पृ० १६७। ४ भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३५०।

"पिराना के परिकल मुसरिया तुसरिया
दुधवा के परिकल बिलार ।
आपन आपन जोवना सम्हरिहैं बिटइया
रहरी में लागल बा हुँडार ।"

इस गीत में दूसरी पक्ति के बिलार और चौथी के हुँडार शब्द में तुक है । इसके साथ ही पहली और तीसरी पक्ति के अन्तिम अक्षरो में 'आ' स्वर समान पाया जाता है । गीतों में कही-कही पर तुक का सम्यक् विधान पाया जाता है तथा प्रत्येक पक्ति में तुक की योजना उचित रीति से की गई पायी जाती है । नीचे की यह बहुरा का गीत लीजिये जिसकी प्रत्येक पक्ति के रेखाकित शब्दो में तुक का विधान सुन्दर हुआ है ।[१]

"माय मीसे गइली रामा बाबा के सागरवा,
सखिया सब बोले ए वारि कुवारि ।।१।।
साभावा बइठल तुहु बाबा हो बढइता,
कतेक दिनवा रखब हो वारि कुवारि ।।२।।
तोहरो बिग्रहवा बेटी नान्हें हम कइली,
से तोर कन्त गइले हो जमोराई ।।३।।
जवना ही बटिया बाबा कन्त मोर गइले,
से तवन बटिया देहु ना हो बतलाई ।।४।।
जवना ही बटिया बेटी कन्त तोर गइले,
से तवन बटिया जनमे हो धमोराई ।।५।।
देहु ना बाबा हो ढाल तरुवरिया,
से हमहू कटइबो हो धमोराई ।।६।।
लेहुना बेटी हो डाल भरि सोनवा,
से आपन कन्हैया देहु ना बिसराई ।।७।।
आगि लगइबो बाबा डाल भरि सोनवा,
से आपन कन्हैया बिसरे जोग नाई" ।।८।।

लोक गीतों में प्राय. रे ना, होना, आहो रामा, हू रे जी, ए राम, हो राम, ए, हो, रे, आदि पद प्राय' प्रत्येक पक्ति के अन्त में पाया जाता है । ये टेक पद हैं जो तुक का काम करते हैं । इनकी आवृत्ति प्रत्येक पक्ति के बाद होनी आवश्यक है । कही-कही तो पूरी पक्ति की आवृत्ति की जाती है ।[२]

"काहे मन मारी खडी गोरी अगना । टेक
धरती के लहगा, बादरी के चोली,
जोन्ही के बटम, कसबि दूनो जोबना ।
काहे मन मारी खडी गोरी अगना ।"

कही-कही पर निरर्थक पदों की आवृत्ति पाई जाती है । जैसे—[३]

"पनवा छेवडि छेवडि भजिया बनौलो
लौंगन दिहलो धुअरवा हू रे जी ।

---

१. लेखक का निजी सग्रह । २. डा० उपाध्याय: भो० लो० गी० भाग १ पृ० ३१६।
३. वही. पृ० २४४।

सठिया कूटि कूटि भतवा रिन्हौलो,
उपरा मुगौग्रा केरि दलिया हू रे जी ।"

यहाँ पर 'हू रे जी' इन अक्षरो की प्रत्येक पक्ति के बाद आवृत्ति हुई है । इसी प्रकार बिरहा के गानो में 'ग्राहो रामा' की पुनरावृत्ति होती है । इन टेक पदो का उपयोग गीत में जोर लाना तथा उसे अधिक सुखद बनाना होता है ।

तुक की योजना बारहमासा और बिरहा में विशेषरूप से पायी जाती है । यह बारहमासा सुनिये जिसमें तुक की कुछ छटा देखने को मिलती है ।[1] जैसे—

"माघ मास रितु ग्राइल बसन्त,
कहति मदोदरि सुनु पिया कन्त ।
दे डालु जानकी राम अवध फिरि जाई ।
नाहीं त निसिचर बस नसाई ।
... .
जइसे फागुन उडत अबीर,
तइसे घेरेले राम लखन दुई बीर ।
... ...
खडबड़ भूमि निसाचर जूथ
अइले कपिदल सैन बरूथ ।"

इस बारहमासे में तुक की रचना बडी सुन्दर बन पडी है और यह अलकृत कविता की कोटि में पहुँचता दिखाई दे रहा है । एक दूसरा बारहमासा सुनिये जिसमें तुक की योजना बडे सुन्दर ढग से की गई है ।[2]

"प्रथम मास असाढ ए सखी बूद से झडि लागही ।
साम अइसन निठुर ए सखी, मास असाढ़ ना आवही ।
भादो रैन भयावनि ए सखि, दूसरे अधरिया राति हो ।
सेज छाडि हरि हमरा के गइले, इहे ह दुखवा के बाति हो ।"

कहीं-कहीं बिरहो में भी तुक पाया जाता है जो बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है ।[3] जैसे—

'बइठलि माजेले बटलोहिया गोरिया,
तूरेले गेडग्रवा पर तान ।
जेतिना के सइया तोर करले नोकरिया,
हम ओतिना के कचरीला पान ।
गगा जी हवी मर खौकी ए रामा,
काचे पकले मर खाई ।
गगा जी के हवी ना निरमल जलवा,
राति दिनवा बहि जाई ।

ये तुक नितान्त स्वाभाविक हैं । स्वत बिना प्रयास के आये हैं । इनको जुटाने के लिए किसी प्रकार के शब्दो की तोड फोड नही की गई है ।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० १६१-६२ । २. वही. पृ० १६८-६६ ।
३. वही. भाग १ पृ० ३५२-५३ ।

वास्तव में लय ही इन गीतो का मोहक गुण है। जब स्त्रियाँ सामूहिक रूप से किसी गीत को लय पूर्वक गाने लगती हैं तो वे लय के अनुसार ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर लेती हैं। जहाँ किसी पक्ति में अक्षर कम होते है वहाँ

लय

कुछ अक्षरो को जोड कर पूरा कर लेती है। उनके मधुर कठो से गीतो का लय पूर्ण उच्चारण उस गति में रस का सचार कर देता है। 'लोक गीतों के गाने के प्रकार' वाले अध्याय में इस प्रसग का विशेष वर्णन किया जा चुका है। शुष्क से शुष्क गीतों में भी लय के द्वारा स्त्रियां सरसता का सचार कर देती है। यह गीत लीजिये—[1]

जुगुति बताये जाव,
कवना विधि रहबा राम। टेक।
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं
अपनी सुरतिया मोरे बहिया पर लिखाये जाव।
जुगुति बताये जाव॥

इस गीत में लय की मोहकता और भाव की रसात्मकता पाषाण हृदय को भी अपनी करुणध्वनि से पिघला देती है।

भिन्न-भिन्न गीतों की लय भिन्न भिन्न हुआ करती है। लोक गीता को सुनने में अभ्यस्त मनुष्य केवल लय को सुन कर चाहे गीत को वह स्पष्ट न भी सुन पाये ही यह बतला सकता है कि अमुक गीत गाया जा रहा है। कुछ गीत तार स्वर में गाये जाते है और कुछ मन्द स्वर में। बिरहा और आल्हा ऐसे गीत हैं जो सदा उच्च स्वर मे गाये जाते है। आल्हा के अतिरिक्त अन्य लोक कथाओ विजयमल, लोरकी, सोरठी, कहरवा, नयकवा बनजारा के लिए भी तार स्वर आवश्यक है। हाँ, स्त्रिया के जितने गीत हैं सोहर, जनेऊ, विवाह, गवना, जतसार, रोपनी और सोहनी आदि वे प्राय सभी विलम्बित लय में गाये जाते है। परन्तु इनमें झूमर का गीत अपवाद है। यह तार स्वर में द्रुत लय में गाया जाता है।

चैता के गाने में दो लय का प्रयोग होता है एक विलम्बित और दूसरा द्रुत। झलकुटिया चैता द्रुत लय के साथ गाया जाता है परन्तु दूसरे चैतो में विलम्बित लय का व्यवहार होता है। चैता की विलम्बित लय बहुत मधुर होती है।

ज लोक गीतों में प्रेम-पद्धति

लोक गीतो में स्त्री और पुरुष का बडा सुन्दर वर्णन पाया जाता है। साहित्य में कवियो ने प्रधानतया दो प्रकार के प्रेम का वर्णन किया है—१ स्वकीय प्रेम २ परकीय प्रेम। स्वकीय प्रेम उसे कहते हैं जो अपनी स्त्री से किया जाता है और परकीय प्रेम इसके ठीक विपरीत होता है। आदि काव्य रामायण में जो प्रेम दिखलाया गया है वह प्रथम प्रकार का प्रेम है। इसका विकास विवाह सबध हो जाने के पीछे और इसका पूण उत्कर्ष जीवन की विकट परिस्थितियो में दिखाई पडता है। राम के वन जाने के साथ ही सीता के प्रेम का स्फुरण होता है और सीता-हरण होने पर राम के प्रेम की कान्ति सहसा फूटती हुई दिखाई पडती है। उभय पक्ष में सम होने पर भी नायक पक्ष में यह प्रेम कर्तव्य बुद्धि द्वारा कुछ सयत सा दिखाई पडता है।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३६।

दूसरे प्रकार का प्रेम विवाह के पूर्व उत्पन्न होता है । यह पूर्व राग से बढ कर विवाह मे नियमित हो जाता है । इसमे नायक नायिका ससार क्षेत्र में घूमते-फिरते हुए कही जैसे उपवन, नदी तट,तीर्थ आदि में एक दूसरे को देख कर मोहित हो जाते है और दोनो में प्रीति उत्पन्न हो जाती है । इसमें अधिकतर नायक की ओर से नायिका की प्राप्ति का प्रयत्न होता है । जहाँ पहिले प्रकार में प्रेम की उत्पत्ति विवाह के पश्चात् होती है वहाँ दूसरे में प्रेम का प्रादुर्भाव विवाह के पूर्व होता है । हिन्दी कवियो ने इन दोनो प्रकार के प्रेम का बडा ही सुन्दर वर्णन किया है ।

भोजपुरी लोक गीता में बहुधा पति पत्नी के प्रेम का परिस्फुरण विवाह के उपरान्त ही दिखलाई पडता है । जिस प्रकार राम और सीता का प्रेम विकट परिस्थितियो में दिव्यता को प्राप्त होता है, उसी प्रकार इन लोक गीतो में जीवन के कठिन अवसरो में प्रेम की अलौकिकता की परीक्षा हुई है । कही-कही पर विवाह के पूर्व भी पनघट पर अथवा तालाब के किनारे युवक युवतिया में प्रथम दर्शन में प्रेम का प्ररोह अकुरित होते हुए दिखलाया गया है । परन्तु लज्जा एव सकोच की गर्म जलधारा से वह शीघ्र ही नष्ट हो गया है । कोई प्रेमी योगी का वेश बना कर किसी स्त्री के प्रथम दर्शन से उसके प्रेम जाल में फस जाता है और उस स्त्री के पिता से विवाह का प्रस्ताव करता है । परन्तु ऐसा वैवाहिक प्रस्ताव लोक विरुद्ध होने के कारण अस्वीकृत हो जाता है—

"पुरुब से अइले रे जोगी, पछिम वहले जाले ।
कवन बाबा चौपरिया रे जोगी, बइसे आसन मारी ।
हम त बिआहल अइली ए बाबा, तोहार बिटिया कुआरी ।"

इसी प्रकार से घोडे पर चढ कर जाता हुआ कोई बटोही पनघट पर पानी भरनेवाली ग्राम बालाओ के अलौकिक सौन्दर्य पर प्रथम दर्शन मे ही मुग्ध हो जाता है और प्रेम प्रस्ताव की अवतारणा करता है परन्तु स्त्रियो का लोक-लाज इस प्रेम की कलिका पर तुषारपात कर देता है । इस प्रकार के प्रसग लोक-गीता में बहुत कम पाये जाते हैं ।

लोक गीता में प्रेम की पूर्ण अभिव्यक्ति विवाह के उपरान्त ही हुई है । पति और पत्नी की प्रेम लता विवाह के पश्चात् ही पनपती हुई पायी जाती है । घनघोर परिस्थितिया मे, अनेक आपत्तियो के आने पर भी पति और पत्नी के प्रेम में तनिक भी अन्तर नही आता । [illegible] त्' की उक्ति इस प्रकार के लोक [illegible] । लोक कथाओ में अनेक स्थानो [illegible] पाने पर धनाभाव के कारण पति पत्नी अपना घर छोड कर दोनो साथ दूसरे देश को चल पडते है और भिक्षा वृत्ति से पेट की पूर्ति करते हैं । पति को निर्धन अवस्था में छोड कर पत्नी अपने धनी मायके को जाना पसन्द नही करती ।[2]

लोक साहित्य मे वर्णित प्रेम पद्धति में सबसे अधिक खटकनेवाली बात यह है कि यह उभय पक्ष में समान नही है । पत्नी में पति के प्रति जो अलौकिक प्रेम, लोकोत्तर त्याग और अपूर्व सहनशीलता दिखाई पडती है उनका पति में नितान्त अभाव है । पति परदेस चला जाता है । वह रुपया, पैसा, भेजना तो दूर रहा पत्र तक नही भेजता । उसकी स्त्री गरीबी में रो रोकर अपना दिन बिताती है । पत्र भेजती है, आदमी के द्वारा सदेशा भेजती

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १२० । २. लेखक का निजी सग्रह ।

है परन्तु 'बगालिन बिटिया' के प्रेम में फसा हुआ पति उसके पत्र का उत्तर तक नही देता। यदि पत्र देता भी है तो उसे दूसरा पति करने का आदेश देता है। स्त्री के पत्र को पढ कर पति का यह सन्देश सुनिये—[१]

"आधा ही चिठि वचलनि मानावा मुसुकाई निरवामोहिया।
बाट बटोहिया रे सारावा मोर आरे लगवे तें सारावा।
हमारो सनेस लिहले जइहे, धनी से कहिहे समुझाई।
आरे दोसरो खसम कइरें घालू धनिया। निरवामोहिया।"

इस पर स्त्री जो उत्तर देती है वह पत्नी के प्रगाढ प्रेम एव अखड सतीत्व का द्योतक है—

"दोसरो खसम करे माई रे बहिनिया निरवामोहिया।
तोहरा अइसन राखो देवढीदार निरवामोहिया।"

इसी प्रकार पति के प्रति स्त्री का प्रेम हमें ध्रुवतारा की भाति अटल दिखलाई पडता है। चादी और सोने के टुकडो से स्त्री के इस स्वाभाविक एव अकृत्रिम स्नेह को खरीदा नही जा सकता। परपुरुष का रूप सौन्दर्य उसे मुग्ध नही कर सकता। अनेक गीतो में ऐसा वर्णन पाया जाता है जहाँ लम्पट पुरुषों ने धन का लालच दिखला कर किसी सती के सतीत्व का सौदा करना चाहा है परन्तु इस प्रस्ताव का जो उन्हें उत्तर मिला है वह स्वर्णाक्षरो में अकित करने योग्य है।

कोई लम्पट पुरुष किसी स्त्री से कहता है कि मैं तुम्हें गले में पहनने के लिये सोने की माला दूंगा और मोतियो से तुम्हारी माग भरूँगा, तुम अपने परदेशी पति की आस छोडकर मेरे साथ चली आवो -

"गलवा में देवो गलहार, मोतियन माग भरी।
छोडु परदेसिया के आस, हमारे सग साथ चली।"

इस पर अपने पति के रूप पर गर्व करनेवाली वह सती स्त्री कहती है—

"अगिया लगें गलहार बजर परें मोती लडी।
तोहरो ले पिया मोर सुन्दर गुलाव के फूल छडी।"

अर्थात् तुम्हारे हार में आग लग जाय और तुम्हारी मोती की माला नष्ट हो जाय। मेरा पति तो गुलाब के पुष्प के समान है और तुमसे कही अधिक सुन्दर है।

इस अरूपहार्य प्रेम से पुरुष के रूपलोभी प्रेम की जब हम तुलना करते है तब वह बहुत ही निम्न कोटि का दिखाई पडता है। स्त्री और पुरुष के विरह वर्णन की तुलना करने पर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि प्रेम की मात्रा उभय पक्ष में समान नही है। स्त्रियों में पुरुषो की अपेक्षा प्रेम की मात्रा अधिक है। प० रामचन्द्र जी शुक्ल ने लिखा है कि "कवियो को स्त्री की काचन यष्टि, उतुग कुच, कोमल कपोल एव तीखे नैनों के वर्णन में जो मजा आता है वह पुरुषों के अग वर्णन में नही। इसीलिए उन्होने स्त्रियो का वियोग वर्णन बढा-चढ़ा कर किया है।"[२]

हिन्दी के रीतिकालीन कवियो के विषय में यह कथन भले ही सत्य हो परन्तु लोक गीतो में विरह का जो वर्णन मिलता है उसमें अतिरजना की मात्रा नही प्रतीत होती।

---

१ डा० उपाध्याय: भो० लो० गी० भाग १ पृ० २२७। २. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका।

किसी स्त्री का पति परदेश गया है। वह उसके वियोग में अपने दिनों को कष्ट से बिता रही है। निर्धनता के कारण जब दुःख असाह्य हो जाता है तब वह मायके चली जाती है और अपनी माता, भाई और भावज से बारी-बारी से प्रार्थना करती है कि मैं विपत्ति में पड़ी हुई हूँ अतः मेरी रक्षा करो—'

"ए राम जेहि बने सिकियो ना डोलेला
बबवो ना गुजरेला ए राम।
ए राम ताहि बने हरी मोरे गइलें
ते केहुना सनेसिया हो राम।
ए राम मचिया बइठलि तुहु आमा,
त अवरु से आमा मोरी ए राम।
ए राम विपतलि धियवा रे सगेरु,
त विपते गवने अइलों ए राम।"

इस गीत में विरह विधुरा स्त्री के वियोग की बड़ी मार्मिक व्यंजना हुई है। गीत के प्रत्येक पद से प्रेम टपक रहा है।

भोजपुरी लोक गीतों में जहाँ पति वियोग में स्त्रियों की आँखों की अश्रु धारा सूखती नहीं है वहाँ परदेश में बैठा हुआ 'निरमोही' पति गुलछर्रे उड़ाता हुआ दिखाई पड़ता है। इन गीतों के परदेसी पति पर स्त्री के सौन्दर्यपाश में फँसकर अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाते हैं और अपनी सहधर्मिणी का परित्याग कर दूसरा विवाह भी कर लेते हैं। यही कारण है कि जहाँ पति के प्रति प्रगाढ भक्ति एवं प्रेम होने के कारण पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री सती हो जाती है वहाँ स्त्री की मृत्यु के पश्चात् पुरुष की आँखों से आँसू की एक बूंद भी नहीं गिरती। ऐसे गीत बहुत ही अल्प हैं जहाँ पत्नी के प्रेमवियोग में पुरुष हृदय छटपटाता दिखाया गया हो।

झ. लोक गीत में प्रकृति-वर्णन

इसका उदाहरण है। लोकगीतो में भी प्रकृति वर्णन में यही दूसरी पद्धति अपनायी गई है। विरहिणी नायिका को पुरवैया हवा भी विरह की आग जगाने वाली मालूम हो रही है।

"धाव बहेला पुरवैया ए सजनी,
करसिनी जागेला आगि ए।"

इन गीतो में कोकिल को वैरिन कहा गया है क्योंकि उसका कूकना कष्टदायक है। प्रकृति के सारे आनन्ददायक पदार्थ दुखदायी मालूम होते है।

लोक का शरीर और मन गाँवो मे बसता है। हरे-हरे खेतो में वे काम करते हैं। आम के पेडो के नीचे बैठ कर वे उसकी रखवाली करते हैं, महुआ के पेड से 'कोइता' इकट्ठा कर अँधेरे घर में प्रकाश का प्रबन्ध करते है। घर के आँगन में बोई गई 'जमिरिया की गछिया' उन्हें आनन्द देती है और चन्दन का पेड सुगन्ध को बिखेरता रहता है। कही रात [illegible] कही 'रावना' [illegible] हैं। तुलसी [illegible] पौधा अवश्य रहेगा।

इन वनस्पतियों के अतिरिक्त पक्षी भी अपने कलरव शब्द से ग्रामीणो का कुछ कम मनोरंजन नही करते। मोर सावन मे बादलो को देख कर नाच उठता है, तो पपीहा पी, [illegible] पर वे छज्जे पर बैठ कर [illegible]। अत लोक गीतो में [illegible] तिक दृश्य का सांगोपांग वर्णन नही मिलता बल्कि साधारण उल्लेखमात्र उपलब्ध होता है। भिन्न-भिन्न प्रसगो में विभिन्न पुष्पो, फलो एव पक्षियो का नाम आया है। परन्तु इनका कही भी विस्तृत वर्णन नही पाया जाता।

इस प्रकृति प्रेम में एक बात और ध्यान देने योग्य है। मनुष्य जिस वातावरण में रहता है वह उसी से प्रेम करता है। भोजपुरी प्रदेश में खास कर बलिया, गाजीपुर, और छपरा जिले में जहाँ से ये गीत सग्रहीत हैं पर्वत का अभाव है, अत इन गीतो मे पर्वतीय वर्णन की कमी पाई जाती है, यहाँ न तो वर्फ से लदी हुई चोटियाँ ही दीख पडती है और न गिरिगह्वर से कोई नदी ही निकलती है। अत प्रकृति की दो महान् विभूतियो, पर्वत और नदी के वर्णन से ये गीत वचित हैं। फिर भी वृक्ष, पक्षी और वायु का वर्णन आदि जनता के प्रकृति प्रेम का पर्याप्त प्रमाण है।

देहातो में आम और महुआ के पेड प्रचुर परिमाण मे होते है। गाँवो में बडे बगीचे को 'लखराव' कहते है जो लक्षाराम लक्ष लाख, आराम बगीचा या वाटिका का अपभ्रश है। इन वृक्षों की घनी छाया में लोग बैठ कर दुपहरी बिताते हैं।

वृक्ष

ऐसे ही आम और महुआ के वृक्षो की घनी छाया के नीचे एक स्त्री उदासीन होकर खडी है और कुछ सोच रही है।[1]

---

१ त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ६६। [ग्राम गीतों का परिचय]

"प्रमवा महुइया घन पेड तेही रे बीचे राह परी।
रामा तेहि बिच ठाढी एक तिरिया, मने मा वैरागभरी।"

एक दूसरे गीत में आम और महुआ की शीतल और सुन्दर छाया में पलग बिछाकर सोने वाले 'बाबा' का वर्णन है जो ठडी-ठडी हवा लगने के कारण वहाँ 'निरभेद' निश्चिन्त सोया हुआ है —[1]

"आमावा महुइया शीतल जुड छहिया रे,
वहि गइल सीतल बातास रे।
ताही तर बाबा पलग डसावेले,
बाबा सोवेले निरभेद रे।"

देहात मे इन दोनो वृक्षो की बडी अधिकता होती है। नदी के किनारे भी आम और महुआ के ही पेड दृष्टिगोचर होते हैं —[2]

"नदिया के तीरे दुई पेड बाटे,
एक महुआ एक आम रे।"

कोई विरहिणी स्त्री आम में मौल मोजर आने और महुआ के फल के टपकने के समय चैत को अपने प्रियतम के लौटने की अवधि मानती है और उस समय तक उसके न लौटने पर अपने दुःख को प्रकट करती है—[3]

"आमवा मोजरि गइले, महुवा टपकेला निरवामोहिया।
निपटे भइले निरवामोहिया, रे लोभिया निरवामोहिया।"

इसी भाव का वर्णन एक दूसरे गीत में इस प्रकार किया गया है —[4]

अमवा मौजरि गइले, महुआ टपकले।
कत दिन बटिया जोहइबे रे लोभिया।

वसन्त ऋतु में आम में मौल लगती है और चैत बैसाख में महुआ टपकता है। वसन्त ऋतु में पति का न आना सचमुच दुःखदायी होता है। यहाँ आम मे मौल आना और महुआ का टपकना उद्दीपन रूप में वर्णित है।

पीपल का पेड बडा पवित्र माना जाता है इसका पत्ता बडा हलका होता है और तनिक सी भी हवा लगने से हिलने लगता है। तुलसीदासजी ने मन के डोलने की उपमा पीपल के पत्ते से दी है—

"पीपर पात सरिस मन डोला।"[5]

एक गीत में कोई दुलहा गवना कराने जा रहा है। मार्ग में नदी मिलती है जिसमें सेवार (शैवाल) की अधिकता है। इस नदी के किनारे पीपल का वृक्ष है जिसका पत्ता हवा से हिल रहा है।[6]

"पीपर पात पुलुइयनि डोले,
नदियन बहेला सेवार ए।"

स्त्रियाँ पीपल के वृक्ष पर उसकी पवित्रता के कारण जल चढाती है और सूर्य की पूजा करती है। यहाँ घर के पीछे पाकड के पेड के नीचे खडी हुई कोई स्त्री सूर्य की प्रार्थना कर रही है —[1]

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १३७। २. वही. पृ० १३३। ३. वही. पृ० १२६। ४ लोकगीत पृ० १५८। ५ भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १५०। ६. डा० उपाध्याय. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १०६।

"मोरा पिछुअरवा वा छावरी पीपरि, अरु वा छावरी पीपरि।
ताहि तर ठाढ भइली कवनी देई, अदीत मनावेलि हो।"

किसी नदी के किनारे सुन्दर फुलवारी लगी हुई है। वहाँ कृष्णजी अपनी गायों को चरा रहे हैं। उस बगीचे में जामुन, केला और अमरूद के पेड लगे हुए है। कोई स्त्री कृष्णजी से कहती है कि तुम अपनी गायों को हटा लो नही तो ये सब पेडो को खा जायेंगी।[1] शिरीष का पुष्प अपनी कोमलता के लिए प्रसिद्ध है। संस्कृत के कवियो ने प्रकृति वर्णन में इसको प्रधानता दी है और नायिका के अगो की उपमा इसी फूल से दी है। इस पुष्प की सुगन्ध बडी मनोमोहक होती है। एक गीत में इसी शिरीष वृक्ष के हवा से हिलने का उल्लेख पाया जाता है। इस वृक्ष के हिलने से नायिका को नीद नही आती।[2]

"मोरा पिछुअरवा रे सीरिसिया
हहरे झहर क ए राम।
सीरिस पात हहरे झहरे,
त नीनियो ना आवेला ए राम।"

लोकगीतो की दुनियाँ में लवग का बगीचा भी घर के पास लगाया हुआ पाया जाता है। इसका फूल आधी रात को फूलता है। वह इतना मनमोहक और सुन्दर है कि विवाह करने के लिए आया हुआ दूल्हा पालकी से वही उतर कर उसे तोडने लगता है। वर्णन कितना सुन्दर है।[3]

"मोरे पिछुवरवा लवगिया की बगिया,
लवगा फूले आधि राति रे।
तेहि तर उतरे दुलहा दुलरुवा,
तरही लवगिया के फूल रे।"

एक दूसरे गीत में लवग के फूल का रात भर चू चू कर गिरने का उल्लेख किया गया है। पुत्री अपने पिता से कहती है पिताजी ? इस लवग के वृक्ष को कटवा दीजिये। मैं इसका पलग बनाऊँगी और अपने स्वामी को लेकर सोऊँगी।

"मोरा पिछुअरवा लवगवा के गछिया,
लवग चुवेले सारी रात ए।
आरे लवग कटाई ए बाबा पलग सलाई,
हम सामि सोइतो निरभेद ए।"

कोई स्त्री चन्दन की लकडी के पलग बनवा कर उस सुगन्धित पलग पर अपने पति के साथ सोने की योजना बना रही है[4]—

"कटबो चननवां के गाछ पलगिया बिनाइब हो।
ताहितर पिया के सोवाइब, बेनिया डोलाइब हो।"

हाथी दाँत के पलग का वर्णन तो राजाओ के यहाँ सुना जाता है परन्तु लवग और चन्दन के वृक्ष के पलग की कल्पना तो लोक गीतो में ही सभव है।[5]

आजकल का समाज प्रकृति से कोसो दूर हटता चला जा रहा है। वह अपने बैठने

---

१. डा० उपाध्याय० भो० ग्रा० गी० पृ० १६३। २ वही. पृ० २०४। ३. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ६६। ४ त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० २६१। ५ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गीत भाग १ पृ० १३४।

और सोने की उपकरणों में भी धातु लोहा, चाँदी, सोना का प्रयोग करता है । परन्तु ग्रामीण समाज प्रकृति के प्रेम में लिपटा पड़ा है ।

पुष्प पुरैन का पत्ता तालाब में सदा ऊपर ही तैरता रहता है । उसमें जरा सी भी हवा लगती है कि वह कांपने लगता है । इसका उल्लेख नीचे के गीत में हुआ है ।[1]

"जइसन दहे में के पुरइनि,
दहे बिचे कांपेले हो ।"

एक दूसरे प्रसग मे पुरैन के पत्ते का सावन और भादो की वर्षा से भरे हुए तालाब (दह) में हिलोरे मारने का वर्णन है । हवा के चलने से जब बड़े तालाब में लहरे उठने लगती है तो पुरैन भी हिलने लगता है ।[2]

"सावन भदउवा के दह पोखरि,
पुरइनि हालरि लेइ ए ।"

कमल प्रकृति सुन्दरी का परम शृंगार है । प्रकृति नटी की पूजा इस पुष्प के बिना कभी पूर्ण हो नही सकती । लोक गीतों में भी कही-कही इसका उल्लेख पाया जाता है । तालाब में हस एवं हसिनी भले ही किलोल करे परन्तु यदि तालाब में कमल नही खिला है तो उसकी शोभा बिल्कुल नही होती ।[3]

आधे तलवा मा हस चुनै आधे मे हंसिनी ।
तबहूँ ना तलवा सोहावन एक रे कवल बिन ।।

कमल से ही तालाब की शोभा होती है इसका समर्थन सस्कृत के भी किसी कवि ने किया है—

"पयसा कमल कमलेन पय , पयसा कमलेन विभाति सर ।"

बेला के फूल का उल्लेख लोक गीतों में अनेक बार हुआ है । सर्वत्र सुलभ होने के कारण लोगो का यह बड़ा ही प्रिय पुष्प है । कोई विरहिणी स्त्री कहती है कि मेरे पति ने बेला का फूल आँगन में लगाया था, उसे दूध से प्रेमपूर्वक सीचा था परन्तु आज प्रियतम के चले जाने के कारण यह सूख रहा है[4]—

"बेइलि एक हरि लायनि दुधवा सिचायनि ।
आप हरि भये बनजारा बेइलि कुम्हिलानि ।"

बेला के पौधे को दूध से सीचने की कल्पना बिल्कुल नयी है ।

[illegible]

गीतों में इसकी अधिक चर्चा है । एक भोजपुरी विवाह गीत में कन्या की तुलना बेला के फूल से की गई है और आधी रात में उसके खिलने का उल्लेख किया गया है—[5]

"बनवा में फूलेली बेइलिया अतिहि रूप आगरि ।

[illegible]

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ७१ । २. वही, पृ० १५४ । ३. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ६६ । ४. वही, पृ० ६६ । ५. देवेन्द्र सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात पृ० २२ ।

जनि छुव ए मालिन, जनि छुव, अबही कुवारि ।
आधी राति फुलिहे बेइलिया, त होइबो तोहारि ।

बेला स्त्रियों को इतना प्रिय है कि गाय के द्वारा उसके नष्ट किये जाने की शिकायत वे कृष्णजी से करती हैं । कृष्ण की नटखट गाय जहां और फूलों को चर जाती है वहाँ बेला का भी लिहाज नहीं करती[1]

"साझि के छुटले कन्हइया के गइया
चरी गइली घनी फुलवारी ए ।
एइली चरि गइली बेइली चरि गइलि,
चरी गइली चम्पा के डाढ ए ।"

कहीं-कहीं बेला के साथ चमेली, कचनार, गेंदा और गुलाब की चर्चा भी पाई जाती है। नीचे के चैता में अनेक फूलों की मादकभरी गन्ध सहृदय को आनन्दमग्न कर देती है ।[2]

"कौन मास फूलेला गुलववा हो रामा,
कि कौना रे मासे ।
बेला फूले चमेली फूले . .
अबरु फूलेला कचनरवा हो रामा ।
गेंदवा जो फूले माघ रे फगुनवा
चैत मासे फूले गुलववा हो रामा ।"

शीतला माता को अड़हुल[3] का फूल अधिक प्रिय होता है । यह उनकी पूजा में चढ़ाया जाता है । चम्पा के फूल से उनके रथ की सजावट होती है परन्तु बेला की सुगन्ध उन्हें मुग्ध कर देती है—[4]

"कौन फूल फूलेला लाहारलि
कवन फूल रथ साजे हो ।।
ए मइया कवना फुलवा रहेलु लोभाई
सेवक राउर बाट जोहे हो ।
अड़हुल फूलेला लाहारलि
चम्पा फूल रथ साजे हो
ए सेवका बेला फूल रहीले लोभाई
सेवकवा मोर रथ लाजे हो ।"

कुसुम्भी पुष्प की चर्चा भी कहीं-कहीं पाई जाती है । देहात में 'बरे' नामक एक पौधा होता है जिसके फूल से रंग और फल से तेल निकाला जाता है । हमारी समझ में गीतों में वर्णित कुसुम्भी पुष्प यही 'बरे' का फूल है । कोई स्त्री कहती है कि मेरा पति योगी हो गया है । अत कोई 'कुसुमिया' न बोये क्योंकि मैं अब अपनी साड़ी कुसुम्भी रंग नहीं रंगाऊँगी क्योंकि यह शृंगार का चिह्न है ।[5]

---

१. देवेन्द्र सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात पृ० २५ । २. वही, पृ० २७ । ३. वही, पृ० २७-२८ । ४. विभिन्न प्रान्तों के लोक गीतों में बेला पुष्प के विशेष वर्णन के लिये देखिये सत्यार्थी· बेला फूले आधी रात पृ० १७-३६ । ५. डा॰ उपाध्याय : भो॰ ग्रा॰ गी॰ भाग १ पृ० ६४ ।

"जनिकेहु बोग्रहु कुसुमिया,
जनिकेहु बोग्रहु कपास ।"

करैला के फूलों का उल्लेख भी दो स्थानों में किया गया है ।[1] सावन के महीने में हाथों में लगाई जानेवाली मेंहदी का भी उल्लेख हुआ है ।[2] तुलसी का पौधा तो भारतीय घरों में सर्वत्र पाया जाता है । इसकी पूजा भी की जाती है और इसका पत्ता दवा के भी काम में आता है । दवना और महुआ का फूल भी अपनी विशेषता रखता है । इसका उल्लेख शीतला माता के वर्णन में अनेक बार हुआ है ।

पक्षी

पक्षी चिरकाल से प्रकृति के सहचर रहे हैं । गाँवों मे जहाँ कौआ घर के मुँड़ेरे पर बैठ प्रिय के आगमन की सूचना देता है वहाँ आम के पेड़ पर बैठी कोयल 'कूहू-कूहू' की आवाज सुना कर स्त्रियों की विरहाग्नि को और अधिक बढाती है । कहीं सावन में मोर के नाच को देख कर मन नाचने लगता है तो कहीं पपीहा की आवाज को सुन कर प्रिय की स्मृति जाग उठती है ।

इस गीत मे वन मे कोयल के कुहुकने का उल्लेख किया गया है[3]—

"जइसन वन मे के कोइलरि,
बनें बनें कुहुकेले हो ।"

कोयल और आम्रवृक्ष का अभिन्न संबंध है । परन्तु लोक गीतों में कोयल का घनी 'बँसवारि' पर चढ कर बोलने का उल्लेख मिलता है । कोयल का मधुर शब्द भी विरहिणी स्त्री के कष्ट को बढानेवाला है । इसीलिये उसकी बोली को "बिरहिया" कहा गया है ।[4]

"मोरा पिछुवारावा रे घनी बँसवरिया ।
ताहि चढि कोइल री बोले रे बिरहिया ।
राम की ताहि रे चढी ना ।
कोइलरी सबद सुनि सँवरिया उठि बइठलि ।
राम बढनिया लेके ना ।"

कोई स्त्री वन की कोयल बन कर अपने पति को परदेस जाते समय उसे मधुर शब्द सुनाने की कामना करती है ।[5]

कोयल के बाद चकवी का स्थान है । यह तो प्रसिद्ध ही है कि किसी ऋषि के शाप से चकवा और चकवी रात को एक साथ नहीं रहते और चकवी अपने पति के बिछोह में रोया करती है । उसका करुण क्रन्दन इतना मार्मिक है कि उसके रोने से रास्ते में दूब जम जाती है ।[6]

"ए राम तालवा में रोवेले चकइया
त बटिया में दूबि जामे ए राम ।"

चकवा और चकवी विरही दम्पति के प्रतीक हैं । वे एक दूसरे के वियोग में दुःखी रहते हैं ।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० पृ० ५१, ७६ । २. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ६६ । ३. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ८१ । ४. वही. पृ० ६० । ५. वही. पृ० २२२ । ६. वही. पृ० २२१ ।

"दाहावा रोवे चाका चकइया,
विछोहवा कइले निरवामोहिया ।"

कौआ स्त्रियों का प्राचीनकाल से प्रिय पक्षी रहा है। ऐसा विश्वास है कि इसका बोलना शुभ शकुन है और किसी प्रिय के भावी आगमन की सूचना देता है। इसीलिये प्राचीनकाल में स्त्रियां इसका आदर करती थीं[1] और आज भी कटोरे में दूध भात खिला कर इसके प्रति प्रेम प्रकट करती हैं। प्रिय के देश में जाकर बोली सुनाने के लिए कौआ को पुरस्कार देने की नीचे लिखी बात कितनी रमणीय है।[2]

"कागा हो तोके दूध भात देबों,
सोनवा मढइबो दूनो ठोर रे।
जाइ के बोलहु कागा पिया जी के देसवा,
बोल विरहिया के बोल जी।"

कुछ गीतों में पपीहे का भी उल्लेख पाया जाता है। कालिदास ने अचेतन मेघ से प्रिय के पास सन्देश भेजने का काम लिया था परन्तु यहाँ सचेतन पपीहा इस काम के लिए प्रयुक्त किया गया है। कोई स्त्री हल्दी के समान पीले पपीहे से कहती है कि तुम प्रियतम के देश में जाकर मेरा सदेशा सुनाओ[3]—

"हरदी सरीखे पपीहरा तू चिरई, बोलना
अरे हाँ रे चिरई बोलना।
लालनजी के देसवा जहाँ पिया, बसेले हमार।"

कहीं पर इसी पपीहे की 'पी कहाँ' 'पी कहाँ' की बोली एवं मोर की कूक सुनकर हृदय धड़कता है और छाती फटी जाती है[4]—

"मोरवा के बोलिया सुनत छतिया धड़केसे
पपिहा त करेला पुकार परदेसिया।"

इन पक्षियों के अतिरिक्त मोर, हस, सारस आदि का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख मिलता है। विभिन्न लोकगीतों में मयूर का वर्णन किस प्रकार किया गया है इसकी बड़ी सुन्दर विवेचना देवेन्द्र सत्यार्थी ने की है।[5]

लोक गीतों में पुरवैया हवा का वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है। सभवत इसका कारण यही है कि पुरवा हवा ठंडी होती है और अंगों को सुख देती है। यद्यपि सस्कृत के किसी

हवा

कवि ने 'पुरवैया' की बड़ी निन्दा की है[6] परन्तु लोक गीतों में तो इसे सुखदायी ही माना है। हां! विरहाग्नि को जगाने के कारण इसे 'वैरिन' कह कर सम्बोधन अवश्य किया गया है। कोई स्त्री कहती है कि 'पुरवैया' हवा के लगने से मुझे आलस्य मालूम होने लगा और नींद आ गई[7]—

"बाव बहेले पुरवैया अलसि निनिया अइली हो।"

---

१ आयान् सूचितो येन, येनानीतश्च मे पति। प्रथम सखि! क पूज्य काक किम्वा कमेलक॥
२ भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३३४। ३ दुर्गाशकर भो० लो० गी० पृ० ९२। ४ वही पृ० १८५। ५ बेला फूले आधी रात पृ० ३१२ ३३४। ६ अगानि मोटयति वारि कोथये शुष्काण्यपि मथयति अगमडलानि। यद्देशाज भवन न करोति बाधा तद्देशज। किमु नरा गुरुता भवन्ति। ७ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २२२।

पुरवैया हवा का उद्दीपन रूप में यह वर्णन बहुत सुन्दर है। कोई स्त्री कहती है कि ए सखी! पुरवा हवा बह रही है। इससे प्रियतम के वियोग में मेरा हृदय वैसे ही जल रहा है। जैसे सूखा गोबर का उपला।[1]

"बाव बहेला पुरवइया ए सजनी,
करसिनि सुनुगेला आगि ए।"

पुरवा हवा तो धीरे-धीरे बहती है परन्तु उत्तर से आने वाली हवा (उतरही) जोरों से झोंका मारती है[2]—

"बाव बहेला पुरवैया, उतरही झकझोरेले हो।"

सावन और भादो के महीने में जब वर्षा की झडी लगी रहती है तो प्रकृति बडी सुहावनी लगती है। पेड हरे, पौधे हरे और खेतों में हरी घास। इस प्रकार सभी चीजें बडी आनन्ददायक होती हैं। परन्तु विरहिणी का हृदय सूखा रहता है। प्रिय के वियोग में बादलों की गडगडाहट उनके हृदय में कम्पन उत्पन्न करती है और वर्षा के जल जलन पैदा करते हैं। कोई स्त्री कहती है कि, ए देव! बरस। परन्तु तुम्हारा बरसना मुझे अच्छा नहीं लगता। मेरा पति लडकपन से ही शौकीन है। न मालूम आज वह कहाँ भीगता होगा।

वर्षा

"बरिसहु ए देव बरिसहु मोरा नाही मने भावेला हो।
ए देव! मोर पिया नान्हे के रे बिसनिया रे,
अकेला कहाँ भीजेला हो।"

सावन और भादो की घनी अँधियारी के बीच बिजली जोरों से चमक रही है। परन्तु पति के पास में होने से स्त्री को कोई चिन्ता नहीं है। बारहमासे के गीतों में प्रकृति का बडा सुन्दर वर्णन किया गया है। खास कर वर्षा के तीन चार महीनों का वर्णन तो हृदयहारी है[3]—

चढले असाढ गगन घन गरजे,
बिजुली चमकेले तेहि घन में।
चिहुँकि चिहुँकि चाकिरित होके चितम्रो,
बैठिके सोंच करो मन में।"

भादो अगम पन्थ नाहि सूझेला,
बेंगवा बोलेला आँगन में।
अरे कोइल होके वने वने फिरीलें,
साल सुहाइल वृन्दावन में।"

आधुनिक लोक गीतों के विषय तथा उनमें भाव व्यंजना

कबीर ने जिस भोजपुरी भाषा में कविता की थी, धरनीदास ने जिस भाषा में अपने सरस पद गाये थे, एवं लक्ष्मी सखी ने अपनी मनोरम रचनाओं के द्वारा जिसको सुशोभित किया था उसका प्रवाह अविच्छिन्नरूप से लोक गीतों के रूप में आज भी बहता चला आ रहा है।

---

१ भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १६६। भो० लो० गी० पृ० ३३५। २ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० पृ० ८२। ३ वही भाग १ पृ० ८८। ४ वही. भाग २ पृ० १८६।

जन साधारण लोक गीतो का अवगाहन कर आज भी आनन्द लाभ करता है। प्राचीन-काल में भोजपुरी जिस प्रकार सन्त कवियो के विचारो और भावनाओ की वाहिका रही है उसी प्रकार यह आज भी हमारी राष्ट्रीय आकाक्षाओ तथा उद्‌गारो को जनता के बीच में प्रचारित करने में समर्थ है। जहाँ इसमें भक्ति को जागरित करनेवाले शान्त रस के पद गाये गये है वहाँ देश भक्ति में ओतप्रोत वीर रस की कवितायें भी इसमे उपलब्ध हैं।

हमारे देश में, हमारे राष्ट्रीय जीवन में जब-जब उथल-पुथल मची है तब-तब उसका प्रतिबिम्ब इस भाषा पर पड़ा है। देहाती कवियो ने अपनी टूटी फूटी, काव्यालकार से रहित भाषा में कविता कर इन नवीन भावनाओ और आकाक्षाओ को जनता के सम्मुख उपस्थित किया है। आज से ३५ वष पूर्व यूरोपीय प्रथम महायुद्ध के समय से लेकर आजतक हमारे देश में जो राष्ट्रीय या सामाजिक घटनायें घटित हुई है प्राय उन सभी का अकन भोजपुरी कवियो ने किया है। यही नही, समाज में सम्प्रति जो विचारधारा प्रवाहित हो रही है उसका भी चित्रण हमें उपलब्ध होता है। इस प्रकार भोजपुरी में आधुनिकता का पुट हमें भी प्राप्त होता है।

सन् १६१४ ई० से १८ ई० तक यूरोप में महायुद्ध होता रहा, जिसमें भारत भी सम्मिलित था। अग्रेजी सरकार ने यूरोपीय रणस्थली में लड़ने के लिए भारत से लाखो सैनिक भेजे थे। भारत के प्रत्येक प्रान्त में जोरो से भरती (रिक्रूटिंग) शुरू थी। अग्रेजी सरकार जर्मना, कैसर के अत्याचार का वर्णन कर, जनता में उसके प्रति घृणा उत्पन्न कर, लोगो को लड़ने के लिए भेजना चाहती थी। इसके लिये उसने देहाती कवियो से ग्राम भाषा में कविता करवा कर ग्रामीण जनता के बीच प्रचार करवाया। बलिया जिले के अन्तर्गत दया-छपरा गाँव के निवासी प० दूधनाथ उपाध्याय ने जिनका उल्लेख पीछे हो चुका है इसी लक्ष्य को ध्यान में रख कर 'भरती के गीत' नामक एक पुस्तिका लिखी थी जिसमें 'कैसर' से लड कर उसको परास्त करने के लिए भोजपुरी जवानो को ललकारा गया था।

यूरोपीय महायुद्ध समाप्त होने के बाद भारत को पुरस्कारस्वरूप रोलेट ऐक्ट का प्रसाद मिला जिसके विरुद्ध महात्मा गाधी ने सन् २१,२२ में अपना सुप्रसिद्ध असहयोग आन्दोलन चलाया था। इस आन्दोलन के सबध में जालियावाला बाग में जो भीषण हत्या काड हुआ, उसकी कथा की पुनरावृत्ति की यहाँ आवश्यकता नही। किस प्रकार वहाँ की जनता पर दारुण अत्याचार किया गया यह इतिहास के पाठको से छिपा नही है। भोजपुरी प्रान्त में इस अवसर पर अनेक कवितायें लिखी गईं, जिसमें इस हत्याकाड की मर्मभेदी कहानी कही गई है। बाबू मनोरजनप्रसाद सिंह की 'फिरगिया' नामक कविता में इस विषय का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। इसका भी उल्लेख हम पीछे कर आए हैं। इसकी कुछ और पक्तियाँ सुनिये[१]—

"आजो पजाबवा के करी के सुरतिया,
से फाटेला करेजवा हमार रे फिरगिया।
भारत के छाती पर भारत के बच्चन के,
बहल रकतवा के धार रे फिरगिया।

---

१ भोजपुरी० भाग १ अक १, २००५ पृ० ६, १०।

दुधमुहा लाल सब बालक मदन सम,
तड़प तड़पि देने जान रे फिरंगिया।
छटपट करि करि बूढ़ सब मरि गइले,
मरि गइले सुघर जवान रे फिरंगिया।
जुवति सती से प्राणपति हा, विलग भइले,
रहे जे जीवन के अधार रे फिरंगिया।
हाय हाय खाय सब रोवत विकल होके,
पीटि-पीटि आपन कपार रे फिरंगिया।
जिन कर हाल देखि फाटेला करेजवा से,
अँसुआ बहेला चउधार रे फिरंगिया।
साधुओं के देहवा पर चुनवा के पोतिपोति
समका आगे लगटा बनवले रे फिरंगिया।
हमनी के पसु से भी हालत खराब कइले,
पेटवा के बल पर रेगौले फिरंगिया।
भारत बेहाल भइले लोग के इ हाल भइले,
चारो ओर मचल हाय हाय रे फिरंगिया।
तेहू पर अपना कसाई अफसरवा के,
देले नाहीं चवनी सजाय रे फिरंगिया।

उपर्युक्त गीत में जालियाँवाला बाग के हत्याकाड का मार्मिक चित्रण किया गया है।

"हमनी के पशु से भी हालत खराब कइले,
पटवा के बल पर रेगौले रे फिरंगिया।"

इन पक्तियो में कितना आत्म विक्षोभ, कितनी वेदना, कितनी विवशता भरी पड़ी है।

कवि का दुःख यहीं समाप्त नहीं हो जाता। वह प्राचीन भारत के अपार वैभव तथा अलौकिक सुख समृद्धि का स्मरण कर जब अंग्रेजो से शासित दुखिया भारत की तुलना करता है तो उसके दुःखो का ठिकाना नहीं रहता। वह विषाद प्रकट करते हुए कहता है कि—

सुन्दर सुघर भूमि भारत के रहे रामा
आज उहे भइल मसान रे फिरंगिया।
अन्न धन जन बल बुद्धि सब नास भइले,
कवनो के ना रहल निसान रे फिरंगिया।'

इन ऊपर की पक्तियो में ब्रिटिश राज्य के कारण देश की जो दुर्दशा हुई है उसका मार्मिक चित्रण है। नीचे की पक्तियो में अन्न के अभाव का कष्ट वर्णित है।

"जहवाँ थोड ही दिन पहिले ही होत रहे,
लाखो मन गल्ला और धान रे फिरंगिया।
उहवें पर आज रामा मथवा पर हाय धके,
बिलखी के रोवेला किसान रे फिरंगिया।

घरे लोग भूखे मरे गेहुँश्रा विदेस जाय,
कइसन बा विधि के बेपार से फिरगिया ।"

ब्रिटिश राज के कारण हमारा कितना नैतिक पतन हो गया है इसका उल्लेख करता हुआ कवि कहता है कि'—

"जहवाँ भइल रहे राना परताप सिंह,
श्रोर सुरतान श्रइसन वीर रे फिरगिया ।
जिनकर टेक रहे जान चाहे चलि जाय,
तबहू नवाइव ना सिर रे फिरगिया ।
उहवे के लोग श्राजु श्रइसन श्रधम भइले,
चाटेले बिदेसिया के लात रे फिरगिया ।"

इस फिरगिया गीत में अंग्रेजी राज में भारत की जो दुर्दशा हुई थी उसका बडा ही सटीक एव मार्मिक चित्रण किया गया है ।

असहयोग आन्दोलन के दिना में अनेक ऐसी कवितायें प्रकाशित हुई थी जिनमें महात्मा गाधी का सन्देश सरल भाषा में जनता तक पहुचाया गया था । इनमें से कुछ कविताओं के शीर्षक अगरेजवा, वकीलवा, मोश्रनिला श्रादि थे जो आज उपलब्ध नही हैं । इनमें से 'वकीलवा' नामक कविता बडी लोकप्रिय थी जिसमे वकीलो को वकालत छोड कर असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए कहा गया था, उनकी एक दो कडी जो स्मृतिपटल पर अधूरी अंकित रह गई, है, सुनिये'—

"देसवा में गाधी जी त अधिया बहवले बाडे,
मानु मानु उनुकर कहल रे श्रोकिलवा ।
जाई कचहरिया ते झूठ साच बोलतारे ।
ठगतारे गवई के लोग रे श्रोकिलवा ।
लाज नाही लागे तोरा झगडा लगवाला में,
भाई भाई आपसे लडवले रे श्रोकिलवा ।"

इस गीत में वकालत पेशे की काफी निन्दा की गई है । इसी प्रकार असहयोग के उन तूफानी दिनो में अनेक फुटकर कवितायें, राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थन में, उसे बल तथा प्रगति प्रदान करने के लिए लिखी गई थी जिनमें तत्कालीन जन-भावना का बडा ही सुन्दर चित्रण था ।

जब असहयोग का आन्दोलन समाप्त हो गया और देश में देशबन्धु के नेतृत्व में स्वराज्य पार्टी का जन्म हुआ तब कांग्रेस ने असहयोग की नीति को छोड कर सहयोग को अपनाया । अत कौंसिल प्रवेश की चर्चा होने लगी । यू० पी० के पूर्वी जिलो से जो चुनाव हुआ था उसमें सेठ घनश्यामदास जी बिडला को मालवीय जी ने उम्मीदवार खडा किया था । उनको वोट देने के लिए देहातो में स्वयसेवको ने घूम कर प्रचार किया था । इनकी प्रशसा में कवितायें भी बनाई गई थी, जिनमें प० दूधनाथ उपाध्याय की 'बिडला बहादुर के श्रोट देत बानीजा' शीर्षक कविता बडी प्रसिद्ध थी । इस कविता की हजारो प्रतियाँ बाटी गई थी जिनमें बिडला जी की गुणगरिमा का वर्णन था तथा उन्हें वोट देने की अपील की गई थी । सुनिये'—

---

१. भो० पृ० ६। २ लेखक का निजी सग्रह पृ० १४। ३. लेखक का निजी संग्रह ।

"हमनी का बलिया दुआबा के रहनिहार।
रउरा के आपन पारान जानतानि जा।
जाहाँ जाहाँ हिन्नू पर बिपति परल ताहाँ,
रउरा उधार कइनी सभे जानतानि जा।
दुःखिया के सुख देनी, निरधन के धन देनी,
राउर उपकार हमनी का मानतानी जा।
सतुआ पिसान बान्हि पोलिंग टेसन चलि,
बिरला बहादुर के ओट देत बानी जा।"

यह कविता बड़ी लम्बी है जिसमें बिड़लाजी के विविध गुणों का उल्लेख कर उनको वोट देने की अपील की गई है। उन दिनों में इस कविता का प्रभाव जनता में बहुत पड़ा था।

कौंसिल प्रवेश के पश्चात् सन् १९३० ई० में महात्मा गांधी का सुप्रसिद्ध नमक सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ जिसमें नमक कानून तोड़ने की आज्ञा सबको दी गई थी। उन दिनों भोजपुरी कवि ने भी अपनी टूटी-फूटी वाणी में पद्य रचना कर इस आन्दोलन को बल और सम्बल प्रदान किया था। इन दिनों में प्रसिद्ध "ना रखनी सरकार जालिम ना रखनी" तथा 'सात समुन्दर पार चलल नमक के गोला' शीर्षक कवितायें बड़ी प्रसिद्ध थी तथा ग्रामीण जनता में इनका बड़ा ही प्रचार था।

सन् १९३०-३२ के नमक सत्याग्रह के बाद सन् ४२ का सुप्रसिद्ध आन्दोलन छिड़ा जिसमें अहिंसा के साथ ही हिंसा का भी अवलम्ब लिया गया था। उत्तर-प्रदेश का सबसे पूर्वी जिला बलिया ने इस आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया था। उसने ब्रिटिश राज्य की सत्ता को हटा कर कुछ दिनों तक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी। इसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने यहाँ कठोर दमन किया था।

इसी कठोर दमन का वर्णन श्री प्रसिद्ध नारायण सिंह ने बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में किया है[१]—

"अपना खूनन से सींची सींची,
गढ़ली हम छड़ा जिला बीच।
गूंजल हमार जब विजय घोष,
आइल तब नेदरसोल नीच।
होखे लागल फिर दुराचार॥
बेपीर पुलिस, बेरहम फौज
डाका डललनि बेखौफ रोज।
गुंडाशाही के रहल राज
रिसवत पर कइले सभै मौज।
उफ जुलुम बड़ल जइसे पहार॥
गावनि पर दगलनि गन मशीन,
बेंसन मन मरलन बीन बीन।

१. लेखक का निजी संग्रह पृ० ३१।

बैठाई डाल पर नीचे से,
जालिम भोक्लन् खच खच सगीन ।
बहि चलल खून के तेज धार ।।
घर घर से निकलल आहि आहि
कोना कोना से आहि आहि ।
गावन गावन में लूट फूट
मारल, काटल, भागल, पराहि ।
फिर क्वन सुनै केकर गुहार ।।"

ऊपर के पद्यो में बलिया पर किये गये कठोर अत्याचारो का जो वर्णन है वह बडा मर्मस्पर्शी है । कहने का आशय यह है कि सन् १६१४ से लेकर आजतक जितने भी राष्ट्रीय आन्दोलन हुए हैं प्राय उन सभी का वर्णन भोजपुरी कवि ने अपनी मीठी भाषा में किया है ।

सन् १६३७ ई० में जब अनेक प्रान्तो में काग्रेसी शासन का सूत्रपात हुआ तब इन सरकारो ने अनेक प्रकार की नयी योजनाये शासन तथा शिक्षा सबधी सुधार में उपस्थित की । इनमें निरक्षरता निवारण भी एक प्रधान विषय था । यू० पी० सरकार ने सभी प्रौढो को पढाने के लिए तथा प्रान्त से निरक्षरता को दूर करने के लिए वृहत् आन्दोलन चलाया था जिसकी ध्वनि दूर देहातो में भी पहुँची थी । भोजपुरी कवि ने निरक्षरता के दोषो को बतलाते हुए लोगो को साक्षर बनने के लिए प्रोत्साहित किया था । अशिक्षा के दूषणो को छोड देने की अपील करता हुआ कवि कहता है कि[1]—

"हमनीका मुरख बनल बानी ओही सेत,
रोज रोज दुखवा क्लेस भोगतानि जा ।
कही जमीदरवा जो लेत बा लगनवा त,
दोसरे रसीद देला नाही बूझतानि जा ।
कतही बजरिया में हमनी ठगात बानी,
कम, बेस लेई चुप घरे आवतानी जा ।"

इस प्रकार कवि ने अशिक्षा से उत्पन्न होनेवाले दोषो का बडो ही सुन्दर रीति से वर्णन किया है । अन्त में कवि सभी लोगो से पढने और पढाने के लिए आग्रह करता हुआ कहता है कि[2]—

"पढल लिखल भाई खाईजा सपथ आजु
सबके पढाइबि जा अपने पढबि जा ।
बाडा दुख सहली जा रहली निपढ जले,
अब नाही हमनीका निपढ रहबि जा ।"

सन् १६४७ की १५ वी अगस्त को भारत स्वतन्त्र हुआ । यह उत्सव बडे समारोह के साथ हमारे भारत में मनाया गया था । भोजपुरी प्रदेश भी इससे अछूता नही बचा था । यहाँ के कवियो ने भी स्वतन्त्रता का स्वर अलापा और स्वतन्त्र भारत के सन्देश को देहातो में भी पहुँचाया । भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता के इस शुभ दिन पर देहाती कवि की

---

१. डा. उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ५२७, २८ । २. वही.

भी वाणी प्रस्फुटित हो उठी थी और उसने भी अपने टूटे-फूटे स्वरों में अलापा था'—

"आजु भइल भारत में सुराज।
आपन बोली आपन विचार,
अपना घर में अपना बा राज।
भोगनी जा हमनी बड़ा दुःख,
जब तक कइलन अंगरेज राज।
धन चूसि चूसि कइलन कंगाल,
बहुतर खातिर भइनी बेलाज।
जय जय गान्ही बाबा तोहार,
अंगरेज खेदि रखल तू लाज।
धनि धनि पनरहू तारीख आज,
जवना दिन पवलीं हम सुराज।
भारत माई के आजु भाल,
पर चमकत या सुन्दर सुताज।
जय जय गान्ही, नेहरू, पटेल,
जे दिहलन भारत बिपति ठेल।
जेकरा डर से अंगरेज लोग
भागल भारत से जान खेल।
हम फूलन ना बानी समात
मुंह से कहलो ना बात जात।
धनि धनि सुभ दिन सुभ मास आज
जा दिन भारत पावल सुराज।"

इस कविता में कवि ने अपने आन्तरिक उछाह का वर्णन किया है। स्वतन्त्र भारत का संदेश गाँवों में पहुँचाने तथा ग्रामीण जनता को अपने राजनीतिक उत्थान को बतलाने में इन गीतों ने अलौकिक कार्य किया है।

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है भोजपुरी का स्रोत सदा प्रवाहशील रहा है। इस देश में जो-जो प्रधान घटनायें होती रही हैं उनका प्रभाव भोजपुरी कवि के हृदय पर भी पड़ा है और इस अवसर पर उसकी भी वाणी फूट निकली है। तीस जनवरी सन् १९४८ को महात्मा गांधी की हत्या भारतीय इतिहास में एक प्रधान घटना है। भारत का शायद ही कोई ऐसा कोना हो जहाँ यह दुखद समाचार न पहुँचा हो। भोजपुरी में तीन पुस्तिकायें अब तक इस विषय की हमारे देखने में आई हैं जिनमें बापू की हत्या का बड़ा ही सजीव वर्णन किया गया है। इन पुस्तकों का विस्तृत उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। 'हिन्दे की आह' में बापू की छाती में गोली लगने और उनके मरने का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन है'—

"पूना के रहवइया उत जाति के मराठा,
नाथूराम नाम बताई भारतबरिया।

---

१. लेखक का निजी संग्रह। २. 'हिन्द की आह' पृ० २, - ४२६ कर्नलगंज प्रयाग।

हनिके पिस्तौल मरलसि बापूजी के छतिया से,
बापू गिरे ले मुरुछाई भारतबसिया।
हरे राम! हरे राम! बापू रटे लगले से,
सरग के रहिया धवाई भारतबसिया।"

इसी प्रकार से सोरठी राग में बापू की हत्या का दुःखद वर्णन है। 'गांधी जी का स्वर्गवास' नामक पुस्तिका में बापू की मृत्यु की कथा हृदयद्रावक रीति से कही गई है।[1]

"काहे पपिया मरलस हमरा गांधी जी के जनवां
आइ हो दादा। टेक॥
कईले तोहार कवन कसूर आई हो दादा।
तीसत तारीख रहे दिन शुकवरवा। आई हो०
ऊहे दिनवा गोली के शिकार आइही दादा।
जात रहले भजे हरिनाम आइ हो दादा,
ओहि समय लागल रहे वहाँ हतियरवा। आई हो०।"

गत पृष्ठों में हमने सन् १९१४ से लेकर १९४८ तक की जितनी प्रधान घटनायें हुई हैं, जितने प्रधान राष्ट्रीय आन्दोलन हुए हैं उनका उल्लेख इन भोजपुरी गीतों में कितनी सुन्दरता से हुआ है, यह दिखलाने का प्रयत्न किया है। भोजपुरी में लोक गीतों के रूप में कुछ ऐसे सामाजिक तथा राष्ट्रीय विषयों की चर्चा भी हुई है जिनका प्रभाव जनता के ऊपर स्थायी रूप से पड़ा है।

चर्खे की चर्चा

सन् १९२० ई० के असहयोग आन्दोलन में महात्मा गांधी ने स्वदेशी वस्त्रों के व्यवहार पर बड़ा जोर दिया था और जनता को आदेश दिया था कि सभी लोग घर घर चर्खा चलावें और अपनी आवश्यकतानुसार स्वयं वस्त्र तैयार करें। उन दिनों लाखों की संख्या में चरखे बनाये गये और हजारों लोगों ने कातना भी शुरू कर दिया। गांधीजी की यह आवाज गाँवों में भी पहुँची और वहाँ भी लोगों ने चर्खा चलाना जो बहुत दिनों से बन्द हो गया था प्रारम्भ किया। लोक गीतों में इस प्रथा का वर्णन पाया जाता है। कोई स्त्री अपने पति से चरखा लाने की प्रार्थना करती हुई कहती है कि मैं चर्खा कातूँगी क्योंकि वह स्वराज्य प्राप्ति का परम अस्त्र है।

"अब हम कातबि चरखवा, पिया मति जाहु बिदेसवा
हम कातबि चरखा सजन तुहु कात,
मिलिहैं एही से सुराजवा।
पिया मति जाहु। टेक॥
होइहैं सुराज तबे सुख मिलिहैं,
कटि जइहें सब के कलेसवा। टेक॥
देसवा के लाज रहे चरखा से,
गाधी के मान। सनेसवा। टेक॥

---

१. 'गाधी जी का स्वर्गवास' पृ० २, ३ दरौंदा, छपरा।

कहतारे गाधी जी की चरखा चलावहु,
एही से हटिहे कलेसवा । टेक ।।"[1]

इस गीत में चरखा चलाने के लिए जो तर्क दिये गये हैं वे अकाट्य हैं । नेताओं के हजारों व्याख्यानों का जो असर जनता पर पडेगा वह केवल इसी एक गीत से पड सकता है ।

एक दूसरे गीत में भी चरखा चलाने की अपील की गई है ।[2]

"इज्जत राखि लेहु भारत भइया,
चरखा चलावहु मसताना ।"

स्वराज्य प्राप्ति के लिए चर्खा चलाने का सुन्दर वर्णन चचरीक जी ने इन पद्यों में किया है ।[3]

"सावन भदउआ बरसतवा के दिनवा रामा
हरि हरि बैठि के चरखवा घरवा मतवे रे हरी ।
अपने त कतवैं औरो गोतिन कतवें रामा,
हरि हरि गाधी के हुकुमवा हम मनवैं रे हरी ।
खोलिभल देबैं घरवा चरखा इसकुलवा रामा ।
हरि हरि सबके अब चरखवा, हम सिखइबें रे हरी ।
अपने नगरिया हम त करबें हो सुरजवा रामा,
हरि देसवा के अलखवा हम जगइबें रे हरी ।"

चरखा चलाने के साथ ही गाधी जी ने स्वदेशी वस्त्रों का व्यवहार करने तथा विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करने की आज्ञा दी थी । इसकी प्रतिध्वनि भी इन गीतों में मिलती है । राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में विदेशी वस्त्रों के प्रति इतनी घृणा उत्पन्न हो गई थी कि उसका पहनना नितान्त गर्हणीय समझा जाता था । कोई वर जब विवाह करने के लिये विदेशी वस्त्र पहन कर आता है, तब कन्यापक्ष के लोग कहते हैं कि ऐसे वस्त्र से सुसज्जित वर का कौन विवाह करेगा ।[4]

स्वदेशी के व्यवहार पर जोर

"अइलें विदेसिया पहिरि के दुलहा रामा,
के इनकर करिहें बिआह ।
ये लाडिल बनरा हो ।
जाहु जाहु जाहु फिर डोलिया कहॅरवा लेके
नाहीं होइहें अइसन बिआह,
मैं लाडिल बनरा हो ।"

कन्या का पिता अपनी लडकी को अविवाहित रखने को तैयार है परन्तु वह विदेशी वस्त्र से सुसज्जित वर से विवाह नहीं कर सकता—

"फिरि जाहु फिरि जाहु घरवा समधिया हो
मोर धिया रहिहें कुआरि ।
बसन उतारि सब फेंकहु बिदेसिया हो
मोर पूत रहिहें उघार ।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३८२-८३ । २. वही. पृ० ३८१ ।
३. चंचरीक-ग्राम गीतांजलि पृ० १३७ । ४. वही. पृ० १०३-४ ।

बसन सुदेसिया मगाई पहिरइबै हो
तब होइहैं धिया के बिग्राह ।"

इसके ठीक विपरीत जब बराती खद्दर पहन कर आते हैं तब उनका प्रचुर स्वागत होता है । जब हाथ में कांग्रेसी झंडा लेकर बारात आती है तब उसकी अलौकिक शोभा होती है । कवि कहता है कि[1]—

"सब बरतिहवन के देहिया खदरवा हो,
देखला न अस बरिग्रात हो ।
हथवा में झंडा भल सोहै गुरजवा के
देसवा के बोलै जै-जै कार हो ।
अइसन कहवा घर मिललै सुदेसिया हो
धनि-धनि धीआ कर भागि हो ।"

स्वतन्त्रता सग्राम के अवसर पर स्वदेशी वस्तु का इतना आदर होना स्वाभाविक ही है ।

विदेशी वस्त्रो के बायकाट करने के लिए बजाजो से की गई यह अपील कितनी मार्मिक है[2]—

"सुनि लेहि सुनि लेहि भइया बजजवा
कि सुनि लेहु हो ।
मति बेचहु विदेसिया कि सुनि लेहु हो ।
भइया बजजवा न बेचहु विदेसिया,
कि छोडि देहु हो ।
सब अस रोजिगरवा, कि छोडि देहु हो ।
एहि रे विदेसिया कपडवा के कारन
कि देखि लेहु हो ।
केतना भइले दुरगितिया कि देखि लेहि हो ।
केतन हजार गइलै जेल दुख पवलै
कि अवरु खइलै हो ।
सिर पर लठिया के मरिया के अवरु खइलै हो ।"

इस प्रकार इन गीतो मे चर्खा की चर्चा, विदेशी वस्त्र का बायकाट एव स्वदेशी के व्यवहार आदि आधुनिक युग के विविध विषयों का वर्णन किया गया है ।

देश प्रेम की भावना

इन गीतो में देश प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी पडी है । कही पर देश के उद्धार के लिए जेल जाने की प्रतिज्ञा पाई जाती है तो कही भारत माता के सेवा के लिए सर्वस्व निछावर करने का प्रण है । कही देश को स्वतन्त्र बनाने के तो कही मातृभूमि की दुर्दशा देख कर दुख के आँसू बहाये गये हैं । भारतमाता के उद्धार के लिए किसी नवयुवक की यह कठोर प्रतिज्ञा सुनिये[3]—

---

१. चंचरीक ग्राम गीतांजलि पृ० १०५ । २ वही पृ० १२७, १२८ । ३ चंचरीक ग्रा० गी० पृ० १२४ ।

"देसवा के लागि हम सहबे कलेसवा । टेक ।
दुखवा के तनिको हम दुख नाही जनबै रामा,
पग पग पर चाहे खइबे ठोकरवा ।
कठिन विपतिय में भारत-देसवा रामा ।
. .   . .
अँखिया से बरसत गंगा जमुनवाँ ।
ओहि देसवा के हम करबै उधरवा रामा
चाहे देहिया के होइ जइहै बलिदनवा ।

नीचे के पद्य मे स्वराज्य की यह एकान्त कामना कितनी सुन्दर बन पडी है । भोजपुरी कवि स्वराज्य प्राप्ति के लिए कितना व्याकुल है[1]—

"कब हमरा देसवा में होइहैं सुरजवा । टेक ॥
पहिरे के परदा मिलिहै पेटवा के अन्न मिलिहैं ।
दुखवा दलिद्दर मिटि जइहैं कलेसवा ।
भेद बिभेद नीच ऊँच भाव मिटि जइहैं
हिल मिलि करिहैं सब देस सुधरवा ।
आस अभिलाख कब जियरा के पूरा होइहैं
सत्य धरमवा के बजिहैं बिगुलवा ।"

लोक गीतों में राष्ट्रीय भावनाओं का इतना अधिक प्रचार हो गया है कि गाँव-गाँव के छोटे-छोटे बच्चे 'सुराज' के गीत गाते फिरते हैं । देहात में जो बारात आती है उनमे गवैयों के द्वारा 'सुराजी गीत' गवाना आवश्यक हो गया है । जिन विवाहों में तिलक दहेज नही लिया जाता उन्हे सुराजी बिआह कहने लगे हैं । जो वर विवाह के लिए स्वदेशी वस्त्र पहन कर आता है उसे 'सुराजी वर' की सज्ञा दी गई है । अधिक क्या, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं का भी प्रवेश लोक गीतों में हो गया है और इनके नाम को गीतों में जोड कर बडे हर्ष के साथ स्त्रियाँ गीत गाती हैं । नीचे के गीत में गाधी जी तथा भारतीय आन्दोलन में हाथ बटानेवाली स्त्रियों के नाम आदर से उल्लिखित हैं[2]—

"गाधी के आइल जमाना,
        देवर जेलखाना अब गइले ।
जब से तपे सरकार बहादुर,
        भारत मरे बिनु दाना ॥ देवर०
हाथ हथकड़िया वा गोड़वा में बेड़िया ।
        देसवा भरि भइल दिवाना ॥
कमला, सरोजिनी, विजय के लक्ष्मी,
        नाम कइली मरदाना । देवर०

इसी प्रकार से कजली के गीतों में मोतीलालजी, मालवीयजी, गाधी जी आदि सभी नेताओं का नामोल्लेख आदर के साथ हुआ है ।[3]

---

१. चवरांक : ग्रा० गी० पृ० १२१ । २ डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३८१ ।
३. वही. पृ० १४३ ।

"गाधी के पास में मोतीलाल नेहरू,
अब गाधी के कटल परवाना, जेहलवा में जा बलनू ।
गाधी के आस पास मालवी सुहात बाडे
अब गाधी के कटल परवाना, जेहलवा०
गाधी के आस पास बाडे सियारदास
अब गाधी के कटल परवाना, जेहलवा ०

इस गीत में किसी देश प्रेमिका स्त्री ने महात्मा गाधी की गिरफ्तारी पर अपने पति को जेल जाने का जो आदेश दिया है वह प्रशसनीय है । साथ ही इसमें अनेक नेताओं के नामो का उल्लेख हुआ है वह उनकी लोकप्रियता का सूचक है । गाधीजी का नाम तो भारत के प्रत्येक गाँव के प्राय प्रत्येक घर में सुनाई पडता है । असहयोग आन्दोलन के समय में गाँव का प्रत्येक बालक यह गाता फिरता था कि—

'देसवा में अन्हिया उठवले रे गन्हिया ।"

अर्थात् ए गाधी जी आपने देश में आँधी पैदा कर दी है । इन नेताओं के नाम पर अनेक झूमर तथा कजली के गीत तैयार हो गये हैं । नीचे लिखे गीत में भारत माता के दिव्य रूप की झाँकी दिखाई गई है । यह गीत 'बटोहिया' के नाम से भोजपुरी प्रदेश में अत्यन्त लोकप्रिय है । इसकी कुछ कड़ियाँ सुनिये'—

"सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देसवा से ।
मोरे प्रान बसे हिम खोह रे बटोहिया ॥१॥

एक द्वार घेरे रामा हिम कोतवलवा से ।
तीन द्वार सिन्धु घहराई रे बटोहिया ॥२॥

... ...

गंगा रे जमुनवा के झगमग पनिया हो ।
सरजू झमकि लहरावे रे बटोहिया ॥३॥

ब्रह्मपुत्र, पंचनद, घहरत निसि दिन ।
सोनभद्र मीठे स्वर गावे रे बटोहिया ॥४॥

आगरा, प्रयाग, काशी, दिल्ली, कलकतवा से ।
मोर प्रान बसे सरजू तीर रे बटोहिया ॥५॥"

भारत के प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाता हुआ कवि गाता है कि—

"नानक, कबीरदास, शकर, श्रीराम, कृष्ण ।
अलख के गतिया बतावे रे बटोहिया ॥१॥

विद्यापति, कालिदास, सूर, जयदेव, कवि ।
तुलसी के सरल कहानी रे बटोहिया ॥२॥

बुद्धदेव, पृथु, बीर अर्जुन शिवाजी के ।
फिरि फिरि हिय सुधि आवेरे बटोहिया ॥३॥

---

१. दुर्गाशंकर सिंह : भो० लो० गी० भूमिका पृ० ५५-५६ ।

अपर प्रदेश देश सुभग सुघर वेश।
मोर हिन्द जग के निचोड़ रे बटोहिया ॥४॥
सुन्दर सुभूमि भैया भारत के भूमि जेहि।
जन "रघुबीर" सिर नावे रे बटोहिया ॥५॥

यह गीत क्या है, भारत माता की पुण्य प्रशस्ति है जिसके एक-एक अक्षर में हमारी पुरातन गरिमा और संस्कृति कूटकूट कर भरी हुई है।

—:०:—

अध्याय ७

(क) लोक गीतों के गाने की विधि

भोजपुरी लोक गीतो के गाने की विशेष विधि है। जो लोग इस विधि से पूर्णतया परिचित नही हैं वे इनके गाने की पद्धति को उचित रीति से नही समझ सकते। इन गीतो के गाने की विधि पूर्णरूप से तभी जानी जा सकती है जब इन सभी गीतों की स्वरलिपि (नोटेशन) तैयार की जाय। यूरोपीय देशो के लोकगीतो के संग्रहकर्ताओ ने अपने देश के समस्त लोक गीतों की स्वरलिपि ही तैयार नही की है बल्कि इन गीतो को कराल काल के गाल में जाने से बचाने के निमित्त इनका ग्रामोफोन रेकार्ड भी तैयार किया है। अभी भारतीय विद्वानो का ध्यान इन गीतों के संग्रह की ओर भी पूर्णरूप से आकृष्ट नही हुआ है फिर इन गीतों के रेकार्ड बनाने की चर्चा तो दूर की बात है। डा० वेरियर इलविन ने अपनी पुस्तक[1] में 'बैगा तथा करमा जातियो के गीतों की 'स्वरलिपि' दी है जो बहुत ही सुन्दर है। भोजपुरी के समस्त गीतों की स्वरलिपि तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है।

यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि लोक गीत पिंगल शास्त्र की नपी-तुली नालियों में होकर नही बहते बल्कि इनका प्रवाह उस पहाडी नदी के समान है जो स्वच्छन्द गति से बहा करती है। गीतो में पिंगल शास्त्र का विशेष बन्धन न होने के कारण इनकी कोई पंक्ति तो बहुत बडी है और कोई बहुत छोटी। परन्तु गवैये गाते समय मात्राओ को इस प्रकार से घटा-बढा लेते हैं जिससे छन्दोभंग बिल्कुल नही प्रतीत होता। इन गीतो में लघु, गुरु का नियम बडा ही शलथ होता है। अत गाने में सुविधा के अनुसार कही लघु मात्रा को दीर्घ किया जाता है और कही दीर्घ मात्रा को लघु। इससे गीत में छन्दोभंग कहीं भी प्रतीत नही होता। एक साथ गाते समय स्त्रियाँ गीतों को इस प्रकार गाती हैं जिसमे मात्राओ की त्रुटि से उत्पन्न दोष का कुछ पता ही नही चलता।

लघु गुरु का शलथ बंधन

नीचे का यह उदाहरण लीजिये[2]—

"झूठ भइले सघुआ, झूठ बियफइया
झूठ भइले कगवा के बोल।
झूठ भइले बाभना के पतरा ओ पोथिया
कि सइया नाही अइले हा मोर।

इस बिरहे मे 'झूठ' शब्द में तथा 'नाही' शब्द में दीर्घ उकार तथा दीर्घ ईकार का उच्चारण लघु होता है। यदि इनका दीर्घ उच्चारण किया जाय जैसा कि होना उचित है तो छन्दोभंग हो जाता है। संस्कृत के आचार्यों ने भी कहा है कि 'अादि भाप मप कुर्यात,

---

१ 'फोक सांग्स आफ दि मैकल हिल्स,' आक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित। २ डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३२७।

छन्दो भंग न कारयेत्' अर्थात् भाव शब्द को 'मय' भले ही लिखा जाय या पढा जाय परन्तु छन्दोभंग नहीं होना चाहिये ।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये'—

"पांच पचीस कोसे बसेले महाजन हो,
आहो रामा, बकना अवगुनवे हरि मोरे रसेले हो राम ।
बाट बटोहिया हो रामा, तुहु मोरे भइया हो,
आहो रामा, एहि बाटे देखुव हरि मोरे रसले हो राम ।"

उपर्युक्त गीत में 'बसेले' 'रसेले' में एकार का, 'हो' में ओकार का, 'बाटे' और 'मोरे' में एकार का और 'आहो' शब्द में आकार का उच्चारण लघु है । यदि इन शब्दों का उच्चारण दीर्घ रूप में किया जाय तो छन्द ठीक नहीं बैठता । अत गाने की सुविधा के लिए इन शब्दों का उच्चारण लघु करना पडता है ।

कहीं कहीं पर गेय सौ दर्य के लिये ह्रस्व का दीर्घ भी उच्चारण किया जाता है । छन्द की मात्रा कहीं त्रुटित न हो जाय इसलिये यह परिवर्तन आवश्यक हो जाता है । नीचे का यह गीत सुनिये—

"उडल उडल सुगा गइले कलकलतवा,
कि जाइके बइठेना, मोर सामी जी के पगिया ।
कि जाइ के बइठे ना ।
पगरी उतारि सामी जाघ बइठवले,
कि कह सुगा ना मोरे घर के कुसलतिया ।
कि कह सुगा ना ।
माई तोहरा कुटनी बहिनि तोर पिसनी,
कि अइया कइली ना, तोर दउरी दोकनिया
कि अइया कइली ना ।"

इस पूर्वी गीत की प्रथम पंक्ति में 'उडल उडल' शब्द यद्यपि लघु स्वरों से युक्त है परन्तु इसका उच्चारण दीर्घ किया जाता है इसी प्रकार से चौथी पंक्ति में 'कह' शब्द का उच्चारण दीर्घ है । 'पगिया' में 'प' का और 'कुसलतिया' में 'कु' स, ल, ति' आदि वर्णों का उच्चारण दीर्घ है । यदि इनका उच्चारण दीर्घ न किया जाय तो गीत में छन्दोभंग होने का भय है ।

दूसरा गीत लीजिये'—

"छायक पेड छिउलिया तो पतवन गइवर हो ।
अरे रामा तिहिलर ठाढी हरिनि गाँ त मन अति अनमनि हो ।"

यहाँ तिहिलर में 'हि' का उच्चारण दीर्घ है ।

लोक गीतों में पढने की दूसरी विधि यह है कि इसके उपान्त्य स्वर गीत के अन्तिम अक्षर के ठीक पहिले के स्वर को लुप्त स्वर में उच्चारण किया जाता है । यह नियम विशेषतया बिरहा के गीतों मे प्रयुक्त होता है । इसमें अन्तिम स्वर का लघु उच्चारण तथा उपान्त्य स्वर का प्लुत स्वर में उच्चारण किया जाता है । नीचे का यह बिरहा लीजिये'—

उपान्त्य स्वर को प्लुत स्वर में पढना

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३६६ । २. त्रिपाठी ग्राम गीत । ३ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३१८ ।

"उडली चिरिइया झुरे झाग बइठाल,
राम नामवा के गोहराई ।
निचवा जे घूमत बाटे पापी रे बहेलिया,
ऊपर बाजवा रे मेडराई ।"
निचवा से घूमत बाटे पापी रे बहेलिया,
ऊपर बाजवा रे मेंडराई ।"

इस विरहे में गोहराई तथा मेडराई में जो उपान्त्य स्वर 'रा' है उसका उच्चारण प्लुत स्वर में किया जाता है, जैसे गो ह रा आ आ ई और मेडरा आ आ ई। जब अहीर अपने कानो में अगुली डाल कर 'राम नामवा के गोहराई' इस द्वितीय चरण में गोहराई शब्द के 'रा' का उच्चारण करता है तो वह दो तीन मिनट तक इसका प्लुत स्वर में उच्चारण करता रहता है । इस शब्द के ठीक उच्चारण का ज्ञान तो विरहा गाते हुए किसी अहीर के मुख से सुन कर ही हो सकता है परन्तु इन गीतो की जो स्वर लिपि (नोटेशन) दी गई है उससे यह स्पष्ट ही ज्ञात हो सकता है कि विरहे के उपान्त्य स्वर का उच्चारण किस स्वर में होता है । इसी प्रकार इस उपर्युक्त विरहे में गोहराई और मेंडराई में अन्तिम दीर्घ स्वर 'ई' का उच्चारण ह्रस्व किया जाता है । इस बिरहे को गाते समय इनका शुद्ध उच्चारण इस प्रकार से किया जायगा ।

"राम नामवा के गो ह रा आ आ-आ-आ-आ-इ ।"
ऊपर बाजवा रे मेड रा आ-आ-आ-आ-आ-इ ।।"

यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यह उच्चारण भेद केवल दूसरे और चौथे चरण के अन्तिम शब्दो में ही होता है, प्रथम और तृतीय चरणो के उच्चारण में कोई अन्तर नही पडता ।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये[1]—

"सिरि बिरितावनवा के कुजगलियवा में
राधे ओरमवली हा डारी ।
एकहू बहरि राधे तूरहू ना पवली,
देले कान्हा बसिया बजाई ।"

यहाँ पर भी द्वितीय एव चतुर्थ चरण के अन्तिम शब्द डारी और बजाई में 'डा' और 'जा' का उच्चारण प्लुत स्वर मे किया जायगा और इन दोनो शब्दो के अन्तिम अक्षर 'री' और 'ई' का उच्चारण दीर्घ होते हुए भी ह्रस्व ही किया जायगा ।

इस विरहे को गाते समय उच्चारण की दृष्टि से इसका स्वरूप निम्नाकित होगा[2]—

"सिरि विरिना वनवा के कुज गलियवा में
राधे ओरमवली हा डा आ-आ-आ-आ आ-अ . रि
एकहू वहरि राधे तूरहू ना पवली,
देले कान्हा बसिया ब जा आ-आ आ-आ-आ-आ-आ-ई ।

जहाँ पर विरहे के द्वितीय तथा चतुर्थ चरण का अन्तिम अक्षर दीर्घ नहीं है अर्थात् ह्रस्व है वहाँ केवल उपान्त्य स्वर ही प्लुत स्वर में पढा जायगा । फिर अन्तिम स्वर जिसका

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३०९। २ वही पृ० ३२९ ।

उच्चारण लघु है अपने स्वाभाविकरूप में ही उच्चरित होगा। नीचे का यह उदाहरण लीजिए—

"ससुई पतोहिया में लागल बा झगडवा,
कइली भुलरवा वें मार।
आजु पतोहिया के हम बन दिहती,
जो जियत रहिते बुढऊ हमार॥"

इस बिरहे के द्वितीय तथा चौथे चरण के अन्तिम शब्द 'मार' और 'हमार' के उपान्त्य स्वर 'आ' का उच्चारण प्लुत है तथा अन्तिम अक्षर 'र' का उच्चारण ह्रस्व है। पूर्व नियम के अनुसार यदि यहाँ कोई दीर्घ स्वर होता तो उसका भी उच्चारण ह्रस्व ही करना पड़ता। यह तो हुई बिरहे की बात। परन्तु पचरा गाते समय इस पद्धति में थोड़ा परिवर्तन हो जाता है। पचरे में तो उपान्त्य स्वर का उच्चारण ज्यों का त्यों रहता है परन्तु अन्तिम स्वर का उच्चारण प्लुत हो जाता है। यह उदाहरण लीजिये—

"डोलिया पर चढ़ि गइली काली मोर देविया हो,
चलि भइली कालीपूर के हाट हो।
काली जी से करेली भेंटवा चोटवा,
फेरु डोलिया रे लवटाय हो।"

इसमें द्वितीय तथा चतुर्थ चरण के अन्तिम वर्ण 'हो' का उच्चारण प्लुत स्वर में किया जाता है, जैसे—

"चलि भइली कालीपुर के हाट हो ओ ओ ओ
फेरु डोलिया रे लव टाव हो ओ ओ ओ

इसी प्रकार अन्य पचरा के गाने में भी इसी पद्धति का व्यवहार किया जाता है।

स्तोभ की प्रणाली

भोजपुरी लोक गीतों के गाने की पद्धति में एक और विशेषता पाई जाती है। यह विशेषता है गान सौन्दर्य के लिए गीतों के प्रारम्भ, मध्य अथवा अन्त में कुछ नये वर्णों एवं पदों को जोड़ देना अथवा गीत के बीच में मिला देना। गान की सुविधा के लिए जोड़े गए ऐसे पदों को 'जोड़' कहते हैं। भोजपुरी गवैया गीत को गेय बनाने के लिये एवं छन्दोभंग की त्रुटियों को दूर करने के लिए कुछ नये शब्दों को जोड़ता जाता है। कहीं-कहीं अधिक मात्राओं का भी समावेश कर देता है। ऐसा करने से छन्दोभंग के दोष दूर हो जाते हैं, गीत को गाने में सुविधा होती है और श्रोताओं को भी उसे सुनने में अधिक आनन्द आता है। गीतों को गाते समय नये शब्दों को बीच-बीच में जोड़ने की प्रथा बहुत प्राचीन है। सामवेद के गायन में भी नये पदों को जोड़ने की यह विधि पाई जाती है जिसे 'स्तोभ' कहते हैं। इसका अर्थ है ऐसी वस्तु जो जोड़ दी जाय।[1] इसी प्रकार से साम-गायन में 'पुष्पण' की पद्धति प्रचलित है जिसका अर्थ है गीत में नये शब्दों को जोड़ कर अलंकृत या सुशोभित करना।

सामवेद गायन में जो स्तोभ उपलब्ध होता है वह तीन[2] प्रकार का है—१ वर्ण स्तोभ २ पद स्तोभ ३ वाक्य स्तोभ। वर्ण स्तोभ उसे कहते हैं जहाँ सामगायन के बीच में

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भा २ पृ० २२६। २ अधिकल्ने सति नाम्विलक्षयो वर्णा स्तोभ। ३ स्तोभ त्रिविधसा वे।

स्तोभ के भेद — वर्णों का जोड़ दिया जाता है। उदाहरण के लिये यह ऋचा लीजिये जिसमें सामगायन में प्रयुक्त वर्ण स्तोभ सहित उसका एक स्वरूप दिखलाया गया है।

ऋचा

अग्न आ याहि वीतये।
गृणानो हव्य दातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि।

वर्णस्तोभ

ओग्ना इ। आया ही ३ वोइ तो या २ इ।
तो या २ इ। गृणानो ह। व्य दा तो या २ इ।
तो या २ इ। ना इ हा ताया २३ त्सा २ इ।
वा २३४ औ हो वा। हीं २३४ षी।

इस स्तोभयुक्त गान पर विचार करने से स्पष्ट ही पता चलता है कि इसमें अनेक वर्ण गाने की सुविधा के लिए बीच में जोड़ दिये गये हैं। 'अग्न आ' में 'अ' में 'ओ' तथा 'वीतये' में 'व' में ओ, त में ओ और य में 'आ' जोड़ा गया है। इसी प्रकार से 'निहोता' के न में आ, स त्सि के 'स' में आ 'बर्हिषि' के 'व' में आ जोड़ा गया है। इस प्रकार कहीं-ओ, कहीं आ कहीं 'हो वा' जोड़ कर यह ऋचा सामगायन के अनुरूप बनाई गई है।

पद स्तोभ में ऋचा के बीच पूरे शब्द या पद जोड़ दिये जाते हैं। इनका भी उद्देश्य प्रधान रूप से छन्द में गेयता लाना ही होता है। यह ऋचा देखिये—

ऋचा

त्वमग्ने यज्ञाना होता।
विश्वेषा हित
देवेभि र्मानुषे जने।

पद स्तोभ

त्वमग्ने यज्ञानाम्। त्वमग्नाइ।
यज्ञाना होता। विश्वेषा हा २३ इता।
देवे भा २३ इ मा। नु षे जना।
औ ३ हो वा। हो ५ इ। डा।

यहाँ पर ऋचा के अन्त में 'औ ३ हो वा' और 'हो' ५ इ' ये दो पद जोड़े गये हैं। कहीं कहीं ये पद बीच में भी जोड़े जाते हैं। परन्तु ये पद कहाँ बीच में और कहाँ अन्त में जोड़े जायेंगे इसका कोई नियम नहीं बतलाया जा सकता। यह वैदिक लोगों की सुविधा के अनुसार होता है।

वाक्य स्तोभ में पूरे के पूरे वाक्य ऋचा के आदि या अन्त में जोड़ दिये जाते हैं। जो वाक्य, स्तोभ रूप में ऋचाओं में जोड़े जाते हैं उनके कुछ नमूने ये हैं—

'अगन्मज्योतिरमृता अभूम।
'नमोऽग्नाय नमोऽग्नपतये।
"ये देवा देवा दिविषद अन्तरिक्षसद
पृथिवी सद।

ये वाक्य ऋचाओं में सामगायन के समय जोड़ दिये जाते हैं। इन्हीं को वाक्य स्तोभ कहते हैं।

लोक गीतो में स्तोम उपर्युक्त उदाहरणो से यह स्पष्ट पता चलता है कि सामगायन मे वर्ण स्तोभ, पद स्तोभ और वाक्य स्तोभ का प्रयोग किया जाता था। ये गान की सुविधा के अनुसार मन्त्र के आदि, मध्य एव अन्त में जोडे जाते थे।

लोक गीतो के गाने की पद्धति पर जब सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हैं तब हम इन तीनो प्रकार के वर्ण स्तोभ, पद स्तोभ, वाक्य स्तोभ को पाते है। कहीं-कही मात्रा स्तोभ भी प्राप्त होता है। सामगायन की भांति ये स्तोभ भी कही गीत के प्रारम्भ मे, कही मध्य मे और कही अन्त में उपलब्ध होते है।

१. मात्रा स्तोभ

मचिया बइठली ए सासु, सुनहु बचनीया।
राउर बेटा मोरग चलले, कवना राम अवगुनिया।[1]

यहां पर 'कवन' कौन शब्द में 'आ' जोडा गया है जिससे 'कवना' रूप तैयार हुआ है। इसी प्रकार से 'भइसल पइसली ए गोतिनी, सुनहु बचनिया'[2] इस गीत में 'पइसल' प्रविष्ट में 'ई' जोड कर इसमें गेयता लाई गई है। अत ये दोनो उदाहरण मात्रा स्तोभ के हैं।

२. वर्ण स्तोभ

वर्ण स्तोभ के उदाहरण लोक गीतो में प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। ये कही शब्दो के बीच में लगाये जाते हैं और कही अन्त में, जात का यह गीत सुनिये[3]—

बाव बहेले पुरवइया, अलसी निनिया अइली हो।
नीनी भइली बइरिनिया, पिया फिरि गइले हो।
धरवा रोवे धरनी ए लोभिया,
बाहारावा राम हरिनिया।
दाहावा रोवे चाका चकइया,
बिछोहवा कइले निरवामोहिया।

उपर्युक्त गीत के रेखाङ्कित शब्दों मे जैसे निनिया, बइरिनिया, हरिनिया, चकइया आदि के अन्त में 'इया' प्रत्यय जोडा गया है। 'निरवामोहिया' का मूल रूप निरमोही (निर्दय) है। इसमें शब्द के बीच में 'वा' और अन्त में 'इया' वर्ण जोडा गया है।

भोजपुरी में गीत को गेय बनाने के लिए शब्दो के अन्त में 'इया' अथवा 'वा' जोड दिया करते हैं। ऐसे सभी शब्द वर्ण स्तोभ के उदाहरण है।[4]

"माघ लागि देवर बारावा बढवली हो,
बलमुवा लागि ना।
देवर सचिले जोबनवा हो,
बलमुवा लागि ना।

यहां पर बार, बलमु और जोबन शब्द मे 'वा' अक्षर जोडा गया है। अत ये भी वर्ण स्तोभ के उदाहरण हैं।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २२२। २. वही ३. वही० पृ० २२२, २२३।
४. वही० पृ० २१७।

३. पद स्तोभ

इसके भी उदाहरण लोक गीतों में बहुत पाये जाते हैं। चैता और जात के गीतों में यह विधि विशेष रूप से पाई जाती है। चैता के गीतों में प्रारम्भ में 'आहो रामा' और अन्त 'हो रामा' प्रायः सर्वत्र जोड़ा जाता है।[1]

"आहो रामा सूतल रहली पिया सगे सेजिया हो रामा।
बाते बाते, लागि गइले पियवा मे रेरिया हो रामा।
बाते बात।
आहो रामा मुँहवा से निकलेना बातिया कुबोलिया हो रामा।
ताहि बोलियें, पियवा भइल बयरगिया हो रामा।
ताहि बोलिय॥"

यहाँ रेखांकित शब्द सभी पद स्तोभ के उदाहरण हैं क्योंकि ये गीत के मूलभूत अंग न होकर केवल गाने की सुविधा के लिये जोड़े गये हैं। जात के गीतों में कहीं गीत के आदि में 'ए राम' और अन्त में 'हो राम' और कहीं 'न रे जी', कहीं 'रे ना', कहीं 'हा ना' आदि विभिन्न प्रकार का पद स्तोभ पाया जाता है। नीचे की जतसार में आदि और अन्त दोनों में स्तोभ जोड़ा गया है।[2]

'ए राम हरि मोर गइले विदेसवा,
त दुइ नवरगिया लगवले हो राम।
ए राम हरिजी के लावल नवरगिया,
त नवरग झुरा गइले हो राम।

एक दूसरा गीत लीजिये[3]—

'हाथे गुन्देलिया ए हरिजी,
चढ़ली जवनिया नु रे जी।
बइसे बइसे रहली ए हरिजी,
उतरी बनिजिया नु रे जी।"

इस गीत में प्रत्येक पंक्ति में 'नु रे जी' जोड़ा गया है। इसी प्रकार 'हां ना' 'रे ना' आदि उदाहरण समझना चाहिये।[4]

४. वाक्य स्तोभ

कहीं-कहीं गीतों में गाने की सुविधा के लिए पूरा वाक्यांश जोड़ा जाता है। निरगुन के गीतों में पंक्ति के आदि में 'कि आहो मोरे रामा' जोड़ने की प्रथा पाई जाती है, जैसे[5]—

'नदिया के तीरे तीरे बछरू चरावलें,
कि आहो मोरे रामा सावनवा रे झड़ी लागेला ए राम।
बाट में चलत बटोहिया भइया हितवा,
कि आहो रामा, हमरो सनेसवा लेले जइह ए राम।

यहाँ पर 'कि आहो मोरे रामा' इतना वाक्यांश स्तोभ रूप में प्रयुक्त हुआ है।

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २३५। २ वही पृ० ८६। ३ वही पृ० ८७। ४. वही. पृ० १०१। ५ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३७१।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामगायन में जिस प्रणाली स्तोभ का प्रयोग किया जाता था, वह ठीक उसी रूप में भोजपुरी लोकगीतों के गाने में उपलब्ध होती है।

ख लोकगीतो की स्वरलिपि

लोकगीतो की रक्षा के लिए उनका सग्रह एव स्वरलिपि का निर्माण अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक सभ्यता के प्रचार के साथ लोक गीतो के गवैया का प्रतिदिन अभाव होता जा रहा है। आजकल घर की बूढी दादियो के कोमल कठ में ही ये लोकगीत सुरक्षित हैं। पढी हुई आधुनिक लडकियाँ इन्हे गाना असभ्यता का सूचक समझती है। शिक्षित लडके भारतीय सभ्यता के प्रतीक इन गीतो को हेय दृष्टि से देखते है। अहीरो के लडके बिरहा जिनका जातीय गान है भी अपने बपौती गाना को गाने मे लज्जित होते हैं। कभी समय था जब गाँवो में लोक गीतो के गानेवालो की कमी नही थी। परन्तु अब तो इनके गानेवाले केवल बूढे स्त्री पुरुष ही मिलेंगे जिनकी सख्या अँगुलियो पर गिनने योग्य है। अत इन गवैयो से इन गीतो को गवा कर यदि इनकी स्वरलिपि न बना ली गई तो कुछ दिनो में इनके गाने की विधि का जानना एक विषम समस्या बन जायगी। उचित तो यह है कि इन गीतो को गवाकर इनके रेकार्ड तैयार कर लिये जायँ। परन्तु यह कार्य बडा व्ययसाध्य है और किसी व्यक्ति विशेष की शक्ति के बाहर है। इसे तो कोई बडी सस्था अथवा सरकार ही सम्पन्न करा सकती है।

जहाँ तक हमें ज्ञात है किसी भी भारतीय भाषाओंके लोकगीतोकी स्वर लिपि (नोटेशन) अभी तक तैयार नही हुई है। वैरियर एलविन ने अपनी पुस्तक 'फोक सान्स आफ मैकल हिल्स' में गोडो के कुछ गीतो की स्वरलिपि अवश्य दी है परन्तु वह पूर्ण नही है। अत सभवत यह प्रथम प्रयास है जबकि भोजपुरी के कुछ गीतों की स्वरलिपि यहाँ प्रस्तुत की जाती है। स्वरलिपि के लिए हमने पचीस प्रकार के प्रधान प्रधान लोक गीतो को चुना है। प्रत्येक गीत के जितने प्रधान राग हो सकते हैं उनके एक एक नमूने को लिया गया है और उनकी स्वरलिपि तैयार की गई है। झूमर कजली चैता आदि गीतो के दो-दो, तीन-तीन रागो में गाये जानेवाले गीतो की स्वर लिपि निबद्ध की गई है जिससे किसी भी राग मे गेय गीत की स्वरलिपि लिपिबद्ध होने से वचित न रह जाय। प्रत्येक गीत को उसके जाननेवाले, परम प्रवीण पेशावाले गवैया से गवाकर उसकी स्वरलिपि का निर्माण किया गया है। इन गवैयो में एक दो विहारी भी थे। अत उनके गाने में प्रान्तीयता का पुट पाया जाता है। प्रत्येक गीत के साथ उसका ताल भी दिया गया है जिससे गीतो को समझने में सुविधा हो। सगीत शास्त्र की दृष्टि से इन गीतो की क्या विशेषता है इसका सक्षिप्त विवरण अगले पृष्ठो में प्रस्तुत किया जायगा।

सगीत शास्त्र की दृष्टि से इन लोक गीतो का महत्व अत्यधिक है। ग्रामीणो के हृदय की अभिव्यक्ति में शब्दों और स्वरो दोनों का योग समानरूप से पाया जाता है। यद्यपि लोकगीतो मे सगीत का सर्वांगपूर्ण शास्त्रीय रूप नही मिलता, तथापि इससे वे सवथा पृथक् हैं ऐसा भी नही कहा जा सकता।

सगीत शास्त्र की दृष्टि से लोक गीतों की विशेषताएँ

इन लोकगीतो में अधिकतर शास्त्रीय परम्परा के कहरवा ताल, खेमटा ताल और जत ताल प्रयुक्त हुए हैं। जत ताल १४ मात्राओ का है और खेमटा ६ मात्राओ का। कहरवा ताल कुछ गीतो में ४ मात्राओ का अधिक सगत प्रतीत होता है और अन्य गीतो मे ८ मात्राओं

का भी प्रयोग हुआ है। सभी लोकगीतों में कुल चार थाटों (ठाटों) क ही अंश उपलब्ध होता है। ये ठाट हैं १. बिलावल २ खमाज ३. काफी और ४. भैरव। बिलावल थाट पूर्वी के इस निम्नांकित गीत में पाया जाता है।

'जेठ बैसखवा के तलफी भुभुरिया
हो महेन्दर मिसिर।'
चलत में गोडवा मोर पिराय,
हो महेन्देर मिसिर।

चैता के इस गीत में खमाज थाट का प्रयोग हुआ है —

"मानिक हमरो हेरइले हो रामा
जमुना में।
केहू नाही खोजेला हमरो पदारथ हो रामा,
जमुना में।"

काफी थाट छठी माता के इस गीत में पाया जाता है—

"गगा का तीरे ती बोअली में राई।
राजा जी के मिरिगा चरि ए चरि जाई।
ए छठी माता करबि सेवकाई।
करबि सेवकाई।।"

भैरव थाट का व्यवहार निम्नांकित पूर्वी गीत में उपलब्ध होता है—

"सभका के देल भोला अन धन सोनवा।
बनवारी हो हमरा के लरिका भतार।
लरिका भतार लेके सुतली अगनवा।
बनवारी हो जरि गइले एडी रे कपार।"

परन्तु ये उपर्युक्त गीत इन थाटों के आश्रय रागों के स्वरूप से सर्वथा भिन्न हैं। इनमें

[illegible]

कोमल और तीव्र के बीच का लगता है जो गान्धार की एक श्रुति है। उदाहरण के लिए पराती का यह गीत देखिये—

"आरे जाग हो दसरथ के दुलरुवा।
तोहरा जगले जगत सभ जागेला
जाग हो दसरथ के दुलरुवा

यह प्रयोग अत्यन्त सुन्दर लगता है।

भैरव थाठ का यह एक गीत मिलता है।

"अपना बाबा के रेसमी बडी रे दुलरुई।
आरे सेर भरि मरिची चबाले गोरिया।
रेसमी।"

परन्तु इसमें भी सभी स्वर इसके नहा हैं। केवल धैवत कोमल है।

---

१. उदाहरण—सब का देल भोला अन धन सोनवा।। पूर्वी।। २. उदाहरण—मानिक हमरो हेरइले हो रामा।। चैता।।

इन उल्लेखो से ज्ञात होता है कि यद्यपि इन लोकगीतो में शास्त्रीय सगीत का सम्पूण स्वरूप एकत्र नही दिखाई पडता फिर भी प्राचीन सगीत के बहुत से स्वर, थाट, राग और ताल इ में पाये जाते है। बहुत सभव है कि इन गीतो मे विचित्र स्वर राग एव ताल मिल सकें, जिनका शास्त्रीय सगीत मे नितान्त अभाव है। अत सगीत की दृष्टि से भी इन गीतो का अध्ययन होना अत्यन्त आवश्यक है। लोक सगीत और शास्त्रीय सगीत मे किसका किस पर कितना प्रभाव पडा है इस दृष्टि से भी लोक सगीत का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

अध्याय ८

लोक गीतों में समान भाव धारा

मानव हृदय सर्वत्र समान है। प्राकृतिक और भौगोलिक विशेषतायें लोक हृदय में भेद नही उपत्न कर सकती। मनुष्या द्वारा निर्धारित सामाजिक और जातीय भेदभाव के नियम भी उसे अपने बन्धन मे नहीं बाध सकते। मानव हृदय के बीच पृथकता की कोई दीवाल नहीं खडी की जा सकती और न इसका वर्गीकरण ही किया जा सकता है। मनुष्यो के हृदय में सर्वत्र एक समान ही भाव धारा प्रवाहित होती है और इसका प्रतिविम्ब उनके लोक गीतों में हमें देखने को मिलता है। यही कारण है कि ससार के लोक साहित्य में सर्वत्र एक ही अन्तर्धारा वहती हुई दीख पडती है। क्या लोक गीत, क्या लोक गाथा और क्या लोक कथा सभी में यह बात समान रूप से पायी जाती है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि "प्रान्त-प्रान्त मे लोक गीतो की यह आपसदारी हिन्दुस्तानी सस्कृति की एकता का एक जवरदस्त प्रमाण है। अनेक क्षुद्रताओं के बीचो बीच लोक जीवन का रचनात्मक सौन्दर्य हजारो वर्षों से इन गीतो में नाना रग भरता रहा है। भाषायें बदलती रही हैं, भाषा का चोला बदल-बदल कर भी लोक गीतो ने अपनी पुरातन पुकार कायम रखी है।"[1]

सत्यार्थी जी की उपर्युक्त उक्ति अक्षरश सत्य है। भिन्न-भिन्न प्रदेशो के लोकगीतों के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात यथार्थ प्रमाणित होती है। भोजपुरी माता जिस प्रेम के साथ 'लोरी' गाकर अपने बच्चे का मनोरजन करती है, सुदूर गुजरात में स्थित गुजराती माता भी उसी प्रेम से 'होलरडा' गाती हुई दिखाई पडती है। राजस्थानी गीतों में पुत्री अपने वर के चुनाव के लिए पिता से जैसा नम्र निवेदन करती है लगभग उसी शब्दावली का प्रयोग मिथिला की कन्या भी करती हुई पाई जाती है। विवाह के पश्चात् गवना के समय पुत्री के वियोग का जो कारुणिक एवं मर्मभेदी वर्णन भोजपुरी लोक गीतो में पाया जाता है वैसा ही मर्मस्पर्शी उल्लेख काश्मीरी, मारवाडी, बगला और मराठी लोकगीतो में उपलब्ध होता है। दक्षिण भारत की तामिल, तेलुगु आदि द्राविड भाषाओं में भी यही स्रोत अविच्छिन्न रूप से बहता दिखाई पडता है। भारतीय भाषाओं की तो चर्चा दूर रही विदेशी भाषाओं अंग्रेजी, फ्रेंच, ग्रीक एव जर्मनी के गीतो में भी भारतीय भावों की अन्तर्धारा प्रवाहित हो रही है। गीतों की यही समान भावधारा भारतीय सस्कृति की एकता का मूलसूत्र है और मानव हृदय की एकात्मता का प्रबल प्रमाण है।

भोजपुरी प्रान्त में लोरी गाने की वडी प्रथा है। छोटे-छोटे बालको को सुलाने के के लिये मातायें लोरियाँ गाती हैं और अपने प्यारे बच्चे को थपथपाती जाती हैं। भोजपुरी की यह लोरी सुनिये[2]—

"चाना मइया आरे आव पारे आव,
नदिया किनारे आव।

---

१. सत्यार्थी, बेला फूले आधी रात पृ० ९५। २. लेखक का निजी सग्रह पृ० ९९।

सोना के कटोरवा में दूध-भात लें-ले आव ।
बउआ के मुहवा में घुटुक ।"

अर्थात् हे माता के समान चाँद तुम आवो । सोने के कटोरे में दूध और भात लेते आवो और मेरे बच्चे के मुह में धीरे से खिलावो ।

आन्ध्र देश में लोरी का पर्यायवाची शब्द 'जौल पाटा' है । सूर्य के प्रकाश में चाहे शिशु आँखें भले ही न खोले परन्तु चन्द्रमा के शीतल प्रकाश में उसे विशेष आनन्द आता है । तेलुगु लोकगीतों (लोरियां) में चन्द्रमा को मामा कह कर सम्बोधित किया गया है । शिशु चन्द्रमा को पकड़ना चाहता है । उस समय तेलुगु मा गाती है'—

"चन्द मामा रावे । जा बिल्लो रावे ।
कडे कि रावे । कोटि पूलू ते वे ।
बडि मीदा रावे । बन्ति पूलू तेवे ।'

अर्थात् हे चाँद मामा ! आ ! गाड़ी पर चढ़ कर आ । फूल लेकर आ । पीले-पीले फूल देकर चला जा । जहाँ भोजपुरी में चन्द्रमा को माता कहा गया है वहाँ तेलुगु लोरियों में उसे 'मामा' की उपाधि से विभूषित किया गया है ।

(४८१)

उड़िया भाषा में लोरियों को 'बिल्ला खेला गीता' कहते हैं । उड़िया की एक लोरी में चन्द्रमा के साथ उपहास किया है'—

"जन्हाँ मामू रे जन्हाँ मामू
मो कथा हो सुनो ।
बिल र माछ चील खाई गला
तइन्ही खाडिए बुणो ।"

अर्थात् चाँद मामा, ओ चाद मामा ! मेरी बात सुनो । खेत की मछली को चील खा गई तुम जाल तैयार करो ।

जिस प्रकार तेलुगु भाषा में चन्द्रमा को मामा कहा गया है उसी प्रकार उड़िया में भी उसे 'मामा' के ही नाम से पुकारा गया है ।

गुजरात में लोरिया को 'होलरडा' कहते हैं । श्री झवेरचन्द्र मेघाणी ने इन लोरियों का सग्रह इसी उपर्युक्त नाम से प्रकाशित किया है ।' कोई गुजराती मा शिशु की व्याख्या कर रही है'—

"तमे मारा देवना दिधेल छो ।
तमे मारा मागीली दिधेल छो ।
आत्या त्यारे अम्मर रई ने थी
यादेव जाया उतावली ने गई चढाव फूल ।
मादेव जी परमन थये आव्या तमें अणमूल ।"

'शिशु' नामक ग्रन्थ में यही भाव महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मा के मुह से शिशु के प्रति कहलवाया है ।'

---

१. सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात पृ० २४४ । २ वही. पृ० २४४ । ३ गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, अहमदाबाद । ४ सत्यार्थी : बेल फूले आधी रात पृ० २४६ । ५ वही पृ० २४६ ।

"सकले देवतार आदुरे धन।
नित्य कालेर तुई पुरातन।
सवार छिली आमार होली वे मोने।"

पुत्र जन्म के अवसर पर किस प्रकार उछाह और उत्सव मनाया जाता है ब्राह्मणा, भिक्षुओ और गुरुजनो को अन्न, धन, बाटा जाता है इसका बडा सुन्दर वर्णन भोजपुरी सोहरा में पाया जाता है। गत अध्याय में 'सोहर' की चर्चा के प्रसग में भोजपुरी सोहरा से राजस्थानी एव मैथिली पुत्र जन्म के गीतो के समान भावो का तुलनात्मक विवेचन किया जा चुका है।

जब लडकी विवाह योग्य हो जाती है तो उसकी अपने लिए सुन्दर वर पाने की उतनी ही अधिक इच्छा होती है जितनी पुरुष को सुन्दरी स्त्री को पाने की। सस्कृत के किसी कवि ने कहा है कि 'कन्या वरयते रूपम्" अर्थात् कन्या वर के रूप को ही पसन्द करती है। भोजपुरी लोक गीतो की कोई युवती लज्जा का परित्याग कर अपने पिता से कहती है कि ए पिताजी, मेरे लिये सुन्दर वर खोजना क्योकि अब मै विवाह के योग्य हो गई हूँ।[1]

"छोटी मोटी सीता कवरवनि ठाढी,
बाबा से अरज हमार ए।
आरा हमरा के बाबा सुनर बर साजिह,
अब भइला बीयहन जोग ए।"

परन्तु पिता वर खोजने में भूल कर जाता है और काले वर से विवाह कर देता है। इस पर पिता के प्रति पुत्री की उक्ति कितनी मार्मिक है। यह उक्ति मनोवेदना एव व्यग्य से भरी हुई है?[2]

"बाबा न देखी बाग बगइचा
बाबा ना देखी फुलवारी ए।
काहा दल उतरी ए बेटी,
बरियाति टिकाइबि फुलवारी ए।
रउरा चुक्ली ए बाबा हमरी बेरिया,
हमरा वरियवा वर आवे हो।
साँवर साँवर जनि कहु बेटी,
साँवर कृष्ण कन्हाई हो।"

उपर्युक्त गीत की 'रउरा चुक्ली ए बाबा हमरी बेरिया' इस पक्ति में कितना व्यग्य, कितना आत्मक्षोभ भरा पडा है। पुत्री के कहने का आशय यह है कि ए पिता जी। आपने मेरे भाई के लिए तो सुन्दर स्त्री को चुना परन्तु जब मेरे लिये सुन्दर वर का प्रश्न आया तो अधिक तिलक या दहेज देने के डर से काला ही वर खोज दिया।

राजस्थान की एक लडकी भी अपने वर के चुनने के लिए पिता से कुछ इन्ही शब्दो में प्रार्थना कर रही है। वह पिता से कहती है कि पिताजी, काला वर मत ढूँढना जो कुल को लजावे। गोरा वर मत ढूँढना कि थोडा सा परिश्रम करते ही पसीना आ जाय क्योकि गोरापन सुकुमारता का लक्षण है लम्बा वर मत खोजना जो खडा-खडा ही सागर शमी वृक्ष की फली को तोड ले और न ठिगना वर खोजना जिसे लोग बौना कहें। मेरे लिए ऐसा वर खोजना जो काशीवास (अध्ययन) कर चुका हो। जब वह हाथी पर

१ डा० उपाध्याय: भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १५६। २. वही पृ० १६१।

चढ़ कर आवेगा तो तुम्हारी बाई के मन को भावेगा।[1]

"कालो मत हेरो बावाजी, कुल ने लजावे,
गोरो मत हेरो बावाजी, अंग पसीजे,
लांबो मत हेरो, बाबा, सागर चूटे,
ओछो मत हेरो, बावा, बावन्यू बतावे,
ऐसो वर हेरो, कासी रो वासी,
बाई रे मन भासी, हसती चढ़ आसी।'

राजस्थानी कन्या की रुचि भोजपुरी कन्या की अपेक्षा बड़ी परिष्कृत ज्ञात होती है। अब गुजराती कन्या की विनती सुनिये जो अपने पिता से कहती है कि दादा, मेरे लिये ठिगना वर मत खोजना क्योंकि लोग उसे वामन कहेंगे। काला वर मत खोजना क्योंकि उससे कुटम्ब की लज्जा होगी, अपमान होगा। गोरा भी मत खोजना क्योंकि वह सदा आत्म प्रशंसा करता रहेगा। मेरे लिये श्यामल द्युतिवाला वर चाहिये जो मेरे मन को भावे।[2]

'एक ऊंचो ते वर नो जोजो रे दादा,
ऊँचो ते नित नूवाँ मोगशे।
एक नीची ते वर नो जोजो दादा
नीचो ते नित ठेबे आवशे।
एक कालो ते वर नो जोजो रे दादा,
कालो ते कटब लजावशे।
एक गोरो ते वर नो जोजो रे दादा
गोरो ते आप वखाणशे।
एक कड्यर पातली यो ने मुख रे शामलीयो
ते मारी सैयर वखाणीयो।"

इन उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट पता चलता है कि अपने भावी पति के चुनाव के संबंध में भोजपुरी कन्या के मानस में जो मनोकामना हिलोरे मार रही है उससे राजस्थानी कन्या का भी हृदय चचल हो उठा है, और इस चंचलता का प्रतिविम्ब गुजराती कुमारी के मनमुकुर में स्पष्ट दिखाई पडता है।

भोजपुरी गीतों में गवना के गीत बडे ही करुणाजनक होते हैं। जब बेटी अपने पिता से विदा होकर ससुराल जाने लगती है उस समय का दृश्य सचमुच ही बडा हृदयविदारक होता है। इस अवसर पर बडे-बडे धैर्यशालियों का भी धीरज छूट जाता है। कालिदास ने शकुन्तला की विदाई के अवसर पर कण्व जैसे वितिराग महर्षि के भी रोने का वर्णन किया है। फिर बेटी की विदाई का यह भोजपुरी गीत कितना मर्मस्पर्शी है—[3]

"बाबा के रोअले गगा बढि अइली
आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भीजे,
भउजी नयनवा ना लोर।"

१: पारीक : रा० लो० गी० भाग २ पृ० १६०, १६१। २. वही. पृ० १३ भूमिका। ३. डा० उपाध्याय भो० गी० भाग १ पृ० ३७ (भूमिका)।

अर्थात् पुत्री के वियोगजन्य दु ख से पिता के रोने के कारण गगा में बाढ आ गई। माता के रोने से उसकी आँखो के सामने अँधेरा छा गया है। भाई के रोने से उसके पैर तक की धोती भीग गई है। परन्तु भावज की आँखो में तनिक भी आँसू नही है।

एक दूसरे गीत में पुत्री अपने पिता से कहती है कि ए पिताजी! आज की रात के कष्ट को सह लीजिये। मैं कल प्रात क ल ही यहाँ से बडी दूर चली जाऊँगी। आपका घर जगल हो जायग और आगन भादो की रात के समान भयावना मालूम पडेगा।[1]

> 'सहु बाबा सहु रे बाबा आज की रतिया हो।
> बाडा हो पाराते हो बाबा जाइबी बडी दूर।
> दुवरा राउर होइहैं ए बाबा रन रे वन।
> आगन रउरा होइह ए बाबा भदउवा निमुराती।"

एक पजाबी लोकगीत में कन्या अपने पिता से विदाई के समय यह कह रही है कि मैं तो एक चिडिया हूँ, मुझे तो एक दिन उड जाना होगा। मेरी उडान बडी लम्बी है। मुझे किसी अनजान देश में उड कर जाना होगा हे पिता! मेरे बिना तेरा चौका बर्तन कौन करेगा? तुम्हारे महल के बीच में मेरी अम्मा रो रही है।

> "साडा चिडियाँ दा चम्बा वे, बाबल असीं उड जाना।
> साडी लम्बी उडारो वे, बाबल केहडे देश जाना।
> तेरा चौका भाडा वे, बाबल तेरा कौन करे।
> तेरा महल दाँ विच विच वे, बाबल मेरी मा रोवे।[2]"

उपर्युक्त गीत में पुत्री की उपमा चिडिया से दी गई है जो बहुत सुन्दर है। पजाबी गीत के 'साडी लम्बी उडारो वे, बाबल केहडे देश जाना' और भोजपुरी गीत की इस निम्नाकित पक्ति 'बाडा हो पाराते हो बाबा, जाइबि बडी दूर' में कितना भाव साम्य है।

इसी प्रकार एक गुजराती बहिन (बेन) अपनी दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि मैं तो एक हरे भरे जगल की चिडिया हूँ। आज दादा जी के देश में हूँ कल उड कर परदेश चली जाऊँगी।[3]

> "अमे रे लीलुडा वननी चर कलडी,
> उडी जाशु परदेश जो।
> आज रे दादा जा ना देश मा,
> काले जाशु परदेश जो।"

राजस्थानी भाषा में कन्या की विदाई के गीतो को 'बधावा' कहते हैं। एक राजस्थानी गीत में लडकी की विदाई पर माता के विरह क्लान्त हृदय की भावनाओ को देखिये[4]—

> "कोयल ए कोयल बैरण, पिहु पिहु बोल।
> हाँ ए बैरण, पिहु पिहु बोल।
> न्हढती बाई ने ये सबद सुणाइयो।
> डूगर रे डूगर राजा, नीचो सो झुक ज्याय।
> हाँ ओ राजा, नीचो सो झुक ज्याय

---

१ डा० उपाध्याय भो० लो गी० भाग १ पृ० ३७ [पृष्ठभाग]। २ वही भो० अ० गी० भाग १ पृ० ३८। ३ मेघाणी 'लोक साहित्य पृ० १८३। ४ पारीक रा० लो० गी० भाग १ पृ० २००।

चढ़ती बाई की ओ दीखै रग चूनडी ।
चढ़तै जवाई की दीखै पचरग पागडी ।'

ए री बैरिन कोयल ! तू विदा होती हुई बाई को 'पिऊ-पिऊ' का मीठा शब्द सुना। ए मेरे पर्वतराज ! तू जरा नीचा झुक जा जिससे मैं विदा होकर जाती हुई अपनी प्यारी बेटी की चूनडी को दूर तक नजर भर कर देख सकू और देख सकू प्यारे जमाई की पचरग पगडी को।

मैथिली में गवना के गीत 'समदाऊनि' के नाम से विख्यात है जिनमें करुण रस की सरिता अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है। यह गीत सुनिये'—

"गैया ज हुकरय दुहान बेर बेर।
बेटी क माए हुकरय रसोइया बेर बेर।
धियवा के कनइत में गगा बढि गेल।
दमदा के हसइत में चादरि उडि गेल।"

अर्थात् दूध दुहने के समय गाय अपने बछडे के लिए हुकारती है और बेटी की मा बेटी की जुदाई में भोजन करते के समय विसूर रही है। माता से विदा होने के समय पुत्री के रोने से गगा में बाढ आ गई और दामाद के हसने से चादर उडने लगी।

भोजपुरी के गवने के गीत और इस समादाऊनी में कितना साम्य है। पहिले गीत में में माता की ममता दिखाई गई है तो दूसरे में पुत्री के प्रेम की पराकाष्ठा का वर्णन है। पुत्री की बिदाई के समय भोजपुरी माता का जो प्रगाढ प्रेम लक्षित होता है उसका प्रति-बिम्ब राजस्थानी, पजाबी, मैथिली आदि सभी गीतो में स्पष्ट दिखाई पडता है।

स्त्रियो के दिव्य सतीत्व की झाकी भी हमें इन लोक गीतो में दिखाई पडती है। जिस प्रकार सती कुसुमा देवी ने अपने सतीत्व की रक्षा आततायी यवनो से की यह लोक गाथा प्रसिद्ध है। कुसुमा देवी का यह गीत भोजपुरी भाषा के साथ ही अवधी भाषा में भी पाया जाता है। इसका रूपान्तर अन्य भाषाओ में भी पाया जाता है जिससे पता चलता है कि सतीत्व की कल्पना या भावना सभी प्रदेशो में प्राय एक समान ही है। भोजपुरी प्रदेश मे जिस प्रकार बिहुला और बाला लखन्दर की प्रेम गाथा प्रसिद्ध है उसी प्रकार पजाब में हीर और राझा की प्रेम कहानी सर्वत्र गाई जाती है। राजस्थान में ढोला और मारु की प्रेम कथा भी ऐसी ही प्रसिद्ध है। बगाल में भी बिहुला की कथा का बडा प्रचार है। ढोलामारु और हीरा-राझा की प्रेम गाथाओ में नाम का अन्तर भले ही हो परन्तु प्रेम का मूल सूत्र जो मानव हृदय को एक सूत्र में बाधता है वह सभी कथाओ में एक ही है। प्रेम की जो पवित्र सरिता ढोला और मारु के हृदय में बह रही है उसी से हीर राझा और बिहुला बाला लखन्दर का मानस भी आप्यायित हो जाता है।

करुण के साथ वीर रस की भी सुन्दर अभिव्यक्ति अनेक लोकगीतो में हुई है। भोजपुरी में आल्हा और ऊदल की वीर गाथा बडी प्रसिद्ध है। गवैये बरसात के दिनो में ढोल बजाकर बडे ऊँचे स्वर से 'आल्हा' गाते है। इस वीर गाथा को सुनकर बूढो को हृदय में भी जोश भर आता है। बुन्देलखडी बोली में भी 'आल्हा' पाया जाता है जो सभवत मूल 'आल्हा' का परिवर्तित रूप है। वीर गाथाओ का प्रचार केवल इसी प्रान्त में नही है बल्कि अन्य प्रान्तों मे भी पाया जाता है।

---

१ राकेश मै० लो० गीत० पृ० १७३ ७४।

भारतीय संस्कृति की वीणा से आज भी वीर स्वर निकल रहे हैं। सुदूर आसाम प्रान्त की मणिपुर रियासत के लोकगीत का यह वीर रस पूर्ण उद्गार सुनिये[1]—

"खुगा बी पागो लू लामे
लू लामे लू लामे।
टराग लू लाम का थाया
खुगा बी पागो लू लामे।"

अर्थात् सिर काट लिया गया, युद्ध का गीत गाओ। युद्ध का गीत गाओ। सिर काटना कितना शुभ कार्य है। सिर काट लिया गया, गीत गाओ।

उडीसा के 'बरहमपुर गजाम' जिले की उदयगिरि एजेन्सी में 'कोंड' नामक एक पहाडी जाति बसती है। यह जाति जंगल में शिकार करने में बडी दक्ष है। शेर के शिकार का यह वीरतापूर्ण गीत सुनिये[2]—

"एटा वाईना वाईना वाईना।
कताजामू कताजामू कताजामू।
कडाडी वाईना डे कताजामू।
एरा वाईना वाईना कताजामू।"

अर्थात् शेर आता है उसे काट डालो।

कोई पंजाबिन स्त्री गाती है कि मेरे भाई की लाठी काले रंग की है। वह जहाँ भी चोट करती है, बादल की तरह गरजती है।[3]

"जित्थे वज्जदी बद्दला वागू गज्जदी।
काली डाग मेरे वीर दी।"

इसी प्रकार से भोजपुरी के निम्न गीत में वीर रस कूट कूट कर भरा पडा है।

"बिरना हाली हाली जेवो
बिरन मोरा बलैया लेऊँ बीरन।
बिरना मुगल लडैया के ठाड
बलैया लेऊँ बीरन।"

जिस प्रकार नदी के प्रवाह में सदा परिवर्तन होता रहता है उसी प्रकार मानव हृदय में भी परिवर्तन स्वाभाविक है। उसमें कभी करुण, कभी शृंगार और कभी वीर रस का प्रादुर्भाव होता है। यह समय की गति के साथ परिवर्तनशील है। यही कारण है कि लोक हृदय के प्रतिबिम्बस्वरूप इन लोक गीतों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव लोकगीतों पर भी पडा है जिसका विस्तृत वर्णन, आधुनिक लोक गीतों के विषय तथा उनमें भाव व्यंजना वाले प्रसंग में किया जा चुका है। यहाँ पर इस वर्णन का उद्देश्य केवल इतना ही है कि गांधीजी और उनके आन्दोलन की चर्चा किस प्रकार प्राय सभी भाषाओं के लोकगीतों में हुई है। सर्वप्रथम भोजपुरी का यह बिरहा सुनिये जिसमें अंग्रेजी शासन की आलोचना की गई है—

"गांधी के लडइया नाही जितबे फिरंगिया,
चाहे करु केतनो उपाय।
भलभल माजवा उडौले एहि देसवा मे,
अब जइहे कोठिया बिकाय।"

१. सत्यार्थी · बेला फूले आधीरात पृ० २३१। २. वही. पृ० २३३। ३. वही. पृ० २३७।

एक अवधी बिरहा में गांधी जी की उस कलकत्ता यात्रा का वर्णन किया गया है जो उन्होंने सन् ४७ ई० में वहाँ शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से की थी—

'गुमिरी गाधी और गगा,
वस्तर पहिरे रगा रगा
+ +
बैठे गाधी पूजा करते
फेर रहे तुलसी माला ।" आदि-आदि ।

पजाबी लोक गीत गाधी जी के यशोगान में अत्यन्त अग्रगामी नजर आते हैं । अनेक बार गाँव की स्त्रियाँ 'गिद्धा' नृत्य की रगभूमि पर गा उठती हैं—

"आप गाधी कैद हो गया
सानू दे गया खद्दर का बाणा ।
+ +
गाधी कहे फिरगिया नै
हुण छड्ड दे हिन्दुस्तान ।"

मध्य प्रान्त के गोड लोगो के भी लोक-गीतो में गान्धी जी का सन्देश पहुँच गया है ? कोई गाता है[1]—

"अद्दल गरजे बद्दल गरजे
गरजे माल गुजारा हो
फिरगी राज के गरजे सिपाइरा रामा
गाधी क राज होने वाला हाय रे ।"

सथाली लोक गीत भी गाधीजी का यशोगान करने से नही चूकता । सुदूर आन्ध्र देश के लोक गीतों ने भी गाधी जी के चरणों में श्रद्धा के पुष्प अर्पित किये हैं[2]। गाधी जी का जय घोप भारतीय लोक सस्कृति की एकता की एक नई परम्परा का सूचक है । एक तामिल लोक गीत में जनता की प्रतिमा कह उठी है कि गाधी ऋषि हमारी रक्षा करता है । वह महान् ऋषि है—

"गाधी ऋषि ननमें कार्यतुभ महाऋषि[3] ।
गाधी ऋषि ।"

बेला का वर्णन

लोक हृदय की आन्तरिक भावनाओं के चित्रण में तो लोक गीतो में समानता पाई ही जाती है परन्तु इसके साथ ही प्रकृति के वर्णन में भी इनमें एकरूपता दृष्टिगोचर होती है । बेला जनता का परम प्यारा पुष्प है। इसीलिए इसका उल्लेख सभी लोक गीतों में अनेक बार हुआ है। एक भोजपुरी विवाह गान में कन्या की तुलना बेला के फूल से की गई है ।

एक मैथिली झूमर में पुष्प शय्या की कल्पना की गई है जिसमें बेला के

---

१. सत्यार्थी : वही पृ० २६७. २. वही. पृ० ३६६. ३. वही. पृ० ४०५.

फूलो ने उपयुक्त स्थान पाया है । मैथिली 'चैतावर' में भी 'बेला का वर्णन पाया जाता है ।[1]

'बेला चमेली फूले बगिया में
जोबना फूलल मोरे अँगिया हे रामा
नई भेजे पतिया ।'

एक कन्नड लोक गीत में भी शिव की पूजा के लिये बेला के फूल चुने जाते हैं। इसी प्रकार बंगला लोक गीता में इस पुष्प की चर्चा अनेक बार हुई है । बेला का सुन्दर स्वरूप, उसकी मनोहर सुगन्ध और अनुपम लावण्य लोक-हृदय को बहुत प्यारा लगा है इसीलिये इसका सर्वत्र उल्लेख किया गया है[2] ।

—०—

१. वही पृ० ८९ २ सत्यार्थी बेला फूले आधी रात पृ० १७-३६.

द्वितीय खण्ड

लोक-गाथा

अध्याय ६

क. लोकगाथा

नामकरण

भोजपुरी में जो लोक गीत पाये जाते हैं वे दो प्रकार के हैं। पहले वे गीत हैं जो गेय हैं आकार में छोटे हैं, और जिनमें किसी प्रकार की कथा या आख्यान का अभाव है। दूसरे वे गीत हैं जिनमें गेयता तो अवश्य है परन्तु उनकी प्रधान विशेषता उनका लम्बा कथानक है। अंग्रेजी भाषा में पहिले प्रकार के गीतों के लिए लिरिक (lyric) और दूसरे प्रकार के गीतों के लिये बैलैंड (ballad) शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। हिन्दी में इन्हे लोक गीत और लोक गाथा का नाम देना उपयुक्त है। दूसरे प्रकार के गीतों को 'गीत कथा' या 'कथा गीत' भी कहा जा सकता है। परन्तु हमारी सम्मति में लोक गाथा शब्द इन दोनों शब्दों से अधिक भावाभिव्यंजक है। 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पदावली लिरिक्स के लिए प्राचीन समय से होता आया है। हाल की 'गाथा सप्त शती' इसका उदाहरण है। भोजपुरी में गाथा का अर्थ कथा या कहानी होता है। जैसे 'का आपन गाथा सुनवले बाड' तुम अपनी क्या क्या सुना रहे हो। इस प्रकार 'गाथा' शब्द में गेयता और कथानक का अंश दोनों विद्यमान है जो बैलैंड की विशेषता है। राजस्थानी लोक गीतों के संग्रहकर्ता श्री सूर्यकरण पारीक ने भी ग्राम गीत और लोक गीत में पार्थक्य दिखलाने का प्रयत्न किया है और बैलैंड शब्द के लिये उन्होंने 'गीत कथा' का प्रयोग किया है।[1] परन्तु पूर्वोक्त कारणों से 'लोक गाथा' शब्द अधिक समुचित है एवं यही समीचीन जँचता है।

लोक गाथा की परिभाषा

बैलैंड अथवा लोक गाथा की परिभाषा अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है। प्रो॰ केट्रीज का मत है कि बैलैंड वह गीत है जो किसी कथा को कहता है अथवा दूसरी दृष्टि से विचार करने पर बैलैंड वह कथा है जो गीतों में कही गयी हो।[2] हैज़लिट् ने बैलैंड की परिभाषा बतलाते हुए इसे 'गीतात्मक कथानक' कहा है।[3] फ्रैंक सिजविक ने अपनी पुस्तक में बैलैंड की परिभाषा में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए इसे अमूर्त पदार्थ बतलाया है।[4] आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के प्रधान सम्पादक डा॰ मरे ने बैलैंड की परिभाषा देते हुए लिखा है कि 'बैलैंड वह साधारण स्फूर्तिदायक कविता है जिसमें कोई जन प्रिय आख्यान रोचक ढंग से वर्णित हो।'[5]

इस प्रकार ऊपर अंग्रेजी विद्वानों द्वारा बैलैंड शब्द की—जो परिभाषा दी गई है उसकी

---

१. सूर्यकरण पारीक : राजस्थानी लोक गीत पृ॰ ७८, ८५. २. "ए बैलेड इज ए सांग दैट टेल्स ए स्टोरी, और टु टेक दि अदर प्वाइंट आफ व्यू ए स्टोरी टोल्ड इन सांग" इंगलिश एन्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स भूमिका पृ॰ ११. ३. लिरिकल नैरेटिव. ४. दि बैलेड पृ॰ ८ ५. "ए सिम्पल स्पीरीटेड पोएम इन शार्ट स्टेन्जाज़ इन व्हिच सम पापुलर स्टोरी इज ग्राफिकली टोल्ड।" आ॰ ए॰ डि॰।

पर्यालोचना करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बैलैड में गेयता और कथानक इन दोनो होना अत्यन्त आवश्यक है। लोक गाथा के विषय में भी ये ही बातें लागू है। अत लोक गाथा वह गाथा या कथा है जो गीतो में कही गयी हो।

लोक गीत और लोक गाथा के अन्तर को दो प्रधान भागो में बाँट सकते हैं।' स्वरूपगत भेद २ विषयगत भेद। स्वरूपगत भेद के विषय में इतना जानना आवश्यक है कि

लोकगीत और लोक गाथा में अन्तर

गीत आकार या स्वरूप में छोटा होता है परन्तु लोक गाथा का आकार अत्यन्त विशाल होता है। बिरहा लोक गीत है जो चार कडियो में ही समाप्त हो जाता है। परन्तु लोक गाथा का विस्तार सैंकडो पृष्ठो तक चलता रह सकता है। आजकल जो आल्ह खड' उपलब्ध होता है यद्यपि वह मूलरूप में उपलब्ध नही है, वह एक लोक गाथा है। कुछ ऐसी भी लोक गाथायें हैं जो छोटी हैं, जैसे क्षनियाणी भगवती की गाथा। फिर भी लोकगाथाओ का आकार लोक गीतो से कही अधिक बडा होता है।

दूसरा भेद विषयगत है। लोक गीतो में भिन्न सस्कारो-पुत्र जन्म, मुडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना, ऋतुओ में वर्षा, वसन्त, ग्रीष्म और पर्वो पर गाये जानेवाले गीत सम्मिलित हैं, जिनमें घर, गृहस्थी, प्रेम, परित्याग, वन्ध्या, विधवा आदि के सुख दु खो का चित्रण ही प्रधान विषय रहता है। कही कोई वन्ध्या स्त्री अपने भाग्य को कोस रही है, तो कही विधवा का करुण आलाप सुनाई देता है। कहने का आशय यह है कि घर के सकुचित क्षेत्र में जीवन की जिन अनुभूतिया का साक्षात्कार मनुष्य करता है उन्ही की झांकी हमें इन लोक गीतो में देखने को मिलती है, परन्तु लोक गाथा का विषय लोक गीत से कुछ भिन्न है। इसमें सन्देह नही कि इन गाथायो में भी प्रेम का पुट गहरा रहता है। लेकिन इस प्रेम में एक महान् सघर्ष दिखलाया जाता है जिसका लोक गीतो में नितान्त अभाव है। लोक गाथाओ में वीरता, साहस, एव रहस्य रोमाच का पुट अत्यधिक पाया जाता है। यहाँ विवाह भी बिना युद्ध किये नही होता। आल्हा का विवाह इस विषय का प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'सोरठी' की गाथा में रहस्य एव रोमाच का भाव अधिक है। कही-कही पर इन गीता में अनेक वीर पुरुष लोक त्राता या जन रक्षक के रूप में भी अकित किये गये हैं। हमें अनेक गीत ऐसे मिले हैं जिनमें मुगलो के अत्याचार से स्त्रियो को बचाने के लिये अनेक वीरा ने अपने प्राणो की आहुति तक दे दी है। यह उस राजपूती वीरता की समानता रखता है जिसका दर्शन हमें राजस्थान के इतिहास में मिलता है।

ख. लोक-गाथाओं की उत्पत्ति

लोक गाथायो की उत्पत्ति कैसे हुई यह कहना बडा कठिन कार्य है। अनेक विद्वानों ने इस विषय पर गभीरता से विचार किया है परन्तु किसी का मत एक-दूसरे से नही मिलता। प्राचीन काल में इन लोक गाथायो की रचना किसी व्यक्ति ने की अथवा ये किसी जाति के सामूहिक प्रयास के फलस्वरूप हैं, इस सबध में जो प्रधा—— प्रचलित हैं उनका सक्षिप्त रूप से दिग्दर्शन कराया जाता है।

१. ग्रिम का सिद्धान्त : समुदायवाद ।
२. स्थेन्थल का सिद्धान्त : जातिवाद ।
३. विशप पर्सी का सिद्धान्त : चारणवाद ।
४. फ्रान्सिस चाइल्ड का सिद्धान्त : व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद ।
५ श्लेगल का सिद्धान्त . व्यक्तिवाद ।

ग्रिम महोदय का यह मत है कि लोक गाथाओं की उत्पत्ति किसी व्यक्ति विशेष की काव्य-प्रतिभा से नही हुई बल्कि इनके निर्माण का श्रेय एक समुदाय कम्युनिटी को है ।[१] जैसे किसी व्यक्ति विशेष के हृदय में हर्ष, विषाद, सुख, दु ख की भावना जागरित होती है उसी प्रकार किसी समुदाय के लोग भी समष्टि रूप में इसी भावना का अनुभव करते है । किसी उत्सव के समय, किसी मेला के अवसर पर अथवा किसी धार्मिक पर्व पर लोगो का समुदाय एकत्र होता है । इन्ही समुदाय के लोगो ने एक साथ मिलकर इन लोक गीतो की रचना की होगी । ग्रिम के मत का यह आशय है कि मान लीजिये कि किसी सामाजिक अवसर पर कुछ व्यक्ति एकत्रित हैं । सभी आनन्द में मस्त हैं । उनमें से किसी एक ने गीत की कोई कडी बनाई । दूसरे ने उसमें दूसरी कडी जोड दी और तीसरे ने तीसरी कड़ी । इस प्रकार कुछ देर में एक पूरा गीत तैयार हो गया ।

आजकल भी हम देखते हैं कि कजली गाने वाले दो दलो में विभक्त हो जाते है और प्रत्येक दल में पाच-सात आदमी होते हैं । पहले एक दल का व्यक्ति एक कडी सुनाता है । पुन दूसरे दल का व्यक्ति उसके उत्तर में एक नई कडी बनाकर तुरन्त तैयार कर देता है । फिर प्रथम दल का आदमी दूसरी कडी बनाता है, और यह क्रम घटो तक चलता रहता है । इस प्रकार कजली, लवनी आदि के अनेक गीत तैयार हो जाते हैं । परन्तु यह कहना कि अमुक कजली को अमुक समुदाय अथवा व्यक्ति ने बनाया है अथवा अमुक होली के गीत को अमुक सज्जन ने रचा है, ठीक न होगा, क्योंकि उसकी रचना में एक व्यक्ति का हाथ हो सकता है और अनेक व्यक्तियों का सहयोग भी ।

स्थेन्थल का मत ग्रिम के मत से मिलता-जुलता है । परन्तु वह उससे भी थोडा आगे बढा हुआ है । स्थेन्थल का मत है कि 'लोक गीतो का निर्माण समाज के कुछ विशिष्ट लोगों ने नहीं बल्कि पूरी जाति (रेस) के लोगो ने किया । लोक गाथा किसी जाति के समस्त व्यक्तियो के प्रयास के फल हैं । अनेक देशो में बहुत सी ऐसी जातियाँ हैं जिनके सम्पूर्ण सदस्य एकत्रित होकर कोई उत्सव मनाते हैं । सभवत ऐसे अवसर पर वे अपने गीतो की रचना करते हैं । इस प्रकार लोक गाथाओं की सृष्टि होती है । परन्तु स्थेन्थल का सिद्धान्त किसी छोटी जाति के लोगो के विषय में तो सत्य हो सकता है परन्तु भारतवर्ष जैसे विशाल देश जो महाद्वीप के समान है, के लिये तो बिल्कुल लागू नही हो सकता । यद्यपि इस सिद्धान्त में भी ग्रिम की भाँति सत्य की मात्रा अधिक है परन्तु यह सर्वत्र समान रूप से लागू नहीं हो सकता ।

विशप पर्सी इगलैंड के बहुत बडे गीत सग्रहकर्ता थे । उनका मत है कि इगलैंड की लोक गाथाओं की रचना चारण या भाटो के द्वारा हुई । ये चारण लोग प्राचीन काल में

---

१. Dos Folk Daschest कीट्रिज—इगलिश एन्ड स्कटिश पापुलर बैलेड्स (इन्ट्रोडक्शन) पेज १८.

इंगलैण्ड में ढोल अथवा सारगी—हार्प पर गाना गाते हुए भिक्षा की याचना किया करते थे और साथ ही गीतो की रचना भी करते जाते थे। ऐसे गीतो को वहाँ 'मिन्स्ट्रल बैलैड" के नाम से पुकारते है। भारत मे भी चारणो के द्वारा अनेक गाथाओ की रचना हुई है। आल्ह खंड का रचयिता जगनिक परमर्दिदेव के दरबार मे चारण था और पृथ्वीराज रासो का लेखक चन्दवरदाई भी पृथ्वीराज का चारण ही था। परन्तु सभी गाथाओं की रचना चारणो के ही द्वारा हुई है, यह कहना न्याय-सगत न होगा।

सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् श्लेगल का मत है कि जिस प्रकार से अलकृत कविता का रचयिता कोई व्यक्ति विशेष होता है उसी प्रकार से लोक गीतो का भी लेखक कोई व्यक्ति अवश्य होगा। बिना व्यक्ति विशेष के गाथाओ की रचना असभव है। ग्रिम के सिद्धान्त का खडन करते हुए श्लेगल ने लिखा है कि "सारा समुदाय लोक गीतो की रचना करता है, यह उक्ति उतनी ही हास्यास्पद है, जितना सारी जाति शासन करती है यह कथन। जिस प्रकार प्रत्येक कला किसी कलाकार की कृति होती है, प्रत्येक कविता किसी कवि की रचना होती है, प्रत्येक घर किसी गृह निर्माण विशारद के प्रयत्नो का फल होता है, उसी प्रकार लोक गाथा किसी रचयिता की रचना अवश्य होगी, चाहे वह रचयिता अनपढ ही क्यो न हो। लोक गाथा समुदाय की सम्पत्ति अवश्य है परन्तु उसकी रचना भी समुदाय के द्वारा की गई होगी, यह सिद्धान्त मान्य नही है।

लोक गाथाओ के परम आचार्य डा० फ्रान्सिस चाइल्ड भी इसी मत को स्वीकार करते है। परन्तु उनके मतानुसार इतना अन्तर अवश्य है कि लोक गाथाओ में उसके रचयिता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। उसकी वाणी मे तो उसकी रचना अवश्य मिलती है परन्तु उसका व्यक्ति बिल्कुल नही रहता। लोक गाथाओ का रचयिता इन गाथाओ की सृष्टि कर जनता के हाथो में इन्हें समर्पित कर स्वय अन्तर्हित हो जाता है। उपर्युक्त दोनो सिद्धान्तो में विशेष अन्तर नही है। दोनो एक दूसरे के पूरक है।[1]

हमारी धारणा सार्वदेशीय लोक गीतो अथवा गाथाओ की उत्पत्ति के सबध में यह है कि प्रत्येक गीत या गाथा का रचयिता मुख्यत कोई न कोई व्यक्ति अवश्य है। साथ ही कुछ गीत या गाथा जन समुदाय (फोक) का भी प्रयास हो सकता है। लोक गाथाओ की परम्परा सदा से मौखिक रही है। अत यह बहुत सभव है कि गाथाओ के लेखको का नाम लुप्त हो गया हो। आज तक किसी भी भोजपुरी गाथा की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नही हुई है जिससे उसके लेखक का नाम हम जान सकें।

एक लेखक का होने पर भी मौखिक परम्परा के कारण भिन्न-भिन्न गवैयो ने इन गाथाओ में इतना अधिक अश जोड दिया है कि वे अब एक लेखक की कृति न होकर पूरे समाज की सम्पत्ति बन गये है। एक ही गीत भिन्न-भिन्न जिलो में भिन्न-भिन्न रूपो में पाया जाता है। इसका प्रधान कारण यही है कि व्यक्ति विशेष की रचना होने पर भी उनमें स्थानीय भाषा के पुट के कारण अथवा गवैयो के द्वारा परिवर्तन के कारण भेद उत्पन्न हो गये है।

प० रामनरेश त्रिपाठी ने इस विषय पर विचार करते हुए किसी निश्चित मत का प्रतिपादन नही किया है। वे लिखते है कि—[2]

---

१. इन विभिन्न मतों के विस्तृत वर्णन के लिये देखिये : गूमर : ओल्ड इंगलिश बैलड्स भूमिका पृ० ३५ २. त्रिपाठी : ग्राम गीत (ग्राम गीतों का परिचय) पृ० २१।

"गीतस्रष्टा स्त्री पुरुष दोनों हैं । किन्तु ये स्त्री पुरुष ऐसे हैं, जो कागज और कलम का उपयोग नहीं जानते हैं । यह सभव है कि एक-एक गीत रचना में बीसो वर्ष और सैंकडों मस्तिष्क लगे हों । इस उदाहरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि त्रिपाठी जी भी ग्रिम के समुदायवाद के ही पक्षपाती हैं ।

—'०—

अध्याय १०

भोजपुरी लोक-गाथाओ के प्रकार

लोक-गाथाओ के अनेक प्रकार हैं, परन्तु इन्हें हम प्रधानतया तीन भागो में विभक्त कर सकते हैं —

१ प्रेम कथात्मक (Love Ballads),
२ वीर कथात्मक (Heroic Ballads) और
३ रोमाच-कथात्मक (Supernatural Bellads)

इनमें से भोजपुरी में प्रथम दो प्रकार की गाथायें ही अधिक पायी जाती हैं। प्रेम तो गाथाओ का प्राण ही है अत इनमें इसकी अधिकता होना स्वाभाविक ही है। यह प्रेम साधारण परिस्थिति में उत्पन्न नही होता प्रत्युत विपम वातावरण में पैदा होता है और उसी मे पलता है। फलस्वरूप इसमें सघर्ष भी उत्पन्न होता है। भोजपुरी की कुसुमा देवी, भगवती देवी और लचिया की गाथायें ऐसी हैं जिनमें प्रेम एक ही ओर पलता है और उसका परिणाम बडा विपम होता है। विहुला की कथा प्रेम का प्रबन्ध काव्य है। इस गाथा में कहा गया है कि विहुला के अप्रतिम रूप को जो भी देखता था वह मूर्छित हो जाता था। इसके अलौकिक सौन्दर्य पर मोहित अनेक नौजवाना ने पाणि ग्रहण के समय अपना हाथ फैलाया परन्तु वे सफलीभूत नही हुए। अन्त में एक चतुर मनुष्य ने जिसका नाम बाला लखन्दर था विहुला के प्रेम को जीतने में सफलता प्राप्त की। 'शोभा नयका बनजारा' भी एक दूसरा प्रणय आख्यान है, जिसमें पति पत्नी के प्रेम, विवाह तथा वियाग का वणन बडी ही रोचक एव मर्मस्पर्शी भाषा में किया गया है। 'भरथरी चरित्र' में ही राजा भरथरी का अपने गुरु के उपदेश से घर छोडकर जगल में चला जाना वर्णित है। उनके विरह में उनकी पत्नी की दयनीय दशा का जो चित्र खीचा गया है वह बडा ही सुन्दर उतरा है। कहने का आशय यह है कि जो गाथायें उपलब्ध होती हैं उनमें अधिकाश में प्रेमाख्याना की ही प्रधानता पायी जाती है। अग्रेजी आदि अन्य साहित्यो में भी जो बैलैड पाये जाते हैं उनमें से अधिकाश का कथानक प्रेम ही होता है। 'क्रूयल ब्रदर' शीर्षक अग्रेजी बैलैड इसका उदाहरण है।

भोजपुरी के दूसरे प्रकार के गीत वीरकथात्मक हैं, जिसमें किसी न किसी वीर के साहस पूर्ण एवं शौर्य-सम्पन्न किसी कार्य का वर्णन रहता है। इन रचनाओ में वह वीर पुरुष आप द्ग्रस्त किसी अबला का उद्धार करता हुआ दिखलाई पडता है अथवा अपने शत्रुओ का वीरता से सामना कर न्याय पक्ष के लिये लडाई में जूझता हुआ दृष्टिगोचर होता है[१]। वही पर अलौकिक वीरता का वर्णन का मात्र ही इन गाथाओ का चरम लक्ष्य है। कही पर किसी युवती का पाणिग्रहण करने के लिये भीषण सग्राम करना पडा है। वीर कथात्मक गाथाओ में 'आल्हा' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इन दोनो वीर भाइयो आल्हा और ऊदल ने किस प्रकार

---

१. त्रिपाठी ग्राम गीत पृ० ४०५

अपनी मातृभूमि की रक्षा के हेतु महाप्रतापी पृथ्वीराज से भीषण युद्ध किया, यह बात पाठकों से छिपी नहीं है। आल्हा को अपने विवाह के लिये भी लड़ाई लड़नी पड़ी थी। "लोरिकायन" नामक गाथा में लोरिकी की जीवन कथा, उसका विवाह तथा उसकी वीरता का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। कुंवर विजई. जिसको विजयमल भी कहते हैं, के वीर चरित से कौन भोजपुरी परिचित नहीं है। इनके साहस एवं वीरतापूर्ण कार्यों की गाथा समस्त भोजपुर प्रदेश में बड़े चाव से गाई और सुनी जाती है। इस प्रदेश में आल्हा और विजयमल का इतना अधिक प्रचार है जितना तुलसीदास जी की रामायण का उत्तरी भारत में।

भोजपुरी की तीसरे प्रकार की गाथायें वे हैं जिनमें रोमांच अथवा 'रोमांस' पाया जाता है। इसके अन्तर्गत 'सोरठी' का सुप्रसिद्ध गीत आता है। सोरठी एक साधारण घर की लड़की थी जो कुसमय में पैदा होने से लोकलाज के कारण माता द्वारा परित्यक्त कर दी गई। उसको एक छोटे से पालने में सुलाकर नदी में बहा दिया गया। परन्तु 'जाको राखे साइयां मारि न सकिहैं कोय' सोरठी खटोले पर पड़ी बहती हुई चली जा रही थी। एक मल्लाह ने उसे वेगवती धारा में बहती हुई देखा और उसे पकड़ कर अपने घर लाकर उसे पालने-पोसने लगा। धीरे-धीरे सोरठी बड़ी हुई और उसका विवाह हुआ। सोरठी की कथा इतनी अलौकिक तथा रोचक है कि पढते समय यही मालूम पड़ता है कि 'रोमास' पढ रहे हैं। अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार के बैलेड बहुत हैं, परन्तु हमारे यहाँ इनकी सख्या अत्यन्त सीमित हैं।

डा० चाइल्ड ने लोक गाथाओं को दो भागो में विभक्त किया है—१. चारण गाथायें (मिनस्ट्रेल बैलेड्स) और २. परम्परा गाथायें (ट्रैडिशनल बैलेड्स)। चारण गाथाओं से उनका अभिप्राय उन गाथाओ से है जिन्हें घूमते-फिरते भाट या चारण स्वयं निर्माण कर गाते फिरते थे। परम्परागत गाथाओं का अभिप्राय उन गाथाओ से है जो चिरकाल से चली आ रही हैं और जनता के बीच मे प्रचलित हैं। परन्तु विषय-विभाजन के आधार की दृष्टि से यह वर्गीकरण कुछ ठीक नहीं जँचता। उक्त गाथाओं के अतिरिक्त भोजपुरी में कुछ गाथायें और मिलती हैं जिनमें किसी सामाजिक घटना का उल्लेख है। ऐसी गाथाओ को प्रकीर्णक के ही अन्तर्गत रखना समुचित है।

—:०:—

अध्याय ११

भोजपुरी की लोक-गाथाओं की विशेषताएँ

लोक गाथाओं की अनेक विशेषताएँ हैं जो इन्हें अलंकृत कविता से स्पष्टतः पृथक् करती हैं। इन विशेषताओं पर ध्यान देने से यह स्पष्ट ही पता चल जायगा कि अमुक कविता गाथा है अथवा अलंकृत काव्य। गाथाओं की इन विशेषताओं का हम प्रधानतया दस भागों में विभक्त कर सकते हैं जो निम्नांकित हैं—

१ रचयिता का अज्ञात होना।
२ प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव।
३ संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य।
४ स्थानीयता का प्रचुर पुट।
५ मौखिक हैं, लिपिबद्ध नहीं।
६ उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव।
७ अलंकृत शैली का अभाव, अतः स्वाभाविक प्रवाह।
८ रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव।
९ टेक पदों की पुनरावृत्ति।
१० लम्बा कथानक।

१. रचयिता अज्ञात

लोक गाथाओं के रचयिता अज्ञात होते हैं। किस गीत का किस मनुष्य ने कब बनाया, यह बतलाना नितान्त कठिन है। यही कारण है कि आज हजारों गाथाओं के होने पर भी हम भी उनमें से एक के भी रचयिता के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं बतला सकते। प० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि इन गीतों के रचयिता अज्ञात स्त्री पुरुष हैं।[1] जो बात लोक गीतों के उपर लागू है वही गाथाओं के विषय में भी कही जा सकती है। आल्हा का रचयिता जगनिक माना जाता है, परन्तु लोरकी, सोरठी, विजयमल, भरथरी आदि गाथाओं के रचयिता कौन थे इसका हमें पता नहीं चलता। कबीरदास जी के नाम से बहुत से निरगुन पाये जाते हैं परन्तु वे वास्तव में कबीर के ही रचित पद हैं, यह कहना कठिन है। 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' या 'गावेलें कबीर दास यह निरगुनवाँ' ऐसे पद अनेक गीतों में पाये जाते हैं परन्तु उन्हें कबीर की रचना नहीं माना जा सकता। राबर्ट ग्रेव्स ने लिखा है कि आजकल के वर्तमान युग में किसी लेखक का अज्ञातनामा होना यह सिद्ध करता है कि वह अपनी कृति से लज्जित होने के कारण ऐसा करता है परन्तु प्राचीन समाज में इसका कारण अपने नाम के विषय में लेखक की लापरवाही ही समझनी चाहिये।[2]

---

१. त्रिपाठी : ग्राम गीत भूमिका पृ० २१ २ एनोनीमिटी इन दि प्रेजेंट स्ट्रक्चर आफ सोसाइटी यूजअली इम्प्लाइज दैट दि आथर इज अशेम्ड आफ हिज आथरशिप, बट इन प्रिमिटिव सोसाइटी इज ड्यू जस्ट टु दि केयरलेसनेस आफ दि आथर्स नेम दि इंगलिश बैलेड पृष्ठ १२

अन्य कविताओं की भाँति इन गाथाओं का भी कोई न कोई कर्ता अवश्य होगा, जिसने अपने सहवासियों के साथ आनन्द में मस्त होकर इनकी रचना की होगी। परन्तु किसने यह गाने रचे यह बतलाना कठिन है। परम्परा रूप में अनेक सदियों से चली आने वाली इन गाथाओं के रचयिता के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

भोजपुरी चैता या घाटो के रचयिता बुलाकीदास माने जाते हैं और वास्तव में कुछ घाटो उनकी रचना हैं भी। परन्तु अन्य हजारों चैता और होली के गानों की रचना किसने की, यह बतलाना नितान्त कठिन है। सच तो यह है कि इन लेखकों ने अपने व्यक्तित्व, नाम और यश की चिन्ता न करके जाति के लिये अपनी प्रतिभा का उत्सर्ग किया है। रघुवंश और उत्तर राम चरित के रचयिता कालिदास और भवभूति का नाम हमें ज्ञात है और इनके जीवन चरित के विषय में भी थोड़ी बहुत सामग्री हमें उपलब्ध होती है परन्तु इन लोक-गाथाओं के रचयिताओं का नाम भी ज्ञात नहीं है, फिर इनके जीवनवृत्त की चर्चा करना तो व्यर्थ ही है।

२. प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव

लोक-गाथाओं का कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं होता। लेखक-गाथा की रचना कर उससे पृथक् हो जाता है। अब वह गाथा समाज की वस्तु हो जाती है और प्रत्येक मनुष्य उसे अपनी निजी सम्पत्ति समझता है। इसीलिये किसी गाथा का कोई वास्तविक एवं शुद्ध मूल पाठ नहीं होता। हम किसी भी एक पाठ के विषय में यह नहीं कह सकते हैं कि यही विशुद्ध पाठ है और अन्य सभी अशुद्ध हैं।[१] कुछ लेखकों ने गाथा की उपमा एक विशाल नदी से दी है और यह उपमा वास्तव में उचित भी है। जिस प्रकार कोई नदी प्रारम्भ में किसी स्थान विशेष से अत्यन्त पतले रूप में निकलती है। आगे चलने पर उसमें छोटे-छोटे नदी-नाले मिलते हैं जिससे उसके जल में वृद्धि होती रहती है। कहीं-कहीं भूमि की विशेषता के कारण मिट्टी के पीली या काली होने के हेतु उसके जल के रूप में अन्तर पड़ जाता है। जब वह समुद्र में गिरने लगती है तो उसके विशाल रूप और जल के रंग के परिवर्तन के कारण उसका पहिचानना भी कठिन हो जाता है। उसी प्रकार इन गाथाओं की भी दशा है। जब रचयिता इन गाथाओं का निर्माण करता है तभी तक इनका रूप मौलिक रहता है। बाद में ये जाति या समुदाय की वस्तु बन जाती हैं। इनके निर्माण के साथ ही इनकी समाप्ति नहीं होती, बल्कि वास्तविक बात तो यह है कि उस समय इन गाथाओं के निर्माण का प्रारम्भ होता है।[२] ये गाथायें मूल लेखक के हाथों से निकल कर अब जनता के पास मौलिक प्रचार (ओरल ट्रांसमिशन) के लिये आती हैं। यदि जनता ने इस गाथा को अपना लिया तब वह लेखक के अधिकार से बाहर चली जाती है और जनता की सम्पत्ति बन जाती है। समय के बीतने के साथ लोग उस मूल गाथा में थोड़ा-बहुत परिवर्तन करते रहते हैं। भिन्न-भिन्न गवैये गाथाओं को अपने अनुकूल बनाकर उसे गाते हैं। यदि इन गीतों का प्रचार दूर-दूर के प्रदेशों में भी हो गया तो उस गाथा की मूल भाषा

१ दि इंगलिश बैलेड पृ० ११ २. दि मोस्ट ऐक्ट आफ कम्पोजिशन व्हिच इज क्राइड रेंज लाइकली टू बी ओरल पेज रिटेन इज नोट दि कनक्लुजन आफ दि मैटर, इट इज राटर दि बिगनिंग. कीट्रीज : इंगलिश एंड स्काटिश पापुलर बैलेड्स (इन्ट्रोडक्शन) पेज १७.

से भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। अनेक स्थानीय घटनाओ का पुट उसमें मिल जाने से उसकी ऐतिहासिकता में भी अन्तर पड जाता है। भिन्न-भिन्न भाषाभाषियों के द्वारा प्रयुक्त होने पर इसके विभिन्न पाठ तैयार हो जाते हैं। ऐसी दशा में उस मूल गीत का रूप इतना परिवर्तित और परिवर्धित हो जाता है कि मूल लेखक के लिये भी उसे पहचानना कठिन हो जाता है।

आल्हा का मूल लेखक जगनिक था, जिसने हिन्दी की बुन्देलखडी बोली में अपनी अमर कृति की रचना की थी। इस ग्रन्थ में आल्हा और ऊदल के पराक्रम का वर्णन था। किस प्रकार इन वीर बाँकुडो ने अपनी माता की आज्ञा मानकर देश प्रेम के कारण परम प्रतापी राजा पृथ्वीराज का सामना किया था, यही जगनिक का मुख्य वर्णन विषय था। जगनिक की यह कृति बहुत बडी नही थी। परन्तु आजकल जो "आल्हा" उपलब्ध होता है उसका आकार "जगनिक" के आल्ह खड से कई गुना बडा है तथा इसमें ऐसी अनेक घटनायें पीछे से जोड दी गई हैं जिनका मूल "आल्हखड" में वर्णन नही था। जगनिक ने मूल ग्रन्थ बुन्देलखडी में ही लिखा था, परन्तु उत्तरी भारत में आल्हा के सर्वत्र प्रचार होने के कारण इसके अनेक पाठ मिलते हैं, जिनमें कन्नौजी, बुन्देलखडी और भोजपुरी प्रसिद्ध हैं। कन्नौजी और भोजपुरी पाठ तो प्रकाशित भी हो गया है। सभव है आल्हा के ब्रज एव अवधी पाठ भी विद्यमान हो। इस प्रकार आजकल जो "आल्हा" उपलब्ध होता है, उसके पाठ विभिन्न बोलियो में भिन्न-भिन्न हैं और उसकी घटनाओ में भी बहुत कुछ अन्तर है। राजा गोपीचन्द के गीत में भी यही बात पाई जाती है। गोपीचन्द के जो गीत भोजपुरी में मिलते हैं वे बगला गीतो से पृथक् हैं। घटनाओं में भी भिन्नता है। कहने का साराश यह है कि लोक गाथा का कोई मूल एव प्रामाणिक पाठ नही होता। यह जनता की मौलिक सम्पत्ति है। अत इसमें परिवर्तन एव परिवर्धन होना नितान्त स्वाभाविक है। इस विषय में प्रोफेसर कीट्रीज का मत कितना ठीक एव समुचित है। वे लिखते हैं कि इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी वास्तविक लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित एव अन्तिम रूप नही हो सकता। कोई प्रामाणिक पाठ नही हो सकता। उसके विभिन्न पाठ हो सकते हैं परन्तु केवल एक ही पाठ नही हो सकता।"[१]

३. संगीत का अभिन्न साहचर्य

सगीत और गाथा का अभिन्न साहचर्य है। सच तो यह है कि कि सगीत के बिना किसी गाथा के सुनने में आनन्द ही नही आता। अग्रेजी के बैलेड शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के "बैलारे" धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ नाचना होता है। अत बैलेड का मूल अभिप्राय उस गीत से है जिसे किसी नर्तक मडली के लोग साथ-साथ "कोरस" में गाते हैं। प्राचीन काल में यूरोपीय देशो में चारणो के द्वारा, जिन्हें मिन्स्ट्रल कहते थे, ढोल अथवा सितार बजाकर "बैलेड" गाने का वर्णन मिलता है। डा० चाइल्ड और विशप पर्सी ने ऐसे चारणो का विशेष रूप से उल्लेख किया है। डा० चाइल्ड ने तो इन चारणो के द्वारा गाये जाने के कारण से ही कुछ गीतो को "मिन्स्ट्रल बैलेड" के नाम से अभिहित किया है।

---

१. "इट फौलोज दैट ए जेन्युअली पापुलर बैलेड कैन हैव नो फिक्सड ऐन्ड फाइनल फौर्म, नो सोल आथेन्टिक वर्शन देयर आर टेक्सट्स बट देयर इज नो टेक्सट" इङ्गलिश एन्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स पेज १८.

भारतवर्ष में भी गाथा और संगीत का अभिन्न संबंध दीख पड़ता है। वर्षा के दिनों में आल्हा गानेकी बड़ी प्रथा है। अल्हैत जब आल्हा गानेके लिए तैयार होता है तब वह अपने में ढोल बाँध लेता है और उसे बजाकर आल्हा गाता है। आल्हा के गाने की गति ज्यों-ज्यों तीव्र होती जाती है, ढोल बजाने की गति में भी वैसा ही परिवर्तन होता जाता है और गाने के पराकाष्ठा (क्लाइमेक्स) पर पहुँचने पर ढोल इतने तार स्वर से बजने लगता है।

गोरखपन्थी साधु जो जोगी के नाम से प्रसिद्ध हैं प्राय गोपीचन्द और भरथरी के गीत गाते हुए पाये जाते हैं। गीत गाते समय वे सारंगी को बजाते हैं। उनकी मधुर वाणी सारंगी की मधुरता मे मिलकर बड़ा आनन्द देती है। सारंगी उनका अनन्य साधन है। सभवत उसके बिना उनकी स्वर लहरी में कम्पन ही न उत्पन्न हो।

गीत और संगीत का संबंध इतना घनिष्ट है कि देहातो में जहाँ कोई भी वाद्य यन्त्र उपलब्ध नही होता वहाँ स्त्रियाँ काठ के कठौते को उलट कर लाठी के हूरे से उसकी पीठ को रगड़ती हैं जिससे एक विचित्र प्रकार की संगीत ध्वनि उत्पन्न होती है। जहाँ यह भी उपलब्ध नहीं है वहाँ करतल ध्वनि समय-समय पर ताली बजाकर वाद्ययन्त्र का काम चला लेती हैं। लोक गीत सामूहिक रूप कोरस में गाये जाने से विशेष आनन्द देते है। यह बात भी उनकी संगीतात्मक प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। इस प्रकार लोक गीत एवं लोकगाथाओं का संगीत से अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

४. स्थानीयता का पुट

लोक गाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। इनमें भले ही राजा, रानी और जमींदारों एवं रईसों का वर्णन हो फिर भी ये स्थानीयता की गंध को लिये हुए रहते हैं। यदि कोई गाथा भोजपुरी प्रदेश में गाई जाती है तो प्रादेशिकता का रंग उसमें अवश्य विद्यमान रहेगा। कहीं-कहीं स्थानीय ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख भी इन गीतों में पाया जाता है। बलिया जिले की एक झूमर में 'पनिया ना पीये हरदिया के राजा" का बारम्बार उल्लेख पाया जाता है। बलिया जिले में हलदी एक गाँव है जहाँ के हैहय वंशी क्षत्री राजा बड़े प्रसिद्ध थे। इनके वंशज आज भी विद्यमान हैं। इसी प्रकार से बिहार प्रान्त में गाये जाने गीतों में अमर सिंह का उल्लेख पाया जाता है।

५. मौखिक हैं लिपिबद्ध नहीं

लोक-गाथायें चिरकाल से मौखिक परम्परा के रूप में चली आ रही हैं। जिस प्रकार प्राचीन काल में वेद मौखिक रूप में गुरु-शिष्य की परम्परा से चले आते थे। गुरु अपने विद्यार्थियों को पढ़ाता था और ये शिष्य पुन अपने शिष्यों को पढ़ाते थे। इसी प्रकार इन गाथाओं की भी परम्परा समझनी चाहिये। एक गवैया किसी गाने को गाता है, उससे दूसरा गवैया गाना सीख लेता है और फिर उससे तीसरा सीखता है। इस प्रकार यह परम्परा अक्षुण्ण रूप से चलती रहती है। इन गवैयों में भी, जिनका प्रधान काम गाना गाकर भिक्षा की योजना करनी है, गुरु शिष्य परम्परा पाई जाती है। गाँवों में बूढ़ी माता या दादियाँ अपनी पुत्री और पौत्रियों के गीत सिखलाती हैं जिससे मौका पड़ने

१. डॉ॰ उपाध्याय॰ लो॰ भा॰ गी॰ भाग १

पर उनके काम आवे । इस प्रकार इन गीतों की परम्परा सदा चालू रहती है । ये गीत लिपिबद्ध नहीं किये जाते । फ्रैंक सजविक का मत है कि इन गीतों को लिखना इन्हें मृत्यु के मुख में डालना है । फ्रेंच लोग कहते हैं कि गाथा तभी तक जीवित रह सकती है जबतक यह *मौखिक साहित्य के रूप में है ।*[1]

सिजिविक का मत वास्तव में यथार्थ है । जब हम किसी लोक गाथा को लिपि-बद्ध कर लेते हैं तो उसकी बाढ मारी जाती है । उसकी वृद्धि आगे नहीं होने पाती । वह तभी तक बढ सकेगा जब तक वह अक्षरों के शिकंजे में नहीं कस दिया जाता । यही कारण है कि आज आल्हा और लोरकी की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं । यद्यपि लोक गाथाओं के अनुसन्धान कर्त्ताओं के लिये यह दुर्भाग्य की बात है परन्तु अन्य दृष्टि से यह लाभप्रद ही सिद्ध हुआ है । यदि आल्हा या विजयमल लिपि-बद्ध कर लिये गये होते तो आज उनके जो विभिन्न पाठ (वरसन्स) देखने को मिलते हैं वे न प्राप्त होते । गाथाओं के कलेवरों में यह वृद्धि उनके जीवित और जनप्रिय होने का प्रमाण है । आल्हा की ही भाँति गोपीचन्द गीत के तीन पाठ भोजपुरी, मगही और बगला उपलब्ध होते हैं[2]। इस प्रकार लोक गीतों की परम्परा सदा से मौखिक रही है ।

६. उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव

लोक गाथाओं में उपदेश देने अथवा नीति बतलाने की मनोवृत्ति का नितान्त अभाव रहता है । उनका प्रधान उद्देश्य कथानक का प्रवाह रहता है । लोरकी, विजयमल और आल्हा की गाथाओं में देश भक्ति, माता की आज्ञा का पालन, साहस, शौर्य और प्रेम के अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिनसे उपदेश या शिक्षा ली जा सकती है । परन्तु इन गीतों के रचयिता की प्रवृत्ति इस ओर नहीं थी । कुसुमदेवी और भगवती की गाथाओं से उनके अलौकिक तथा पवित्र आचरण से हमें बहुमूल्य शिक्षा प्राप्त होती है परन्तु उनमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव है ।

७. अलंकृत शैली का अभाव

लोक गाथाओं में अलंकृत शैली का नितान्त अभाव रहता है । अलंकृत कविता किसी *कलाकार कवि के द्वारा लिखी जाती है जो अपनी रचना को सुरक्षित बनाने के लिये* विभिन्न अलंकार, छन्द, रस और कल्पना को उसमें अवतारणा करता है । वह अपनी कृति में अलंकारों की योजना करता है और उसे किसी विशिष्ट छन्द के साँचे में ढालने के लिये उसमें काट-छाँट भी करता है । ऐसी कविता को अलंकृत कविता (पोइट्री आफ आर्ट) कहते हैं जो प्रयासपूर्वक लिखी जाती है । परन्तु गाथाएँ जनता की कविता (पोइट्री आफ फोक) कही जाती हैं, इससे बिल्कुल पृथक् है । इसमें एक स्वाभाविक प्रवाह रहता है जो सर्वत्र समान रूप से पाया जाता है । लोक गीतों और गाथाओं की उपमा यदि

---

१. इन दि एक्ट आफ राइटिंग ईच वन डाउन, यू मस्ट रमेम्बर दैट यू आर हेल्पिंग टू किल दैट बैलेड. "विरुम वीलिटेयर पर औरा" इज दि लाइफ आफ ए बैलेड. इट लिव्ज ओनली व्हाइल इट रीमेन्स व्हाट दि फ्रेंच, विथ ए चार्मिंग कनफ्यूजन आफ आइडियाज, काल "ओरल लिटरेचर" दि बैलेड पेज ३६. २. डा० ग्रियर्सन : ज० ए० सो० बं० भाग ५४ (१८८५) पार्ट १.

यू वर्शन्स ऑफ दि सौंग आफ गोपीचन्द ।

एक अवधी बिरहा में गाधी जी की उस कलकत्ता यात्रा का वर्णन किया गया है जो उन्होंने सन् ४७ ई० मे वहाँ शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से की थी—

"सुमिरौ गाधी और गगा,
वस्तर पहिरे रंग रगा
+ +
बैठे गाधी पूजा करते
फेर रहे तुलसी माला।" आदि-आदि।

पजाबी लोक गीत गाधी जी के यशोगान में अत्यन्त अग्रगामी नजर आते हैं। अनेक बार गाँव की स्त्रियाँ 'गिद्धा' नृत्य की रगभूमि पर गा उठती हैं—

"आप गाधी कैद हो गया
सानू दे गया खद्दर का बाणा।
+ +
गाधी कहे फिरगिया वे
हुण छड्ड दे हिन्दुस्तान।"

मध्य प्रान्त के गोंड लोगो के भी लोक-गीतो में गान्धी जी का सन्देश पहुँच गया है? कोई गाता है[1]—

"अद्दल गरजे बद्दल गरजे
गरजे माल गुजारा हो
फिरगी राज के गरजें सिपाइरा रामा
गाधी क राज होने वाला हाय रे।"

सथाली लोक गीत भी गाधीजी का यशोगान करने से नही चूकता। सुदूर आन्ध्र देश के लोक गीतो ने भी गाधी जी के चरणो मे श्रद्धा के पुष्प अर्पित किये हैं[2]। गाधी जी का जय घोष भारतीय लोक सस्कृति की एकता की एक नई परम्परा का सूचक है। एक तामिल लोक गीत में जनता की प्रतिभा कह उठी है कि गाधी ऋषि हमारी रक्षा करता है। वह महान् ऋषि है—

"गाधी ऋषि ननमें कार्यातुम महाऋषि[3]।
गाधी ऋषि।"

बेला का वर्णन

लोक हृदय की आन्तरिक भावनाओं के चित्रण में तो लोक गीतों में समानता पाई ही जाती है परन्तु इसके साथ ही प्रकृति के वर्णन में भी इनमें एकरूपता दृष्टिगोचर होती है। बेला जनता का परम प्यारा पुष्प है। इसीलिए इसका उल्लेख सभी लोक गीतो में अनेक बार हुआ है। एक भोजपुरी विवाह गान में कन्या की तुलना बेला के फूल से की गई है। एक मैथिली झूमर में पुष्प शय्या की कल्पना की गई है जिसमें बेला के

---

१. सत्यार्थी: वही पृ० ३६७. २. वही. पृ० ३६६. ३. वही. पृ० ४०५.

फूलो ने उपयुक्त स्थान पाया है । मैथिली 'चैतावर' में भी बेला का वर्णन पाया जाता है ।[१]

'बेला चमेली फूले बगिया में
जोबना फूलल मोरे अँगिया हे रामा
नई भेजे पतिया ।'

एक कन्नड लोक गीत में भी शिव की पूजा के लिये बेला के फूल चुने जाते हैं। इसी प्रकार बगला लोक गीता में इस पुष्प की चर्चा अनेक बार हुई है । बला का सुन्दर स्वरूप, उसकी मनोहर सुगन्ध और अनुपम लावण्य लोक-हृदय को बहुत प्यारा लगा है इसीलिये इसका सर्वत्र उल्लेख किया गया है[२] ।

— o —

१

१. वही पृ० ८६ २ सत्यार्थी बेला फूले आधी रात पृ० १७-३६.

द्वितीय खण्ड

लोक-गाथा

अध्याय ६

क. लोकगाथा

नामकरण

भोजपुरी में जो लोक गीत पाये जाते हैं वे दो प्रकार के हैं। पहले वे गीत हैं जो गेय हैं आकार में छोटे हैं, और जिनमें किसी प्रकार की कथा या आख्यान का अभाव है। दूसरे वे गीत हैं जिनमें गेयता तो अवश्य है परन्तु उनकी प्रधान विशेषता उनका लम्बा कथानक है। अंग्रेजी भाषा में पहिले प्रकार के गीतों के लिए लिरिक (lyric) और दूसरे प्रकार के गीतों के लिये बैलैड (ballad) शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। हिन्दी में इन्हें लोक गीत और लोक गाथा का नाम देना उपयुक्त है। दूसरे प्रकार के गीतों को 'गीत कथा' या 'कथा गीत' भी कहा जा सकता है। परन्तु हमारी सम्मति में लोक गाथा शब्द इन दोनों शब्दों से अधिक भावाभिव्यंजक है। 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पदावली लिरिक्स के लिए प्राचीन समय से होता आया है। हाल की 'गाथा सप्त शती' इसका उदाहरण है। भोजपुरी में गाथा का अर्थ कथा या कहानी होता है। जैसे 'का आपन गाथा सुनवले बाड' तुम अपनी क्या कथा सुना रहे हो। इस प्रकार 'गाथा' शब्द में गेयता और कथानक का अंश दोनों विद्यमान हैं जो बैलैड की विशेषता है। राजस्थानी लोक गीतों के संग्रहकर्ता श्री सूर्यकरण पारीक ने भी ग्राम गीत और लोक गीत में पार्थक्य दिखलाने का प्रयत्न किया है और बैलैड शब्द के लिये उन्होंने 'गीत कथा' का प्रयोग किया है।[1] परन्तु पूर्वोक्त कारणों से 'लोक गाथा' शब्द अधिक समुचित है एवं यही समीचीन जँचता है।

लोक गाथा की परिभाषा

बैलैड अथवा लोक गाथा की परिभाषा अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है। प्रो० केट्रीज का मत है कि बैलैड वह गीत है जो किसी कथा को कहता है अथवा दूसरी दृष्टि से विचार करने पर बैलैड वह कथा है जो गीतों में कही गयी हो।[2] हैजलिट् ने बैलैड की परिभाषा बतलाते हुए इसे 'गीतात्मक कथानक' कहा है।[3] फ्रैंक सिजविक ने अपनी पुस्तक में बैलैड की परिभाषा में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए इसे अमूर्त पदार्थ बतलाया है।[4] आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के प्रधान सम्पादक डा० मरे ने बैलैड की परिभाषा देते हुए लिखा है कि 'बैलेड वह साधारण स्फूर्तिदायक कविता है जिसमें कोई जन प्रिय आख्यान रोचक ढंग से वर्णित हो।'[5]

इस प्रकार ऊपर अंग्रेजी विद्वानों द्वारा बैलैड शब्द की जो परिभाषा दी गई है उसकी

---

१. सूर्यकरण पारीक : राजस्थानी लोक गीत पृ० ७८, ८५ २. "ए बैलेड इज ए सांग देट टेल्स ए स्टोरी, और टु टेक दि अदर प्वाइंट आफ व्यू ए स्टोरी टोल्ड इन साग" इंगलिश एन्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स भूमिका पृ० ११. ३. लिरिकल नैरेटिव. ४. दि बैलेड पृ० ८ ५. "ए सिम्पल स्पीरीटेड पोएम इन शार्ट स्टेन्जाज़ इन व्हिच सम पापुलर स्टोरी इज ग्राफिकली टोल्ड." आ० इं० डि०।

पर्यालोचना करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बैलेंड में गेयता और कथानक इन दोनो होना अत्यन्त आवश्यक है । लोक गाथा के विषय में भी ये ही बातें लागू हैं । अत. लोक गाथा वह गाथा या कथा है जो गीतो में कही गयी हो ।

लोकगीत और लोक गाथा में अन्तर

लोक गीत और लोक गाथा के अन्तर को दो प्रधान भागो में बांट सकते है । १. स्वरूप-गत भेद २. विषयगत भेद । स्वरूपगत भेद के विषय में इतना जानना आवश्यक है कि गीत आकार या स्वरूप में छोटा होता है परन्तु लोक गाथा का आकार अत्यन्त विशाल होता है । बिरहा लोक गीत है जो चार कडियो में ही समाप्त हो जाता है । परन्तु लोक गाथा का विस्तार सैकडो पृष्ठो तक चलता रह सकता है । आजकल जो आल्ह खड[1] उपलब्ध होता है यद्यपि वह मूलरूप में उपलब्ध नही है, वह एक लोक गाथा है । कुछ ऐसी भी लोक गाथायें हैं जो छोटी हैं, जैसे क्षनियाणी भगवती की गाथा । फिर भी लोकगाथाओ का आकार लोक गीतो से कही अधिक बडा होता है ।

दूसरा भेद विषयगत है । लोक गीतो में भिन्न सस्कारो-पुत्र जन्म, मुडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना, ऋतुओ में वर्षा, वसन्त, ग्रीष्म और पर्वों पर गाये जानेवाले गीत सम्मिलित हैं, जिनमें घर, गृहस्थी, प्रेम, परित्याग, वन्ध्या, विधवा आदि के सुख दु खो का चित्रण ही प्रधान विषय रहता है । कही कोई वन्ध्या स्त्री अपने भाग्य को कोस रही है, तो कही विधवा का करुण आलाप सुनाई देता है । कहने का आशय यह है कि घर के सकुचित क्षेत्र में जीवन की जिन अनुभूतियो या साक्षात्कार मनुष्य करता है उन्ही की झांकी हमें इन लोक गीतो में देखने को मिलती है, परन्तु लोक गाथा का विषय लोक गीत से कुछ भिन्न है । इसमें सन्देह नही कि इन गाथाया में भी प्रेम का पुट गहरा रहता है । लेकिन इस प्रेम में एक महान् सघर्ष दिखलाया जाता है जिसका लोक गीतो में नितान्त अभाव है । लोक गाथाओ में वीरता, साहस, एव रहस्य रोमाच का पुट अत्यधिक पाया जाता है । यहां विवाह भी बिना युद्ध किये नही होता । आल्हा का विवाह इस विषय का प्रत्यक्ष प्रमाण है । 'सोरठी' की गाथा में रहस्य एव रोमाच का भाव अधिक है । कही-कही पर इन गीता में अनेक वीर पुरुष लोक त्राता या जन रक्षक के रूप में भी अकित किये गये हैं । हमें अनेक गीत ऐसे मिले हैं जिनमें मुगलो के अत्याचार से स्त्रियो को बचाने के लिये अनेक वीरो ने अपने प्राणो की आहुति तक दे दी है । यह उस राजपूती वीरता की समानता रखता है जिसका दर्शन हमें राजस्थान के इतिहास में मिलता है ।

ख. लोक-गाथाओं की उत्पत्ति

लोक गाथायो की उत्पत्ति कैसे हुई यह कहना बडा कठिन कार्य है । अनेक विद्वानो ने इस विषय पर गभीरता से विचार किया है परन्तु किसी का मत एक-दूसरे से नही मिलता। प्राचीन काल में इन लोक गाथायो की रचना किसी व्यक्ति ने की अथवा ये किसी जाति के सामूहिक प्रयास के फलस्वरूप हैं, इस सबध में जो प्रधान मत प्रचलित हैं उनका सक्षिप्त रूप से दिग्दर्शन कराया जाता है ।

---

१. बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, राजादरवाजा, बनारस सीटी सन् १६३२ से प्रकाशित ।

१. ग्रिम का सिद्धान्त : समुदायवाद ।
२. स्थेन्थल का सिद्धान्त : जातिवाद ।
३. विशाप पर्सी का सिद्धान्त : चारणवाद ।
४. फ्रान्सिस चाइल्ड का सिद्धान्त : व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद ।
५. श्लेगल का सिद्धान्त : व्यक्तिवाद ।

ग्रिम महोदय का यह मत है कि लोक गाथाओं की उत्पत्ति किसी व्यक्ति विशेष की काव्य-
[illegible]
होता है । इन्ही समुदाय के लोगों ने एक साथ मिलकर इन लोक गीतो की रचना की होगी । ग्रिम के मत का यह आशय है कि मान लीजिये कि किसी सामाजिक अवसर पर कुछ व्यक्ति एकत्रित हैं । सभी आनन्द में मस्त हैं । उनमें से किसी एक ने गीत की कोई कड़ी बनाई । दूसरे ने उसमें दूसरी कड़ी जोड़ दी और तीसरे ने तीसरी कड़ी । इस प्रकार कुछ देर में एक पूरा गीत तैयार हो गया ।

आजकल भी हम देखते हैं कि कजली गाने वाले दो दलों में विभक्त हो जाते हैं और प्रत्येक दल में पाच-सात आदमी होते हैं । पहले एक दल का व्यक्ति एक कड़ी सुनाता है । पुन. दूसरे दल का व्यक्ति उसके उत्तर में एक नई कड़ी बनाकर तुरन्त तैयार कर देता है । फिर प्रथम दल का आदमी दूसरी कड़ी बनाता है, और यह क्रम घटो तक चलता रहता है । इस प्रकार कजली, लखनी आदि के अनेक गीत तैयार हो जाते हैं । परन्तु यह कहना कि अमुक कजली को अमुक समुदाय अथवा व्यक्ति ने बनाया है अथवा अमुक होली के गीत को अमुक सज्जन ने रचा है, ठीक न होगा, क्योंकि उसकी रचना में एक व्यक्ति का हाथ हो सकता है और अनेक व्यक्तियों का सहयोग भी ।

स्थेन्थल का मत ग्रिम के मत से मिलता-जुलता है । परन्तु वह उससे भी थोड़ा आगे बढ़ा हुआ है । स्थेन्थल का मत है कि 'लोक गीतों का निर्माण समाज के कुछ विशिष्ट लोगों ने नही बल्कि पूरी जाति (रेस) के लोगों ने किया । लोक गाथा किसी जाति के समस्त व्यक्तियो के प्रयास के फल हैं । अनेक देशों में बहुत सी ऐसी जातियाँ हैं जिनके सम्पूर्ण सदस्य एकत्रित होकर कोई उत्सव मनाते हैं । सभवत. ऐसे अवसर पर वे अपने गीतों की रचना करते हैं । इस प्रकार लोक गाथाओं की सृष्टि होती है । परन्तु स्थेन्थल का सिद्धान्त किसी छोटी जाति के लोगो के विषय मे तो सत्य हो सकता है परन्तु भारतवर्ष जैसे विशाल देश जो महाद्वीप के समान है, के लिये तो बिल्कुल लागू नही हो सकता । यद्यपि इस सिद्धान्त में भी ग्रिम की भाँति सत्य की मात्रा अधिक है परन्तु यह सर्वत्र समान रूप से लागू नही हो सकता ।

विशाप पर्सी इगलैंड के बहुत बड़े गीत सग्रहकर्ता थे । उनका मत है कि इगलैंड की लोक गाथाओं की रचना चारण या भाटों के द्वारा हुई । ये चारण लोग प्राचीन काल मे

---

१. Dos Folk Daschest. कीट्रिज—इगलिश एन्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स (इन्ट्रोडक्शन) पेज १८.

इगलैण्ड में ढोल अथवा सारगी–हार्प पर गाना गाते हुए भिक्षा की याचना किया करते थे और साथ ही गीतो की रचना भी करते जाते थे। ऐसे गीतो को वहाँ 'मिन्स्ट्रल बैलैड' के नाम से पुकारते है। भारत में भी चारणो के द्वारा अनेक गाथाओ की रचना हुई है। आल्ह खड का रचयिता जगनिक परर्मादिदेव के दरबार में चारण था और पृथ्वीराज रासो का लेखक चन्दबरदाई भी पृथ्वीराज का चारण ही था। परन्तु सभी गाथाओ की रचना चारणो के ही द्वारा हुई है, यह कहना न्याय-सगत न होगा।

सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् श्लेगल का मत है कि जिस प्रकार से अलकृत कविता का रचयिता कोई व्यक्ति विशेष होता है उसी प्रकार से लोक गीतो का भी लेखक कोई व्यक्ति अवश्य होगा। विना व्यक्ति विशेष के गाथाओ की रचना असभव है। ग्रिम के सिद्धान्त का खडन करते हुए श्लेगल ने लिखा है कि "सारा समुदाय लोक गीतो की रचना करता है, यह उक्ति उतनी ही हास्यास्पद है, जितना सारी जाति शासन करती है यह कथन। जिस प्रकार प्रत्येक कला-किसी कलाकार की कृति होती है, प्रत्येक कविता किसी कवि की रचना होती है, प्रत्येक घर किसी गृह निर्माण विशारद के प्रयत्नो का फल होता है, उसी प्रकार लोक गाथा किसी रचयिता की रचना अवश्य होगी, चाहे वह रचयिता अनपढ़ ही क्यो न हो। लोक गाथा समुदाय की सम्पत्ति अवश्य है परन्तु उसकी रचना भी समुदाय के द्वारा की गई होगी, यह सिद्धान्त मान्य नही है।

लोक गाथाओ के परम आचार्य डा० फ्रान्सिस चाइल्ड भी इसी मत को स्वीकार करते हैं। परन्तु उनके मतानुसार इतना अन्तर अवश्य है कि लोक गाथाओ में उसके रचयिता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। उसकी वाणी में तो उसकी रचना अवश्य मिलती है परन्तु उसका व्यक्ति बिल्कुल नही रहता। लोक गाथाओ का रचयिता इन गाथाओ की सृष्टि कर जनता के हाथो में इन्हें समर्पित कर स्वय अन्तर्हित हो जाता है। उपर्युक्त दोनो सिद्धान्तो में विशेष अन्तर नही है। दोनो एक दूसरे के पूरक हैं।[1]

हमारी धारणा सार्वदेशीय लोक गीतो अथवा गाथाओ की उत्पत्ति के सबध में यह है कि प्रत्येक गीत या गाथा का रचयिता मुख्यत कोई न कोई व्यक्ति अवश्य है। साथ ही कुछ गीत या गाथा जन समुदाय (फोक) का भी प्रयास हो सकता है। लोक गाथाओ की परम्परा सदा से मौखिक रही है। अत यह बहुत सभव है कि गाथाओ के लेखको का नाम लुप्त हो गया हो। आज तक किसी भी भोजपुरी गाथा की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नही हुई है जिससे उसके लेखक का नाम हम जान सकें।

एक लेखक का होने पर भी मौखिक परम्परा के कारण भिन्न-भिन्न गवैया ने इन गाथाओ में इतना अधिक अश जोड दिया है कि वे अब एक लेखक की कृति न होकर पूरे समाज की सम्पत्ति बन गये हैं। एक ही गीत भिन-भिन जिलो में भिन्न-भिन्न रूपो में पाया जाता है। इसका प्रधान कारण यही है कि व्यक्ति विशेष की रचना होने पर भी उनमें स्थानीय भाषा के पुट के कारण अथवा गवैयो के द्वारा परिवर्तन के कारण भेद उत्पन्न हो गये हैं।

प० रामनरेश त्रिपाठी ने इस विषय पर विचार करते हुए किसी निश्चित मत का प्रतिपादन नही किया है। वे लिखते हैं कि—[2]

---

१. इन विभिन्न मतों के विस्तृत वर्णन के लिये देखिये · गूमर · ओल्ड इगलिश बैलड्स भूमिका पृ० ३५ २. त्रिपाठी : ग्राम गीत (ग्राम गीतों का परिचय) पृ० २१।

अध्याय १०

भोजपुरी लोक-गाथाओं के प्रकार

लोक-गाथाओं के अनेक प्रकार हैं, परन्तु इन्हे हम प्रधानतया तीन भागो में विभक्त कर सकते हैं —

१. प्रेम कथात्मक (Love Ballads),
२ वीर कथात्मक (Heroic Ballads) और
३ रोमाच-कथात्मक (Supernatural Bellads)

इनमें से भोजपुरी में प्रथम दो प्रकार की गाथायें ही अधिक पायी जाती हैं। प्रेम तो गाथाओं का प्राण ही है अत इनमें इसकी अधिकता होना स्वाभाविक ही है। यह प्रेम साधारण परिस्थिति में उत्पन्न नही होता प्रत्युत विषम वातावरण में पैदा होता है और उसी में पलता है। फलस्वरूप इसमें सघर्ष भी उत्पन्न होता है। भोजपुरी की कुसुमा देवी, भगवती देवी और लचिया की गाथाये ऐसी हैं जिनमे प्रेम एक ही ओर पलता है और उसका परिणाम बडा विषम होता है। विहुला की कथा प्रेम का प्रबन्ध काव्य है। इस गाथा में कहा गया है कि विहुला के अप्रतिम रूप को जो भी देखता था वह मूर्छित हो जाता था। इसके अलौकिक सौन्दर्य पर मोहित अनेक नौजवानो ने पाणि ग्रहण के समय अपना हाथ फैलाया परन्तु वे सफलीभूत नहीं हुए। अन्त में एक चतुर मनुष्य ने जिसका नाम वाला लखन्दर था विहुला के प्रेम को जीतने में सफलता प्राप्त की। 'शोभा नयका बनजारा' भी एक दूसरा प्रणय आख्यान है, जिसमे पति पत्नी के प्रेम, विवाह तथा वियोग का वर्णन बडी ही रोचक एव मर्मस्पर्शी भाषा मे किया गया है। 'भरथरी चरित्र' में ही राजा भरथरी का अपने गुरु के उपदेश से घर छोडकर जगल में चला जाना वर्णित है। उनके विरह में उनकी पत्नी की दयनीय दशा का जो चित्र खीचा गया है वह बडा ही सुन्दर उतरा है। कहने का आशय यह है कि जो गाथायें उपलब्ध होती हैं उनमें अधिकाश में प्रेमाख्यानों को ही प्रधानता पायी जाती है। अग्रेजी आदि अन्य साहित्यो में भी जो बैलेंड पाये जाते हैं उनमें से अधिकाश का कथानक प्रेम ही होता है। 'क्रूयल ब्रदर' शीर्षक अग्रेजी बैलेंड इसका उदाहरण है।

भोजपुरी के दूसरे प्रकार के गीत वीरकथात्मक हैं, जिसमें किसी न किसी वीर के साहस-पूर्ण एव शौर्य-सम्पन्न किसी कार्य का वर्णन रहता है। इन कथानकों में वह वीर पुरुष आपद्ग्रस्त किसी अबला का उद्धार करता हुआ दिखलाई पडता है अथवा अपने शत्रुओं का वीरता से सामना कर न्याय पक्ष के लिये लडाई में जूझता हुआ दृष्टिगोचर होता है[1]। कही पर अलौकिक वीरता का वर्णन का मात्र ही इन गाथाओं का चरम लक्ष्य है। कहीं पर किसी युवती का पाणिग्रहण करने के लिये भीषण सग्राम करना पडा है। वीर कथात्मक गाथाओं में 'आल्हा' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इन दोनों वीर भाइयो आल्हा और ऊदल ने किस प्रकार

---

१. त्रिपाठी ग्राम गीत पृ० ४०५

अपनी मातृभूमि की रक्षा के हेतु महाप्रतापी पृथ्वीराज से भीषण युद्ध किया, यह बात पाठकों से छिपी नही है। आल्हा को अपने विवाह के लिये भी लडाई लडनी पडी थी। "लोरिकायन" नामक गाथा में लोरिकी की जीवन कथा, उसका विवाह तथा उसकी वीरता का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। कुवर विजई जिसको विजयमल भी कहते है, के वीर चरित से कौन भोजपुरी परिचित नही है। इनके साहस एव वीरतापूर्ण कार्यों की गाथा समस्त भोजपुर प्रदेश में बड़े चाव से गाई और सुनी जाती है। इस प्रदेश में आल्हा और विजयमल का इतना अधिक प्रचार है जितना तुलसीदास जी की रामायण का उत्तरी भारत में।

भोजपुरी की तीसरे प्रकार की गाथायें वे हैं जिनमें रोमाच अथवा 'रोमास' पाया जाता है। इसके अन्तर्गत 'सोरठी' का सुप्रसिद्ध गीत आता है। सोरठी एक साधारण घर की लड़की थी जो कुसमय में पैदा होने से लोकलाज के कारण माता द्वारा परित्यक्त कर दी गई। उसको एक छोटे से पालने में सुलाकर नदी में बहा दिया गया। परन्तु 'जाको राखे साइयां मारि न सकिहैं कोय' सोरठी खटोले पर पडी बहती हुई चली जा रही थी। एक मल्लाह ने उसे वेगवती धारा में बहती हुई देखा और उसे पकड कर अपने घर लाकर उसे पालने-पोसने लगा। धीरे-धीरे सोरठी बडी हुई और उसका विवाह हुआ। सोरठी की कथा इतनी अलौकिक तथा रोचक है कि पढते समय यही मालूम पडता है कि 'रोमास' पढ रहे हैं। अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार के वैलेड बहुत है, परन्तु हमारे यहां इनकी सख्या अत्यन्त सीमित है।

डा० चाइल्ड ने लोक गाथाओ को दो भागो में विभक्त किया है:—१. चारण गाथायें (मिनस्ट्रेल वैलेड्स) और २. परम्परा गाथाये (ट्रैडिशनल वैलेड्स)। चारण गाथाओ से उनका अभिप्राय उन गाथाओ से है जिन्हें घूमते फिरते भाट या चारण स्वय निर्माण कर गाते फिरते थे। परम्परागत गाथाओं का अभिप्राय उन गाथाओं से है जो चिरकाल से चली आ रही हैं और जनता के बीच में प्रचलित हैं। परन्तु विषय-विभाजन के आधार की दृष्टि से यह वर्गीकरण कुछ ठीक नहीं जँचता। उक्त गाथाओ के अतिरिक्त भोजपुरी में कुछ गाथायें और मिलती हैं जिनमें किसी सामाजिक घटना का उल्लेख है। ऐसी गाथाओं को प्रकीर्णक के ही अन्तर्गत रखना समुचित है।

—:o:—

अध्याय ११

भोजपुरी की लोक-गाथाओं की विशेषताएँ

लोक गाथाओ की अनेक विशेषताएँ हैं जो इन्हें अलकृत कविता से स्पष्टत पृथक् करती है । इन विशेषताओ पर ध्यान देने से यह स्पष्ट ही पता चल जायगा कि अमुक कविता गाथा है अथवा अलकृत काव्य । गाथाओ की इन विशेषताओ को हम प्रधानतया दस भागो में विभक्त कर सकते हैं जो निम्नाकित है—

१ रचयिता का अज्ञात होना ।
२ प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव ।
३ सगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य ।
४ स्थानीयता का प्रचुर पुट ।
५ मौखिक है लिपिबद्ध नही ।
६ उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव ।
७ अलकृत शैली का अभाव, अत स्वाभाविक प्रवाह ।
८ रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव ।
९ टेक पदो की पुनरावृत्ति ।
१० लम्बा कथानक ।

१ रचयिता अज्ञात

लोक गाथाओ के रचयिता अज्ञात होते हैं । किस गीत को किस मनुष्य ने कब बनाया, यह बतलाना नितान्त कठिन है । यही कारण है कि आज हजारो गाथाओ के होने पर भी हम भी उनमें से एक के भी रचयिता के विषय में निश्चित रूप से कुछ नही बतला सकते । प० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि इन गीतो के रचयिता अज्ञात स्त्री पुरुष हैं ।[1] जो बात लोक गीतो के ऊपर लागू है वही गाथाओ के विषय में भी कही जा सकती है । आल्हा का रचयिता जगनिक माना जाता है परन्तु लोरकी, सारठी, विजयमल, भरथरी आदि गाथाओ के रचयिता कौन थे इसका हमें पता नही चलता । कबीरदास जी के नाम से बहुत से 'निरगुन' पाये जाते हैं परन्तु वे वास्तव मे कबीर के ही रचित पद हैं, यह कहना कठिन है । 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' या गावेले कबीर दास यह निरगुनवाँ ऐसे पद अनेक गीतो में पाये जाते हैं परन्तु उन्हें कबीर की रचना नही माना जा सकता । राबर्ट ग्रेव्स ने लिखा है कि आजकल के वर्तमान युग में किसी लेखक का अज्ञातनामा होना यह सिद्ध करता है कि वह अपनी कृति से लज्जित होने के कारण ऐसा करता है परन्तु प्राचीन समाज में इसका कारण अपने नाम के विषय में लेखक की लापरवाही ही समझनी चाहिये ।[2]

---

१. त्रिपाठी . ग्राम गीत भूमिका पृ० २१ २ एनोनीमिटी इन दि प्रेजेन्ट स्ट्रक्चर आफ सोसाइटी यूजुअली इम्प्लाइज दैट दि आथर इज अशाम्ड आफ हिज आथरशिप, बट इन प्रिमिटिव सोसाइटी इज ड्यू जस्ट टू दि केयरलेसनेस आफ दि आथर्स नेम दि इंगलिश बैलेड पृष्ठ १२

अन्य कविताओं की भाँति इन गाथाओं का भी कोई न कोई कर्ता अवश्य होगा, जिसने अपने सहवासियों के साथ आनन्द में मस्त होकर इनकी रचना की होगी। परन्तु किसने यह गाने रचे यह बतलाना कठिन है। परम्परा रूप में अनेक सदियों से चली आने वाली इन गाथाओं के रचयिता के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

भोजपुरी चैता या घाटो के रचयिता बुलाकीदास माने जाते हैं और वास्तव में कुछ घाटो उनकी रचना हैं भी। परन्तु अन्य हजारों चैता और होली के गानों की रचना किसने की, यह बतलाना नितान्त कठिन है। सच तो यह है कि इन लेखकों ने अपने व्यक्तित्व, नाम और यश की चिन्ता न करके जाति के लिये अपनी प्रतिभा का उत्सर्ग किया है। रघुवंश और उत्तर राम चरित के रचयिता कालिदास और भवभूति का नाम हमें ज्ञात है और इनके जीवन चरित के विषय में भी थोड़ी बहुत सामग्री हमें उपलब्ध होती है परन्तु इन लोक-गाथाओं के रचयिताओं का नाम भी ज्ञात नहीं है, फिर इनके जीवनवृत्त की चर्चा करना तो व्यर्थ ही है।

२. प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव

लोक-गाथाओं का कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं होता। लेखक-गाथा की रचना कर उससे पृथक हो जाता है। अब वह गाथा समाज की वस्तु हो जाती है और प्रत्येक मनुष्य उसे अपनी निजी सम्पत्ति समझता है। इसीलिये किसी गाथा का कोई वास्तविक एवं शुद्ध मूल पाठ नहीं होता। हम किसी भी एक पाठ के विषय में यह नहीं कह सकते हैं कि यही विशुद्ध पाठ है और अन्य सभी अशुद्ध हैं।[1] कुछ लेखकों ने गाथा की उपमा एक विशाल नदी से दी है और यह उपमा वास्तव में उचित भी है। जिस प्रकार कोई नदी प्रारम्भ में किसी स्थान विशेष से अत्यन्त पतले रूप में निकलती है। आगे चलने पर उसमें छोटे-छोटे नदी-नाले मिलते हैं जिससे उसके जल में वृद्धि होती रहती है। कहीं-कहीं भूमि की विशेषता के कारण मिट्टी के पीली या काली होने के हेतु उसके जल के रूप में अन्तर पड़ जाता है। जब वह समुद्र में गिरने लगती है तो उसके विशाल रूप और जल के रंग के परिवर्तन के कारण उसका पहिचानना भी कठिन हो जाता है। उसी प्रकार इन गाथाओं की भी दशा है। जब रचयिता इन गाथाओं का निर्माण करता है तभी तक इनका रूप मौलिक रहता है। बाद में ये जाति या समुदाय की वस्तु बन जाती हैं। इनके निर्माण के साथ ही इनकी समाप्ति नहीं होती, बल्कि वास्तविक बात तो यह है कि उस समय इन गाथाओं के निर्माण का प्रारम्भ होता है।[2] ये गाथायें मूल लेखक के हाथों से निकल कर अब जनता के पास मौलिक प्रचार (ओरल ट्रांसमिशन) के लिये आती हैं। यदि जनता ने इस गाथा को अपना लिया तब वह लेखक के अधिकार से बाहर चली जाती है और जनता की सम्पत्ति बन जाती है। समय के बीतने के साथ लोग उस मूल गाथा में थोड़ा-बहुत परिवर्तन करते रहते हैं। भिन्न-भिन्न गवैये गाथाओं को अपने अनुकूल बनाकर उसे गाते हैं। यदि इन गीतों का प्रचार दूर-दूर के प्रदेशों में भी हो गया तो उस गाथा की मूल भाषा

१. दि इङ्गलिश बैलेड पृ० १३ २. दि मीयर ऐक्ट आफ कम्पोजिशन व्हिच इज मोस्ट लाइकली टु बी ओरल ऐंड रिटेन इज नोट दि कनक्लूजन आफ दि मैटर, इट इज राटर दि बिगनिंग. कीट्रीज : इङ्गलिश एंड स्काटिश पापुलर बैलेड्स (इन्ट्रोडक्शन) पेज १७.

से भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। अनेक स्थानीय घटनाओं का पुट उसमें मिल जाने से उसकी ऐतिहासिकता में भी अन्तर पड जाता है। भिन्न-भिन्न भाषाभाषियो के द्वारा प्रयुक्त होने पर इसके विभिन्न पाठ तैयार हो जाते हैं। ऐसी दशा में उस मूल गीत का रूप इतना परिवर्तित और परिवर्धित हो जाता है कि मूल लेखक के लिये भी उसे पहचानना कठिन हो जाता है।

आल्हा का मूल लेखक जगनिक था, जिसने हिन्दी की बुन्देलखडी बोली में अपनी अमर कृति की रचना की थी। इस ग्रन्थ में आल्हा और ऊदल के पराक्रम का वर्णन था। किस प्रकार इन वीर बाँकुडो ने अपनी माता की आज्ञा मानकर देश प्रेम के कारण परम प्रतापी राजा पृथ्वीराज का सामना किया था, यही जगनिक का मुख्य वर्णन विषय था। जगनिक की यह कृति बहुत बडी नही थी। परन्तु आजकल जो "आल्हा" उपलब्ध होता है उसका आकार "जगनिक" के आल्ह खड से कई गुना बडा है तथा इसमें ऐसी अनेक घटनायें पीछे से जोड दी गई हैं जिनका मूल "आल्हखड" में वर्णन नही था। जगनिक ने मूल ग्रन्थ बुन्देलखडी में ही लिखा था, परन्तु उत्तरी भारत में आल्हा के सर्वत्र प्रचार होने के कारण इसके अनेक पाठ मिलते हैं, जिनमें कन्नौजी, बुन्देलखडी और भोजपुरी प्रसिद्ध है। कन्नौजी और भोजपुरी पाठ तो प्रकाशित भी हो गया है। सभव है आल्हा के व्रज एव अवधी पाठ भी विद्यमान हो। इस प्रकार आजकल जो "आल्हा" उपलब्ध होता है, उसके पाठ विभिन्न बोलियो में भिन्न-भिन्न हैं और उसकी घटनाओं में भी बहुत कुछ अन्तर है। राजा गोपीचन्द के गीत में भी यही बात पाई जाती है। गोपीचन्द के जो गीत भोजपुरी में मिलते हैं वे बगला गीतो से पृथक् हैं। घटनाओं में भी भिन्नता है। कहने का साराश यह है कि लोक गाथा का कोई मूल एव प्रामाणिक पाठ नही होता। यह जनता की मौलिक सम्पत्ति है। अत इसमें परिवर्तन एव परिवर्धन होना नितान्त स्वाभाविक है। इस विषय में प्रोफेसर कोट्रीज का मत कितना ठीक एव समुचित है। वे लिखते हैं कि इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी वास्तविक लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित एवं अन्तिम रूप नही हो सकता। कोई प्रामाणिक पाठ नही हो सकता। उसके विभिन्न पाठ हो सकते हैं परन्तु केवल एक ही पाठ नही हो सकता।"[1]

३. संगीत का अभिन्न साहचर्य

सगीत और गाथा का अभिन्न साहचर्य है। सच तो यह है कि कि सगीत के बिना किसी गाथा के सुनने में आनन्द ही नही आता। अग्रेजी के बैलेड शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के "बैलारे" धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ नाचना होता है। अतः बैलेड का मूल अभिप्राय उस गीत से है जिसे किसी नर्तक मडली के लोग साथ-साथ "कोरस" में गाते हैं। प्राचीन काल में यूरोपीय देशो में चारणो के द्वारा, जिन्हें मिन्स्ट्रल कहते थे, ढोल अथवा सितार बजाकर "बैलेड" गाने का वर्णन मिलता है। डा० चाइल्ड और विशप पर्सी ने ऐसे चारणो का विशेष रूप से उल्लेख किया है। डा० चाइल्ड ने तो इन चारणो के द्वारा गाये जाने के कारण से ही कुछ गीतो को "मिन्स्ट्रल बैलेड" के नाम से अभिहित किया है।

१. "इट फौलोज दैट ए जेन्युमली पापुलर बैलेड कैन हैव नो फिक्सड ऐन्ड फाइनल फौर्म, नो सोल आथेन्टिक वर्शन. देयर आर टेक्सट्स बट देयर इज नो टेक्स्ट" इङ्गलिश एन्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स पेज १७.

भारतवर्ष में भी गाथा और सगीत का अभिन्न सबध दीख पडता है। वर्षा के दिनो में आल्हा गानेकी बडी प्रथा है। अल्हैत जब आल्हा गानेके लिए तैयार होता है तब वह अपने में ढोल बाँध लेता है और उसे बजाकर आल्हा गाता है। आल्हा के गाने की गति ज्यो-ज्यो तीव्र होती जाती है, ढोल बजाने की गति में भी वैसा ही परिवर्तन होता जाता है और गाने के पराकाष्ठा (क्लाइमेक्स) पर पहुँचने परढोल इतने तारस्वर से बजने लगता है।

गोरखपन्थी साधु जो जोगी के नाम से प्रसिद्ध है प्राय गोपीचन्द और भरथरी के गीत गाते हुए पाये जाते है। गीत गाते समय वे सारगी को बजाते है। उनकी मधुर वाणी सारगी की मधुरता में मिलकर बडा आनन्द देती है। सारगी उनका अनन्य साधन है। सभवत उसके बिना उनकी स्वर लहरी मे कम्पन ही न उत्पन्न हो।

गीत और सगीत का सबध इतना घनिष्ट है कि देहातो में जहाँ कोई भी वाद्य यन्त्र उपलब्ध नही होता वहाँ स्त्रियाँ काठ के कठौते को उलट कर लाठी के हूरे से उसकी पीठ को रगडती है जिससे एक विचित्र प्रकार की सगीत ध्वनि उत्पन्न होती है। जहाँ यह भी उपलब्ध नही है वहाँ करतल ध्वनि समय-समय पर ताली बजाकर वाद्ययन्त्र का काम चला लेती है। लोक गीत सामूहिक रूप कोरस में गाये जाने से विशेष आनन्द देते है। यह बात भी उनकी सगीतात्मक प्रवत्ति की ओर सकेत करती है। इस प्रकार लोक गीत एव लोकगाथाओ का सगीत से अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

४. स्थानीयता का पुट

लोक गाथाओ में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। इनमें भले ही राजा, रानी और जमीदारो एव रईसो का वर्णन हो फिर भी ये स्थानीयता की गध को लिये हुए रहते है। यदि कोई गाथा भोजपुरी प्रदेश में गाई जाती है तो प्रादेशिकता का रग उसमें अवश्य विद्यमान रहेगा। कहीं-कहीं स्थानीय ऐतिहासिक घटनाओ का उल्लेख भी इन गीतो मे पाया जाता है। बलिया जिले की एक झूमर में 'पनिया ना पीयें हरदिया के राजा" का बारम्बार उल्लेख पाया जाता है। बलिया जिले में हलदी एक गाँव है जहाँ के हैहय वशी क्षत्री राजा बडे प्रसिद्ध थे। इनके वशज आज भी विद्यमान है। इसी प्रकार से विहार प्रान्त में गाये जाने गीतो में अमर सिंह का उल्लेख पाया जाता है।

५. मौखिक हैं लिपिबद्ध नहीं

लोक-गाथायें चिरकाल से मौखिक परम्परा के रूप में चली आ रही है। जिस प्रकार प्राचीन काल में वेद मौखिक रूप में गुरु-शिष्य की परम्परा से चले आते थे। गुरु अपने विद्यार्थियो को पढाता था और ये शिष्य पुन अपने शिष्यो को पढाते थे। इसी प्रकार इन गाथाओं की भी परम्परा समझनी चाहिये। एक गवैया किसी गाने को गाता है, उससे दूसरा गवैया गाना सीख लेता है और फिर उससे तीसरा सीखता है। इस प्रकार यह परम्परा अक्षुण्ण रूप से चलती रहती है। इन गवैयो में भी, जिनका प्रधान काम गाना गाकर भिक्षा की योजना करनी है, गुरु शिष्य परम्परा पाई जाती है। गाँवो में बूढी माता या दादियाँ अपनी पुत्री और पौत्रियो के गीत सिखलाती है जिससे मौका पडने

१. डॉ॰ उपाध्याय : भो॰ ग्रा॰ गी॰ भाग १.

पर उनके काम आवे । इस प्रकार इन गीतो की परम्परा सदा चालू रहती है । ये गीत लिपिवद्ध नही किये जाते । फ्रैंक सजविक का मत है कि इन गीता को लिखना इन्हें मृत्यु के मुख मे डालना है । फ्रेंच लोग कहते हैं कि गाथा तभी तक जीवित रह सकती है जबतक यह मौखिक साहित्य के रूप मे है ।[1]

सिजिविक का मत वास्तव में यथार्थ है । जब हम किसी लोक गाथा को लिपि-बद्ध कर लेते हैं तो उसकी बाढ मारी जाती है । उसकी वृद्धि आगे नही होने पाती । वह तभी तक बढ सकेगा जब तक वह अक्षरा के शिकजे में नही कस दिया जाता । यही कारण है कि आज आल्हा और लोरकी की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध नही हैं । यद्यपि लोक गाथाओ के अनुसन्धान कर्त्ताओ के लिये यह दुर्भाग्य की बात है परन्तु अन्य दृष्टि से यह लाभप्रद ही सिद्ध हुआ है । यदि आल्हा या विजयमल लिपि-बद्ध कर लिये गये होते तो आज उनके जो विभिन्न पाठ (वरसन्स) देखने को मिलते हैं वे न प्राप्त होते । गाथाओ के कलेवरो में *यह वृद्धि उनके जीवित और जनप्रिय होने का प्रमाण है । आल्हा की ही भाँति* गोपीचन्द गीत के तीन पाठ भोजपुरी, मगही और बगला उपलब्ध होते हैं[2]। इस प्रकार लोक गीतो की परम्परा सदा से मौखिक रही है ।

६. उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव

लोक गाथाओ मे उपदेश देने अथवा नीति बतलाने की मनोवत्ति का नितान्त अभाव रहता है । उनका प्रधान उद्देश्य कथानक का प्रवाह रहता है । लोरकी, विजयमल और आल्हा की गाथाओ में देश भक्ति, माता की आज्ञा का पालन, साहस, शौर्य और प्रेम के अनेक ऐसे प्रसग मिलते हैं जिनसे उपदेश या शिक्षा ली जा सकती है। परन्तु इन गीतो के रचयिता की प्रवृत्ति इस ओर नही थी । *कुसुमदेवी और भगवती की गाथाओं से उनके* अलौकिक तथा पवित्र आचरण से हमे बहुमूल्य शिक्षा प्राप्त होती है परन्तु उनमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव है ।

७. अलंकृत शैली का अभाव

लोक गाथाओ में अलङ्कृत शैली का नितान्त अभाव रहना है । अलङ्कृत कविता किसी कलाकार कवि के द्वारा लिखी जाती है जो अपनी रचना को सुरक्षित बनाने के लिये विभिन्न अलकार, छन्द, रस और कल्पना को उसमें अवतारणा करता है । वह अपनी कृति में अलकारो की योजना करता है और उसे किसी विशिष्ट छन्द के साँचे में ढालने के लिये *उसमें काट-छाँट भी करता है । ऐसी कविता को अलकृत कविता* (पोइट्री आफ आर्ट) कहते हैं जो प्रयासपूर्वक लिखी जाती है । परन्तु गाथाएँ जनता की कविता *(पोइट्री आफ फोक) कही जाती है, इससे बिल्कुल पृथक् है । इसमें एक स्वाभाविक प्रवाह* रहता है जो सर्वत्र समान रूप से पाया जाता है । लोक गीतो और गाथाओ की उपमा यदि

---

१. इन दि एक्ट आफ राइटिंग ईच बन डाउन, यू मस्ट रमेम्बर दैट यू आर हेल्पिंग टू किल दैट बैलेड. "विरुम वीलिटेयर पर ओरा" इज दि लाइफ आफ ए बैलेड. इट लिब्ज ओनली व्हाइल इट रीमेन्स व्हाट दि फ्रेंच, विथ ए चार्मिंग कनफ्यूजन आफ आइडियाज, काल "ओरल लिटरेचर" दि बैलेड पेज ३६. २. डा० ग्रियर्सन: ज० ए० सो० बं० भाग ५४ (१८८५) पार्ट १.

यू वर्शन्स ओफ दि सौंग आफ गोपीचन्द ।

एक अवधी विरहा मे गाधी जी की उस कलकत्ता यात्रा का वर्णन किया गया है जो उन्होंने सन् ४७ ई० में वहाँ शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से की थी—

"सुमिरौ गाधी और गगा,
वस्तर पहिरे रगा रगा
+ +
बैठें गाधी पूजा करते
फेर रहे तुलसी माला।" आदि-आदि।

पजाबी लोक गीत गाधी जी के यशोगान में अत्यन्त अग्रगामी नजर आते हैं। अनेक बार गाँव की स्त्रियाँ 'गिद्धा' नृत्य की रगभूमि पर गा उठती हैं—

"आप गाधी कैद हो गया
सानू दे गया खद्दर का बाणा।
+ +
गाधी कहे फिरगिया वे
हुण छड्ड दे हिन्दुस्तान।"

मध्य प्रान्त के गोड लोगों के भी लोक-गीतो में गान्धी जी का सन्देश पहुँच गया है? कोई गाता है[1]—

"बद्दल गरजे बद्दल गरजे
गरजे माल गुजारा हो
फिरगी राज के गरजे सिपाइरा रामा
गाधी क राज होने वाला हाम रे।"

सथाली लोक गीत भी गाधीजी का यशोगान करने से नही चूकता। सुदूर आन्ध्र देश के लोक गीतो ने भी गाधी जी के चरणो में श्रद्धा के पुष्प अर्पित किये हैं[2]। गाधी जी का जय घोष भारतीय लोक सस्कृति की एकता की एक नई परम्परा का सूचक है। एक तामिल लोक गीत में जनता की प्रतिभा कह उठी है कि गाधी ऋषि हमारी रक्षा करता है। वह महान् ऋषि है—

"गाधी ऋषि ननमें कार्यातुम महानृषि[3]।
गाधी ऋषि।"

बेला का वर्णन

लोक हृदय की आन्तरिक भावनाओ के चित्रण में तो लोक गीतो में समानता पाई ही जाती है परन्तु इसके साथ ही प्रकृति के वर्णन में भी इनमें एकरूपता दृष्टिगोचर होती है। बेला जनता का परम प्यारा पुष्प है। इसीलिए इसका उल्लेख सभी लोक गीतों में अनेक बार हुआ है। एक भोजपुरी विवाह गान में कन्या की तुलना बेला के फूल से की गई है। एक मैथिली झूमर में पुष्प शय्या की कल्पना की गई है जिसमें बेला के

---

१. सत्यार्थी: वही पृ० ३६७. २. वही. पृ० ३६६. ३. वही. पृ० ४०५.

फूलों ने उपयुक्त स्थान पाया है । मैथिली 'चैतावर' मे भी बेला का वर्णन पाया जाता है:।[1]

'बेला चमेली फूले बगिया में
जोबना फूलल मोरे अँगिया हे रामा
नई भेजे पतिया ।'

एक कन्नड लोक गीत में भी शिव की पूजा के लिये बेला के फूल चुने जाते हैं। इसी प्रकार बंगला लोक गीतो मे इस पुष्प की चर्चा अनेक बार हुई है । बेला का सुन्दर स्वरूप, उसकी मनोहर सुगन्ध और अनुपम लावण्य लोक-हृदय को बहुत प्यारा लगा है इसीलिये इसका सर्वत्र उल्लेख किया गया है[2] ।

—:०:—

१. वही पृ० ८६. २. सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात पृ० १७-२६.

द्वितीय खण्ड

लोक-गाथा

अध्याय ६

क. लोकगाथा

नामकरण

भोजपुरी में जो लोक गीत पाये जाते हैं वे दो प्रकार के हैं। पहले वे गीत हैं जो गेय हैं आकार में छोटे हैं, और जिनमें किसी प्रकार की कथा या आख्यान का अभाव है। दूसरे वे गीत हैं जिनमें गेयता तो अवश्य है परन्तु उनकी प्रधान विशेषता उनका लम्बा कथानक है। अंग्रेजी भाषा में पहिले प्रकार के गीतों के लिए लिरिक (lyric) और दूसरे प्रकार के गीतों के लिये बैलैड (ballad) शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। हिन्दी में इन्हें लोक गीत और लोक गाथा का नाम देना उपयुक्त है। दूसरे प्रकार के गीतों को 'गीत कथा' या 'कथा गीत' भी कहा जा सकता है। परन्तु हमारी सम्मति में लोक गाथा शब्द इन दोनों शब्दों से अधिक भावाभिव्यंजक है। 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पदावली लिरिक्स के लिए प्राचीन समय से होता आया है। हाल की 'गाथा सप्त शती' इसका उदाहरण है। भोजपुरी मे गाथा का अर्थ कथा या कहानी होता है। जैसे 'का आपन गाथा सुनवले बाड़' तुम अपनी कथा क्या सुना रहे हो। इस प्रकार 'गाथा' शब्द में गेयता और कथानक का अंश दोनों विद्यमान हैं जो बैलैड की विशेषता है। राजस्थानी लोक गीतो के संग्रहकर्ता श्री सूर्यकरण पारीक ने भी ग्राम गीत और लोक गीत मे पार्थक्य दिखलाने का प्रयत्न किया है और बैलैड शब्द के लिये उन्होंने 'गीत कथा' का प्रयोग किया है।[1] परन्तु पूर्वोक्त कारणों से 'लोक गाथा' शब्द अधिक समुचित है एवं यही समीचीन जँचता है।

लोक गाथा की परिभाषा

बैलैड अथवा लोक गाथा की परिभाषा अनेक विद्वानो ने अनेक प्रकार से की है। प्रो० मेट्रीज का मत है कि बैलैड वह गीत है जो किसी कथा को कहता है अथवा दूसरी दृष्टि से विचार करने पर बैलैड वह कथा है जो गीतों में कही गयी हो।[2] हैजलिट् ने बैलैड की परिभाषा बतलाते हुए इसे 'गीतात्मक कथानक' कहा है।[3] फ्रैंक सिजविक ने अपनी पुस्तक में बैलैड की परिभाषा में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए इसे अमूर्त पदार्थ बतलाया है।[4] आक्सफोर्ड इगलिश डिक्शनरी के प्रधान सम्पादक डा० मरे ने बैलैड की परिभाषा देते हुए लिखा है कि 'बैलैड वह साधारण स्फूर्तिदायक कविता है जिसमें कोई जन प्रिय आख्यान रोचक ढग से वर्णित हो।'[5]

इस प्रकार ऊपर अग्रेजी विद्वानों द्वारा बैलैड शब्द की जो परिभाषा दी गई है उसकी

---

१. सूर्यकरण पारीक : राजस्थानी लोक गीत पृ० ७८, ८५. २. 'ए बैलेड इज ए सांग देट टेल्स ए स्टोरी, और टु टेक दि अदर प्वाइंट आफ व्यू ए स्टोरी टोल्ड इन सांग" इंगलिश एन्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स भूमिका पृ० ११. ३. लिरिकल नैरेटिव. ४. दि बैलेड पृ० ८. ५. "ए सिम्पल स्पीरिटेड पोयम इन शार्ट स्टेन्जाज़ इन विच सम पापुलर स्टोरी इज ग्राफिकली टोल्ड." न्यू० इ० डि०।

पर्यालोचना करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बैलैड में गेयता और कथानक इन दोनो होना अत्यन्त आवश्यक है । लोक गाथा के विषय में भी ये ही बातें लागू हैं । अत लोक गाथा वह गाथा या कथा है जो गीतो में कही गयी हो ।

लोक गीत और लोक गाथा के अन्तर को दो प्रधान भागो में बांट सकते है ।' स्वरूपगत भेद २ विपयगत भेद । स्वरूपगत भेद के विषय में इतना जानना आवश्यक है कि

लोकगीत और लोक गाथा में अन्तर

गीत आकार या स्वरूप में छोटा होता है परन्तु लोक गाथा का आकार अत्यन्त विशाल होता है । बिरहा लोक गीत है जो चार कडियो में ही समाप्त हो जाता है । परन्तु लोक गाथा का विस्तार सैंकडो पृष्ठो तक चलता रह सकता है । आजकल जो आल्ह खड[1] उपलब्ध होता है यद्यपि वह मूलरूप में उपलब्ध नही है, वह एक लोक गाथा है । कुछ ऐसी भी लोक गाथायें हैं जो छोटी है, जैसे क्षनियाणी भगवती की गाथा । फिर भी लोकगाथाओ का आकार लोक गीतो से कही अधिक वडा होता है ।

दूसरा भेद विपयगत है । लोक गीतो में भिन्न सरकारो-पुन जन्म, मुडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना, ऋतुओ में वर्पा, वसन्त, ग्रीष्म और पर्वों पर गाये जानेवाले गीत सम्मिलित है, जिनमें घर, गृहस्थी, प्रेम, परित्याग, वन्ध्या, विधवा आदि के सुख दु खो का चित्रण ही प्रधान विपय रहता है । कही कोई वन्ध्या स्त्री अपने भाग्य को कोस रही है, तो कही विधवा का करुण आलाप सुनाई देता है । कहने का आशय यह है कि घर के सकुचित क्षेत्र में जीवन की जिन अनुभूतियो का साक्षात्कार मनुष्य करता है उन्ही की झाँकी हमें इन लोक गीतो में देखने को मिलती है, परन्तु लोक गाथा का विपय लोक गीत से कुछ भिन है । इसमें सन्देह नही कि इन गाथायो में भी प्रेम का पुट गहरा रहता है । लेकिन इस प्रेम में एक महान् सघर्प दिखलाया जाता है जिसका लोक गीतो में नितान्त अभाव है । लोक गाथाओ मे वीरता, साहस, एव रहस्य रोमाच का पुट अत्यधिक पाया जाता है । यहाँ विवाह भी विना युद्ध किये नही होता । आल्हा का विवाह इस विपय का प्रत्यक्ष प्रमाण है । 'सोरठी' की गाथा में रहस्य एव रोमाच का भाव अधिक है । कही-कही पर इन गीता में अनेक वीर पुरुप लोक त्राता या जन रक्षक के रूप मे भी अकित किये गये हैं । हमें अनेक गीत ऐसे मिले हैं जिनमें मुगलो के अत्याचार से स्त्रियो को बचाने के लिये अनेक वीरो ने अपने प्राणो की आहुति तक दे दी है । यह उस राजपूती वीरता की समानता रखता है जिसका दर्शन हमें राजस्थान के इतिहास में मिलता है ।

ख. लोक-गाथाओं की उत्पत्ति

लोक गाथायो की उत्पत्ति कैसे हुई यह कहना वडा कठिन कार्य है । अनेक विद्वानो ने इस विपय पर गभीरता से विचार किया है परन्तु किसी का मत एक-दूसरे से नही मिलता । प्राचीन काल में इन लोक गाथायो की रचना किसी व्यक्ति ने की अथवा ये किसी जाति के सामूहिक प्रयास के फलस्वरूप हैं, इस सबध में जो प्रधान मत प्रचलित है उनका सक्षिप्त रूप से दिग्दर्शन कराया जाता है ।

---

१. बाबू वैजनाथ प्रसाद बुक्सेलर, राजादरवाजा, बनारस सीटो सन् १६३२ से प्रकाशित ।

१. ग्रिम का सिद्धान्त : समुदायवाद ।
२. स्थेन्थल का सिद्धान्त : जातिवाद ।
३. विशाप पर्सी का सिद्धान्त : चारणवाद ।
४. फ्रान्सिस चाइल्ड का सिद्धान्त : व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद ।
५. श्लेगल का सिद्धान्त : व्यक्तिवाद ।

ग्रिम महोदय का यह मत है कि लोक गाथाओं की उत्पत्ति किसी व्यक्ति विशेष की काव्य-प्रतिभा से नहीं हुई बल्कि इनके निर्माण का श्रेय एक समुदाय कम्यूनिटी को है ।[1] जैसे किसी व्यक्ति विशेष के हृदय मे हर्ष, विषाद, सुख, दुःख की भावना जागरित होती है उसी प्रकार किसी समुदाय के लोग भी समष्टि रूप में इसी भावना का अनुभव करते हैं । किसी उत्सव के समय, किसी मेला के अवसर पर अथवा किसी धार्मिक पर्व पर लोगों का समुदाय एकत्र होता है । इन्ही समुदाय के लोगो ने एक साथ मिलकर इन लोक गीतो की रचना की होगी । ग्रिम के मत का यह आशय है कि मान लीजिये कि किसी सामाजिक अवसर पर कुछ व्यक्ति एकत्रित हैं । सभी आनन्द मे मस्त हैं । उनमे से किसी एक ने गीत की कोई कड़ी बनाई । दूसरे ने उसमें दूसरी कडी जोड दी और तीसरे ने तीसरी कडी । इस प्रकार कुछ देर में एक पूरा गीत तैयार हो गया ।

आजकल भी हम देखते हैं कि कजली गाने वाले दो दलो मे विभक्त हो जाते हैं और प्रत्येक दल में पाच-सात आदमी होते हैं । पहले एक दल का व्यक्ति एक कड़ी सुनाता है । पुन. दूसरे दल का व्यक्ति उसके उत्तर में एक नई कडी बनाकर तुरन्त तैयार कर देता है । फिर प्रथम दल का आदमी दूसरी कडी बनाता है, और यह क्रम घटो तक चलता रहता है । इस प्रकार कजली, लवनी आदि के अनेक गीत तैयार हो जाते हैं । परन्तु यह कहना कि अमुक कजली को अमुक समुदाय अथवा व्यक्ति ने बनाया है अथवा अमुक हाली के गीत को अमुक सज्जन ने रचा है, ठीक न होगा, क्योंकि उसकी रचना में एक व्यक्ति का हाथ हो सकता है और अनेक व्यक्तियो का सहयोग भी ।

स्थेन्थल का मत ग्रिम के मत से मिलता-जुलता है । परन्तु वह उससे भी थोडा आगे बढा हुआ है । स्थेन्थल का मत है कि 'लोक गीतों का निर्माण समाज के कुछ विशिष्ट लोगों ने नहीं बल्कि पूरी जाति (रेस) के लोगों ने किया । लोक गाथा किसी जाति के समस्त व्यक्तियों के प्रयास के फल हैं । अनेक देशों में बहुत सी ऐसी जातियाँ हैं जिनके सम्पूर्ण सदस्य एकत्रित होकर कोई उत्सव मनाते हैं । सभवत. ऐसे अवसर पर वे अपने गीतो की रचना करते हैं । इस प्रकार लोक गाथाओं की सृष्टि होती है । परन्तु स्थेन्थल का सिद्धान्त किसी छोटी जाति के लोगो के विषय मे तो सत्य हो सकता है परन्तु भारतवर्ष जैसे विशाल देश जो महाद्वीप के समान है, के लिये तो बिल्कुल लागू नही हो सकता । यद्यपि इस सिद्धान्त में भी ग्रिम की भाँति सत्य की मात्रा अधिक है परन्तु यह सर्वत्र समान रूप से लागू नही हो सकता ।

विशाप पर्सी इगलैंड के बहुत बडे गीत सग्रहकर्ता थे । उनका मत है कि इगलैंड की लोक गाथाओं की रचना चारण या भाटो के द्वारा हुई । ये चारण लोग प्राचीन काल में

---

१. Dos Folk Daschest. वीट्रिस—इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स (इन्ट्रोडक्शन) पेज १८.

इंगलैण्ड मे ढोल अथवा सारगी—हार्प पर गाना गाते हुए भिक्षा की याचना किया करते थे और साथ ही गीतो की रचना भी करते जाते थे । ऐसे गीतो को यहाँ 'मिन्स्ट्रल बैलैड' के नाम से पुकारते हैं । भारत में भी चारणो के द्वारा अनेक गाथाओ की रचना हुई है । आल्ह खड का रचयिता जगनिक परमर्दिदेव के दरबार मे चारण था और पृथ्वीराज रासो का लेखक चन्दबरदाई भी पृथ्वीराज का चारण ही था । परन्तु सभी गाथाओ की रचना चारणो के ही द्वारा हुई है, यह कहना न्याय-सगत न होगा ।

सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् श्लेगल का मत है कि जिस प्रकार से अलकृत कविता का रचयिता कोई व्यक्ति विशेष होता है उसी प्रकार से लोक गीतो का भी लेखक कोई व्यक्ति अवश्य होगा । बिना व्यक्ति विशेष के गाथाओ की रचना असभव है । ग्रिम के सिद्धान्त का खडन करते हुए श्लेगल ने लिखा है कि "सारा समुदाय लोक गीतो की रचना करता है, यह उक्ति उतनी ही हास्यास्पद है, जितना सारी जाति शासन करती है यह कथन । जिस प्रकार प्रत्येक कला किसी कलाकार की कृति होती है, प्रत्येक कविता किसी कवि की रचना होती है, प्रत्येक घर किसी गृह निर्माण विशारद के प्रयत्नो का फल होता है, उसी प्रकार लोक गाथा किसी रचयिता की रचना अवश्य होगी, चाहे वह रचयिता अनपढ ही क्यों न हो । लोक गाथा समुदाय की सम्पत्ति अवश्य है परन्तु उसकी रचना भी समुदाय के द्वारा की गई होगी, यह सिद्धान्त मान्य नही है ।

लोक गाथाओ के परम आचार्य डा० फ्रान्सिस चाइल्ड भी इसी मत को स्वीकार करते हैं । परन्तु उनके मतानुसार इतना अन्तर अवश्य है कि लोक गाथाओ मे उसके रचयिता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है । उसकी वाणी मे तो उसकी रचना अवश्य मिलती है परन्तु उसका व्यक्ति बिल्कुल नही रहता । लोक गाथाओ का रचयिता इन गाथाओ की सृष्टि कर जनता के हाथो मे इन्हें समर्पित कर स्वयं अन्तर्हित हो जाता है । उपर्युक्त दोनो सिद्धान्तो में विशेष अन्तर नही है । दोनो एक दूसरे के पूरक हैं ।[१]

हमारी धारणा सार्वदेशीय लोक गीतो अथवा गाथाओ की उत्पत्ति के सबध में यह है *कि प्रत्येक गीत या गाथा का रचयिता मुख्यत. कोई न कोई व्यक्ति अवश्य है* । साथ ही कुछ गीत या गाथा जन समुदाय (फोक) का भी प्रयास हो सकता है । लोक गाथाओ की परम्परा सदा से मौखिक रही है । अत यह बहुत सभव है कि गाथाओ के लेखको का नाम लुप्त हो गया हो । आज तक किसी भी भोजपुरी गाथा की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नही हुई है जिससे उसके लेखक का नाम हम जान सके ।

एक लेखक का होने पर भी मौखिक परम्परा के कारण भिन्न-भिन्न गवैयो ने इन गाथाओ मे इतना अधिक अंश जोड दिया है कि वे अब एक लेखक की कृति न होकर पूरे समाज की सम्पत्ति बन गये हैं । एक ही गीत भिन्न-भिन्न जिलो में भिन्न-भिन्न रूपों मे पाया जाता है । इसका प्रधान कारण यही है कि व्यक्ति विशेष की रचना होने पर भी उनमें स्थानीय भाषा के पुट के कारण अथवा गवैयो के द्वारा परिवर्तन के कारण भेद उत्पन्न हो गये हैं ।

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने इस विषय पर विचार करते हुए किसी निश्चित मत का प्रतिपादन नही किया है । वे लिखते हैं कि—[२]

---

१. इन विभिन्न मतों के विस्तृत वर्णन के लिये देखिये : गूमर : ओल्ड इंगलिश बैलड्स भूमिका पृ० ३५ २. त्रिपाठी : ग्राम गीत (ग्राम गीतों का परिचय) पृ० २१ ।

अध्याय १०

भोजपुरी लोक-गाथाओं के प्रकार

लोक-गाथाओं के अनेक प्रकार हैं, परन्तु इन्हें हम प्रधानतया तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं —

१. प्रेम कथात्मक (Love Ballads),
२. वीर कथात्मक (Heroic Ballads) और
३. रोमाच-कथात्मक (Supernatural Bellads)

इनमें से भोजपुरी में प्रथम दो प्रकार की गाथायें ही अधिक पायी जाती हैं । प्रेम तो गाथाओं का प्राण ही है अत. इनमें इसकी अधिकता होना स्वाभाविक ही है । यह प्रेम साधारण परिस्थिति में उत्पन्न नही होता प्रत्युत विषम वातावरण में पैदा होता है और उसी में पलता है । फलस्वरूप इसमें सघर्ष भी उत्पन्न होता है । भोजपुरी की कुसुमा देवी, भगवती देवी और लचिया की गाथायें ऐसी हैं जिनमें प्रेम एक ही ओर पलता है और उसका परिणाम बडा विषम होता है । विहुला की कथा प्रेम का प्रबन्ध काव्य है । इस गाथा में कहा गया है कि विहुला के अप्रतिम रूप को जो भी देखता था वह मूर्छित हो जाता था । इसके अलौकिक सौन्दर्य पर मोहित अनेक नौजवानों ने पाणि-ग्रहण के समय अपना हाथ फैलाया परन्तु वे सफलीभूत नही हुए । अन्त में एक चतुर मनुष्य ने जिसका नाम वाला लखन्दर था विहुला के प्रेम को जीतने में सफलता प्राप्त की । 'शोभा नयका बनजारा' भी एक दूसरा प्रणय आख्यान है, जिसमें पति पत्नी के प्रेम, विवाह तथा वियोग का वर्णन बडी ही रोचक एव मर्मस्पर्शी भाषा में किया गया है । 'भरथरी चरित्र' में ही राजा भरथरी का अपने गुरु के उपदेश से घर छोडकर जगल में चला जाना वर्णित है । उनके विरह में उनकी पत्नी की दयनीय दशा का जो चित्र खीचा गया है वह बडा ही सुन्दर उतरा है । कहने का आशय यह है कि जो गाथायें उपलब्ध होती हैं उनमें अधिकाश में प्रेमाख्यानों की ही प्रधानता पायी जाती है । अग्रेजी आदि अन्य साहित्यों में भी जो बैलेड पाये जाते हैं उनमें से अधिकाश का कथानक प्रेम ही होता है । 'क्रूयल ब्रदर' शीर्षक अग्रेजी बैलैड इसका उदाहरण है ।

भोजपुरी के दूसरे प्रकार के गीत वीरकथात्मक हैं, जिसमें किसी न किसी वीर के साहस-पूर्ण एव शौर्य-सम्पन्न किसी कार्य का वर्णन रहता है। इन कथानकों में वह वीर पुरुष शाप-ग्रस्त किसी अबला का उद्धार करता हुआ दिखलाई पडता है अथवा अपने शत्रुओं का वीरता से सामना कर न्याय पक्ष के लिये लडाई में जूझता हुआ दृष्टिगोचर होता है[१] । कही पर अलौकिक वीरता का वर्णन का मात्र ही इन गाथाओं का चरम लक्ष्य है । कही पर किसी युवती का पाणिग्रहण करने के लिये भीषण सग्राम करना पडा है । वीर कथात्मक गाथाओं में 'आल्हा' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है । इन दोनों वीर भाइयों आल्हा और ऊदल ने किस प्रकार

---

१. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० ४०५

अपनी मातृभूमि की रक्षा के हेतु महाप्रतापी पृथ्वीराज से भीषण युद्ध किया, यह बात पाठकों से छिपी नहीं है। आल्हा को अपने विवाह के लिये भी लडाई लडनी पडी थी। "लोरिकायन" नामक गाथा में लोरिकी की जीवन कथा, उसका विवाह तथा उसकी वीरता का बडा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। कुंवर विजई जिसको विजयमल भी कहते हैं, के वीर चरित से कौन भोजपुरी परिचित नहीं है। इनके साहस एव वीरतापूर्ण कार्यों की गाथा समस्त भोजपुर प्रदेश में बडे चाव से गाई और सुनी जाती है। इस प्रदेश में आल्हा और विजयमल का इतना अधिक प्रचार है जितना तुलसीदास जी की रामायण का उत्तरी भारत में।

भोजपुरी की तीसरे प्रकार की गाथायें वे हैं जिनमें रोमाच अथवा 'रोमास' पाया जाता है। इसके अन्तर्गत 'सोरठी' का सुप्रसिद्ध गीत आता है। सोरठी एक साधारण घर की लडकी थी जो कुसमय में पैदा होने से लोकलाज के कारण माता द्वारा परित्यक्त कर दी गई। उसको एक छोटे से पालने में सुलाकर नदी में बहा दिया गया। परन्तु 'जाको राखे साइया मारि न सकिहैं कोय' सोरठी खटोले पर पडी बहती हुई चली जा रही थी। एक मल्लाह ने उसे वेगवती धारा में बहती हुई देखा और उसे पकड कर अपने घर लाकर उसे पालने-पोसने लगा। धीरे-धीरे सोरठी बडी हुई और उसका विवाह हुआ। सोरठी की कथा इतनी अलौकिक तथा रोचक है कि पढते समय यही मालूम पडता है कि 'रोमास' पढ रहे हैं। अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार के बैलेंड बहुत हैं, परन्तु हमारे यहाँ इनकी सख्या अत्यन्त सीमित है।

डा० चाइल्ड ने लोक गाथाओं को दो भागों में विभक्त किया है —१ चारण गाथायें (मिनस्ट्रेल बैलेड्स) और २ परम्परा गाथायें (ट्रैडिशनल बैलेड्स)। चारण गाथाओं से उनका अभिप्राय उन गाथाओं से है जिन्हें घूमते-फिरते भाट या चारण स्वय निर्माण कर गाते फिरते थे। परम्परागत गाथाओं का अभिप्राय उन गाथाओं से है जो चिरकाल से चली आ रही हैं और जनता के बीच में प्रचलित हैं। परन्तु विषय-विभाजन के आधार की दृष्टि से यह वर्गीकरण कुछ ठीक नहीं जँचता। उक्त गाथाओं के अतिरिक्त भोजपुरी में कुछ गाथायें और मिलती हैं जिनमें किसी सामाजिक घटना का उल्लेख है। ऐसी गाथाओं को प्रकीर्णक के ही अन्तर्गत रखना समुचित है।

—०—

अध्याय ११

भोजपुरी की लोक-गाथाओं की विशेपताएँ

लोक गाथाओ की अनेक विशेपताएँ हैं जो इन्हें अलकृत कविता से स्पप्टत पृथक् करती है। इन विशेपताओ पर ध्यान देने से यह स्पप्ट ही पता चल जायगा कि अमुक कविता गाथा है अथवा अलकृत काव्य। गाथाओ की इन विशेपताओ को हम प्रधानतया दस भागो में विभक्त कर सकते है, जो निम्नाकित हैं—

१ रचयिता का अज्ञात होना।
२ प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव।
३ सगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य।
४ स्थानीयता का प्रचुर पुट।
५ मौखिक है, लिपिवद्ध नही।
६ उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव।
७ अलकृत शैली का अभाव, अत स्वाभाविक प्रवाह।
८ रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव।
९ टेक पदो की पुनरावृत्ति।
१० लम्बा कथानक।

१. रचयिता अज्ञात

लोक गाथाओ के रचयिता अज्ञात होते हैं। किस गीत को किस मनुप्य ने कब बनाया, यह बतलाना नितान्त कठिन है। यही कारण है कि आज हजारो गाथाओ के होने पर भी हम भी उनमें से एक के भी रचयिता के विपय में निश्चित रूप से कुछ नही बतला सकते। प० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि इन गीतों के रचयिता अज्ञात स्त्री पुरुप हैं।[1] जो बात लोक गीतों के ऊपर लागू है वही गाथाओ के विपय में भी कही जा सकती है। आल्हा का रचयिता जगनिक माना जाता है, परन्तु लोरकी, सोरठी, विजयमल, भरथरी आदि गाथाओं के रचयिता कौन थे इसका हमें पता नही चलता। कबीरदास जी के नाम से बहुत से 'निरगुन' पाये जाते हैं परन्तु वे वास्तव में कबीर के ही रचित पद है, यह कहना कठिन है। 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' या 'गावेले कबीर दास यह निरगुनवाँ' ऐसे पद अनेक गीतों में पाये जाते हैं परन्तु उन्हें कबीर की रचना नही माना जा सकता। रावर्ट ग्रेव्स ने लिखा है कि आजकल के वर्तमान युग में किसी लेखक का अज्ञातनामा होना यह सिद्ध करता है कि वह अपनी कृति मे लज्जित होने के कारण ऐसा करता है परन्तु प्राचीन समाज में इसका कारण अपने नाम के विपय में लेखक की लापरवाही ही समझनी चाहिये।[2]

---

१. त्रिपाठी : ग्राम गीत भूमिका पृ० २१. २. एनोनीमिटी इन दि प्रेजेन्ट स्ट्रक्चर आफ सोसाइटी यूजअली इम्पलाइज दैट दि आथर इज अशेम्ड आफ हिज आथरशिप, बट इन प्रिमिटिव सोसाइटी इज ड्यू जस्ट टु दि केयरलेसनेस आफ दि आथर्स नेम. दि इंगलिश वैलेड पृष्ठ १२.

अन्य कविताओ की भाँति इन गाथाओ का भी कोई न कोई कर्ता अवश्य होगा, जिसने अपने सहवासियो के साथ आनन्द मे मस्त होकर इनकी रचना की होगी । परन्तु किसने यह गाने रचे यह बतलाना कठिन है । परम्परा रूप में अनेक सदियो से चली आने वाली इन गाथाओ के रचयिता के विषय मे कुछ कहा नही जा सकता ।

भोजपुरी चैता या घाटो के रचयिता बुलाकीदास माने जाते है और वास्तव में कुछ घाटो उनकी रचना है भी । परन्तु अन्य हजारो चैता और होली के गानो की रचना किसने की, यह बतलाना नितान्त कठिन है । सच तो यह है कि इन लेखको ने अपने व्यक्तित्व, नाम और यश की चिन्ता न करके जाति के लिये अपनी प्रतिभा का उत्सर्ग किया है । रघुवश और उत्तर राम चरित के रचयिता कालिदास और भवभूति का नाम हमें ज्ञात है और इनके जीवन चरित के विषय में भी थोडी बहुत सामग्री हमें उपलब्ध होती है परन्तु इन लोक-गाथाओ के रचयिताओ का नाम भी ज्ञात नही है, फिर इनके जीवनवृत्त की चर्चा करना तो व्यर्थ ही है ।

२. प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव

लोक-गाथाओ का कोई प्रामाणिक मूल पाठ नही होता । लेखक-गाथा की रचना कर उससे पृथक् हो जाता है । अब वह गाथा समाज की वस्तु हो जाती है और प्रत्येक मनुष्य उसे अपनी निजी सम्पत्ति समझता है । इसीलिये किसी गाथा का कोई वास्तविक एव शुद्ध मूल पाठ नही होता । हम किसी भी एक पाठ के विषय में यह नही कह सकते हैं कि यही विशुद्ध पाठ है और अन्य सभी अशुद्ध हैं ।[1] कुछ लेखको ने गाथा की उपमा एक विशाल नदी से दी है और यह उपमा वास्तव में उचित भी है । जिस प्रकार कोई नदी प्रारम्भ मे किसी स्थान विशेष से अत्यन्त पतले रूप में निकलती है । आगे चलने पर उसमें छोटे-छोटे नदी-नाले मिलते हैं जिससे उसके जल में वृद्धि होती रहती है । कही-कही भूमि की विशेषता के कारण मिट्टी के पीली या काली होने के हेतु उसके जल के रूप मे अन्तर पड जाता है । जब वह समुद्र में गिरने लगती है तो उसके विशाल रूप और जल के रग के परिवर्तन के कारण उसका पहिचानना भी कठिन हो जाता है । उसी प्रकार इन गाथाओ की भी दशा है । जब रचयिता इन गाथाओ का निर्माण करता है तभी तक इनका रूप मौलिक रहता है । बाद में ये जाति या समुदाय की वस्तु बन जाती है । इनके निर्माण के साथ ही इनकी समाप्ति नही होती, बल्कि वास्तविक बात तो यह है कि उस समय इन गाथाओ के निर्माण का प्रारम्भ होता है ।[2] ये गाथायें मूल लेखक के हाथो से निकल कर अब जनता के पास मौलिक प्रचार (ओरल ट्रासमिशन) के लिये आती है । यदि जनता ने इस गाथा को अपना लिया तब वह लेखक के अधिकार से बाहर चली जाती है और जनता की सम्पत्ति बन जाती है । समय के बीतने के साथ लोग उस मूल गाथा में थोडा-बहुत परिवर्तन करते रहते हैं । भिन्न-भिन्न गवैये गाथाओ को अपने अनुकूल बनाकर उसे गाते हैं । यदि इन गीतो का प्रचार दूर-दूर के प्रदेशो में भी हो गया तो उस गाथा की मूल भाषा

---

१. दि इङ्गलिश बैलेड पृ० १३   २. दि मीयर ऐक्ट आफ कम्पोजिशन ह्विच इज क्वाइट ऐज लाइकली टू बी ओरल ऐज रिटेन इज नोट दि कनक्लुजन आफ दि मैटर, इट इज रादर दि बिगनिंग. कीट्रीज : इङ्गलिश एंड स्काटिश पापुलर बैलेड्स (इन्ट्रोडक्शन) पेज १७.

से भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। अनेक स्थानीय घटनाओं का पुट उसमे मिल जाने से उसकी ऐतिहासिकता में भी अन्तर पड जाता है। भिन्न-भिन्न भाषाभाषियों के द्वारा प्रयुक्त होने पर इसके विभिन्न पाठ तैयार हो जाते हैं। ऐसी दशा में उस मूल गीत का रूप इतना परिवर्तित और परिवर्धित हो जाता है कि मूल लेखक के लिये भी उसे पहचानना कठिन हो जाता है।

आल्हा का मूल लेखक जगनिक था, जिसने हिन्दी की बुन्देलखडी बोली में अपनी अमर कृति की रचना की थी। इस ग्रन्थ में आल्हा और ऊदल के पराक्रम का वर्णन था। किस प्रकार इन वीर बाँकुडो ने अपनी माता की आज्ञा मानकर देश प्रेम के कारण परम प्रतापी राजा पृथ्वीराज का सामना किया था, यही जगनिक का मुख्य वर्णन विषय था। जगनिक की यह कृति बहुत बडी नही थी। परन्तु आजकल जो "आल्हा" उपलब्ध होता है उसका आकार "जगनिक" के आल्ह खड से कई गुना बडा है तथा इसमें ऐसी अनेक घटनाये पीछे से जोड दी गई हैं जिनका मूल "आल्हखड" में वर्णन नही था। जगनिक ने मूल ग्रन्थ बुन्देलखडी में ही लिखा था, परन्तु उत्तरी भारत में आल्हा के सर्वत्र प्रचार होने के कारण इसके अनेक पाठ मिलते है, जिनमें कन्नौजी, बुन्देलखडी और भोजपुरी प्रसिद्ध हैं। कन्नौजी और भोजपुरी पाठ तो प्रकाशित भी हो गया है। सभव है आल्हा के व्रज एव अवधी पाठ भी विद्यमान हों। इस प्रकार आजकल जो "आल्हा" उपलब्ध होता है, उसके पाठ विभिन्न बोलियो मे भिन्न-भिन्न हैं और उसकी घटनाओं में भी बहुत कुछ अन्तर है। राजा गोपीचन्द के गीत मे भी यही बात पाई जाती है। गोपीचन्द के जो गीत भोजपुरी में मिलते हैं वे बगला गीतो से पृथक् हैं। घटनाओं में भी भिन्नता है। कहने का साराश यह है कि लोक गाथा का कोई मूल एव प्रामाणिक पाठ नही होता। यह जनता की मौलिक सम्पत्ति है। अत इसमें परिवर्तन एव परिवर्धन होना नितान्त स्वाभाविक है। इस विषय में प्रोफेसर कीट्रीज का मत कितना ठीक एव समुचित है। वे लिखते हैं कि इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी वास्तविक लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित एव अन्तिम रूप नही हो सकता। कोई प्रामाणिक पाठ नही हो सकता। उसके विभिन्न पाठ हो सकते हैं परन्तु केवल एक ही पाठ नही हो सकता।"[1]

३. संगीत का अभिन्न साहचर्य

संगीत और गाथा का अभिन्न साहचर्य है। सच तो यह है कि कि सगीत के बिना किसी गाथा के सुनने में आनन्द ही नही आता। अग्रेजी के बैलेड शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के "बैलारे" धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ नाचना होता है। अतः बैलेड का मूल अभिप्राय उस गीत से है जिसे किसी नर्तक मडली के लोग साथ-साथ "कोरस" में गाते हैं। प्राचीन काल में यूरोपीय देशो में चारणो के द्वारा, जिन्हें मिन्स्ट्रल कहते थे, ढोल अथवा सितार बजाकर "बैलेड" गाने का वर्णन मिलता है। डा० चाइल्ड और विशप पर्सी ने ऐसे चारणो का विशेप रूप से उल्लेख किया है। डा० चाइल्ड ने तो इन चारणो के द्वारा गाये जाने के कारण से ही कुछ गीतो को *"मिन्स्ट्रल बैलेड"* के नाम से अभिहित किया है।

---

१. "इट फौलोज दैट ए जेन्युअली पापुलर बैलेड कैन हैव नो फिक्सड ऐन्ड फाइनल फौर्म, नो सोल आथेन्टिक वर्शन. देयर आर टेक्सट्स बट देयर इज नो टेक्सट" इङ्गलिश एन्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स पेज १८.

भारतवर्ष में भी गाथा और संगीत का अभिन्न संबंध दीख पड़ता है। वर्षा के दिनों में आल्हा गानेकी बड़ी प्रथा है। अल्हैत जब आल्हा गाने के लिए तैयार होता है तब वह अपने में ढोल बांध लेता है और उसे बजाकर आल्हा गाता है। आल्हा के गाने की गति ज्यों-ज्यों तीव्र होती जाती है, ढोल बजाने की गति में भी वैसा ही परिवर्तन होता जाता है और गाने के पराकाष्ठा (क्लाइमेक्स) पर पहुँचने पर ढोल इतने तार स्वर से बजने लगता है।

गोरखपन्थी साधु जो जोगी के नाम से प्रसिद्ध हैं प्राय गोपीचन्द और भरथरी के गीत गाते हुए पाये जाते हैं। गीत गाते समय वे सारंगी को बजाते हैं। उनकी मधुर वाणी सारंगी की मधुरता में मिलकर बड़ा आनन्द देती है। सारंगी उनका अनन्य साधन है। संभवत उसके बिना उनको स्वर लहरी में कम्पन ही न उत्पन्न हो।

गीत और संगीत का संबंध इतना घनिष्ट है कि देहातों में जहाँ कोई भी वाद्य यन्त्र उपलब्ध नहीं होता वहाँ स्त्रियाँ काठ के कठौते को उलट कर लाठी के हूरे से उसकी पीठ को रगड़ती हैं जिससे एक विचित्र प्रकार की संगीत ध्वनि उत्पन्न होती है। जहाँ यह भी उपलब्ध नहीं है वहाँ करतल ध्वनि समय-समय पर ताली बजाकर वाद्ययन्त्र का काम चला लेती हैं। लोक गीत सामूहिक रूप कोरस में गाये जाने से विशेष आनन्द देते हैं। यह बात भी उनकी संगीतात्मक प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। इस प्रकार लोक गीत एवं लोकगाथाओं का संगीत से अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

४. स्थानीयता का पुट

लोक गाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। इनमें भले ही राजा, रानी और जमींदारों एवं रईसों का वर्णन हो फिर भी ये स्थानीयता की गंध को लिये हुए रहते हैं। यदि कोई गाथा भोजपुरी प्रदेश में गाई जाती है तो प्रादेशिकता का रंग उसमें अवश्य विद्यमान रहेगा। कहीं-कहीं स्थानीय ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख भी इन गीतों में पाया जाता है। बलिया जिले की एक झूमर में 'पनिया ना पीये हरदिया के राजा" का बारम्बार उल्लेख पाया जाता है। बलिया जिले में हलदी एक गाँव है जहाँ के हैहय वंशी क्षत्री राजा बड़े प्रसिद्ध थे। इनके वंशज आज भी विद्यमान हैं। इसी प्रकार से बिहार प्रान्त में गाये जाने गीतों में अमर सिंह का उल्लेख पाया जाता है।

५. मौखिक है लिपिबद्ध नहीं

लोक-गाथायें चिरकाल से मौखिक परम्परा के रूप में चली आ रही हैं। जिस प्रकार प्राचीन काल में वेद मौखिक रूप में गुरु-शिष्य की परम्परा से चले आते थे। गुरु अपने विद्यार्थियों को पढ़ाता था और वे शिष्य पुनः अपने शिष्यों को पढ़ाते थे। इसी प्रकार इन गाथाओं की भी परम्परा समझनी चाहिये। एक गवैया किसी गाने को गाता है, उससे दूसरा गवैया गाना सीख लेता है और फिर उससे तीसरा सीखता है। इस प्रकार यह परम्परा अक्षुण्ण रूप से चलती रहती है। इन गवैयों में भी, जिनका प्रधान काम गाना गाकर भिक्षा की योजना करनी है, गुरु शिष्य परम्परा पाई जाती है। गाँवों में बूढ़ी माता या दादियाँ अपनी पुत्री और पौत्रियों के गीत सिखलाती हैं जिससे मौका पड़ने

१. डॉ० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १.

पर उनके काम आवे। इस प्रकार इन गीतों की परम्परा सदा चालू रहती है। ये गीत लिपिबद्ध नहीं किये जाते। फ्रैंक सजविक का मत है कि इन गीतों को लिखना इन्हें मृत्यु के मुख में डालना है। फ्रेंच लोग कहते हैं कि गाथा तभी तक जीवित रह सकती है जबतक यह मौखिक साहित्य के रूप में है।[1]

सिजविक का मत वास्तव में यथार्थ है। जब हम किसी लोक गाथा को लिपि-बद्ध कर लेते हैं तो उसकी बाढ मारी जाती है। उसकी वृद्धि आगे नहीं होने पाती। वह तभी तक बढ सकेगा जब तक वह अक्षरो के शिकजे में नही कस दिया जाता। यही कारण है कि आज आल्हा और लोरकी की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि लोक गाथाओ के अनुसन्धान कर्त्ताओं के लिये यह दुर्भाग्य की बात है परन्तु अन्य दृष्टि से यह लाभप्रद ही सिद्ध हुआ है। यदि आल्हा या विजयमल लिपि-बद्ध कर लिये गये होते तो आज उनके जो विभिन्न पाठ (वरसन्स) देखने को मिलते हैं वे न प्राप्त होते। गाथाओं के *कलेवरो में यह वृद्धि उनके जीवित और जनप्रिय होने का प्रमाण है। आल्हा की ही भाँति* गोपीचन्द गीत के तीन पाठ भोजपुरी, मगही और बगला उपलब्ध होते हैं[2]। इस प्रकार लोक गीतो की परम्परा सदा से मौखिक रही है।

६. उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव

लोक गाथाओ में उपदेश देने अथवा नीति बतलाने की मनोवृत्ति का नितान्त अभाव रहता है। उनका प्रधान उद्देश्य कथानक का प्रवाह रहता है। लोरकी, विजयमल और *आल्हा की गाथाओं में देश भक्ति, माता की आज्ञा का पालन, साहस, शौर्य और प्रेम के* अनेक ऐसे प्रसग मिलते हैं जिनसे उपदेश वा शिक्षा ली जा सकती है। परन्तु इन गीतो के रचयिता की प्रवृत्ति इस ओर नही थी। कुसुमदेवी और भगवती की गाथाओ से उनके अलौकिक तथा पवित्र आचरण से हमें बहुमूल्य शिक्षा प्राप्त होती है परन्तु उनमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव है।

७. अलंकृत शैली का अभाव

लोक गाथाओ में अलकृत शैली का नितान्त अभाव रहता है। अलकृत कविता किसी कलाकार कवि के द्वारा लिखी जाती है जो अपनी रचना को सुरक्षित बनाने के लिये विभिन्न अलकार, छन्द, रस और कल्पना को उसमें अवतारणा करता है। वह अपनी कृति में अलकारों की योजना करता है और उसे किसी विशिष्ट छन्द के साँचे में ढालने के लिये उसमें काट-छाँट भी करता है। ऐसी कविता को अलकृत कविता (पोइट्री आफ आर्ट) कहते हैं जो प्रयासपूर्वक लिखी जाती है। परन्तु गाथाएँ जनता की कविता (पोइट्री आफ फोक) कही जाती हैं, इससे बिल्कुल पृथक् है। इसमें एक स्वाभाविक प्रवाह रहता है जो सर्वत्र समान रूप से पाया जाता है। लोक गीतो और गाथाओ की उपमा यदि

---

१. इन दि एक्ट आफ राइटिंग ईच वन डाउन, यू मस्ट रमेम्बर दैट यू आर हेल्पिंग टू किल दैट बैलेड. "विलुभ वीलिटेयर पर ओरा" इज दि लाइफ आफ ए बैलेड. इट लिव्ज ओनली व्हाइल इट रीमेन्स व्हाट दि फ्रेंच, विथ ए चार्मिंग कनफ्यूजन आफ आइडियाज, काल "ओरल लिटरेचर" दि बैलेड पेज २६. २. डा० ग्रियर्सन: ज० ए० सो० बं० भाग ५४ (१८८५) पार्ट १.

यू वर्शन्स औफ दि सौंग आफ गोपीचन्द।

कलकत्ता शहर में रहने वालों के लिये क्या ही सुन्दर उपदेश दिया गया है—[1]

'घोडा गाडी, नोना पानी, और राँड के धक्का ।
ए तीनू से बचल रहे, त केलि करे कलकत्ता'।

अर्थात् घोडा गाडी, खारा पानी और विधवा व्यभिचारिणी स्त्रियो के जाल से यदि आदमी बचा रहे तब कलकत्ता में आनन्द से रह सकता है । कलकत्ते का पानी खराब है यह तो प्रसिद्ध है । वहा गाडियो से बचकर चलना भी आवश्यक है, नही तो दुर्घटना हो जाती है । व्यभिचारिणी स्त्रिया से बचना तो आवश्यक है ही । काशी के विषय में भी ऐसी ही उक्ति कही गई है—[2]

'राँड साँड सीढी सन्यासी ।
इनसे बचे त सेवे कासी ।'

ऐतिहासिक वृत्त

इन लोकोक्तियो में अनेक ऐतिहासिक घटनाओ का भी उल्लेख पाया जाता है । 'कहाँ राजा भोज और कहा भोजवा तेली'[3] इस कहावत में धारा के सुप्रसिद्ध संस्कृत प्रेमी राजा भोज का उल्लेख हुआ है । 'अन्हरा का सूझे बहराइच' इस छोटी सी कहावत में बहुत बडा इतिहास छिपा हुआ है । आज से कई सौ वर्ष पूर्व सैयद सालार जग उर्फ गाजी मिया नामक मुसलमान सेनानायक की पराजय एव उसका वध बहराइच में स्थानीय हिन्दू राजा के द्वारा किया गया था । जिस स्थान पर सालार जग मारा गया वहा उसकी कब्र बनाई गई । यहा पर प्रति वर्ष बहुत बडा मेला गर्मियो में लगता है ।

यहा पर एक तालाब है जिसके जल में नहाने से अन्धे को दिखाई पडने लगता है, ऐसी किम्वदन्ती प्रसिद्ध है । इसी ऐतिहासिक घटना की ओर इस कहावत का सकेत है ।

व्यग्य

इन लोकोक्तियों में कहीं-कहीं गहरा व्यग्य भरा पडा है जो देखते ही बनता है । यज्ञ के हवन में खाद्य सामग्री विशेषतया घी का जलाना भोजपुरियो को कदाचित् अप्रिय है । इसके सबध में एक लोकोक्ति है—[4]

'करवा कोंहार के, घीव जजमान के, स्वाहा स्वाहा'

अर्थात् करवा मिट्टी का पात्र जिसके द्वारा घी यज्ञकुड में डाला जाता है कुम्हार का है और घी यजमान का है । पुरोहित जी खूब स्वाहा-स्वाहा कीजिये इसमें आपका क्या नुकसान है । अग्रेजी में एक कहावत है—

'फूल्स मेक फीस्ट्स एड वाइज मेन ईट्स देम'

अर्थात् मूर्ख लोग निमन्त्रण देते है और चतुर लोग भोजन करते हैं । खडी बोली में इसके समान दूसरी लोकोक्ति हमें ज्ञात नही, परन्तु भोजपुरी की निम्नाकित लोकोक्ति इसके समान है—

---

१ वही १६१ २. लेखक का निजी सग्रह ३ 'हिन्दुस्तानी' अप्रैल १६३६ पृ० १५८.
४ 'हिन्दुस्तानी' अप्रैल १६३६ पृ० १७७

'आन कर आटा, आन कर घीव ।
चावस-चावस बावा जीव ।'

पराम्न भोजी लोगों के ऊपर यह कितनी सुन्दर फबती कसी गई है। दूसरो का माल हड़पकर सेठ बनने वालो के ऊपर यह व्यग्योक्ति कितनी सुन्दर है—[१]

'आन का धन पर बिकरम राजा'

बाहरी तडक-भडक रखने वाले लोगों को लक्षित कर यह उपर्युक्त व्यग्य उक्ति कही गई है—[२]

'ऊच हवेली, फोफर बास, करज खाये बारहो मास ।'
अर्थात् घर तो बहुत ऊचा है परन्तु बारहो महीने कर्ज ही लेना पडता है।

घर वाले स्वार्थवश बूढे माता, पिता से भी काम लिया करते हैं। ऐसे लोगो को लक्षित कर कही गई यह व्यग्योक्ति कितनी सुन्दर है—[३]

'थाकल बैल गोनि भइल भारी ।
अब का लदबे ए बेपारी ।'
अर्थात् यह बूढा बैल पिता अब थक गया, गोनि भारी हो गई। ऐ व्यापारी, अब इस पर क्या लादोगे। अर्थात् यह भार वहन के अयोग्य है।

आजकल अनेक साधु-महात्मा रामानुजी टीका लगा लेते हैं, मीठी वाणी बोलकर लोगो को अपने साधु वेश में फँसाते हैं। परन्तु उनका आचरण चोर, डाकू और व्यभिचारी मनुष्यो के समान होता है। ऐसे ढोंगी साधुओ के लिये यह उक्ति कितनी मार्मिक है—

'तीनि फकिया टीका, मधुरी बानी ।
चोर चाई के इहे निसानी ।'
इस प्रकार से अनेक व्यग्यभरी उक्तिया पाई जाती हैं।

देहातो में पुरुष स्त्री का समुचित आदर नही करते। ब्याही स्त्री का तिरस्कार कर दूसरी स्त्री को सम्मान प्रदान करते हैं। इस सामाजिक दुर्गुण की ओर इस कहावत में सकेत किया गया है—[४]

'घर के बीबी के खासा ना, बेसवा के मलमल ।'
अर्थात् घर की स्त्री को तो मोटा कपडा भी पहनने को नही मिलता परन्तु वेश्या को मलमल दिया जाता है।

लोकोक्तियो में ऋतु-सबधी अनेक बाते उपलब्ध होती हैं। जब आधा माघ आता है, जाडा बहुत कम हो जाता है, तब लोग कन्धे पर कम्बल लेकर चलते हैं। पूस से दिन छोटा होने लगता है परन्तु माघ के आते ही फिर वह बडा होने लगता है—[५]

'आधा माघे कम्मर कांधे ।
'पूस से दिन फूस ।
माघ से दिन बाघ ।'

---

१. लेखक का निजि संग्रह. २. 'हिन्दुस्तानी' अप्रैल १९३९ पृ० १७२. ३ लेखक का निजी समह. ४. लेखक का निजी संग्रह ५ वही

कही-कही इन लोकोक्तियो में भारतीय संस्कृति का उल्लेख पाया जाता है।

संस्कृति

सतीत्व की बडी सुन्दर एव दिव्य अभिव्यक्ति इन कहावतो में हुई है। किसी साध्वी स्त्री से कोई दुराचारी पुरुष अनुचित प्रस्ताव करता है। इस पर वह मुँहतोड जवाब देती हुई कहती है कि तुम्हारा पेट आगे निकला है और पीछे कूबड है। तुम मेरे पति से क्या अधिक सुन्दर हो। जो तुम्हें मैं चाहूँगी—

'आगे कूबर, पाछे कूबर,
हमरा भतार ले बडा सूघर।'[1]

स्त्रियो के व्रतो का भी उल्लेख कही-कही हुआ है। जैसे—

'आजु ताहार मातारी खर जिऊतिया कइले रहली हा'

इस कहावत में जीवित्पुत्रिका व्रत का उल्लेख है जिसे स्त्रिया अपने पुत्र को विपत्ति से बचाने के लिये किया करती है।

इसी प्रकार से हजारो ऐसी लोकोक्तिया है जिनमें देहाती जीवन के किसी न किसी पहलू की ओर सकेत किया गया है। लोक-साहित्य के विद्यार्थी के लिये इनका अध्ययन नितान्त आवश्यक एव उपादेय है।

ख. मुहावरे

लोकोक्तियो की भाँति मुहावरो की सख्या भी भोजपुरी मे बहुत है। इनका प्रयोग दैनिक व्यवहार मे आबाल-वृद्ध-वनिता सभी करते हैं। 'गाल फुलाना' अथवा 'गँठजोड़ाव' की व्युत्पत्ति बालक भले न समझे परन्तु वह इसका प्रयोग अवश्य करता है। कितनी स्त्रियाँ तो मुहावरो में ही बातें करती हैं।

मुहावरों का अर्थ

मुहावरा अरबी शब्द है। इसका अर्थ है, 'परस्पर बात-चीत और सवाल जवाब करना' इसे अग्रेजी में 'ईडियम' कहते है। सस्कृत में इस शब्द के यथार्थ अर्थ का बोधक कोई शब्द नही है। कतिपय विद्वानो ने 'प्रयुक्तता', 'वाग्रीति', 'भाषा सम्प्रदाय' और 'रमणीय प्रयोग' आदि शब्दो को मुहावरे के स्थान पर प्रयुक्त किया है, किन्तु वास्तव में ये शब्द उपयुक्त नही जँचते, क्योंकि इनसे मुहावरे के अर्थ का भली भाँति प्रकाशन नही होता।

अरबी में मुहावरा शब्द का अर्थ सीमित तथा सकुचित है। किन्तु हिन्दी और उर्दू में यह विकसित होकर व्यापक हो गया है। हिन्दी एव उर्दू में लक्षणा अथवा व्यजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही मुहावरा कहते हैं। मुहावरे के अर्थ में अभिधेयार्थ से कुछ विलक्षणता होती है।

---

१ हिन्दुस्तानी - अप्रैल १६३६ पृ० १६७ २. 'बोलचाल' पृ० १३६ ३७. खंग विलास प्रेस, पटना से प्रकाशित

मुहावरों की उत्पत्ति

मुहावरों की उत्पत्ति के संबंध में पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय लिखते हैं कि 'मनुष्य के कार्य क्षेत्र विस्तृत हैं। उसके मानसिक भाव की अनन्त है। घटना और कार्य-कारण परम्परा से जैसे असंख्य वाक्यों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मुहावरों की भी। अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते हैं जब मनुष्य अपने मन के भावों को कारण विशेष से से संकेत अथवा इंगित किंवा व्यंग द्वाराप्रकट करना चाहता है। कभी कई एक ऐसे भावों को थोड़े शब्दों में विवृत करने का उद्योग करता है जिनके अधिक लम्बे-चौड़े वाक्यों का जाल छिन्न करना उसे अभीष्ट होता है। प्रायः हास परिहास घृणा, आवेग उत्साह आदि के अवसर पर उस प्रवृत्ति के अनुकूल वाक्य योजना होनी देखी जाती है। सामयिक अवस्था और परिस्थिति का भी वाक्य विन्यास पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। और इसी प्रकार के साधनों से मुहावरों का आविर्भाव होता है।'

उपाध्याय जी ने मुहावरों की उत्पत्ति के विषय में जो कुछ लिखा है वह बिल्कुल ठीक है।

मुहावरों का महत्त्व

वास्तव में मुहावरे किसी जीवित भाषा के प्राण होते हैं। यह कहा जा चुका है कि लक्षणा और व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही मुहावरा कहते हैं। इस प्रकार के लाक्षणिक प्रयोग से सबसे अधिक लाभ यह होता है कि केवल कतिपय वाक्यों के सहारे ही अनेक भावों की अभिव्यंजना हो जाती है। मौलाना हाली इनके महत्त्व के संबंध में *'मुकद्दमा शेर व शायरी' में लिखते हैं*—

'मुहावरा अगर उम्दा तौर से बाँधा जावे तो बिला शुबहा पस्त शेर को बलन्द और बलन्द को बलन्दतर कर देता है।' इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उचित मुहावरा के प्रयोग से शैली में माधुर्य, सौन्दर्य और शक्ति आ जाती है। अधिक विस्तृत भाव को थोड़े शब्दों में प्रकट करना मुहावरों का ही काम है। इनके प्रयोग से भाषा में चुस्ती आती है और उसका प्रभाव अधिक गहरा होता है।

भोजपुरी मुहावरे

भोजपुरी मुहावरों के सम्यक् अध्ययन से हमें अनेक बातों का पता चलता है। इन मुहावरों में कहीं भोजपुरिया की विशेषता का उल्लेख पाया जाता है तो कहीं उनकी विभिन्न सामाजिक प्रथाओं का। कहीं किसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन है तो कहीं पौराणिक गाथा का। शकुन विचार से संबंध रखने वाले भी अनेक मुहावरे हैं। कहीं-कहीं व्यंग्य का पुट भी इनमें गहरा पाया जाता है। किसी जाति की विशेषता और उसके स्वभाव का चित्रण भी उपलब्ध होता है। इनके अनुशीलन से अनेक शब्दों की निरुक्ति पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार भोजपुरी मुहावरों का महत्त्व बहुत है।

भोजपुरिया की स्वभावगत विशेषताओं के द्योतक मुहावरे ये हैं—

१. ताथा बाढावल — ढोंग तथा पाखंड बढाना ।
२. पोथि बाढावल — " " " "
३. खटराग बाढावल — " " " "
४. टिमाक बाढावल — " " " "

इन सभी मुहावरो का प्रयोग किसी पाखंडी के ढोंग को लक्षित कर किया जाता है ।

'लतियाना' और 'कचरना' मे बल प्रयोग की व्यंजना स्पष्ट प्रतीत होती है । 'चिकसि निकालना' मे मारने की भावना स्पष्ट लक्षित होती है । इसी प्रकार 'खोखि खखार के बोलना' में स्पष्टवादिता की झलक स्पष्ट झलकती है ।

संस्कार एवं प्रथाओं का उल्लेख

अनेक मुहावरों में भोजपुरी प्रथाओं और संस्कारों का उल्लेख पाया जाता है । 'छीपा' बजाना' ऐसा ही मुहावरा है । जिस समय लड़का पैदा होता है उस समय कोई स्त्री थाली बजाती है, इसे 'छीपा बजाना'[1] कहते हैं । पुत्री के जन्म पर थाली नही बजाई जाती । अत. इस मुहावरे का अर्थ है लड़का पैदा होना । बालक पैदा होने के छठे दिन पूजा होती है और पुत्र जन्म के उत्सव में बन्धु-बान्धवों को भोजन कराया जाता है । इसे 'छठियार' कहते हैं । इस मुहावरे का प्रयोग उस समय होता है जब किसी व्यक्ति का विशेष परिचय पूछा जाता है । उत्तर देने वाला व्यंग में कहता है कि कि 'उनके हम का जानत बानी, का हम उनुकर छठियार खइले बानी' अर्थात् मैं उनके विषय में भला क्या जानता हूँ क्या मैंने 'छठियार' खाया है ।[2] विवाह तथा कथा आदि में स्त्री-पुरुष एक साथ मंडप में बैठते है । इसे 'चौका बैठना' कहते है । कभी-कभी यह पूछने के लिये कि तुम्हारे घर कथा कब होगी, इस मुहावरे का प्रयोग करते हैं । जैसे 'तोहन लोग कब चउका बइठब ।' जब बालक या बालिका का विवाह होता है उस दिन 'मातृ पूजा' के समय माता-पिता का एक साथ चौका मंडप में बैठकर अनेक वैवाहिक विधियों का सम्पादन करते हैं । इसे 'चउका चन्नन बइठल' कहते हैं । इस मुहावरे का अर्थ हुआ, विवाह संबंधी विशेष विधि का सम्पादन । डा० उदय नारायण तिवारी ने इस मुहावरे का अर्थ कुछ दूसरा ही किया है । परन्तु हमारा मत उनसे भिन्न है ।[3]

स्त्री और पुरुष का जब विवाह होने लगता है तब दोनों के कपडों को लेकर आपस में गाँठ बाँध देते हैं । इसे 'गेंठ जोड़ाव' कहते हैं । संभवत. यह अभिन्न प्रेम का द्योतक है । अत. इस मुहावरे का अर्थ है अभिन्न साहचर्य । जब वर-कन्या का विवाह होने लगता है उस समय वर तथा कन्या दोनो के पूर्वजों का नाम लेकर गोत्र का उच्चारण किया जाता है । इसे 'गोतरुचार' कहते हैं । संभवतः इसमें कुलीनता की भावना छिपी है । परन्तु 'गोतरुचार करना' इस मुहावरे का अर्थ है गाली-गलौज करना । इसमें वैवाहिक प्रथा का उल्लेख भी है और गहरी व्यंजना की भी अभिव्यक्ति होती है । विवाह के लिये जब वर और उसके कुटुम्बी आते है तब विदाई के समय प्रायः सभी को पीली धोती दी जाती है । जिसे 'कन्हावर देना' कहते है । अत. इस मुहावरे का भाव है अत्यधिक सत्कार

१. लेखक का निजी संग्रह. २ हिन्दुस्तानी : अाक्टूबर १९४०, पृ० ४३१. ३. हिन्दुस्तानी : अाक्टूबर १९४०, पृ० ४२५.

करना । इसी प्रकार जब बेटी की विदाई होती है तब उसके आचल में चावल, रुपया और हल्दी बाँध दी जाती है क्योंकि ये पदार्थ मगल या शुभ समझे जाते हैं । भाई जब बहन के पास 'बउरहत' लेकर जाता है तब 'कुडा' में खाजा और मिठाई ले जाता है, इसे 'कुडा लेके आना' कहते हैं । इसी प्रथा के कारण इस मुहावरे का अर्थ है सौगात में कोई चीज लाना । देहात में प्राय ,कहते है कि 'उनुकरा के हम का पूछी का कवनी कुडा लेके आइल बाडे ।'[1]

मृत्यु के दूसरे दिन दाह सस्कार करने वाला व्यक्ति अपने सबधिया के साथ गाँव के बाहर किसी पीपल के पेड में मिट्टी का एक छोटा घडा बाधता है जिसमे दाही' प्रतिदिन जल और तिल प्रेतात्मा की शान्तिके लिये देता है । इसे 'घट बाँधना' कहते हैं । इस मुहावरे का अर्थ है मृतक के दूसरे दिन का सस्कार । आक्रोश मे इसका अर्थ होता है मृत्यु को प्राप्त करना । एक दूसरा मुहावरा है 'खउर होना'[2] इसमे भी एक भोजपुरी प्रथा का उल्लेख है । मृतक सस्कार में एगारहवें दिन को 'खउर' कहते हैं, इसी दिन 'महाब्राह्मण' आता है तथा कुटुम्ब के सभी लोग सिर मुँडाते हैं । अत इस मुहावरे का अर्थ है 'मृत्यु होना' । कभी-कभी स्त्रियाँ अभिशाप देते हुए कहती हैं 'तोहार खउर होखो' अर्थात् तुम मर जावो ।

स्त्रियो के व्रतो का उल्लेख भी इन मुहावरा में कहीं-कही पाया जाता है । 'गोधन कुटाइल' एक मुहावरा है जिसका अर्थ है, 'खूब पीटा जाना ।' स्त्रियाँ कार्तिक शुक्ल द्वितीया जिसे मातृद्वितीया भी कहते हैं, को गोधन कूटती है । इसी प्रथा का उल्लेख इस मुहावरे में हुआ है ।

ऐतिहासिक

इन मुहावरो के द्वारा अनेक ऐतिहासिक घटनाओ की ओर भी सकेत हुआ है । भोजपुरी में 'कजड भइल'[3] एक मुहावरा है जिसका अर्थ है कजूस होना या दरिद्र स्वभाव का होना । कजड एक विशेष जाति है । ये लोग अपना घर-बार लिये हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं । दरिद्र होने के कारण ये स्वभावत कजूस होते हैं । 'उजुबुक भइल' का अर्थ होता है 'मूर्ख होना' यह 'उजुबुक' शब्द उजबेक से बना है ।[4] रूस देश के अन्तर्गत उजबेकिस्तान के निवासिया को उजबेक कहते हैं, जो अभी कुछ दिन पूर्व मुसलमान धर्म के अनुयायी थे । पहिले वहाँ आधुनिक सभ्यता का प्रकाश नही फैला था । सभवत इसीलिये उन्हें असभ्य या मूर्ख समझा जाता था । गोरखपुर जिले के पयहारी बाबा जो केवल दूध मात्र पीने के कारण पय दूध, हारी ग्रहणकर्त्ता कहे जाते हैं स्वय भोजन करने के पूर्व अपनी जमात के एक विशेष ब्राह्मण को पक्वान्न आदि सुन्दर भोजन कराते है । भोजन करने वाले महात्मा मोटे-ताजे और प्राय भोजनभट्ट होते है । इन्हें 'गाफा बाबा' कहते हैं । इस प्रकार 'गाफा बाबा भइल'[5] इस मुहावरे का अर्थ है खूब खाने वाला । जैसे, 'यहा का गाफा बाबा हई । अतने से पेट ना भरी ।'

पौराणिक

ऐतिहासिक घटनाओ के अतिरिक्त पौराणिक वस्तुओ का उल्लेख अनेक स्थाना पर इन मुहावरा में हुआ है । 'चउथी' के चान देखल' यह भोजपुरी मुहावरा है जिसका

---

१ वही पृ० ३९८ २ वही पृ० ४०७ ३ हिन्दुस्तानी अक्टूबर १९४० पृ० ३९७ ४ कुछ विद्वान् इस शब्द की व्युत्पत्ति 'ऋजुक' (सीधा) शब्द से मानते हैं, ५ हिन्दुस्तानी अक्टूबर १९४०, पृ० ४१७ ६ लेखक का निजी संग्रह ।

अर्थ है दोष रहित मनुष्य के ऊपर दोषारोपण करना। इस मुहावरे में एक पौराणिक उपाख्यान का संकेत है। भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को चन्द्रमा का दर्शन करना निषिद्ध माना जाता है। जो भूल से चन्द्रदर्शन कर लेता है उसके ऊपर निष्कलंक होने पर भी दोषारोपण होता है। यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि एक बार कृष्ण भगवान् ने इसी दिन चन्द्रदर्शन कर लिया था और निर्दोष होने पर भी उनके ऊपर मणि चुराने का अपराध-कलंक लगाया था। तबसे इस दिन चन्द्र-दर्शन निषिद्ध समझा जाता है। एक दूसरा मुहवारा 'भडेसरि राजा भइल'[१] है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि भविष्य में एक ऐसा युग आयेगा जब मनुष्य अंगूठे के बराबर लम्बे होंगे। उस युग में जिस मनुष्य के पास एक 'कूडा'—मटका अन्न होगा, वह सबसे बडा धनी समझा जायेगा तथा उसी की 'भडेसरि राजा' की पदवी होगी। इस मुहावरे का प्रयोग व्यंग्य में उस गरीब के लिये होता है जिसकी आर्थिक स्थिति थोडी अच्छी हो। 'कपारे पर बरम्ह चढल' मुहावरे का अर्थ होता है अत्यन्त क्रोधित होना। अकाल मृत्यु से मरा हुआ ब्राह्मण 'ब्रह्म' कहलाता है। जब वह किसी के सिर पर चढता है तब वह मनुष्य हाथ, पैर और सिर हिलाने लगता है। क्रोध में आकर बक-झक करता है। अत ब्रह्म चढने का अर्थ हुआ क्रोधित होना। 'गूलरी के फूल परल'[२] मुहावरे का अर्थ है किसी वस्तु अन्न, धन आदि का नित्यप्रति बढते जाना, कमी न घटना। लोगोंका ऐसा विश्वास है कि किसी वस्तु में यदि गूलर का फूल पड जाय तो वह वस्तु कभी घटती नही प्रत्युत बढती जाती है। किसी व्यक्ति के दिखाई न पडने पर 'गुलरी के फूल भइल' का प्रयाग किया जाता है।[३] लोगो का ऐसा विश्वास है कि गूलर का फूल कभी दिखाई नही पडता। लोक की इसी धारणा की अभिव्यक्ति इन मुहावरो में हुई है।

जातियों की विशेषता

विभिन्न जातियों की विशेषताओ का उल्लेख भी इन मुहावरो में पाया जाता है। 'महाब्राह्मण' एक जाति है जो मृतक के श्राद्ध में भोजन करती और दक्षिणा लेती है। इन्हे 'काराटहा' भी कहा जाता है। ये बडे भोजन भट्ट होते हैं और बिना निमन्त्रण दिये ही श्राद्ध या ब्रह्म भोज में पहुँच जाते हैं और खब खाते हैं। इसलिये खाने-पीने में सन्तोष न करने वाले व्यक्ति के लिये 'काराटहा भइल'[४] मुहावरो का प्रयोग करते हैं। इससे 'महाब्राह्मणो' की विशेषता प्रकट होती है। कोइरी एक जाति है जो खेती करती है और शाक सब्जी को पैदा कर अपना जीवन निर्वाह करती है। ये लोग बडे सीधे-सादे होते हैं। इनके सीधापन की अभिव्यक्ति 'कोइरी का देवता'[५] नामक मुहावरे में हुई है जिसका अर्थ अत्यन्त शान्त प्रकृति का होना है।

व्यंगोक्ति

भोजपुरी मुहावरो में व्यंग्य वाक्यो की प्रचुरता है। इनमें व्यंग्य की अभिव्यंजना बडी सुन्दर हुई है। भोजपुरी में 'बोकरना' का अर्थ उल्टी या कै करना होता है और इसका प्रयोग विशेषकर जानवरो के लिये होता है। 'अइनि बोकरना'[१] एक भोजपुरी मुहावरा है जिसका शाब्दिक अर्थ है कानून को उगलना। जो

---

१ हिन्दुस्तानी : अक्टूबर १६४० पृ० ३६८ २ लेखक का निजी संग्रह ३ वही. ४ लेखक का निजी संग्रह ५ हिन्दुस्तानी : अप्रैल १६४० पृ० १७८.

लोग बेकार में कानून 'छाँटते हैं और बहस मुबाहिसे के लिये तैयार रहते हैं उनके लिये इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें कितना गहरा व्यग है यह कहने की आवश्यकता है। 'अकेला घर में छकेला मारल' का भाव है परम स्वतन्त्र होकर मौज करना। इसमें उच्छृंखलता की भावना छिपी हुई है। गृहस्थ लोग जब साधु बन जाते हैं तो कंठ में माला पहिन लेते है, इसे 'कठी लेना' कहते हैं। इसका अर्थ है 'वैरागी बन जाना।' जो लोग अपनी बुरी आदतों को न छोडते हुए साधु बनने का पाखड करते हैं उनके लिये इसका प्रयोग होता है। 'कोल्हू का बैल होना' या 'तेली का नाटा होना' प्रसिद्ध मुहावरा है। जिस प्रकार तेली का बैल दिनरात काम करता है उसी प्रकार जो आदमी सदा कार्य में लगा रहता है उसके लिये इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें मन्द बुद्धिता व्यग्य है।

शकुन विचार

मुहावरों में शकुन विचार भी पाया जाता है। देहातो में उल्लू का बोलना बुरा और कौवे का बोलना शुभ समझा जाता है। 'उरुआ बोलना' का अर्थ होता है उजाड होना। 'कौआ बोलना' किसी प्रियतम के शुभ आगमन की सूचना देता है। 'आँखि फरकल' शुभ शकुन का सूचक है। पुरुष की दाहिनी आँख और स्त्री की बायी आँख का फडकना शुभ माना जाता है। 'खडलिचि देखल' एक मुहावरा है। 'खँडरिचि' खंजन पक्षी को कहते हैं जिसका दर्शन चित्रा नक्षत्र में मगल सूचक समझा जाता है। इस मुहावरे का प्रयोग उस समय किया जाता है जब किसी व्यक्ति को कुछ लाभ होता है। जैसे—'आजु तू 'खड़लिचि देखि के उठल रहल ह'।

खेती

खेती के सबध वाले भी कुछ मुहावरे पाये जाते हैं। 'आँजुरी दिहल' एक मुहावरा है। बोआई के समय प्रतिदिन सध्या समय जो अनाज बच जाता है उसे अजलि में भर-भर कर बढई, लोहार तथा हलवाहे को देते हैं। इसे आँजुरी देना'[1] कहते हैं। जब किसी खेत में फसल कमजोर हो जाती है तो उसकी रक्षा न करके उसे पशुओं को चरा देते हैं। इसे 'उछिदा देना' कहते हैं।[2] इसी प्रकार खेती से सबध रखने वाले अन्य मुहावरे भी पाये जाते हैं।

ग. पहेलियाँ

पहेलियों का अधिक प्रचार बालकों के समाज में ही है। पहेली को भोजपुरी में 'बुझौवल' कहते हैं और पहेली पूछने को 'बुझौवल बुझाना'। जब दो-चार बालक इकट्ठा हो जाते हैं और उन्हें खेल खेलने की इच्छा नही रहती तब वे आपस में 'बुझौवल बुझाना' शुरू कर देते हैं। एक लड़का पहेली कहता है और दूसरा उसका उत्तर देता है। इस प्रकार यह क्रम बहुत देर तक जारी रहता है। जब कोई लड़का उत्तर देने में असमर्थ हो जाता है तब उसकी हार हो जाती है।

इन पहेलियों का प्रधान उद्देश्य मनोरजन है। अत. इनमें ऐसी-ऐसी बातो का वर्णन होता है जो हास्यरसोत्पादक होती हैं। लडके इन पहेलियो को सुनते हैं और खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। जैसे यह पहेली लीजिये :[3]

---

१. अप्रैल १९४० हिन्दुस्तानी पृ० १८२. २. वही. पृ० १८६. ३ लेखक का निजी संग्रह.

'एक चिरइया चटनी, काठ पर बइठनी ।
काठ खाले गुवुर गुवुर, हगेले भुसकनी ।'

अर्थात् एक चिड़िया भोजन की बडी इच्छा करती है । वह काठ पर बैठती है, धीरे-धीरे काठ खाती है । इसका उत्तर 'आरी' है जिससे काठ चीरा जाता है । यह पहेली केवल 'मनोरंजनात्मक' है । 'हगेले भुसकनी' सुनते ही सभी लड़के खिलखिला कर हँस पडते पडते हैं । एक दूसरा उदाहरण लीजिये ।[1]

'हती चुकी गाजी मियाँ, हतवत पोंछि ।
इहे जाले गाजी मिया, धरिहे पोंछि ।'

अर्थात् गाजी मियाँ तो छोटे हैं परन्तु उनकी पूँछ बडी है । देखो गाजी मियाँ जा रहे हैं । इनकी पूँछ पकड लो । इसका उत्तर है सुई डोरा । सुई को गाजी मियाँ कहा गया है और डोरा सूत उनकी दुम है ।

ढेकुल के ऊपर भी एक बडी हास्यास्पद पहेली कही गई है—[2]

'आकास गइले चिरई, पाताल गइले बच्चा ।
हुचुवक मारे चिरई, पियाव मोर बच्चा ।"

परन्तु इन पहेलियों में केवल मनोरंजन ही नही है । कही-कही साधारण गणित के प्रश्न भी इनमें पूछे गये हैं जिनको बतलाने मे बालको को दिमागी कसरत करनी पडती है । कुछ सोचने-समझने के बाद ही वे उसका उत्तर दे सकते हैं ।[3] जैसे—

'चार आना बकरी, आठ आना गाय,
चार रुपैया भैंस बिकाय, बीसे रुपया बीसे जीऊ ।'

अर्थात् चार आना में बकरी, आठ-आना मे गाय और चार रुपया में एक भैंस बिकती है । कुल बीस रुपये हैं और कुल बीस ही जानवर खरीदने हैं तो बतलाओ कि प्रत्येक जानवर कितने-कितने दाम में खरीदने होंगे । इस पहेली का उत्तर है तीन भैंस, पन्द्रह गाय और दो बकरी । यह पहेली क्या है, गणित का प्रश्न है जिसे हल करने के लिये बालकों को बुद्धि से काम लेना पडता है । इन पहेलियों से बालको के मस्तिष्क की शक्ति बढती है और उनको सोचने की आदत पडती है ।

किसी-किसी पहेली में पौराणिक कथा का भी उल्लेख पाया जाता है । जब तक कोई बालक पौराणिक उपाख्यानो से पूर्ण परिचित न हो तब तक वह उस पहेली का उत्तर ही नही दे सकता । ऐसी पहेली को 'बूझने' के लिये उसे अपने पूर्वज्ञान को फिर से ताजा करना पडता है ।[4] जैसे—

'स्याम बरन मुख उज्जर केतना,
रावन सीस मँदोदरि जेतना ।
हनुमान पिता करि लेवि,
तब राम पिता भरि देवि ।'

अर्थात् श्याम रंग वाले उडद का भाव क्या है ? उत्तर है जितना रावण और मन्दोदरी का सिर है अर्थात् एगारह सेर । प्रश्न है हनुमान के पिता अर्थात् वायु से साफ करके लूँगा

---

१. वही २. वही. ३. त्रिपाठी, हमारा ग्राम साहित्य पृ० २८३ । ४ लेखक का निजी संग्रह.

उत्तर है राम के पिता दशरथ के बराबर दूँगा। अर्थात् दस सेर। इस पहली में जब तक बालक को यह पौराणिक उपाख्यान न मालूम हो कि रावण के दस सिर थे, हनुमान के पिता का नाम वायु और राम के पिता का नाम दशरथ था, तब वह इसका उत्तर नहीं दे सकता। इसी प्रकार एक दूसरी पहेली है।[१]

'दु बेक्ती मिलि बाइस कान'

अर्थात् जिन दो व्यक्ति स्त्री और पुरुष के मिलकर बाइस कान हैं वे कौन हैं? उत्तर रावण मन्दोदरी। यहाँ भी रावण के दस सिर होने की बात जाने बिना इसका उत्तर देना कठिन है।

कहीं-कहीं किसी जाति की विशेषता भी इन पहेलियों में प्रकट की गई है। भोजपुरी में एक कहावत है, जिसमें ब्राह्मणों की भोजन प्रियता की ओर संकेत है। इस पहेली से भी इसी बात की पुष्टि होती है।[२]

'अगहन पइठ चैत के प्याट
तेहि पर पंडित करे झप्याट।
है नेरे पँहो ना हेरे
पंडित कहे बिगहपुर केरे।

इसका उत्तर कचौड़ी है। इस पहली में कचौड़ी को देखकर ब्राह्मण के झपटने की बात कही गई है।

संसार की असारता का चित्रण भी इन पहेलियों में बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। शरीर को पिंजरा और मन को पक्षी मानकर जो रूपक बाँधा गया है वह परम रमणीय है।[३]

'सोने के मन तिवारी सोने के पिंजड़ा।
उड़ि गइले मन तिवारी परल बा पिंजड़ा।'

इसका उत्तर 'प्राण' है।

बालक गेहूँ की रोटी खाता है और चने की दाल व्यवहार में लाता है। अतः इन अन्नों के संबंध में पहेलियों का होना स्वाभाविक है। इनमें इन अन्नों के स्वरूप का वर्णन प्रधान है जैसे चने के अग्रभाग का टेढ़ा होना और गेहूँ के मध्य भाग का फटना। ये दोनों ही बातें इन पहेलियों में विद्यमान हैं।[४]

'छोटी मुटी दाई के पेटवे फाटल।
छोटी मुटी दाई के नकिये टेंढ़।'

पहले का उत्तर गेहूँ और दूसरे का चना है।

विभिन्न फसलों के काटने के समय को लक्षित करते हुए भी कुछ पहेलियाँ कही गई हैं।[५] जैसे—

---

१ लेखक का निजी संग्रह २ त्रिपाठी ह० ग्रा० सा० पृष्ठ २८५ ३ लेखक का निजी संग्रह ४ वही ५ वही

'गोल गोल गुटिया सुपारी अइसन रग ।
एगारह देवर लेवे अइले, जेठ के गइलि सग ।'

अर्थात् उसका रूप गोल है और सुपारी के समान रग है । एगारह देवर उसे लेने के लिये आये परन्तु वह अपने जेठ—भसुर के ही साथ गई। इसका उत्तर अरहर है । भाव यह है अरहर अन्य एगारह महीनों में नही काटी जाती, परन्तु ज्येष्ठ मास में पकने पर काटी जाती है । यहाँ 'ज्येष्ठ' शब्द में श्लेष है, जो बडा सुन्दर है ।

आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति भी इन पहेलियो मे बडी सुन्दर रीति से हुई है । पति की मृत्यु पर स्त्रियो के सती होने का उल्लेख तो बहुत मिलता है परन्तु 'वत्ती' के सती होने का वर्णन शायद ही कही उपलब्ध हो । यह पहेली सुनिये—[१]

'नाजुक नारि पिया सग सूतलि, अग में अग मिलाई ।
पिय के बिछुडत जानि कें, सग सती हो जाई ।'

इसका उत्तर वत्ती और तेल है । तेल के जल जान पर वत्ती भी जला जाती है । इसी एक साधारण घटना को कविता का कितना सुन्दर रूप दिया गया है ।

घ प्रकीर्ण सूक्तियाँ

कहावतो, मुहावरो और पहेलियों के अतिरिक्त वहुत-सी ऐसी प्रकीर्ण उक्तियाँ विद्यमान है जो अनेक अवसरो पर कही जाती हैं। ये उक्तियाँ घाघ और 'भड्डरी' के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

घाघ—जीवनवृत्त

घाघ अकबर बादशाह के जमाने मे हुए थे ।[२] ये जाति के दूबे ब्राह्मण थे । कन्नौज के पास इनके नाम से एक पुरवा—छोटा गांव बसा हुआ है जिसका नाम अब वदल गया है । परन्तु पुराने कागजों में 'पुरे घाघ' का उल्लेख मिलता है । घाघ के वशज अब भी उस गाँव में रहते हैं ।

घाघ का सबध छपरा और गोरखपुर जिले, जिसमें आजकल का देवरिया जिला सम्मिलित था, से भी बताया जाता है । सभव है घाघ किसी सवध से वहाँ रहे हो । इसीलिये भोजपुरी कहावतो मे घाघ का नाम बार-बार आता है और जिन कहावतो में इनका नाम नहीं है उनमें इनकी छाप तो अवश्य ही है । इनकी कहावतें युक्तप्रान्त के किसानों में बहुत लोक-प्रिय हैं । घाघ के जीवनवृत्त का कुछ विशेष पता नही चलता । यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि उनकी पतोहू बडी चतुर थी और उससे इनकी बडी नोक-झोंक रहती थी । घाघ जो कहावत कहते थे इनकी पतोहू उसका उल्टा जवाब देती थी । कुछ कहावतों में घाघ और उनकी पतोहू—पुत्र-वधू का उत्तर प्रत्युत्तर-बरावर चलता है ।

१. वही. २ त्रिपाठी: ह० ग्रा० सा० पृ० २५४-२५५

भड्डरी कौन थे, कहा और कब हुए इन बातो का कुछ भी पता नही चलता। ऐसी किम्वदन्ती है कि ये ब्राह्मण पिता और अहीरिन माता के पुत्र थे।[1] इनका नाम कुछ ऐसा विचित्र है जिससे इनकी उच्च जाति के विषय में सन्देह उत्पन्न होता है। इन्होंने वर्षा विषयक बहुत-सा अनुभव अपनी कहावतो में कहा है जो अधिकाश में सच्चा निकलता है। अब तो भड्डरी नाम की एक जाति ही बन गई है जो भड्डरी की कहावतो के आधार पर वर्षा का भविष्य बताया करती है।[2] इस जाति के लोग गोरखपुर जिले में अधिक हैं। राजपूताने में 'भड्डरी' नाम की स्त्री की कहावतें मिलती हैं जो भड्डरी की कहावतो से विशेष समानता रखती है।

वर्ण्य विषय

घाघ और भड्डरी की कहावतो में से घाघ की उक्तिया ही अधिक प्रसिद्ध है। सभी किसान इन्हें जानते हैं और समय-समय पर कहा करते हैं। इन कहावतो का वर्णन विषय बडा विस्तृत है। किसान के जीवन से सबध रखने वाली सभी वस्तुओ का उल्लेख इनमें मिलता है। खेत बोने का उचित समय वर्षा विज्ञान, जोताई, बोआई, सिंचाई कटाई, मडाई ओसाई, खाद फसल के रोग, बीज की पहचान, उत्तम बैल की परीक्षा आदि कृषि शास्त्र सबधी विषयो पर अनुभव भरी उक्तिया इनमे उपलब्ध होती हैं। किस मास में किस वस्तु के भोजन करने से स्वास्थ्य को लाभ पहुँचता है और किस वस्तु के सेवन से नुकसान करता है इनका उल्लेख इन कहावतो में पाया जाता है। ये कहावतें ठोस अनुभव के आधार पर लिखी गई हैं। घाघ का नीरोग रहने का नुसखा तो सचमुच प्रशसनीय है।

पथ्य भोजन—

विभिन्न मासो में पथ्य एव भोज्य पदार्थों की यह सूची देखिये—

'सावन हर्रे भादो चीत, क्वार मास गुड खाओ मेरे मीत।
कातिक मूली, अगहन तेल पूस में करो दूध से मेल
माघ मास घिउ खिचरी खाय फागुन उठि के प्रात नहाय
चैत नीम, बैसाखे बेल, जेठे सयन असाढ क खेल।'

घाघ ने फागुन में प्रात स्नान का विधान बतलाया है। वैद्यक शास्त्र में 'वसन्ते भ्रमण पथ्यम्' लिखा है। इस भ्रमण के साथ स्नान भी हो जाय तो अति उत्तम है। इसी प्रकार विभिन्न मासो में वर्जित भोजन के पदार्थों की सूची भी दी गई है।[3]

कही पर किसी भोज्य वस्तु के साथ किन किन चीजो का प्रयोग स्वादिष्ट होता है इसका भी उल्लेख है। खिचडी के साथ घी, पापड दही और अचार का होना आवश्यक है। इनके ये अभिन्न साथी है।[4]

---

१ वही २ त्रिपाठी ह० ग्र० सा० पृ० २६५ ३ वही पृ० २५१ ४ वही पृ० २५०

'खिचडी के चार यार ।
घी, पापड, दही, अचार ।'

इन कहावतो मे वायु-परीक्षा का सुन्दर उल्लेख है। हवा किस समय में बहती है और कब नही बहती, किस नक्षत्र मे वायु बहने मे वर्षा होगी आदि विषयो का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। घाघ कहते हैं कि जेठ मास में पुरवैया हवा चले तो सावन में भी धूल उड़ेगी अर्थात् वर्षा बिल्कुल नही होगी।[1]

वायु-परीक्षा

'जब जेठ, चले पुरवाई,
तब सावन धूरि उडाई।'

परन्तु यदि यही पुरवैया पूर्वाषाढ नक्षत्र मे बहे तो इतनी अधिक वृष्टि होगी कि सूखी हुई नदियो मे भी नाव चलने लगेगी :[2]

'जो पुरुवा पुरवाई पावै,
सूखी नदिया नाव चलावै।'

वायु परीक्षा के अनन्तर वर्षा-विज्ञान का बडे विस्तार से वर्णन किया गया है। किस मास में गर्मी पडने पर कितनी वर्षा होगी और कब न होगी, इसका वर्णन पाया जाता है। घाघ कहता है कि माघ में गर्मी हो, जेठ में जाडा पड़े, और प्रथम बार वर्षा होने पर ही तालाब भर जाय तब उस समय वर्षा बिल्कुल न होगी और धोबी कुँआ खोदकर के कपडा धोयेंगे।[3]

वर्षा-विज्ञान

'माघ के ऊखम जेठ क जाड़,
पहिले बरखा भरिगा ताल।
कहें घाघ हम होब वियोगी
कुंआ खोदिके धोइहैं धोबी।'

जब ज्येष्ठ मास में खूप गर्मी पड़े तब जानना चाहिये कि वर्षा खूब होगी। यदि मृगशिरा नक्षत्र में खूब गर्मी पड़े तब वर्षा का होना निश्चित है :[4]

'जेठ मास जो तपे निरासा,
तब जानो बरखा के आसा।
... ...
तपे मृगसिरा, जोय, तो बरखा पूरन होय।'

काला बादल गरजता है परन्तु बरसता नही, परन्तु सफेद बादल जल बरसाता है यह वैज्ञानिक सत्य है। इसी बात को कितने सीधे-सादे ढंग से इस कहावत में कहा गया है :[5]

'करिया बादर जी डरवावे,
भूरे बादर पानी लावे।'

---

१. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य पृ० २६६. २. वही. पृ० २६७. ३. वही-पृ० ३००. ४. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य पृ० ३०१. ५. वही. पृ० ३०२.

किस प्रकार से खेत को जोतने पर उसमें अन्न अच्छी तरह से पैदा होता है, इसका बड़ा सुन्दर वर्णन इन कहावतों में किया गया है। खेत को खूब अच्छी तरह से जोतना चाहिये। वह जितना ही अधिक गहरा जोता जायगा उतना अधिक अन्न पैदा होगा। इसी बात को इस कहावत में कहा गया है—

जोताई

'हला लगा पताल, तो टट गया काल'

अर्थात् जब हल पाताल में पहुँचा अधिक जुताई हुई तो अन्न की अधिकता से अकाल दूर हो गया। ईख पैदा करने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। बार-बार उस खेत को जोतना पड़ता है। तीन बार हल चलाया जाय और तेरह बार उसे गोडा-कुदाली से खोदा-जाय तब ईख के अंकुर दिखाई पड़ते हैं[१]—

'तीन कियारी तेरह गोड, तब देखो ऊखी के पोर।'

बोआई एवं निराई

बीज अच्छा हो, परन्तु बोने का तरीका खराब हो, तो फसल अच्छी नहीं होती। गांवों में बोआई के बारे में बहुत-सी कहावतें प्रचलित हैं। जौ, चना, कपास और ईख कैसी बोनी चाहिये इसका वर्णन सुनिये—[२]

छी छी भली जौ चना, छी छी भली कपास,
जिनकी छी छी ऊखडी; उनकी छोड़ो आस।

अर्थात् जौ, चना, कपास को अलग-अलग फासले पर बोना चाहिये परन्तु ईख को घनी बोना उचित है। अन्न को देने पर उसका सींचना आवश्यक है। 'साठी' चावल साठ दिन में होता है परन्तु उसे आठवें दिन पानी से अवश्य सींचना चाहिये। धान, पानी और खीरा इन्हें पानी देना आवश्यक है।

'साठी होवें साठवें दिन, पानी पावे आठवें दिन।'

'धान पान और खीरा, तीनों पानी के कीरा।'

सिंचाई होने पर खेत की निराई भी होनी चाहिये। सावन और भादों में खेत का निराना आवश्यक है नहीं तो अन्न की उपज अच्छी नहीं होगी।

बैल की पहिचान

बैल किसान का सर्वस्व है। यह उसकी खेती का अनन्यतम साधन है। अतः उसके खरीदने में किसान को विशेष सावधानी से काम लेना चाहिये। बैल की सींग मुड़ी हुई, माथा ऊंचा, मुँह गोल, रोवां मुलायम, कान चंचल और गति तेज हो ऐसा बैल अच्छा होता है—[३]

'सींग मुड़े माथा उठा, मुँह का होवे गोल
रोम नरम चंचल करन, तेज बैल अनमोल।'

---

१ वही-पृ० ३२८ २ त्रिपाठी- ह० ग्रा० सा० पृ० ३३४ ३ वही पृ० ३१८

अध्याय १६

उपसंहार

गत पृष्ठों में भोजपुरी लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक कथा तथा प्रकीर्ण साहित्य का जो वर्णन किया गया है उससे यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि भोजपुरी लोक साहित्य काव्य और भाषा शास्त्र की दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। किस प्रकार भोजपुरी शब्दावली जैसे खेती-बारी के शब्द लोहार एवं बढ़ई के विभिन्न औजारों के नाम हिन्दी शब्द कोष में अपनाये जाने पर उसकी श्रीवृद्धि करेंगी, इसका वर्णन गत अध्यायों में किया जा चुका है। हिन्दी शब्दों की निरुक्ति जानने के लिये भोजपुरी सहायक सिद्ध होगी तथा अनेक शब्दों के विकास के इतिहास को इसकी सहायता के बिना लिखना कठिन है।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी भोजपुरी का संरक्षण नितान्त आवश्यक है। भारत की सभ्यता ग्रामीण है और यह सभ्यता लोक साहित्य में छिपी पड़ी है। भारतीय संस्कृति का सच्चा इतिहास इन्हीं लोक गीतों के मधुर एवं श्रुति-सुखद स्वरों में भरा पड़ा है। भोजपुरी लोक-साहित्य के अनुसन्धान तथा संरक्षण की अनेक दिशाएँ हैं जिनका संक्षेप में यहाँ वर्णन किया जाता है।

भोजपुरी प्रान्त में लोक साहित्य समिति की स्थापना आवश्यक है। पाश्चात्य देशों में विशेषतः इंगलैण्ड में वहाँ के लोक साहित्य के संग्रह तथा प्रकाशन के लिये लोक-वार्ता-समिति (फोक लोर सोसाइटी) बनी है, जिनके केन्द्र प्रत्येक बड़े-बड़े स्थानोंमें हैं। इस समिति की ओर से वेतनभोगी कार्यकर्त्ता नियुक्त हैं, जिनका काम गाँवों में घूम-घूमकर लोकसाहित्य का संग्रह करना है। इन लोक वार्ता-सामितियों को गवर्नमेंन्ट की ओर से प्रचुर सहायता मिलती है तथा धनी जनता भी इसे राष्ट्रीय कार्य समझ धन से इसे प्रोत्साहित करती है। इस देश में भी ऐसी ही 'लोक साहित्य समिति' की आवश्यकता है।

इस समिति के द्वारा भोजपुरी के जानकार योग्य कार्यकर्त्ता रखे जायें जिनका काम गाँव-गाँव में घूमकर लोक साहित्य का संग्रह करना हो। दूसरी आवश्यक बात जो इन कार्यकर्त्ताओं को ध्यान देने योग्य है यह कि वे एक गीत के जितने भी विभिन्न पाठ मिलें उन सबका संग्रह करते जायें। किसी एक ही पाठ को शुद्ध समझ कर अन्य पाठों को लिपि-बद्ध न करना अनुचित होगा। किस पाठ की क्या विशेषता है इसे तो विशेषज्ञ ही समझ सकता है। अतः संग्रहकर्ताओं को चाहिये कि एक गीत के जितने भी पाठ उपलब्ध हों उन सब को लिपिबद्ध कर लें।

लखनऊ में डा० डी० एन० मजुमदार रीडर, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्व-विद्यालय के प्रयत्न से एक लोक-संस्कृति-समिति (फोक कल्चर सोसाइटी) की स्थापना हुई है। इस समिति की ओर से कुछ कार्य भी हो रहा है। जहाँ तक हमें ज्ञात है कि इस समिति की ओर से 'स्नो वाल्स आफ गढवाल' और 'फील्ड सांग्स आफ छत्तीसगढ़' आदि दो-चार ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। परन्तु जिस प्रगति से यह कार्य हो रहा है उससे विशेष आशा नहीं की जा सकती।

लोक-गीतों के ह्रास का एक यह भी प्रधान कारण है कि इनके गवैयों को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया और न सभ्य समाज में लोक-कविता पढ़ने का ही उन्हें अवसर मिलता है। ऐसी दशा में अपनी कला को निकृष्ट तथा गँवारू समझ कर वे उसे खोते जा रहे हैं। सभ्य समाज में इन गवैयों को अपनी कविता सुनाने का अवसर मिलना चाहिये और इन्हें पुरस्कार प्रदान कर प्रोत्साहित करना चाहिये।

रेडियो द्वारा गीतों का प्रचार

परन्तु इन गीतों के सबसे अधिक प्रचार का साधन रेडियो है। रेडियो के देहाती प्रोग्राम में इन कवियों की शिष्ट कविता सुनाने का आयोजन होना चाहिये। आल इंडिया-रेडियो के इलाहाबाद स्टेशन से भोजपुरी में अब 'टॉक' होने लगा है। इससे भोजपुरी को प्रोत्साहन मिलेगा।

यदि उपर्युक्त दिशाओं में कार्य किया जाय तो आशा है कि भोजपुरी की उन्नति शीघ्र ही होगी।

जय हिन्दी, जय भोजपुरी!

—:o:—

भोजपुरी लोक-गीतो का सग्रह तथा प्रकाशन नितान्त आवश्यक है। प्रत्येक लोक-गीत में स्थानीय पुट मिला रहता है। यदि उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में भोजपुरी का कोई गीत गाया जाता है तो उसमें इस जिले का स्थानीय पुट अवश्य रहेगा। साथ ही उस गीत की भोजपुरी 'आदर्श भोजपुरी' होगी। परन्तु यदि वही गीत गोरखपुर अथवा बिहार के आरा जिले में मिले तो वहाँ की भाषा मे थोडा अन्तर अवश्य मिलेगा। इसके अतिरिक्त स्थानीय रीति रिवाज मे भी पार्थक्य मिलेगा। ऐसी दशा में इन तीनो जिलो मे मिलने वाले गीतो के एक होने पर भी भाषाशास्त्र की दृष्टि से इनका अपना विशिष्ट महत्व होगा। अत सग्रहकर्ताओ को चाहिये कि एक गीत के जितने भी पाठभेद मिल सकें उन सब का सग्रह करे। प० रामनरेश त्रिपाठी ने अपने 'ग्रामगीत' में अनेक स्थानो पर इस वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया है और उत्तर प्रदेश के पूर्वी और पश्चिमी जिलो तथा बिहार मे मिलने वाले एक ही गीत के अनेक पाठो को दिया है।[1]

लोक-गीतो का संग्रह तथा प्रकाशन

लोक गीतो के सुयोग्य सग्रहकर्ताओ का दूसरा कर्तव्य गीतो के गाने की विधि बतलाती है। कौन-सा गीत किस ताल, सुर अथवा राग में गाया जायगा, यह बतलाना भी आवश्यक है। पाठक गीतो का पढ कर उसके गाने की प्रणाली को ठीक-ठीक समझ जायँ, इसके लिये सग्रहकर्ताओ को प्रत्येक गीत की स्वरलिपि देनी चाहिये। मध्यप्रदेश के गीतो के उत्साही सग्रहकर्ता वेरियर एलविन ने अपने 'फोक साग्स आफ दि मैंकल हिल्स' नामक पुस्तक मे गोंड, बैगा तथा अन्य पार्वत्य जातियो के प्रत्येक गीतो की स्वरलिपि बडे परिश्रम से दी है। इतना ही नहीं, उन्होंने इस पुस्तक में इन जातियो के विभिन्न नृत्यो का मानचित्र डयग्राम भी दिये हैं जिससे नृत्य के अवसर पर विभिन्न पात्रो के खडे होने का स्थान जाना जा सकता है। परन्तु हिन्दी में लोक-गीतो के ऊपर जितनी भी पुस्तकें अभी तक प्रकाशित हुई हैं उनमें यह स्वरलिपि नही मिलती। इसका फल यह होता है कि पाठक गीत से भली भाँति परिचित हो जाने पर भी गाने की विधि से नितान्त अनभिज्ञ रहता है।

भोजपुरी गीत लुप्त होते जा रहे हैं। इसका प्रधान कारण आधुनिक सभ्यता का विस्तार है। आजकल की नयी पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इन प्राचीन गीतो को गाना असभ्यता का सूचक समझती है। इन गीतो को गाने वाली अब केवल बढी स्त्रियाँ रह गई हैं। पुरुषो के गीत बिरहा, पचरा, सोरठी आदि की भी यही दशा है। यदि इन गीतो की शीघ्र रक्षा नही की गई तो ये बहुमूल्य गीत स्वल्पकाल में ही कराल काल के गाल में सदा के लिये विलीन हो जायँगे। अत आवश्यकता इस बात की है कि इन गीतो के रेए

भोजपुरी लोक-गीतो के रेकर्ड तैयार कराना

---

१. दे

लोक-गीतो के ह्रास का एक यह भी प्रधान कारण है कि इनके गवैयो को कोई प्रोत्साहन नही दिया गया और न सभ्य समाज में लोक-कविता पढने का ही उन्हें अवसर मिलता है। ऐसी दशा में अपनी कला को निकृष्ट तथा गँवारू समझ कर वे उसे खोते जा रहे हैं। सभ्य समाज में इन गवैया को अपनी कविता सुनाने का अवसर मिलना चाहिये और इन्हें पुरस्कार प्रदान कर प्रोत्साहित करना चाहिये।

रेडियो द्वारा गीतो का प्रचार

परन्तु इन गीता के सबसे अधिक प्रचार का साधन रेडियो है। रेडियो के देहाती प्रोग्राम में इन कवियो की शिष्ट कविता सुनाने का आयोजन होना चाहिये। आल इंडिया-रेडियो के इलाहाबाद स्टेशन से भोजपुरी में अब 'टॉक' होने लगा है। इससे भोजपुरी को प्रोत्साहन मिलेगा।

यदि उपर्युक्त दिशाओ में काय किया जाय तो आशा है कि भोजपुरी की उन्नति शीघ्र ही होगी।

जय हिन्दो, जय भोजपुरी !

— ० —

भोजपुरी लोक-गीतो का सग्रह तथा प्रकाशन नितान्त आवश्यक है। प्रत्येक लोक-गीत में स्थानीय पुट मिला रहता है। यदि उत्तर प्रदेश के बलिया जिले मे भोजपुरी का कोई गीत गाया जाता है तो उसमें इस जिले का स्थानीय पुट अवश्य रहेगा। साथ ही उस गीत की भोजपुरी 'आदर्श भोजपुरी' होगी। परन्तु यदि वही गीत गोरखपुर अथवा बिहार के आरा जिले मे मिले तो वहाँ की भाषा मे थोडा अन्तर अवश्य मिलेगा। इसके अतिरिक्त स्थानीय रीति रिवाज में भी पार्थक्य मिलेगा। ऐसी दशा में इन तीनो जिलों में मिलने वाले गीतो के एक होने पर भी भाषाशास्त्र की दृष्टि से इनका अपना विशिष्ट महत्व होगा। अत सग्रहकर्ताओ को चाहिये कि एक गीत के जितने भी पाठभेद मिल सकें उन सब का सग्रह करे। प० रामनरेश त्रिपाठी ने अपने 'ग्रामगीत' में अनेक स्थानो पर इस वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया है और उत्तर प्रदेश के पूर्वी और पश्चिमी जिलो तथा बिहार में मिलने वाले एक ही गीत के अनेक पाठों को दिया है।[1]

लोक-गीतो का संग्रह तथा प्रकाशन

लोक गीतों के सुयोग्य सग्रहकर्ताओ का दूसरा कर्तव्य गीतों के गाने की विधि बतलाती है। कौन-सा गीत किस ताल, सुर अथवा राग में गाया जायगा, यह बतलाना भी आवश्यक है। पाठक गीतो को पढ कर उसके गाने की प्रणाली को ठीक-ठीक समझ जायँ, इसके लिये सग्रहकर्ताओ को प्रत्येक गीत की स्वरलिपि देनी चाहियें। मध्यप्रदेश के गीता के उत्साही सग्रहकर्ता वेरियर हलविन ने अपने 'फोक साग्स आफ दि मैकल हिल्स' नामक पुस्तक में गोंड, बेगा तथा अन्य पार्वत्य जातियो के प्रत्येक गीतो की स्वरलिपि बडे परिश्रम से दी है। इतना ही नही, उन्होने इस पुस्तक में इन जातियो के विभिन्न नृत्यो का मानचित्र डयग्राम भी दिये हैं जिससे नृत्य के अवसर पर विभिन पात्रो के खडे होने का स्थान जाना जा सकता है। परन्तु हिन्दी में लोक-गीतो के ऊपर जितनी भी पुस्तकें अभी तक प्रकाशित हुई हैं उनमें यह स्वरलिपि नही मिलती। इसका फल यह होता है कि पाठक गीत से भली भाँति परिचित हो जाने पर भी गाने की विधि से नितान्त अनभिज्ञ रहता है।

भोजपुरी गीत लुप्त होते जा रहे हैं। इसका प्रधान कारण आधुनिक सभ्यता का विस्तार है। आजकल की नयी पढी-लिखी स्त्रियाँ इन प्राचीन गीतो को गाना असभ्यता का सूचक समझती है। इन गीतो को गाने वाली अब केवल बूढी स्त्रियाँ रह गई हैं। पुरुषों के गीत विरहा, पचरा, सोरठी आदि की भी यही दशा है। यदि इन गीतो की शीघ्र रक्षा नही की गई तो ये बहुमूल्य गीत स्वल्पकाल में ही कराल काल के गाल में सदा के लिये विलीन हो जायेंगे। अत. आवश्यकता इस बात की है कि इन गीतो के रेकर्ड तैयार करा लिये जायँ।

भोजपुरी लोक-गीतो के रेकर्ड तैयार कराना

---

१. देखिये कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत)

लोक-गीतो के ह्रास का एक यह भी प्रधान कारण है कि इनके गवैयो को कोई प्रोत्साहन नही दिया गया और न सभ्य समाज में लोक-कविता पढने का ही उन्हें अवसर मिलता है। ऐसी दशा में अपनी कला को निकृष्ट तथा गँवारू समझ कर वे उसे खोते जा रहे है। सभ्य समाज में इन गवैयो को अपनी कविता सुनाने का अवसर मिलना चाहिये और इन्हे पुरस्कार प्रदान कर प्रोत्साहित करना चाहिये।

रेडियो द्वारा गीतो का प्रचार

परन्तु इन गीतो के सबसे अधिक प्रचार का साधन रेडियो है। रेडियो के देहाती प्रोग्राम में इन कवियो की शिष्ट कविता सुनाने का आयोजन होना चाहिये। आल इडिया-रेडियो के इलाहाबाद स्टेशन से भोजपुरी में अब 'टॉक' होने लगा है। इससे भोजपुरी को प्रोत्साहन मिलेगा।

यदि उपर्युक्त दिशाओ में कार्य किया जाय तो आशा है कि भोजपुरी की उन्नति शीघ्र ही होगी।

जय हिन्दी, जय भोजपुरी!

—०—

परिशिष्ट

सहायक सामग्री

हिन्दी

१. भोजपुरी ग्राम गीत, भाग १, (स० २००० वि०)
२ भोजपुरी ग्राम गीत, भाग २, (स० २००५ वि०)
सम्पादक डा० कृष्णदेव उपाध्याय एम० ए०, पी० एच-डी०
प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
३ भोजपुरी लोक-गीतो में करुण रस, सम्पादक श्री दुर्गाशकर प्रसाद सिंह, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
४ भोजपुरी ग्राम्य गीत, सम्पादक डब्लू० जी० आर्चर, आई० सी० एस० और सकटा प्रसाद, प्रकाशक विहार रिसर्च सोसाइटी, पटना।
५ कविता कौमुदी, भाग ५, (ग्राम गीत), सम्पादक प० रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक हिन्दी मन्दिर प्रयाग।
६ हमारा ग्राम साहित्य, सम्पादक एव प्रकाशक वही।
७ सोहर, सम्पादक एव प्रकाशक वही।
८ मैथिली लोक-गीत, सम्पादक रामएकबाल सिंह 'राकेश'। प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
९ छत्तीसगढी लोकगीत, सम्पादक डाक्टर श्यामाचरण दूबे, एम० ए०, पी० एच० डी०।
१० ब्रज लोक सस्कृति, सम्पादक डाक्टर सत्येन्द्र एम० ए०, पी० एच० डी०, प्रकाशक ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा।
११ ब्रज लोक साहित्य का विवरण, वही।
१२ ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, वही, प्रकाशक साहित्य रत्न भडार, आगरा।
१३ हिन्दी लोक गीत, लेखक श्रीमती रामकुमारी श्रीवास्तव, एम० ए० प्रकाशक साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, (सन् १९४६)।
१४ बेला फूले आधी रात, धरती गाती है, चट्टान से पूछ लो। लेखक श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रकाशक राजकमल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
१५ ईसुरी के फाग, प्रकाशक लोक वार्ता परिषद, टीकमगढ।
१६ ब्रज की लोक कहानियां, सम्पादक डा० सत्येन्द्र। प्रकाशक ब्रज साहित्य मडल, मथुरा।
१७ बुन्देलखड की कहानियां, सम्पादक शिवसहाय चतुर्वेदी।
१८ गाव की कहानियां, सम्पादक रमेश वर्मा।
१९ पृथ्वी पुत्र, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल।

राजस्थानी

१ राजस्थान के लोक-गीत, भाग १, २, सम्पादक श्री सूर्यकरण पारीक, ठाकुर राम सिंह, पंडित नरोत्तम दास स्वामी, प्रकाशक राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता (सन् १९३८)।
२ राजस्थानी लोक-गीत, सम्पादक श्री सूर्यकरण पारीक, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
३ राजस्थान रा दूहा, भाग १, सम्पादक पंडित नरोत्तमदास स्वामी, प्रकाशक पिलाणी राजस्थानी सीरीज।
४ ढोला मारू रा दूहा, सम्पादक श्री सूर्यकरण पारीक, ठाकुर रामसिंह, पंडित नरोत्तमदास स्वामी, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
५ बीकानेर के गीत, देश के गीत, बालकों के गीत नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित।
६ राजस्थानी बाता, सम्पादक श्री सूर्यकरण पारीक, प्रकाशक पिलाणी राजस्थानी ग्रन्थमाला, (जयपुर)।
७ राजपूताने के ऐतिहासिक प्रवाद, लेखक प्रो० कन्हैयालाल सहल।
८ राजस्थानी लोकोक्ति संग्रह, सम्पादक प्रो० कन्हैयालाल सहल।

गुजराती

१ रढ़ियाली रात, भाग १, २, ३, ४, सम्पादक झवेरचन्द मेघाणी, प्रकाशक गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, गांधी रोड, अहमदाबाद।
२ ऋतु गीतो, सम्पादक तथा प्रकाशक वही।
३ धरती नु धावण, वही।
४ सोरठ नु तीरे तीरे, वही।
५ लोक-साहित्य, लेखक झवेरचन्द मेघाणी, प्रकाशक वही, राणापुर (काठियावाड)।
६ लोक साहित्य नु समालोचन, लेखक वही, प्रकाशक बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई।
७ सौराष्ट्र ना खंडेरोमा, लेखक वही, प्रकाशक नागरदास मोहनलाल, राणापुर, काठियावाड।
८ नागर स्त्रिओ मा गवाता गीत, सम्पादक नर्मदाशंकर लाल शंकर, प्रकाशक दि गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, अहमदाबाद।

बंगला

१ पूर्व बंग गीतिका, भाग १, २, ३, ४।
२ मैमन सिंह गीतिका, सम्पादक डाक्टर दिनेशचन्द्र सेन, प्रकाशक कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता।
३ हारामणि, मुहम्मद मन्सूरउद्दीन द्वारा सम्पादित, प्रकाशक वही।
४ ठाकुर दादार झली।

पत्रिकाएँ

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भोजपुरी लोक गीतों में गौरी का स्थान। "भोजपुरी" १९४८, भाग १, फिरंगिया की रचना।

हिन्दुस्तानी, अप्रैल १९३६, पृ० १५६, जुलाई १९३९, पृ० २४५, भोजपुरी लोकोक्तियाँ, लेखक : डाक्टर उदयनारायण तिवारी।

हिन्दुस्तानी, अप्रैल १९४० पृ० १६७; अक्टूबर १९४० पृ० ३९७, जनवरी १९४१ पृ० ४६, भोजपुरी मुहावरे, लेखक वही।

हिन्दुस्तानी, अक्टूबर १९४२, पृष्ठ २६७।

हिन्दुस्तानी, अक्टूबर १९४८, भोजपुरी लोक गीतों में कवित्व, लेखक : कृष्णदेव उपाध्याय।

हिन्दुस्तानी, 'भोजपुरी ग्राम गीत', लेखक प्रो० बलदेव उपाध्याय।

हिन्दुस्तानी, भाग १६, अंक २, पृ० १२०, १४४, भोजपुरी व्याकरण, लेखक : लालजी सिंह।

अंग्रेजी ग्रन्थ

विशिष्ट

1 **Hindi Folk Songs** by *A G Shirreff* (Published by Hindi Mandir, Allahabad)

2 **Field songs of Chhattisgarh** by *Dr S C Dube*

3 **Snow Balls of Garhwal** by *N S Bhandari*

4 **Lonely Furrows of the Borderland** by *K S Pangtey*

5 **The Gondwana and the Gonds** by *Dr Indrajit Singh*

These above four books are published by The Universal Publishers Ltd, Hazratganj Lucknow

6 **The Blue Grove** by **W G Archer** (Oxford University Press)

7 **Folk Songs of the Maikal Hills** by *Dr Verrier Elwin* (O U P)

8 **Folk Tales from Mahakoshal** by *the same author*

9 **Eastern Bengal Ballads Vols** 1,2,3,4, Edited by *Dr D C Sen* (Published by Calcutta University)

10 **Folk Literature of Bengal** by *the same author*

11 **Folk Art of Bengal** by *G S Datta I C S*

12 **English & Scottish Popular Ballads** by *F J Childs* 5 Vols (Boston 1882 98)

13 **The same in one Volume,** Edited by *H C Sergent & G L, Kittredge* (Published by George G Harrop & Co Ltd London)

14 **Ballads of All Nations** — Translated by *George Borrow*, (Published by Alstor Rivers Ltd, London)

15 **Old English Ballads** — Selected & edited by *Francis B Gummare* (Published by Ginn & Company, Newyork)

16 **The English Ballad,** Edited by *Robert Graves* (Published by Ernest Benn Ltd, London)

17 **The Ballad by Frank Sidgwick** (Published by Martin Secker, London)

18. **Anthology in Folk Lore** by *G L Gomme*

19 **Folk Lore in Early British History** by *the same author*

20 **The Popular Ballad,** Edited by *F.B Gummare*

21 **The Beginnings of Poetry** by *the same author*

22 **The Reliques** by *Bishop Percy*

23 **Popular Ballads of Olden Times** by *Sidgwick*

24 **Introduction to Folk Lore** by *M.R Cox*

25 **Popular Rhymes of Scotland** by *Chambers*

JOURNALS

1 **Bulletin of The School of Oriental Studies,** Vol I Part III (1920) pp 87 - The Popular Literature of Northern India by *Dr Grierson*

2 **Eastern Anthropologist, Vol. III,** (1949-50), pp 57—Bihu Songs of Assam by *P D Goswami*

3 **Indian Antiquary, Vol. XIV** (1885), pp 209—The Song of Alha's Marriage

4 „ „ A Summary of the Alha Khand, pp 255

5 **J.A.S.B., Vol. III** (1868) New Series, pp 483—Notes on the Bhojapuri Dielect of Hindi spoken in Western Behar by *J Beams*

6 **J.A.S.B. Vol. XIII,** Part I No 3, The Song of Manik Chandra, (Collected & Edited by *G A Grierson*)

7 **J.A.S.B. Vol. LII** (1883) pp 1—Folk Lore from Eastern Gorakhpur (Collected by *Huge Fraser* and edited with notes by *Dr Grierson*)

8 **J.A.S.B. Vol. LIII** (1884) pp 232—Baiswari Folk Songs, (Collected by *Babu Yogendra Nath Rai* and edited by *W Irvine*)

9 **J.A.S B. Vol. LIII** (1884), Part III, pp 94–The Song of Bijay Mal (Edited and translated by *Grierson*)

10 **J.A.S B. Vol. LIV** (1885), Part I, pp 35–Two versions of the Song of Gopichand

11 **J.R.A.S., Vol. XVI** (1884) Page 196 and on Some Behari Folk Songs (by *Dr. Grierson*)

12. **J.R.A.S., Vol. XVIII** (1886) pp 207—Some Bhojapuri Folk Songs (*Grierson*)

13 **Man in India, Vol. XXII & XXIII,** Songs of Tribes of Central Provinces

14 **Man in India,** Folk Song Number

15. **Z.D.M.G , Vol. XXIX,** Page 617—Git Netrak by *Dr Grierson*

16. **Z.D.M.G., Vol XLIII** (1889), pp 468—Selected Specimens of the Behari Language, Part II—The Behari Dielect, The Git Naika Banajarwa

———